स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-110

उत्तर प्रदेश के प्रमुख पुरातात्विक स्थल

Main Archaeological Sites of Uttar Pradesh

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

MAAH-110 N

उत्तर प्रदेश के प्रमुख पुरातात्विक स्थल

Main Archaeological Sites of Uttar Pradesh

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम

विषय सूची

इकाई 1	: उत्तर प्रदेश : परिचय, भौगोलिक विशेषताएँ	3
इकाई 2	: आलमगीरपुर, अतरंजीखेड़ा, सिनौली	22
इकाई 3	: अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, बिठूर	32
इकाई 4	: मथुरा, काम्पिल्य, जखेड़ा	42
इकाई 5	: चोपानीमाण्डो, कोल्डिहवा, महगड़ा	57
इकाई 6	: ऋंग्वेरपुर, झूँसी, हेतापट्टी, मादरडीह	64
इकाई 7	: सरायनाहर राय, महदहा, दमदमा	78
इकाई 8	: सारनाथ, राजघाट, रामनगर	118
इकाई 9	: राजा नल का टीला, मल्हार, अगियाबीर	142
इकाई 10	: खैराडीह, प्रहलादपुर, पक्काकोट	155
इकाई 11	: लहुरादेवा, सोहगौरा, पिपरहवा	182
इकाई 12	: नरहन, भूनाडीह, लखनेश्वरडीह	197
इकाई 13	: अयोध्या, चित्रकूट, कौशाम्बी	212
इकाई 14	: श्रावस्ती, कुशीनगर, द्वारकापुर	231

परामर्श समिति

आचार्य सत्यकाम	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो. सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो. हर्ष कुमार	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. राजकुमार गुप्ता	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) वि.वि., प्रयागराज
प्रो. प्रवीण कुमार मिश्र	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि.,प्रयागराज

लेखक	**इकाई**
डॉ. संजय कुमार कुशवाहा सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज	1–14

सम्पादक	**इकाई**
डॉ. रमाकान्त सिंह सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज	1–14

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

मुद्रित माह एवं वर्ष – जुलाई, 2025

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. –978-93-48987-40-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे ंमिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही ंहै।

नोट :पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ो ंआदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नही ंहैं।

प्रकाशन विनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2025।

मुद्रक–चन्दकला यूनिवर्सल प्रा0लि0, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज–211021

इकाई–1 : उत्तर प्रदेश : परिचय, भौगोलिक विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 उत्तर प्रदेश : परिचय

1.3.1 उत्तर प्रदेश के इतिहास के प्रमुख तथ्य

1.3.2 प्राचीन कालीन ऐतिहासिक तथ्य

1.3.3 मध्यकालीन इतिहास

1.3.4 आधुनिक काल

1.3.5 स्वतन्त्रता के पश्चात उत्तर प्रदेश

1.3.6 राज्य का विभाजन

1.3.7 जनपद और मण्डल

1.3.8 जनसंख्या और आवास

1.3.9 कला और संस्कृति

1.3.10 नृत्य

1.3.11 क्षेत्रीय हस्तशिल्प

1.3.12 सांस्कृतिक विरासत

1.3.13 त्योहार एवं मेला

1.4 भौगोलिक विशेषताएँ

1.4.1 भौगोलिक विभाजन–

1.4.2 उत्तर प्रदेश की भौगोलिक सीमाएँ

1.5 उत्तर प्रदेश में नदियाँ और सहायक नदियों

1.6 उत्तर प्रदेश के प्रमुख अपवाह क्षेत्र

1.7 उत्तर प्रदेश की प्रमुख नदी

1.7.1 गंगा नदी

1.7.2 यमुना नदी

1.7.3 घाघरा नदी

1.7.4 सोन

1.8 अपवाह तंत्र

1.8.1 अन्य सहायक नदियाँ

1.8.2 घाघरा व्यवस्था

1.8.3 राप्ती व्यवस्था

1.8.4 ताल

1.9 जीव–जन्तु एवं पशुपालन

1.10 औद्योगिक विकास

1.11 जनसंख्या

1.12 सारांश

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.14 बोध प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवथा ,धर्म, संस्कृति, कला एवं स्थापत्य किसी भी दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है। महाकुम्भ 2025 ने उत्तर प्रदेश को न केवल सम्पूर्ण भारत में बल्कि विश्व भर में प्रसिद्धि दिलाया है। उत्तर प्रदेश का प्राचीन नाम 'ब्रह्मर्षि देश' या 'मध्य देश' था.। नामकरण के ऐतिहासिक विकास क्रम को देखा जाय तो उत्तर वैदिक काल में ब्रह्मर्षि देश या मध्य देश के रूप में जाना जाता था.। ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों ने इस क्षेत्र को आगरा और अवध का संयुक्त प्रांत कहा, जिसे बाद में संयुक्त प्रांत के नाम से जाना गया. और 24 जनवरी 1950 को संयुक्त प्रांत का नाम बदलकर उत्तर प्रदेश कर दिया गया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक विशेषता के बारे में
- प्रदेश के भौगोलिक संदर्भ को
- उत्तर प्रदेश की अपवाह तंत्र के बारे में
- उत्तर प्रदेश की प्रमुख नदियों एवं मैदानी भागों के बारे में जान सकेंगे।
- उत्तर प्रदेश के ऐतिहासिक विकास के बारे में जान सकेंगे।
- उत्तर प्रदेश पर्यटन और अर्थव्यवस्था के वृद्धि दरकोण से कितना महत्वपूर्ण है, इस संदर्भ को भी जान सकेंगे।
- उत्तर प्रदेश की नदियाँ और राज्य के इतिहास और संस्कृति को आकार देने में उनके महत्व के बारे में जानेंगे। हम उत्तर प्रदेश की नदियों की उत्पत्ति, मार्ग, सहायक नदियों और आज उनके सामने आने वाली चुनौतियों का पता लगाएंगे।

1.3 उत्तर प्रदेश : परिचय

उत्तर प्रदेश भारत का सबसे बड़ा (जनसंख्या के आधार पर) राज्य और क्षेत्रफल की वृद्धि दर के आधार पर चौथा सबसे बड़ा राज्य है। लखनऊ प्रदेश की प्रशासनिक व विधायिक राजधानी है और प्रयागराज न्यायिक राजधानी है। आगरा, गाजीपुर , अयोध्या, अलीगढ़, कानपुर, अंबेडकर नगर, झाँसी, ललितपुर, बरेली, मेरठ, बुलंदशहर वाराणसी, गोरखपुर, बस्ती, संत कबीर नगर मथुरा, मुरादाबाद, प्रदेश के अन्य महत्त्वपूर्ण शहर हैं (मानचित्र– 1.1)। यह राज्य उत्तर में नेपाल व उत्तराखण्ड, दक्षिण में मध्य प्रदेश, पश्चिम में हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान तथा पूर्व में विहार तथा दक्षिण–पूर्व में झारखण्ड व छत्तीसगढ़ से घिरा हुआ है। इनके अतिरिक्त राज्य के पूर्वोत्तर की ओर नेपाल देश है।

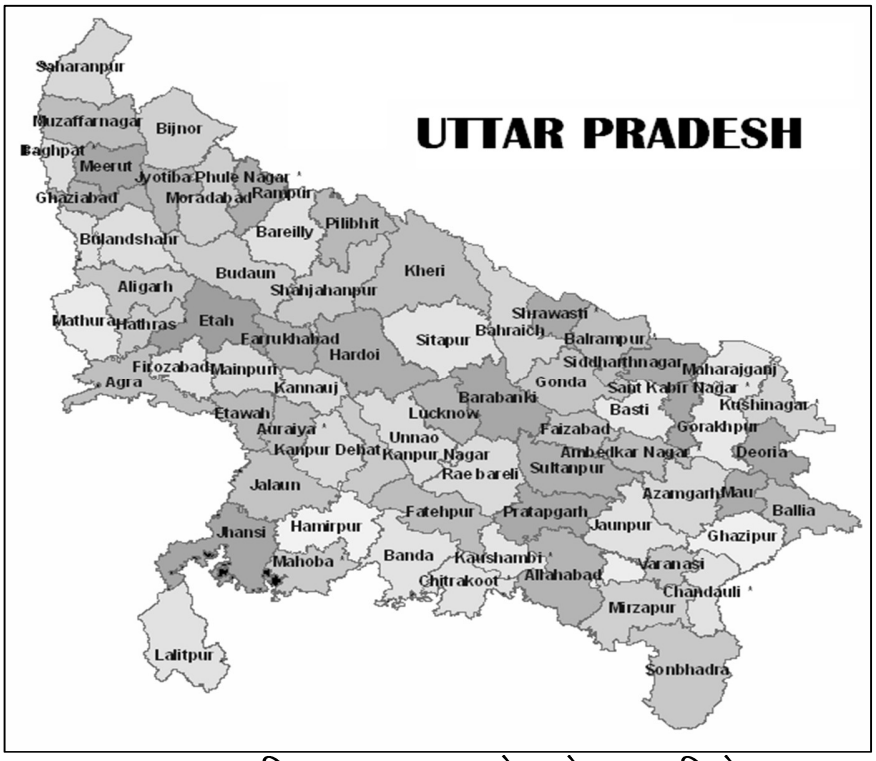

मानचित्र 1.1 –उत्तर प्रदेश के प्रमुख जिले

गंगा मैदान का अधिकतर हिस्सा सघन आबादी वाले गंगा और यमुना दोआब क्षेत्र में आता है। विश्व में केवल चार देशों चीन,, संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनिशिया और ब्राजील की जनसंख्या उत्तर प्रदेश की जनसंख्या से अधिक है। उत्तर प्रदेश भारत के उत्तर में स्थित है। प्रदेश की राजधानी लखनऊ है जो प्रदेश की राजनीति का केन्द्र भी है। भारत का प्रथम राज्य जहॉ महिला मुख्यमन्त्री बनीं। यह राज्य 2,38,566 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहाँ का मुख्य न्यायालय प्रयागराज में है। उत्तर प्रदेश के 5 सबसे बड़े महानगर लखनऊ, कानपुर, आगरा, गाजियाबाद, प्रयागराज है और तेजी से जनसंख्या बढ़ने वाले शहर लखनऊ और आगरा हैं। इन दोनों शहरों की जनसंख्या पूरे उत्तर प्रदेश में सबसे तेजी से बढ़ रही है।

1.3.1 उत्तर प्रदेश के इतिहास के प्रमुख तथ्य

उत्तर प्रदेश का इतिहास पहले लगभग 5000 वर्ष पुराना माना जाता था, जब आर्यों ने अपना पहला कदम इस जगह पर रखा। इस समय वैदिक सभ्यता का प्रारम्भ हुआ और उत्तर प्रदेश में इसका जन्म हुआ। आर्यों का फैलाव सिन्धु नदी और सतलज के मैदानी भागों से यमुना और गंगा के मैदानी क्षेत्र की ओर हुआ। आर्यों ने दोआब और घाघरा नदी क्षेत्र को अपना घर बनाया। इन्हीं आर्यों के नाम पर भारत देश का नाम आर्यावर्त या भारतवर्ष पड़ा। समय के साथ आर्य भारत के दूरस्थ भागों में फैल गये। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश का इतिहास बहुत बदल चुका है अब उत्तर प्रदेश का इतिहास लगभग 2,00,000 बी.सी. के आसपास जा चुका है। बेलन नदी घाटी, मिर्जापुर, सोनभद्र इत्यादि क्षेत्रों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा किये गए कार्यों से प्राप्त पाषाण संस्कृति के साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। सरायनाहरराय, महदहा, दमदमा, कोल्डिहवा, महगड़ा, झूँसी, हेतापट्टी, लहुरादेवा इत्यादि से प्राप्त साक्ष्य मध्य पाषाणकालीन और नवपाषाणिक संस्कृतियों का इतिहास उद्घाटित करते हैं। संसार के प्राचीनतम नगरों में से एक माना जाने वाला काशी (वाराणसी) नगर भी उत्तर प्रदेश में स्थित है। वाराणसी वर्तमान समय में विश्वनाथ मंदिर कॉरिडोर बनने की वजह से ज्यादा चर्चा में है। वाराणसी में स्थित सारनाथ का चौखंडी स्तूप भगवान बुद्ध के प्रथम प्रवचन की याद दिलाता है। समय के साथ यह क्षेत्र छोटे–छोटे राज्यों में बँट गया या फिर बड़े साम्राज्यों मौर्य, कुषाण, गुप्त का हिस्सा बन गया। 7वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक कन्नौज, गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य का प्रमुख केन्द्र था, जो कि उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण शहर है। उत्तर प्रदेश के इतिहास का विवरण निम्नवत् है–

1.3.2 प्राचीन कालीन ऐतिहासिक तथ्य

उत्तर प्रदेश हिन्दू धर्म का प्रमुख स्थल प्राचीन काल से ही रहा है। प्रयाग के कुम्भ का महत्त्व पुराणों में वर्णित है। त्रेतायुग में विष्णु अवतार श्री रामचन्द्र जी ने अयोध्या में जन्म लिया। राम भगवान का चौदह वर्ष के वनवास में प्रयाग, चित्रकूट, श्रंगवेरपुर आदि का महत्त्व है। भगवान कृष्ण का जन्म मथुरा में और पुराणों के अनुसार विष्णु के दशम् अवतार का कलयुग में अवतरण भी उत्तर प्रदेश में ही वर्णित है। काशी (वाराणसी) के विश्वनाथ मन्दिर का सनातन धर्म विशेष महत्त्व है। सनातन धर्म के प्रमुख ऋषि रामायण रचयिता महर्षि वाल्मीकि जी, रामचरित मानस रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी, महर्षि भरद्वाज जी इत्यादि का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश से रहा है। उत्तर प्रदेश में कई देवियों के प्रसिद्ध मंदिर है, जैसे मिर्जापुर का विंध्यवासिनी मंदिर, गाजीपुर (करहिया) का माँ कामाख्या मंदिर, सहारनपुर का शाकंभरी देवी मंदिर जिसकी स्थापना ई0पू0 में हुई थी, इत्यादि प्रमुख है।

सातवीं शताब्दी ई०पू० के अन्त से भारत और उत्तर प्रदेश का व्यवस्थित इतिहास आरम्भ होता है, जब उत्तरी भारत में 16 महाजनपद श्रेष्ठता की दौड़ में शामिल थे, इनमें से सात वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा के अंतर्गत थे। बुद्ध ने अपना पहला उपदेश वाराणसी के सारनाथ में दिया और एक ऐसे धर्म की नींव रखी, जो न केवल भारत में, बल्कि चीन व जापान जैसे सुदूर देशों तक भी फैल गया। कहा जाता है कि बुद्ध को कुशीनगर में निर्वाण (शरीर से मुक्त होने पर आत्मा की मुक्ति) प्राप्त हुआ था, जो उत्तर प्रदेश के पूव मैं कुशीनगर जिले में स्थित है। पाँचवीं शताब्दी ई. पू. से छठी शताब्दी ई० तक उत्तर प्रदेश अपनी वर्तमान सीमा से बाहर केन्द्रित शक्तियों के नियंत्रण में रहा, पहले मगध, जो वर्तमान विहार राज्य में स्थित था और बाद में उज्जैन, जो वर्तमान मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है। इस राज्य पर शासन कर चुके इस काल के महान शासकों में चक्रवर्ती सम्राट महापद्मनंद और उसके बाद उनके पुत्र चक्रवर्ती सम्राट धनानंद, जो नाई समाज से थे। सम्राट महापद्मनंद और धनानंद के समय मगध विश्व का सबसे अमीर और बड़ी सेना वाला साम्राज्य हुआ करता था। चन्द्रगुप्त (लगभग 323–280 ई0 पू0) व अशोक (लगभग 268 या 265–238 ई0 पू0), जो मौर्य वंश के शासक थे। समुद्रगुप्त (लगभग 330–380 ई०) चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग 380–415 ई., जिन्हें कुछ विद्वान विक्रमादित्य मानते हैं) और स्कन्दगुप्त गुप्त वंश के प्रसिद्ध शासक थे । इसी क्रम में वर्धन वंश के एक अन्य प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन (शासनकाल 606–647) थे, जिन्होंने कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज के निकट) स्थित अपनी राजधानी से समूचे उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, पंजाब और राजस्थान के कुछ हिस्सों पर शासन किया।

उत्तर प्रदेश के इतिहास के इस काल के दौरान बौद्ध संस्कृति, का उत्कर्ष हुआ। अशोक के शासनकाल के दौरान बौद्ध कला के स्थापत्य व वास्तुशिल्प प्रतीक अपने चरम पर पहुँचे। गुप्त काल (लगभग 319–555) के दौरान हिन्दू कला का भी अधिकतम विकास हुआ। लगभग 647 ई० में हर्ष की मृत्यु के बाद हिन्दूवाद के पुनरुत्थान के साथ ही बौद्ध धर्म का धीरे–धीरे पतन हो गया। इस पुनरुत्थान के प्रमुख रचयिता दक्षिण भारत में जन्मे आदि शंकराचार्य थे, जो वाराणसी पहुँचे, उन्होंने उत्तर प्रदेश के मैदानों की यात्रा की और हिमालय में बद्रीनाथ में प्रसिद्ध मन्दिर की स्थापना की। इसे हिन्दू मतावलम्बी चौथा एवं अन्तिम मठ (हिन्दू संस्कृति का केन्द्र) मानते हैं। यहाँ एक तीर्थ स्थान मुजफ्फरनगर जिले से पूर्व में 28 किलोमीटर का शुकरताल है। मान्यता है कि यहाँ 5000 वर्ष पुराना वट वृक्ष है, जिसके नीचे सूत जी ने कथा सुनाई थी। काशी, अयोध्या, मथुरा, चित्रकूट इत्यादि इस काल के महत्वपूर्ण पवित्र स्थल थे।

1.3.4 मध्यकालीन इतिहास

उत्तर प्रदेश के मध्यकालीन इतिहास का विभाजन मुसलमानों के आगमन से किया गया है। इस क्षेत्र में हालाँकि 1000–1030 ई. तक मुसलमानों का आगमन हो चुका था, किन्तु उत्तरी भारत में 12वीं शताब्दी के अन्तिम दशक के बाद ही मुस्लिम शासन स्थापित हुआ, जब मुहम्मद गोरी ने गहड़वालों (जिनका उत्तर प्रदेश पर शासन था) और अन्य प्रतिस्पर्धी वंशों को हराया था। लगभग 650 वर्षों तक अधिकांश भारत की तरह उत्तर प्रदेश पर भी किसी न किसी मुस्लिम वंश का शासन रहा, जिनका केन्द्र दिल्ली या उसके आसपास का कोई क्षेत्र रहता था। 1526 ई. में बाबर ने दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को हराया और सर्वाधिक सफल मुस्लिम वंश, मुगल वंश की नींव रखी। इस साम्राज्य ने 350 वर्षों से भी अधिक समय तक उपमहाद्वीप पर शासन किया। इस साम्राज्य का महानतम काल अकबर (1556–1605 ई.) से लेकर औरंगजेब (1707) का काल था, जिन्होंने आगरा के पास नई शाही राजधानी फतेहपुर सीकरी का निर्माण किया। उनके पोते शाहजहाँ (1628–1658 ई.) ने आगरा में ताजमहल (अपनी बेगम की याद में बनवाया गया मकबरा, जो प्रसव के दौरान चल बसी थीं) बनवाया, जो विश्व के महानतम वास्तुशिल्पीय नमूनों में से एक है। शाहजहाँ ने आगरा व दिल्ली में भी वास्तुशिल्प की वृद्धि दर से कई महत्त्वपूर्ण इमारतें बनवाईं थीं।

उत्तर प्रदेश में केन्द्रित मुगल साम्राज्य ने एक नई मिश्रित संस्कृति के विकास को प्रोत्साहित किया। अकबर इसके प्रतिपादक थे, जिन्होंने बिना किसी भेदभाव के अपने दरबार में वास्तुशिल्प, साहित्य, चित्रकला और संगीत विशेषज्ञों को नियुक्त किया था। भारत के विभिन्न मत और इस्लाम के मेल ने कई नए मतों का विकास किया, जो भारत की विभिन्न जातियों के बीच साधारण सहमति प्रस्थापित करना चाहते थे। भक्ति आन्दोलन के संस्थापक रामानन्द जी (1400–1470 ई०) थे। किसी व्यक्ति की मुक्ति 'लिंग' या 'जाति' पर आश्रित नहीं होती। सभी धर्मों के बीच अनिवार्य एकता की शिक्षा देने वाले कबीर ने उत्तर प्रदेश में मौजूद धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध अपनी लड़ाई केन्द्रित की। 18वीं शताब्दी में मुगलों के पतन के साथ ही इस मिश्रित संस्कृति का केन्द्र दिल्ली से लखनऊ चला गया, जो अवध के नवाब के अन्तर्गत था और जहाँ साम्प्रदायिक सद्भाव के वातावरण में कला, साहित्य, संगीत और काव्य का उत्कर्ष हुआ। उत्तर प्रदेश के इस मध्यकालीन वातावरण में स्थापत्यिक सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रगति हुई और बहुत से मुगल कालीन भवनों का निर्माण हुआ।

1.3.5 आधुनिक काल

मुगलों के बाद, लगभग 75 वर्ष की अवधि में उत्तर प्रदेश के क्षेत्र का ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने धीरे–धीरे अधिग्रहण किया। विभिन्न उत्तर भारतीय वंशों 1775, 1798 और 1801 में नवाबों, 1803 में सिन्धिया और 1816 में गोरखों से छीने गए प्रदेशों को पहले बंगाल प्रेसीडेंसी के अन्तर्गत रखा गया, लेकिन 1833 में इन्हें अलग करके पश्चिमोत्तर प्रान्त (आरम्भ में आगरा प्रेसीडेंसी कहलाता था) गठित किया गया। 1856 ई. में कम्पनी ने अवध पर अधिकार कर लिया और आगरा एवं अवध संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा के समरूप) के नाम से इसे 1877 ई० में पश्चिमोत्तर प्रान्त में मिला लिया गया। 1902 ई० में इसका नाम बदलकर संयुक्त प्रान्त कर दिया गया।

1857–1859 ई. के बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध हुआ विद्रोह मुख्यतः पश्चिमोत्तर प्रान्त तक सीमित था। 10 मई 1857 ई. को मेरठ में सैनिकों के बीच भड़का विद्रोह कुछ ही महीनों में 25 से भी अधिक शहरों में फैल गया। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। उन्होंने अंग्रेजों से डटकर मुकाबला किया और ब्रिटिश सेना के छक्के छुड़ा दिए। 1858 ई० में विद्रोह के दमन के बाद पश्चिमोत्तर और शेष ब्रिटिश भारत का प्रशासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी से ब्रिटिश ताज को हस्तान्तरित कर दिया गया। 1880 ई. के उत्तरार्द्ध में भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के साथ संयुक्त प्रान्त स्वतन्त्रता आन्दोलन में अग्रणी रहा। प्रदेश ने भारत को मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय, जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी राजनीतिक नेता दिए। 1922 ई0 में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिलाने के लिए किया गया। महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन पूरे संयुक्त प्रान्त में फैल गया, लेकिन चौरी चौरा गाँव (प्रान्त के पूर्वी भाग में) में हुई हिंसा के कारण महात्मा गांधी ने अस्थायी तौर पर आन्दोलन को रोक दिया। संयुक्त प्रान्त मुस्लिम लीग की राजनीति का भी केन्द्र रहा। ब्रिटिश काल के दौरान रेलवे, नहर और प्रान्त के भीतर ही संचार के साधनों का व्यापक विकास हुआ। अंग्रेजों ने यहाँ आधुनिक शिक्षा को भी बढ़ावा दिया और यहाँ पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय (1887), लखनऊ विश्वविद्यालय (1921 में स्थापित) जैसे विश्वविद्यालय व कई महाविद्यालय स्थापित किए।

सन् 1857 में अंग्रेजी फौज के भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह एक वर्ष तक चला और अधिकतर उत्तर भारत में फैल गया। इसे भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कहा गया। इस विद्रोह का प्रारम्भ मेरठ शहर में हुआ। इसका कारण अंग्रेजों द्वारा गाय और सुअर की चर्बी से युक्त कारतूस का प्रयोग करना, बताया गया। इस संग्राम का एक प्रमुख कारण डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति भी थी। यह लड़ाई मुख्यतः दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, झाँसी और बरेली में लड़ी गयी। इस लड़ाई में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अवध की बेगम हजरत महल, बख्त खान, नाना साहेब, राजा बेनी माधव सिंह, कोतवाल धनसिंह गुर्जर और अनेक देशभक्तों ने भाग लिया।

सन् 1902 में नार्थ वेस्ट प्रोविन्स का नाम बदल कर यूनाइटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध कर दिया गया। साधारण बोलचाल की भाषा में इसे यू0पी0 कहा गया। सन् 1920 में प्रदेश की राजधानी को प्रयागराज से लखनऊ कर दिया गया। प्रदेश का उच्च न्यायालय प्रयागराज ही बना रहा और लखनऊ में उच्च न्यायालय की एक न्यायपीठ स्थापित की गयी।

1.3.6 स्वतन्त्रता के पश्चात उत्तर प्रदेश

1947 में संयुक्त प्रान्त नव स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य की एक प्रशासनिक इकाई बना। दो वर्ष बाद इसकी

सीमा के अन्तर्गत स्थित, टिहरी गढ़वाल और रामपुर के स्वायत्त राज्यों को संयुक्त प्रान्त में शामिल कर लिया गया। 1950 में नए संविधान के लागू होने के साथ ही 24 जनवरी सन 1950 को इस संयुक्त प्रान्त का नाम '**उत्तर प्रदेश**' रखा गया और यह भारतीय संघ का राज्य बना। स्वतंत्रता के बाद से भारत में इस राज्य की प्रमुख भूमिका रही है। इसने देश को जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी, लाल बहादुर शास्त्री सहित कई प्रधानमंत्री, सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक आचार्य नरेन्द्र देव, जैसे प्रमुख राष्ट्रीय विपक्षी दलों के नेता और भारतीय जनसंघ, बाद में भारतीय जनता पार्टी व प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी जैसे नेता दिए हैं। राज्य की राजनीति, हालाँकि विभाजनकारी रही है और कम ही मुख्यमंत्रियों ने पाँच वर्ष की अवधि पूरी की है। गोविंद वल्लभ पंत इस प्रदेश के प्रथम मुख्यमन्त्री बने। अक्टूबर 1963 में सुचेता कृपलानी उत्तर प्रदेश एवं भारत की प्रथम महिला मुख्यमन्त्री बनीं। सन 2000 में पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र स्थित गढ़वाल और कुमाऊँ मण्डल को मिला कर एक नये राज्य उत्तरांचल का गठन किया गया, जिसका नाम बाद में बदल कर 2007 में उत्तराखण्ड कर दिया गया है। उत्तरांचल के प्रथम मुख्यमंत्री एन. डी. तिवारी बने जो अविभाजित उत्तर प्रदेश के भी मुख्यमंत्री रह चुके थे। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश एक सशक्त प्रदेश के रूप में श्रीमान योगी आदित्य नाथ (मुख्यमंत्री), श्री केशव प्रसाद मौर्य और श्री ब्रजेश पाठक (उपमुख्यमंत्री) के नेतृत्व अनवरत और अविरल गति से पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है।

1.3.7 राज्य का विभाजन

उत्तर प्रदेश के गठन के तुरन्त बाद उत्तराखण्ड क्षेत्र में समस्याएँ उठ खड़ी हुईं। इस क्षेत्र के लोगों को लगा कि, विशाल जनसंख्या और वृहद भौगोलिक विस्तार के कारण लखनऊ में बैठी सरकार के लिए उनके हितों की देखरेख करना सम्भव नहीं है। बेरोजगारी, गरीबी और सामान्य व्यवस्था व पीने के पानी जैसी आधारभूत सुविधाओं की कमी और क्षेत्र के अपेक्षाकृत कम विकास ने लोगों को एक अलग राज्य की माँग करने पर विवश कर दिया। शुरू–शुरू में विरोध कमजोर था, लेकिन 1990 के दशक में इसने जोर पकड़ा व आन्दोलन तब और भी उग्र हो गया, जब 2 अक्टूबर 1994 को मुजफ्फरनगर में इस आन्दोलन के एक प्रदर्शन में पुलिस द्वारा की गई गोलीबारी में 40 लोग मारे गए। 9 नवम्बर 2000 में भारतीय संसद ने उत्तर प्रदेश के उत्तर पश्चिमी भाग से उत्तरांचल नामक राज्य का गठन किया। सन 2000 में पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र स्थित गढ़वाल और कुमाऊँ मण्डल को मिला कर एक नये राज्य उत्तरांचल का निर्माण किया गया, जिसका नाम बाद में बदल कर 2007 में उत्तराखण्ड कर दिया गया है। उत्तरांचल के प्रथम मुख्यमंत्री एन. डी. तिवारी बने जो अविभाजित उत्तर प्रदेश के भी मुख्यमंत्री रह चुके थे।

1.3.8 जनपद और मण्डल

उत्तर प्रदेश को प्रशासनिक कारणों से 75 जिलों में बाँटा गया है, जो कि निम्नलिखित 18 मण्डलों में समूहबद्ध हैं। भारत में सबसे अधिक जनसंख्या वाला प्रदेश, उत्तर प्रदेश है और सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले महानगर लखनऊ कानपुर आगरा है। उत्तर प्रदेश से सर्वाधिक लोक सभा व राज्य सभा के सदस्य चुने जाते हैं। सीटों की संख्या लोक सभा में 80 और राज्य सभा में 31 है। उत्तर प्रदेश देश का सबसे अधिक जिलों वाला प्रदेश भी है। उत्तर प्रदेश में कुल 403 विधानसभा सीटें हैं। उत्तर प्रदेश में स्थित प्रयागराज उच्च न्यायालय एशिया का सबसे बड़ा उच्च न्यायालय है। उत्तर प्रदेश का सोनभद्र जिला, देश का एक मात्र ऐसा जिला है, जिसकी सीमाएँ चार प्रदेशों को छूती हैं और ऐसा एकमात्र जिला, जो झारखंड और छत्तीसगढ़ दोनों की सीमा को स्पर्श करता है।

1.3.9 जनसंख्या और आवास

प्रदेश की 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। राज्य के पश्चिमी हिस्से में पाए जाने वाले घने बसे हुए गाँव, पूर्वी क्षेत्र में पाए जाने वाले छोटे गाँव और मध्य क्षेत्र में दोनों का समूह होता है, जिसकी छत फूस या मिट्टी के खपड़ों से बनी होती है। इन मकानों में हालाँकि आधुनिक जीवन की बहुत कम सुविधाएँ हैं, लेकिन शहरों के पास बसे कुछ गाँवों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। सीमेण्ट से बने घर, पक्की सड़कें, बिजली, रेडियो, टेलीविजन जैसी उपभोक्ता वस्तुएँ पारम्परिक ग्रामीण जीवन को बदल रही हैं। शहरी जनसंख्या का आधे से अधिक हिस्सा एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में रहता है। लखनऊ, वाराणसी , आगरा, कानपुर, मेरठ, गोरखपुर, और प्रयागराज उत्तर प्रदेश के सात सबसे बड़े नगर हैं। कानपुर उत्तर प्रदेश के मध्य क्षेत्र में स्थित प्रमुख औद्योगिक शहर है। कानपुर के पूर्वोत्तर में 82 किलोमीटर की दूरी पर राज्य की राजधानी लखनऊ स्थित है। हिन्दुओं का सर्वाधिक पवित्र शहर अयोध्या और वाराणसी विश्व के प्राचीनतम सतत आवासीय शहरों में से एक है। एक अन्य पवित्र शहर प्रयागराज गंगा, यमुना और पौराणिक सरस्वती नदी के संगम पर स्थित है। राज्य के

दक्षिण–पश्चिमी हिस्से में स्थित आगरा में मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा अपनी बेगम की याद में बनवाया गया मकबरा ताजमहल स्थित है। यह भारत के प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में से एक है।

1.3.10 कला और संस्कृति

उत्तर प्रदेश के ज्यादातर लोगों की भाषा हिन्दी है। भारत की राजकीय भाषा हिन्दी की जन्मस्थली भी उत्तर प्रदेश ही है। शताब्दियों के दौरान हिन्दी के कई स्थानीय स्वरूप विकसित हुए हैं। साहित्यिक हिन्दी ने 19वीं शताब्दी तक खड़ी बोली का वर्तमान स्वरूप (हिन्दुस्तानी) धारण नहीं किया था। वाराणसी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885 ई.) उन अग्रणी लेखकों में से थे, जिन्होंने हिन्दी के इस स्वरूप का इस्तेमाल साहित्यिक माध्यम के तौर पर किया था।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। साहित्य और भारतीय रक्षा सेवायें, दो ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान हैं। गोस्वामी तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, मुँशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त, मैथिलीशरण गुप्त, सोहन लाल द्विवेदी, हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, राही मासूम रजा, अज्ञेय जैसे इतने महान कवि और लेखक हुए हैं जिनका साहित्य के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान है । उत्तर प्रदेश का उर्दू साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। फिराक गोरखपुरी,जोश मलीहाबादी, अकबर इलाहाबादी, नजीर, वसीम बरेलवी, चकबस्त जैसे अनगिनत शायर उत्तर प्रदेश ही नहीं वरन देश की शान रहे हैं।

संगीत के क्षेत्र में भी उत्तर प्रदेश का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, जिसे तीन भागों में बांटा जा सकता है–

- पारम्परिक संगीत एवं लोक संगीत – यह संगीत और गीत पारम्परिक मौकों शादी विवाह, होली, त्योहारों आदि समय पर गाया जाता है
- शास्त्रीय संगीत – उत्तर प्रदेश में उत्कृष्ट गायन और वादन की परम्परा रही है।
- हिन्दी फिल्मी संगीत एवं भोजपुरी पॉप संगीत – इस प्रकार का संगीत उत्तर प्रदेश में सबसे लोकप्रिय है।

1.3.11 नृत्य

कथक उत्तर प्रदेश का एक परिष्कृत शास्त्रीय नृत्य है, जो कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के साथ किया जाता है। कथक नाम 'कथा' शब्द से बना है, इस नृत्य में नर्तक किसी कहानी या संवाद को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। कथक नृत्य का प्रारम्भ 6–7 वीं शताब्दी में उत्तर भारत में हुआ था। प्राचीन समय में यह एक धार्मिक नृत्य हुआ करता था, जिसमें नर्तक महाकाव्य गाते थे और अभिनय करते थे। 13 वी शताब्दी तक आते–आते कथक सौन्दर्यपरक हो गया तथा नृत्य में सूक्ष्म अभिनय एवं मुद्राओं पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। कथक में सूक्ष्म मुद्राओं के साथ ठुमरी गायन पर तबले और पखावज के साथ ताल मिलाते हुए नृत्य किया जाता है। कथक नृत्य के प्रमुख कलाकार पन्डित बिरजू महाराज हैं। फरी नृत्य, जांघिया नृत्य, पंवरिया नृत्य, कहरवा, जोगिरा, निर्गुन, कजरी, सोहर, चइता गायन उत्तर प्रदेश की लोक संस्कृतियाँ हैं।

1.3.12 क्षेत्रीय हस्तशिल्प

आजमगढ के निजामाबाद की ब्लैक पॉटरी, फिरोजाबाद की चूड़ियाँ, सहारनपुर का काष्ठ शिल्प, अलीगढ की ताला और चाभी, पिलखुवा की हैण्ड ब्लाक प्रिण्ट की चादरें, वाराणसी की साड़ियाँ तथा रेशम व जरी का काम, लखनऊ का कपड़ों पर चिकन की कढ़ाई का काम, रामपुर का पैचवर्क, मुरादाबाद के पीतल के बर्तन, औरंगाबाद का टेराकोटा, मेरठ की कैंची, भदोही की कालीन, जौनपुर की बेनी साव की इमरती और मूली, मथुरा का पेडा इत्यादि प्रसिद्ध हस्तशिल्प है, जिसका देश भर में व्यापार होता है।

1.3.13 सांस्कृतिक विरासत

उत्तर प्रदेश हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता का उद्गम स्थल है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र, महाकाव्य (वाल्मीकि रामायण, और महाभारत), श्रीमद् भगवद्गीता, अठारह पुराणों के उल्लेखनीय हिस्सों का मूल यहाँ के कई आश्रमों में जीवीत है। बौद्ध–हिन्दू काल (लगभग 600 ई. पू.–1200 ई.) के ग्रन्थों व वास्तुशिल्प ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत में बड़ा योगदान दिया है। 1947 के बाद से भारत सरकार का

चिह्न मौर्य सम्राट अशोक के द्वारा बनवाए गए चार सिंह युक्त स्तम्भ (वाराणसी के निकट सारनाथ में स्थित) पर आधारित है। वास्तुशिल्प, चित्रकारी, संगीत, नृत्यकला और दो भाषाएँ (हिन्दी व उर्दू) मुगल काल के दौरान यहाँ पर फली–फूली। इस काल के चित्रों में सामान्यतः धार्मिक व ऐतिहासिक ग्रन्थों का चित्रण है। यद्यपि साहित्य व संगीत का उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में किया गया है और माना जाता है कि गुप्त काल (लगभग 320–540) में संगीत समृद्ध हुआ। संगीत परम्परा का अधिकांश हिस्सा इस काल के दौरान उत्तर प्रदेश में विकसित हुआ। तानसेन व बैजू बावरा जैसे संगीतज्ञ मुगल शहंशाह अकबर के दरबार में थे, जो राज्य व समूचे देश में आज भी विख्यात हैं। भारतीय संगीत के दो सर्वाधिक प्रसिद्ध वाद्य सितार, वीणा परिवार तथा तंतु वाद्य और तबले का विकास इसी काल के दौरान इस क्षेत्र में हुआ। 18वीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश में वृन्दावन व मथुरा के मन्दिरों में भक्तिपूर्ण नृत्य के तौर पर विकसित शास्त्रीय नृत्य शैली कथक उत्तरी भारत की शास्त्रीय नृत्य शैलियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय गीत व नृत्य भी हैं। सबसे प्रसिद्ध लोकगीत मौसमों पर आधारित हैं।

1.3.14 त्योहार एवं मेला

उत्तर प्रदेश एक ऐसा राज्य है जहाँ समय–समय पर सभी धर्मों के त्योहार मनाये जाते हैं–

- अयोध्या–रामनवमी मेला, राम विवाह, सावन झूला मेला, कार्तिक पूर्णिमा मेला।
- प्रयागराज में प्रत्येक बारहवें वर्ष में कुंभ मेला आयोजित किया जाता है। वर्ष 2025 का महाकुम्भ देश–विदेश तक विशेष चर्चा में था।
- इसके अतिरिक्तप्रयागराज में प्रत्येक 6 वर्ष बाद अर्द्ध–कुंभ मेले का आयोजन भी किया जाता है।
- प्रयागराज में ही प्रत्येक वर्ष जनवरी माह में माघ मेला भी आयोजित किया जाता है, जहाँ बडी संख्या में लोग संगम में नहाते हैं।
- दीपावली पर चित्रकूट में दीपदान करने की विशेष मान्यता है। धनतेरस के दिन से शुरू होने वाले दीपमालिका मेले में शामिल होने के लिए देशभर से लाखों श्रद्धालु आते हैं और पवित्र मंदाकिनी नदी में डुबकी लगाते हैं। चित्रकूट भारत के सबसे प्राचीन तीर्थस्थलों में से एक है। यह स्थान जितना शांत है उतना ही आकर्षक भी। प्रकृति और ईश्वर की अनुपम रचना के सुंदर और एक से बढ़कर एक दृश्य यहाँ देखने को मिलते हैं।
- होली का पर्व भी वसन्त के प्रारम्भ में बडे धूम–धाम से मनाया जाता है।
- अन्य मेलों में मथुरा, वृन्दावन में अनेक पर्वों के मेले और झूला मेले लगते हैं, जिनमें प्रभु की प्रतिमाओं को सोने एवं चाँदी के झूलों में रखकर झुलाया जाता है। ये झूला मेले लगभग एक पखवाडे तक चलते हैं।
- कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर गंगा नदी में डुबकी लगाना पवित्र माना जाता है और इसके लिए गढ़मुक्तेश्वर, सोरों शूकरक्षेत्र का मार्गशीर्ष मेला, राजघाट, बिठूर, कानपुर, प्रयागराज, वाराणसी में बडी संख्या में लोग एकत्र होते हैं।
- आगरा जिले के बटेश्वर कस्बे में पशुओं का प्रसिद्ध मेला लगता है।
- बाराबंकी जिले का देवा मेला मुस्लिम संत वारिस अली शाह के कारण काफी प्रसिद्ध है।
- इसके अतिरिक्त यहाँ हिन्दू तथा मुस्लिमों के सभी प्रमुख त्योहारों को पूरे राज्य में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।
- राष्ट्रीय रामायण मेला इलाहाबाद जिले में गंगा नदी के तट पर श्रृंग्वेरपुर में कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी से

पूर्णिमा तक हर वर्ष आयोजित किया जाता है। यह वही स्थान है जहाँ त्रेतायुग में निषाद राज ने प्रभु श्रीराम को वनवास जाते समय गंगा नदी पार कराई।

1.4 भौगोलिक विशेषताएं

उत्तर प्रदेश एक विशाल राज्य है, जिसकी अपनी विशिष्ट भौगोलिक विशेषताएं हैं। इसमें शिवालिक की तलहटी से लेकर गंगा का मैदान, और विंध्य पर्वतमाला तक कई तरह के भू–भाग शामिल हैं। राज्य की प्रमुख नदियाँ गंगा, यमुना, गोमती, और रामगंगा हैं, जो इसकी कृषि और जल संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

1.4.1 भौगोलिक विभाजन

- **शिवालिक की तलहटी और तराई** – शिवालिक की तलहटी और तराई उत्तर में स्थित है, जो गंगा के मैदान से अलग है.
- **गंगा का मैदान** – यह उत्तर प्रदेश का केंद्रीय भाग है, जो अत्यधिक उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी से बना है.
- **विंध्य पर्वतमाला और पठार** – यह राज्य के दक्षिण में स्थित है, जो पहाड़ियों, मैदानों, घाटियों और पठारों की विविध स्थलाकृति से युक्त है।

उत्तर प्रदेश, एक उत्तर भारतीय राज्य है, और यह देश का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य है। उत्तर प्रदेश का भौतिक विभाजन अत्यंत व्यापक है। यह पश्चिम में राजस्थान, उत्तर–पश्चिम में हरियाणा और दिल्ली, उत्तर में उत्तराखंड और नेपाल, पूर्व में विहार, दक्षिण में मध्य प्रदेश और दक्षिण–पूर्व में झारखंड और छत्तीसगढ़ से घिरा है। राज्य में 243,286 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र शामिल है और इसमें एक विविध परिदृश्य है, जिसमें उत्तर में हिमालय की तलहटी, मध्य क्षेत्र में गंगा का मैदान और दक्षिण में विंध्य पर्वत माला और पठार शामिल हैं।

1.4.2 उत्तर प्रदेश की भौगोलिक सीमाएँ

उत्तर प्रदेश उत्तरी भारत में स्थित एक राज्य है और कई राज्यों और देशों से घिरा हुआ है। आकार की वृद्धि दर से उत्तर प्रदेश राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के बाद चौथा सबसे बड़ा राज्य है।

- **उत्तरी सीमा**– उत्तर उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा उत्तराखण्ड राज्य से बनी है। इस सीमा के साथ हिमालय पर्वतमाला और तलहटी स्थित हैं। इस सीमा पर स्थित उत्तर प्रदेश के 7 जिले हैं–
    1. सहारनपुर
    2. मुजफ्फरनगर
    3. बिजनौर
    4. मुरादाबाद
    5. रामपुर
    6. बरेली
    7. पीलीभीत
- **पूर्वी सीमा**– उत्तर प्रदेश की पूर्वी सीमा विहार राज्य से लगी हुई है। सीमा को गंडक नदी द्वारा विभाजित किया गया है, जो नेपाल से बहती है और उत्तर प्रदेश में बहने से पहले विहार में प्रवेश करती है। ये उत्तर प्रदेश के सात जिले हैं जो विहार राज्य से सटे हुए हैं–
    1. सोनभद्र
    2. चंदौली
    3. गाजीपुर

4. बलिया
5. देवरिया
6. कुशीनगर (पडरौना) और
7. महराजगंज

- दक्षिणी सीमा– उत्तर प्रदेश की दक्षिणी सीमा मध्य प्रदेश राज्य से लगी हुई है। दोनों राज्य लगभग 800 किलोमीटर की सीमा साझा करते हैं, जिसे विंध्य पर्वत माला और पठार द्वारा परिभाषित किया गया है। उत्तर प्रदेश के ग्यारह जिले मध्य प्रदेश के साथ सीमा साझा करते हैं–

1. आगरा
2. इटावा
3. जालौन
4. झांसी
5. ललितपुर
6. महोबा
7. बाँदा
8. चित्रकूट
9. इलाहाबाद
10. मिर्जापुर
11. सोनभद्र

- **पश्चिमी सीमा**– उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा राजस्थान राज्य द्वारा निर्मित है। दोनों राज्य अरावली रेंज द्वारा परिभाषित सीमा साझा करते हैं। आगरा और मथुरा उत्तर प्रदेश के दो शहर हैं जो राजस्थान के के साथ सीमा साझा करते हैं।

- **अंतर्राष्ट्रीय सीमा**– उत्तर प्रदेश नेपाल के साथ एक अंतरराष्ट्रीय सीमा भी साझा करता है, जो इसकी उत्तरी सीमा के साथ स्थित है। सीमा लगभग 579 किलोमीटर लंबी है और इसे हिमालय पर्वतमाला और तलहटी द्वारा परिभाषित किया गया है। उत्तर प्रदेश के सात जिले नेपाल की सीमा के करीब हैं–

1. महाराजगंज
2. सिद्धार्थ नगर
3. बलरामपुर
4. श्रावस्ती
5. बहराइच
6. लखीमपुर
7. पीलीभीत

ऊपर उल्लिखित भौगोलिक विशेषताओं के अलावा कुछ और उत्तर प्रदेश के जिले एवं उसके पड़ोसी राज्यों से सम्बन्धित भौगोलिक सीमाओं की जानकारी का उल्लेख निम्नवत् है–

- सबसे छोटी सीमा उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के बीच है।

- गाजियाबाद और गौतम बुद्ध नगर (नोएडा) उत्तर प्रदेश के दो जिले हैं जो दिल्ली के ठीक बगल में हैं।
- उत्तर प्रदेश के छह जिले हैं जो हरियाणा की सीमा को छूते हैं–
    1. सहारनपुर
    2. शामली
    3. बागपत
    4. गौतम बुद्ध नगर
    5. अलीगढ़
    6. मथुरा
- बिहार और हरियाणा ऐसे राज्य हैं जो राज्य के पूर्व और पश्चिम में हैं।
- छत्तीसगढ़ उत्तर प्रदेश के सबसे दक्षिणी भाग को स्पर्श करने वाला राज्य है।
- अधिकांश भू–क्षेत्रफल से कम करने के क्रम में खीरी, सोनभद्र, हरदोई और सीतापुर चार सबसे बड़े जिले हैं।
- हरियाणा और उत्तर प्रदेश के बीच की सीमा यमुना नदी द्वारा निर्धारित की जाती है।

1.5 उत्तर प्रदेश में नदियाँ और सहायक नदियाँ

नदियाँ न केवल किसी क्षेत्र की जीवन रेखा होती हैं बल्कि किसी स्थान के सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक ताने–बाने को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उत्तर प्रदेश, भारत के उत्तरी भाग में स्थित एक राज्य है, जो अपने उपजाऊ मैदानों के माध्यम से बहने वाली नदियों के जाल से भरा पड़ा है। उत्तर प्रदेश की नदियाँ न केवल सिंचाई के लिए पानी प्रदान करती हैं बल्कि परिवहन के साधन, आजीविका के स्रोत और धार्मिक महत्व के स्थान के रूप में भी काम करती हैं। प्रमुख नदियों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

1.6 उत्तर प्रदेश के प्रमुख अपवाह क्षेत्र

उत्तर प्रदेश के प्रमुख जल निकासी क्षेत्रों को उनकी संबंधित नदी प्रणालियों के आधार पर मोटे तौर पर चार क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **गंगा बेसिन**– गंगा बेसिन उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा अपवाह क्षेत्र है, जो राज्य के क्षेत्रफल का लगभग दो–तिहाई भाग कवर करता है। इसमें गंगा और इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ जैसे यमुना, घाघरा और गोमती शामिल हैं। यह क्षेत्र अपने उपजाऊ जलोढ़ मैदानों के लिए जाना जाता है और वाराणसी, इलाहाबाद और कानपुर सहित राज्य के कुछ सबसे अधिक आबादी वाले शहरों का घर है।
- **बेतवा बेसिन**– बेतवा बेसिन उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग में स्थित है और इसमें हमीरपुर, जालौन और ललितपुर जिले शामिल हैं। इस बेसिन की मुख्य नदी बेतवा है, जो यमुना की एक प्रमुख सहायक नदी है। यह क्षेत्र पहाड़ी इलाकों की विशेषता है, जिसमें कुछ क्षेत्र जंगलों से आच्छादित हैं।
- **सोन बेसिन**– सोन बेसिन उत्तर प्रदेश के दक्षिण–पूर्वी भाग में स्थित है और सोनभद्र और मिर्जापुर जिलों को कवर करती है। सोन नदी, जो मध्य प्रदेश से निकलती है और इस क्षेत्र से होकर बहती है, इस बेसिन की मुख्य नदी है। यह क्षेत्र पहाड़ी है और कई वन्यजीव अभ्यारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों का घर है।
- **गोमती बेसिन**– गोमती बेसिन उत्तर प्रदेश के मध्य भाग में स्थित है और इसमें लखनऊ, सीतापुर और फैजाबाद जिले शामिल हैं। गोमती नदी, जो इस क्षेत्र से होकर बहती है, गंगा की एक प्रमुख सहायक नदी है। इस क्षेत्र की विशेषता उपजाऊ जलोढ़ मैदान है और यह अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है।

क्रम संख्या	नदी का नाम	उद्गम स्थल	लंबाई (किमी)	अवसान
1	गंगा	उत्तराखंड में उत्तर काशी जिले के गंगोत्री ग्लेशियर	2,525	बंगाल की खाड़ी
2	रामगंगा	कुमाऊँ तथा गढवाल, उत्तराखंड	596	उत्तर प्रदेश के कन्नौज में गंगा नदी से
3	यमुना	उत्तराखंड में यमुनोत्री ग्लेशियर	1,376	इलाहाबाद में गंगा
4	घाघरा	तिब्बत में मपचाचुंगो ग्लेशियर के पास	1,080	बिहार में गंगा
5	गोमती	पीलीभीत में गोमत ताल	900	वाराणसी में गंगा
6	बेतवा	मध्य प्रदेश में विंध्य पर्वत माला	590	हमीरपुर में यमुना
7	चंबल	मध्य प्रदेश में जानापाव हिल	960	इटावा में यमुना
8	केन	मध्य प्रदेश में गाँव अहिरगावां के पास	427	बांदा में यमुना
9	राप्ती	नेपाल में सीसरमा हिल	525	उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में घाघरा
10	शारदा	उत्तराखंड में मिलम ग्लेशियर	350	बहराइच में घाघरा
11	सरयू	तिब्बत में सरमूल के पास	540	उत्तर प्रदेश में घाघरा
12	सोन	मध्य प्रदेश में अमरकंटक	784	पटना में गंगा
13	वरुणा	वाराणसी में भूर्हझील के पास	30	वाराणसी में गंगा
14	टोंस	उत्तराखंड में बंदरपूंछ रेंज	250	यमुना यमुनानगर
15	धसान	मध्य प्रदेश में ललितपुर हिल्स	318	हमीरपुर में बेतवा
16	सई	मध्य प्रदेश में अजगैन हिल्स	213	इटावा में यमुना
17	गेरुआ	उत्तर प्रदेश में कन्नौज जिला	150	कन्नौज में गंगा
18	काली	उत्तराखंड में पिथौरागढ़ जिला	350	शारदा बहराइच
19	कुवाना	कतर्नियाघाट वन्यजीव अभ्यारण्य	130	उत्तर प्रदेश में घाघरा
20	रिहंद	उत्तर प्रदेश में सोनभद्र जिला	600	सोनभद्र जिले में बेटा
21	गोरी गंगा	उत्तराखंड में मिलम ग्लेशियर	150	पिथौरागढ़ जिले में काली गंगा

1.7 उत्तर प्रदेश की प्रमुख नदी

1.7.1 गंगा नदी

गंगा दक्षिण एशिया की एक प्रमुख नदी है जो भारत और बांग्लादेश से होकर बहती है। इसे हिंदू धर्म में सबसे पवित्र नदियों में से एक माना जाता है और इसे देवी गंगा के रूप में पूजा जाता है। गंगा नदी भारतीय राज्य उत्तराखंड में हिमालय से निकलती है और बांग्लादेश में बंगाल की खाड़ी में गिरने से पहले उत्तरी भारतीय मैदानों से होकर बहती है। गंगा बेसिन दुनिया के सबसे घनी आबादी वाले क्षेत्रों में से एक है, जहाँ लाखों लोग अपनी आजीविका

के लिए नदी पर निर्भर हैं। गंगा सिंचाई, जलविद्युत शक्ति और उद्योग के लिए भी पानी का एक स्रोत है। हालांकि, अनुपचारित सीवेज, औद्योगिक अपशिष्ट और कृषि अपवाह के पानी को दूषित करने के साथ प्रदूषण नदी में एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। 2014 में शुरू किए गए सरकार के नमामि गंगे अभियान सहित नदी को साफ करने के प्रयास किए गए हैं, लेकिन नदी और उस पर निर्भर लोगों की रक्षा के लिए और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। गंगा नदी की सहायक नदियों में यमुना नदी, घाघरा नदी, गंडक नदी, कोसी नदी, सोन नदी, चंबल नदी, बेतवा नदी, केन नदी, टोंस नदी, रामगंगा नदी इत्यादि है।

1.7.2 यमुना नदी

यमुना नदी उत्तरी भारत की प्रमुख नदियों में से एक है और यह गंगा नदी की सबसे बड़ी सहायक नदी है। यह नदी निचले हिमालय में यमुनोत्री ग्लेशियर से निकलती है और उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में गंगा में विलय से पहले लगभग 1,376 किलोमीटर तक बहती है। भारतीय संस्कृति और पौराणिक कथाओं में यमुना नदी का बहुत महत्व है और इसे देश की सबसे पवित्र नदियों में से एक माना जाता है। नदी सिंचाई, पनबिजली उत्पादन और क्षेत्र के लाखों लोगों के लिए पीने के पानी की आपूर्ति के लिए पानी का एक प्रमुख स्रोत भी है। हालांकि, अनुपचारित सीवेज और औद्योगिक कचरे के निर्वहन के कारण यमुना नदी अत्यधिक प्रदूषित है। प्रदूषण के परिणामस्वरूप नदी के पानी की गुणवत्ता में गिरावट आई है और उन लोगों के स्वास्थ्य पर भी असर पड़ा है जो अपनी दैनिक जरूरतों के लिए इस पर निर्भर हैं। सरकार और विभिन्न संगठन नदी को साफ करने और इसके समग्र स्वास्थ्य में सुधार के लिए काम कर रहे हैं। यमुना नदी की सहायक नदियों में चंबल नदी, सिंध नदी, बेतवा नदी, केन नदी, हिंडन नदी, टोंस नदी, गिरी नदी, काली नदी इत्यादि है।

1.7.3 घाघरा नदी

घाघरा नदी, जिसे करनाली नदी के नाम से भी जाना जाता है, उत्तरी भारत और नेपाल की प्रमुख नदियों में से एक है। यह गंगा नदी की एक सहायक नदी है और लगभग 1080 किमी लंबी है। घाघरा नदी मानसरोवर झील के पास तिब्बती पठार से निकलती है और भारतीय राज्यों उत्तर प्रदेश और बिहार से होकर बहती है और फिर नेपाल में प्रवेश करती है। यह फिर भारत में प्रवेश करती है और बिहार के छपरा शहर के पास गंगा नदी में मिल जाती है। घाघरा नदी अपनी मौसमी बाढ़ के लिए भी जानी जाती है, जो आसपास के क्षेत्रों को काफी नुकसान पहुंचा सकती है। हालाँकि, नदी सिंचाई और पीने के उद्देश्यों के लिए पानी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है और यह क्षेत्र में वनस्पतियों और जीवों को जीवन देती है। घाघरा नदी की सहायक नदियों में सरयू नदी, राप्ती नदी, बाबई नदी, पश्चिम राप्ती नदी, कुवाना नदी, शारदा नदी, गंडकी नदी इत्यादि है।

1.7.4 सोन नदी

मध्य गंगा मैदान में सोन ही एक ऐसी नदी है जिसकी कोई सहायक नदी नहीं है। इस नदी की चौड़ाई लगभग 32 किलोमीटर है। वर्षा ऋतु में इसमें जल बहुत तेजी से प्रवाहित होता है, परन्तु वर्षा ऋतु के बाद इसमें जल की तुरन्त कमी हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु में इसमें जल की मात्रा में अत्यन्त कमी हो जाती है एवं नदी में केवल लाल बालू ही दिखाई पड़ता है।

उद्‌गम स्थल–अमरकण्टक की पहाड़ी।

संगम स्थल–पटना के समीप गंगा नदी में।

1.8 अपवाह तंत्र

मध्यगंगा मैदान में अपवाह तंत्र में सर्वोपरि भूमिका नदियों की है। मध्य गंगा मैदान में नदियों का जाल सा बिछा हुआ है (मानचित्र संख्या : 10)। नदियाँ एक दूसरे से निकट मोड़ बनाती हुई मिलती हैं। गंगा यहाँ की प्रमुख नदी है जिसमें मैदान की सभी नदियाँ आकर गिरती हैं (बंसल. 2004: 846)। घाघरा, गंडक एवं कोसी उत्तरी भाग की प्रमुख नदियाँ हैं। सोन नदी दक्षिण की प्रमुख नदी है। गंगा नदी अनेक विसर्प बनाती हुई बहती है। यह बाढ़ के मैदान

का काफी विस्तार रखती है। घाघरा, सरयूपार मैदान की प्रमुख नदी है। राप्ती, कुबाना, छोटी गंडक इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ है। गंडक मिथिला मैदान का विस्तार करती है, इसके पूर्व में कोसी नदी है। यद्यपि दक्षिणी उच्च प्रदेश से अनेक नदियाँ आकर गंगा में मिलती हैं लेकिन इन सबमें सोन सबसे बड़ी नदी है। इस नदी का पाट काफी चौड़ा है। डेहरी के निकट यह चौड़ाई 5 किमी0 तक है। यह अपने प्रवाह मार्ग में परिबर्तन करती रही है। इस भाग की अन्य नदियों मे करनौती, योजनाला, छतार, जारगो, खिजूरी, टोन्स व कर्मनाशा उल्लेखनीय है (बंसल. 2004: 846)।

गंगा की पाँच प्रमुख सहायक नदियाँ है। जिसका विवरण निम्नवत् है (राय. 2008: 18–19) :

1. घाघरा
2. गंडक
3. कोसी
4. सोन
5. अन्य सहायक नदियाँ

1. **घाघरा**–घाघरा नदी हिमालय से निकलती है जिसमें अधिकतम 2,37,321 क्यूसेक जल प्रवाहित होता हैं। यह 12 सेन्टीमीटर प्रतिकिलोमीटर ढलुआ होती गयी है (माँझी. 1951: 18)।

   उद्गम स्थल– हिमालय (कुमायूँ पर्वत)।

   संगम स्थल–सारण तथा बलिया जिले की सीमा पर।

   सहायक नदियाँ–छोटी गंडक तथा इसकी सहायक राप्ती, बूढ़ी राप्ती, चौका कोरियाला, मनोरमा, घोघी, रोहिन इत्यादि।

2. **गंडक**–यह सात धाराओं से मिलकर बनी है इसलिए इसे 'सप्तगडकी' भी कहा जाता है। बानरी, झहेरी, दाहा, गड़की, दौबरा माही, घनौती, बाया सास और इसी प्रकार के अनेक क्षेत्रों को यह नदी सिंचित करती है।

   उद्गम स्थल–नेपाल।

   संगम स्थल–पटना के समीप गंगा नदी।

   सहायक नदियाँ–काली गण्डक तथा त्रिशूली गंगा।

3. **कोसी**– कोसी ऐसी नदी है जो हिमालय से निकलने वाली अन्य नदियों की अपेक्षा सर्वाधिक क्षेत्र में विस्तृत है इसका विस्तार 24000 वर्ग मील (61,440 वर्ग किलोमीटर लगभग) है (सिंह. 1971: 22)। इसकी मुख्य शाखा सूर्य कोसी हैं। यह नदी जल के साथ बालू, छोटे–बड़े पाषाण खण्ड आदि भारी मात्रा में लाती है। परिणाम स्वरूप यह सहायक पदार्थ इस क्षेत्र में बाढ़ का एक प्रमुख कारण बन जाता है। कोसी से 200000 क्यूसेक जल प्रवाहित होता रहता है (स्पेट. 1954: 514)। यह नदी अपने विनाशकारी बाढ़ के कारण 'बिहार का शोक' नाम से कुख्यात है।

   उद्गम स्थल–गोसाईनाथ चोटी के उत्तर में।

   संगम स्थल–कारगोला के दक्षिण–पश्चिम में गंगा नदी। दूसरी प्रमुख अरूण नदी (तिब्बत में पंगचू) है।

   सहायक नदियाँ–यारु, सुनकोसी, तम्मूर, कोसी, इन्द्रावती, लीखू, दूधकोसी, भेटकोसी, तम्बाकोसी आदि।

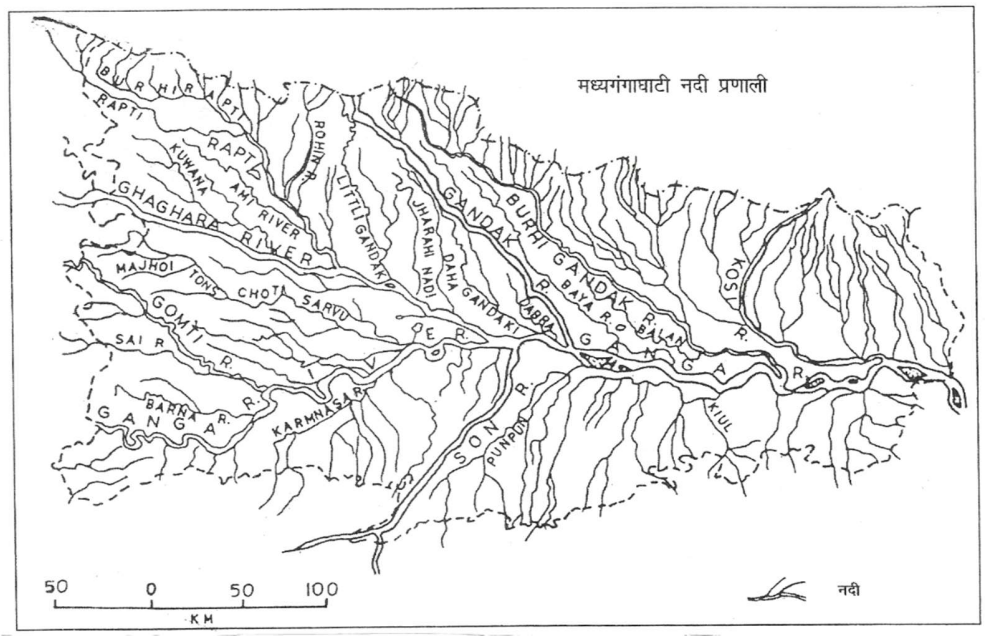

मानचित्र संख्या – 10 : मध्य गंगा मैदान की नदी प्रणाली

1.8.1 अन्य सहायक नदियाँ

इसमें घाघरा और राप्ती नदियों की सहायक नदियों को रखा जाता है। जिसका विवरण निम्नवत् हैं–

1.8.2 घाघरा व्यवस्था

यह एक ऐसी महत्वपूर्ण नदी हैं जो सरयूपार के क्षेत्र की भौगोलिक सीमा के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह नदी अपने उद्‌गम स्थल से निकलने के बाद चौका, कोरियाला, राप्ती, मनोरमा, छोटी गण्डक आदि नदियों का जल ग्रहण करते हुए सरयूपार क्षेत्र में आगे बढ़ती है। इस नदी का दक्षिणी तट तथा बरूडी एवं रेवती कस्बों के उत्तर की समस्त निचली भूमि बाढ़ में डूब जाती हैं, जिसके कारण नदी के किनारे बसे लोगों को प्रायः वर्षा ऋतु में काफी कष्ट झेलना पड़ता है। बलिया जिले में घाघरा की कोई बड़ी सहायक नदी नहीं है। एक छोटी नदी हाहा या अहार मऊ जनपद के रसोई ताल से निकलकर पार से 4.8 किमी0 पश्चिम में घाघरा में मिल जाती है। दूसरी सहायक बहेरा है, जो मनियर के पास घाघरा में मिलती है। एक अन्य छोटा नाला मुडियारी दहताल से होता हुआ मनियर के पूरब में घाघरा में मिल जाता है। इसी प्रकार टेगरहा जो घाघरा छाड़न है, मनियर से कुछ दूर पूर्व से निकलकर खरीद परगना होती हुई चाँद दिया के पास घाघरा में पुनः मिल जाती है। छवानों नदी की एक सहायक नदी आमी है, जिसका उद्‌भव बस्ती जिले के डोमरियागंज तहसील के सिकहरा ताल से हुआ है, जो पूर्व की तरफ बहती हुई आगे चलकर महत्वपूर्ण पुरासिल सोहगौरा के पास राप्ती नदी में मिल जाती है। राप्ती नदी भी देवरिया जिले के सलेमपुर तहसील में महीन बाबू नामक ग्राम के पास घाघरा नदी में मिल जाती है।

1.8.3 राप्ती व्यवस्था

राप्ती नदी का उद्‌गम नेपाल स्थित हिमालय पर्वत की श्रृंखला है, जबकि छोटी गण्डक एवं राप्ती के बायें किनारे पर स्थित अन्य सहायक नदियाँ जैसे–बूढ़ी राप्ती, घुण्डई एवं रोहिन का उद्‌गम स्थल शिवालिक की पर्वत श्रेणियाँ है। आमी, कुवानों एवं मनवार जैसी नदियों का उद्‌गम स्थल सरयूपार क्षेत्र में स्थित ताल है। राप्ती व्यवस्था की सभी नदियाँ भयानक बाढ़ के कारण इस क्षेत्र के लिए श्राप है। वर्षा ऋतु में घाघरा एवं राप्ती नदियों का प्रवाह अनवरत बदलता रहता है, जिसके कारण इसके किनारे के क्षेत्रों में जमाव या कटाव दोनों बड़े पैमाने पर होते है। राप्ती व्यवस्था की अन्य सहायक नदियाँ निम्न है–

1. **बान गंगा नदी**–यह नेपाल की पहाड़ी से उद्‌गमित होकर एक लम्बी यात्रा तय करने के पश्चात् बस्ती के नौगढ़ तहसील में प्रवेश करके उसका बाजार के कार्मी नामक गाँव के पास राप्ती नदी में मिल जाती है।

2. **धाग्गी नदी**–इसका उद्‌गम नेपाल के पूर्वोत्तर पहाड़ से है, जो गोरखपुर जिले से होती हुई बस्ती जिले के कार्मी नामक ग्राम के निकट राप्ती नदी में मिल जाती है। कुनहारा एवं धागी नदी की संयुक्त धारा को धामेल के नाम से जाना जाता है।

3. **कुनहारा नदी**–इसका उद्‌गम स्थल भी नेपाल ही है। यह दक्षिण की ओर बढ़ती हुई बस्ती जिले के विनायकपुर परगना में खैराती नामक गाँव में प्रवेश करती है जहाँ तीतार नामक पतलीधारा जो सिसवा एवं भारती की सहायक धारा है, इससे मिलती है।

4. **जमुआर नदी**–यह एक ऐसी धारा है जो बस्ती जिले में जाकर मुसानी एवं मसाही नामक दो धाराओं में मिलती है। आगे दक्षिण में चलकर नौगढ़ के समीप इसके बाये किनारे से बुद्धियार नामक अन्य सहायक धारा इसमें मिल जाती है। इसके पश्चात् दक्षिण दिशा में थोड़ी दूर पर कर–हुलिया नामक स्थान पर जमुआर कुनहारा नदी में मिल जाती है।

5. **शिकारी नदी**–यह बूढ़ी राप्ती की दूसरी सहायक नदी है जो बुद्धि के नजदीक से निकलने के पश्चात् दक्षिण में चलकर पुनः मिसरौलिया के नजदीक राप्ती में मिल जाती है।

6. **आराह नदी**–यह भी बूढ़ी राप्ती की सहायक नदी है जो नेपाल की उत्तरी पहाड़ियों से निकलकर, दक्षिण की तरफ बहती है। इसके पश्चात् यह गोण्डा एवं बस्ती जिलों के मध्य सीमा का निर्धारण करती हुई काउखाट के पूर्व में बूढ़ी राप्ती में मिल जाती है।

7. **बूढ़ी राप्ती नदी**–नेपाल के पश्चिमी पहाड़ से निकलकर बस्ती जिले की पश्चिमी सीमा को बनाती हुई, उदयपुर जोजिया के पश्चिम में दाऊदपुर जात नामक गाँव के निकट बनगंगा नदी में मिल जाती है। यह राप्ती की प्रमुख सहायक नदी है।

1.8.4 ताल

इस क्षेत्र के कुछ प्रमुख ताल निम्नवत् है–

सुरहा ताल, खोदू ताल, सिकहारा ताल, मुड़ियारी ताल, दहताल, रामगढ़ चण्डो, बाखेरा, चितुआ–लिखिय ताल आदि।

इन तालों का भी मध्य गंगा मैदान में महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके द्वारा मानव को अपनी आवश्यकताओं जैसे–सिंचाई, पशुपालन, आदि को पूर्ण करने में सहायता मिलती रही है।

1.9 जीव–जन्तु एवं पशुपालन

मध्य गांगेय मैदान में वनों का तेजी से विनाश होने और अनियंत्रित ढंग से शिकार किये जाने के फलस्वरूप जीव–जन्तुओं की संख्या में कमी आई है। मध्य गांगेय मैदान सबसे उपजाऊ तथा घना बसा हुआ है। यहाँ की वनस्पतियाँ बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई हैं, इसलिए यहाँ जंगली जीव–जन्तु भी अधिक पाये जाते हैं। मुख्य रूप से काला हिरण, चीतल, नीलगाय, लकड़बग्धा, भालू, सियार, लोमड़ी, साही आदि पाये जाते हैं। वनस्पति वाले क्षेत्रों का कृषि क्षेत्रों में परिबर्तन और स्वतंत्रता के बाद आसानी से सुलभ बन्दूकों ने लगभग पूरे तौर पर चीतल, काले हिरण और अन्य जन्तुओं की आबादी को कम कर दिया।

मध्य गंगा मैदान में जहाँ एक तरफ जंगली जानवरों का शिकार किया जाता था वहीं दूसरी तरफ छोटे–छोटे जानवरों को पालतू भी बनाया जाने लगा क्योंकि गंगा मैदान में पशुओं के लिए आसानी से चारा, घास के मैदान के रूप में उपलब्ध हो जाता है तथा पानी भी में पूरे साल उपलब्ध रहता हैं जो पशुपालन के लिए उपयुक्त स्थिति हैं। जिन पशुओं को इनके द्वारा पालतू बनाया गया उनमें गाय, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि है जिससे मानव को दूध, माँस, चर्म, बोझढ़ोने के लिए सवारी तथा कृषि में भी सहायता मिलती है। इसी कारण कृषि के साथ पशुपालन को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा।

1.10 औद्योगिक विकास

मध्य गंगा मैदान की स्थिति एवं उपलब्ध उपजाऊ मिट्टी के कारण औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास दिखाई पड़ता

है। चूंकि इस क्षेत्र में खनिजों का अभाव सा है, अतः कृषि से उपलब्ध संसाधनों पर ही उद्योग आधारित है। इस भू–भाग का चीनी प्रमुख उद्योग है (बंसल. 2004: 865–66)। बस्ती, गोरखपुर, महराजगंज, कुशीनगर, मऊ तथा देवरिया जिलों में चीनी के 25 कारखाने हैं। बिहार में सारण, पूर्वी व पश्चिमी चम्पारण, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, गोपालगंज, मधुबनी, शिवान, गया, शाहाबाद और पटना जिलों में चीनी के कारखाने स्थित हैं। यहाँ पर कारखानों की संख्या 35 है। उत्तर प्रदेश में बलिया, आजमगढ़, जौनपुर, फैजाबाद, सुल्तानपुर और वाराणसी में भी चीनी के कारखाने है (बंसल. 2004: 864)। सूती वस्त्र उद्योग पटना, मधुबनी, बिहार शरीफ, बक्सर, गया, मुबारकपुर, मऊ, वाराणसी, जलालपुर, टाण्डा, तथा खलीलाबाद में स्थापित है। वाराणसी अपनी बनारसी रेशमी साड़ियों के कारण देश भर में विख्यात है। मिर्जापुर एवं भदोही के कालीन उद्योग केन्द्र देशी एवं विदेशी बाजारों को कालीन का निर्यात करते हैं। इस मैदानी भाग के मध्यवर्ती दक्षिणी–पश्चिमी भाग में डालमिया नगर एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं जहाँ कागज, सीमेण्ट, चीनी, रसायन, कार्ड बोर्ड, प्लाईवुड, वनस्पति तेल तथा अन्य कई उद्योग है। मुंगेर में भारत का सिगरेट का सबसे बड़ा कारखाना है। पटना, भागलपुर, गया, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, गोरखपुर तथा मिर्जापुर आदि नगरो में इण्डस्ट्रियल स्टेट की स्थापना कर अनेक मध्यम एवं लघु श्रेणी के उद्योगों को विकसित किया गया है (मिश्र. 1985: 413)। वाराणसी में रेल के डीजल चालित इंजन बनाने का कारखाना है। यहाँ पर साईकिल, काँच, रसायन के भी कारखाने हैं (बंसल.2004: 865)।

1.11 जनसंख्या

गंगा के इस मध्यवर्ती समतल मैदानी भाग में अपवाह तन्त्र के अनुकूल होने, मिट्टी के उर्वरा होने तथा कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल सर्वाधिक होने के कारण कृषिगत कार्य में सुगमता के कारण मानव के भरण–पोषण का वहन करने के फलस्वरूप कृषि पर आधारित जनसंख्या का वितरण विश्व की कृषि भूमि पर आश्रित अधिक जनसंख्या के क्षेत्रों में इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है (मेमोरिया. 2003: 397)।

2011 की जनगणना के अनुसार मध्य गांगेय मैदान में आने वाले राज्य उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 199812341 तथा बिहार राज्य की जनसंख्या 104099452 है तथा जनघनत्व सबसे अधिक बिहार राज्य का 1106 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तथा उत्तर प्रदेश राज्य का जनघनत्व 829 प्रतिवर्ग किलोमीटर है (परीक्षा मंथन. 2013: 40)।

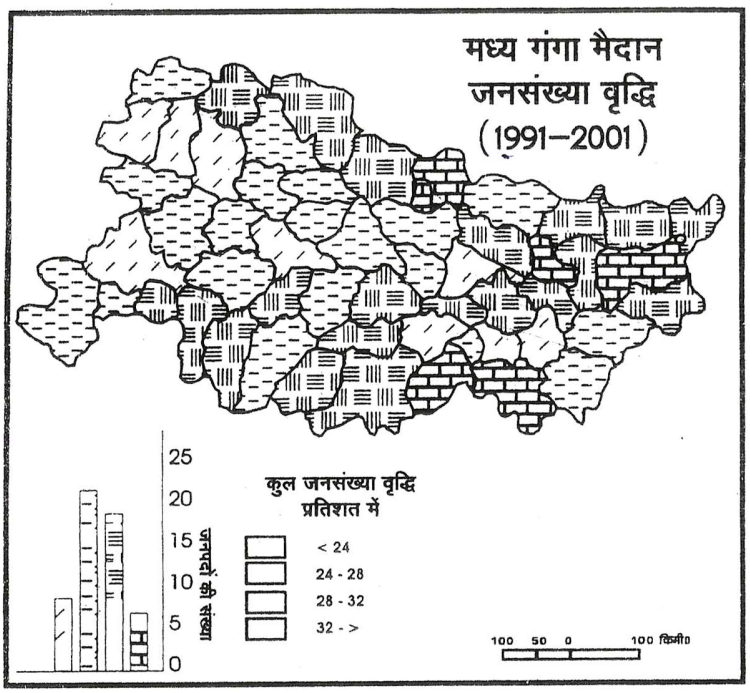

मानचित्र संख्या – 11: मध्य गंगा मैदान का जनसंख्या वृद्धि प्रतिशत

2001 की जनगणना के अनुसार इस मैदान की जनसंख्या 1286.04 लाख है, जो 1991 की जनसंख्या से 215. 24 लाख अधिक है। इस वर्ष 828.78 लाख जनसंख्या बिहार व 457.26 लाख उत्तर प्रदेश के भू–भाग पर निवास कर

रही थी। 1981 में जनसंख्या का घनत्व 579 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी0 था, जो बढ़कर 1991 में 694 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 तथा 2001 में 833 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. तक पहुँच गया। इस मैदान में जनसंख्या का बढ़ता हुआ घनत्व कृषि व अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव की ओर संकेत करता है (बंसल. 2004: 849)।

2011की जनगणना के आधार पर बिहार राज्य की जनसंख्या वृद्धि दर 2001 से 2011 के बीच 25.40 प्रतिशत पर आ गयी है जो 2001 की जनगणना से लगभग एक प्रतिशत कम है और उत्तर प्रदेश की जनसंख्या वृद्धि दर 20. 20 प्रतिशत रही है (परीक्षा मंथन. 2013: 38–45)। 1991 से 2001 के बीच मध्य गांगेय मैदान की जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 26.23 प्रतिशत है(मानचित्र संख्या : 11)। इस क्षेत्र का सबसे अधिक वृद्धि दर वाला जिला बिहार का पूर्णिया है जहाँ वृद्धि दर 35.23 प्रतिशत है और सबसे कम बिहार के नालन्दा जिले की है जहाँ की औसत वृद्धि दर 18.64 प्रतिशत है।

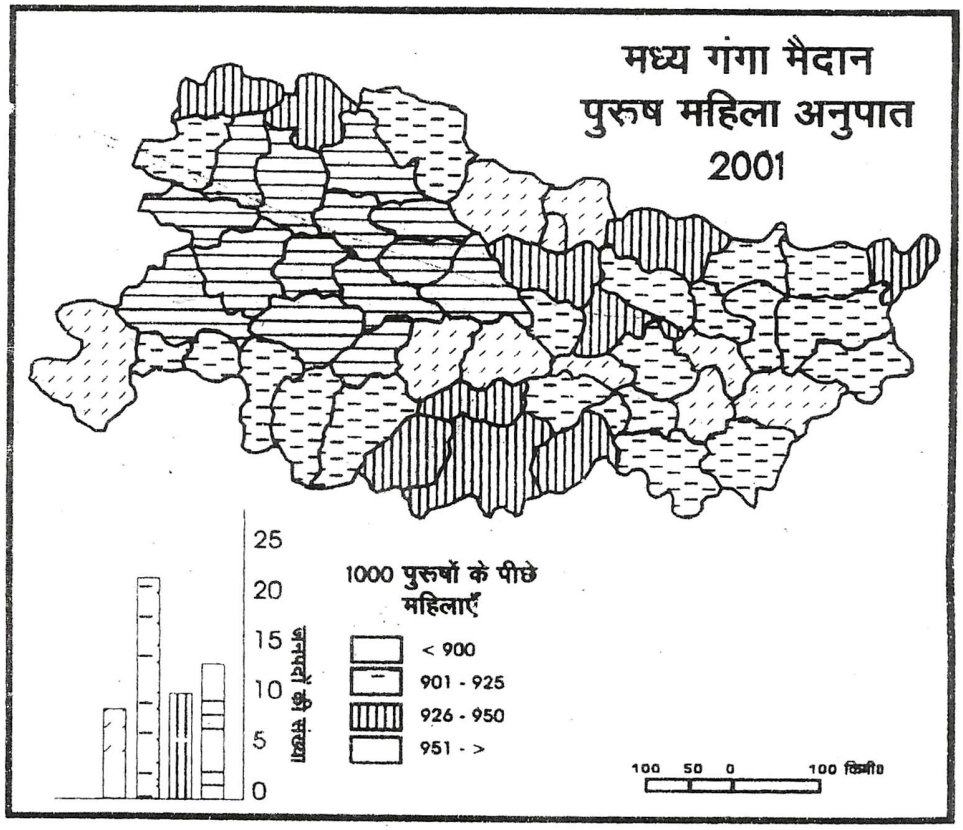

मानचित्र संख्या – 12 : मध्य गंगा मैदान का लिंगानुपात

2011 की जनगणना के अनुसार लिंगानुपात 943 (महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष पर) हैं। मध्य गंगा मैदान में सबसे अधिक लिंगानुपात बिहार के गोपालगंज जिले का 1021 व्यक्ति प्रति हजार है तथा सबसे कम मुगेंर जिले का 876 व्यक्ति प्रति हजार है। 2001 की जनगणना के अनुसार मध्य गंगा मैदान में सबसे अधिक लिंगानुपात बिहार के शिवान जिले का है जहाँ 1033 व्यक्ति प्रति हजार है (भारत सरकार जनगणना. 2001) तथा सबसे कम स्त्री–पुरुष अनुपात पटना जिले का 833 व्यक्ति प्रति हजार है (मानचित्र संख्या : 12)।

घनत्व की वृद्धि दर से इस क्षेत्र का औसत घनत्व 964 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सबसे अधिक घनत्व वाला जिला उत्तर प्रदेश का वाराणसी है जहाँ का घनत्व 3971 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है और सबसे कम बिहार राज्य के जमुई जिले का घनत्व 568 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है (भारत सरकार जनगणना. 2011)।

1.12 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश भारत का एक ऐसा राज्य

है जो राजनैतिक दृष्टिकोण के साथ–साथ सांस्कृतिक और प्रशासनिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। यदि अर्थव्यवस्था के संदर्भ में बात की जाए तो उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यहाँ पर लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, नोएडा, ग्रेटर नोएडा, मिर्जापुर, सोनभद्र ऐसे कई महत्वपूर्ण जिले हैं, जहाँ पर विभिन्न प्रकार के उद्योग–धंधे और व्यापार–वाणिज्य उन्नत किस्म का है, जो देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण सहयोग करता है। उत्तर प्रदेश के बहुत से ऐसे स्थल है, जो धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें वाराणसी, मथुरा, अयोध्या, प्रयागराज का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तर प्रदेश के बहुत से ऐसे नगर है, जो अपनी हस्तकला और कौशल के लिए जाने जाते हैं जैसे– अलीगढ़ ताला चाबी के लिए, भदोही कालीन के लिए, आजमगढ़ ब्लैक पॉटरी के लिये इत्यादि। कृषि के क्षेत्र में उत्पादन के दृष्टिकोण से प्रदेश अग्रणी है। इस प्रकार कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश का राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान है।

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका. (1943 व 1977). वाल्यूम–7 (विलियम वेन्टन द्वारा सम्पादित)।
2. दुबे, दयाशंकर .1942. *श्री गंगा रहस्य,* पटना, बिहार।
3. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्य गंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया.* स्वाभा प्रकाशनः इलाहाबाद।
4. परीक्षा मंथन, सामान्य अध्ययन, भाग–1, 2013।
5. बंसल, सुरेश चन्द्र .2004. *भारत का भूगोल.* मीनाक्षी प्रकाशनः मेरठ।
6. भारत सरकार, जनगणना–2001।
7. भारत सरकार जनगणना–2011।
8. माँझी, ब्रिज .1951. *रिपोर्ट ऑफ गण्डक इरिगेशन एण्ड पावर प्रोजेक्ट,* गवर्नमेण्ट ऑफ बिहारः पटना।
9. मिश्र, जे0पी0 .1985. *भारत का वृहद भूगोल.* वाराणसीः उत्तर प्रदेश।
10. मेमोरिया, चतुर्भुज .1995. *आधुनिक भारत का बृहद भूगोल.* साहित्य भवन प्रकाशनः आगरा।
11. मेमोरिया, चतुर्भुज एवं एस0सी0 जैन .2003 *भारत का भूगोल.* साहित्य भवन प्रकाशनः आगरा।
12. स्पेट, ओ0एच0के0 .1954. *इण्डिया एण्ड पाकिस्तान ए जनरल एण्ड रिजनल ज्योग्राफी,* लन्दन मेथुवेन एण्ड को लिमिटेडः लंदन।
13. स्टाम्प, एल0डी0 .1959. *एशिया–ए रीजनल एण्ड इकोनोमिकल ज्योग्राफी.* लंदन।
14. सिंह, सुरेश चन्द्र .1965. *डिलिमिनेशन ऑफ द मिडिल गंगा प्लेन,* नं0ग0ज0 आई0 11।
15. सिंह, आर0एल0 .1971. *इण्डिया–ए–रिजनल ज्योग्राफी.* द नेशनल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डियाः वाराणसी
16. सेन्सेज ऑफ इण्डिया. 1971. भाग 10।

1.14 बोध प्रश्न

- उत्तर प्रदेश का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।
- उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक विशेषता पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए
- उत्तर प्रदेश के भौगोलिक विभाजन का वर्णन कीजिए।
- उत्तर प्रदेश के प्रमुख नदियों पर एक निबंध लिखिए

इकाई–2 : आलमगीरपुर, अतरंजीखेडा, सिनौली

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 आलमगीरपुर

2.3.1 प्रथम काल : हड़प्पा संस्कृति

2.3.2 द्वितीय काल : चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति

2.4 अतरंजीखेडा

2.4.1 गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति

2.4.2 कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड संस्कृति

2.4.3 चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति

2.4.4 उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा संस्कृति

2.4.5 अन्य अवशेष

2.5 सिनौली

2.5.1 उत्खननों उपरान्त प्रश्न

2.5.2 रथ की प्राप्ति

2.5.3 वैज्ञानिक विधि का प्रयोग एवं नवीन सन्दर्भ

2.5.4 कालक्रम / तिथि

2.5.5 शवाधान विन्यास और अन्त्येष्टि सामग्री

2.6 सारांश

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.8 बोध प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित आलमगीरपुर, अतरंजीखेड़ा और सिनौली तीनों पुरास्थल भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करते है। अतरंजीखेड़ा, जहाँ गैरिक मृद्भांड संस्कृति से लेकर पूर्व मध्यकाल तक के इतिहास का साक्षी रहा है, वही आलमगीरपुर और सिनौली देश की महत्वपूर्ण सभ्यता सिंधु सभ्यता के अवशेषों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सिनौली से प्राप्त अवशेष अभी हाल ही में चर्चा के विषय थे, जब सिनौली पुरास्थल का उत्खनन हो रहा था तो वहाँ से बहुत से शवाधान के साक्ष्य प्राप्त हुए और शवाधानों के साथ सोने और अन्य धातु के आभूषणों के साथ मिट्टी के बर्तन अन्य अवशेष भी प्राप्त हुए। इन अवशेषों में सबसे महत्वपूर्ण वहाँ से रथ के साक्ष्य की प्राप्ति है, जिसे महाभारत काल से संबद्ध किया जाता है। इन पुरास्थलों का विस्तृत विवेचन निम्नवत् हैं–

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- आलमगीरपुर पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को जान सकेंगे
- सिंधु सभ्यता की विशेषताओ के बारे में जान सकेंगे
- अतरंजीखेड़ा पुरास्थल की आवासीय जमावो से परिचित हो सकेंगे
- विभिन्न प्रकार की मृदभांड परम्पराओं को जान सकेंगे
- सिनौली के महत्त्व को जान सकेंगे
- पश्चिमी उत्तर प्रदेश की पुरातात्विक संपदा एवं महत्वपूर्ण स्थलों को जान सकेंगे, जिससे पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा।

2.3 आलमगीरपुर (29°00′ उत्तरी अक्षांश, 77°30′ पूर्वी देशान्तर)

आलमगीरपुर (आईएआर, 1958–59 :50–55), मेरठ से 17 मील पश्चिम में यमुना की एक सहायक नदी हिंडन के तट पर स्थित है (चित्र– 2.1)। स्थानीय रूप से, इस स्थान को कल्याणपुर–उखलीना के नाम से जाना जाता है। इसकी खुदाई भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा वाई.डी. शर्मा के निर्देशन में की गई थी। अन्वेषण के दौरान यह देखा गया कि वर्तमान में ग्रामीणों द्वारा टीले को काटा जा रहा है। टीले पर विभिन्न कालखंडों से संबंधित बर्तनों के टुकड़े बिखरे पड़े हैं। नदी अब अपने मूल स्थान से दूर चली गई है। इस साइट पर 2007–08 के सत्र में प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति और पुरातत्त्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा संक्षिप्त रूप से फिर से खुदाई की गई है उत्खनन के परिणाम अभी भी प्रकाशित होने बाकी हैं। नीचे वर्णित चार सांस्कृतिक काल इस पुरास्थल पर पाए गए।

2.3.1 प्रथम काल : हड़प्पा संस्कृति

यहाँ का प्रथम काल हड़प्पा संस्कृति का है, जिसमें नुकीले आधार के साथ स्टैंड पर बर्तन रखने वाला प्याला और हड़प्पा चित्रित रूपांकनों के साथ सिंधु संस्कृति के अन्य विशिष्ट बर्तन प्राप्त किये गए। सन् 1958 तक हड़प्पा संस्कृति के अवशेष गंगा–यमुना दोआब में नहीं मिले थे। इसी साल यमुना की सहायक हिण्डन नदी के बायें तट पर उससे 3.2 किलोमीटर की दूरी पर इस संस्कृति के अवशेष मिले। यह मेरठ से तीस

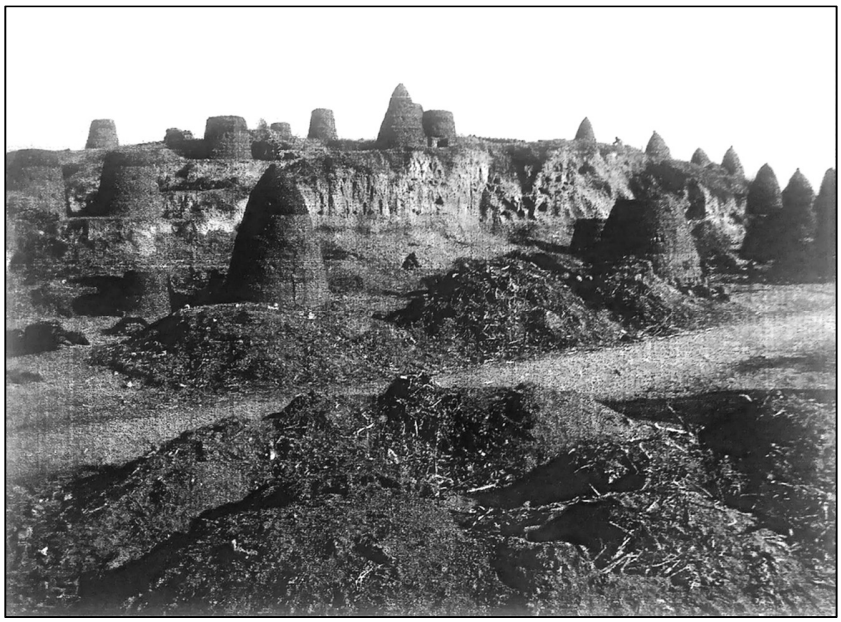

चित्र – 2.1 आलमगीरपुर का टीला

किलोमीटर पश्चिम और दिल्ली से लगभग 45 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में है। यहाँ पर भारत सेवक समाज का

शिविर लगाया जा रहा था तो अचानक कुछ पुराकालीन सामग्री प्रकाश में आयी। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों द्वारा परीक्षित होने पर यह सिंधु संस्कृति कालीन प्रतीत हुई। कालांतर में किये गये उत्खननों से इसकी पुष्टि हुई। टीले का आकार 60×50 मी० है। इसमें पहली संस्कृति सिंधु संस्कृति थी। उसके बाद तीन और संस्कृतियाँ थीं, जिनमें प्रत्येक में अपने पूर्व संस्कृति से काल व्यवधान था। यहाँ पहले काल में सिंधु प्रकार के मृद्भाण्ड, यथा छिद्रित भाण्ड, चंचुक, साधार तश्तरियाँ, मृत्पिण्ड, मनके, सोने का पानी चढ़ा मिट्टी का मनका, घनाकर बाट, तथा मिट्टी की खिलौना गाड़ियाँ मिलीं। लालभांड पर काले रंग से वृत्त को काटते वृत्त, मोर आदि का चित्रण हैं। कुछ मिट्टी के पायेदार चकले मिले। साधार तश्तरी के रिम झुके हुये थे। आलमगीरपुर से प्राप्त सामग्री ह्रासोन्मुखी हड़प्पा सभ्यता की द्योतक है। यहाँ पर एक भी मुद्रा नहीं मिली और सिधु सभ्यता के कुछ भाण्डों के प्रकार भी यहाँ पर अनुपलब्ध है।

भालू, कूबड़ वाले बैल, सांप आदि जैसे जानवरों की मूर्तियाँ भी मिलीं। लघु कटोरे, फियान्स का मोती और चूड़ियाँ और अन्य अर्ध–कीमती सामग्री के मोती भी मिले। हाल ही में हुई खुदाई में गोलाकार झोपड़ियों की नींव का संकेत देने वाले कुछ गड्ढे देखे गए। कोई घर की योजना नहीं पता थी, हालाँकि पकी हुई ईंटें देखी गईं। पहले के उत्खननकर्ताओं (आईएआर 1958–59) के अनुसार यह स्थल कुछ अज्ञात कारणों से वीरान था। हालांकि, काशी हिंदू विश्वविद्यालय की टीम द्वारा वर्ष 2007–08 में किए गए उत्खनन, खुदाईकर्ता को वीरान होने का संकेत देने वाला कोई स्ट्रेटीग्राफिकल गैप नहीं प्राप्त हुआ। केवल सामग्री की अधिक विस्तृत जांच और उसके बाद रिपोर्ट से ही वास्तविक स्थिति स्पष्ट हो सकती है, लेकिन इन स्तरों से प्राप्त तिथियाँ पी.जी.डब्ल्यू. अवधि से लगभग 900 ई0पू0 तक हड़प्पा और उसके बाद की पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति के बीच एक अंतर का संकेत देती हैं।

2.3.2 द्वितीय काल : चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति

हड़प्पा सभ्यता के बाद इस पुरास्थल चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति का साक्ष्य प्राप्त होता है जिसका साढ़े चार फीट मोटा आवासीय जमाव है। चित्रित धूसर मृदभाण्ड के मानक डिजाइनों से सजाए गए कटोरे और थालियों के सुंदर नमूने पाए गए हैं (चित्र–2.2)। पी.जी.डब्ल्यू. के अन्य संबंधित बर्तन ब्लैक स्लिप्ड वेयर (बी.एस.डब्ल्यू.), ब्लैक एंड रेड वेयर (बी.आर.डब्ल्यू.) और प्लेन रेड वेयर हैं। चपटे आधार वाले सीधे किनारे वाले कटोरे और अंदर की ओर मुड़े हुए और कुंद कैरिनेटेड किनारों और थोड़े उत्तल आधार वाले बर्तन बी.एस.डब्ल्यू., बी.आर.डब्ल्यू. और पी.जी.डब्ल्यू. सिरेमिक के मुख्य रूप हैं। इसी तरह के लक्षण वाले लाल पात्र के बर्तन जानबूझकर उस रंग में पकाए गए लगते हैं। अन्य नमूने आंशिक रूप से ग्रे और आंशिक रूप से लाल हो गए हैं। काले और लाल बर्तन के कटोरे में एक उत्तल आधार और कंधे पर एक नालीदार नक्काशी है। एक मोटी काली पट्टी के साथ लाल और ग्रे बर्तन का एक समतल सतह वाला बेसिन भी पाया गया है। भंडारण और खाना पकाने के बर्तनों में भूरे रंग की एक खुरदरी सतह होती है। टेराकोटा पशु मूर्तियों में बैल, मेढ़े आदि शामिल हैं। खुदाई में एक खिलौना गाड़ी मिली है, जिसमें इन जानवरों को जोड़ा गया है। जानवरों को खूबसूरती से तैयार किया गया है। यह उस अवधि के परिवहन माध्यमों को भी प्रमाणित करता है। इस अवधि में तांबे के साथ–साथ लोहे का भी उपयोग किया गया था। कांटेदार तीर के सिरे, पिन और कीलें लोहे से बनाई जाती थीं। अन्य वस्तुओं में भाले आदि जैसी हड्डी की वस्तुएं और पासा, स्टाइली, पिन, छोटे काले जैस्पर और कांच के मोतियों की रील के आकार की डिस्क इत्यादि है। अन्य जगहों की तरह यहाँ भी मिट्टी और ईख से घर बनाए गए थे।

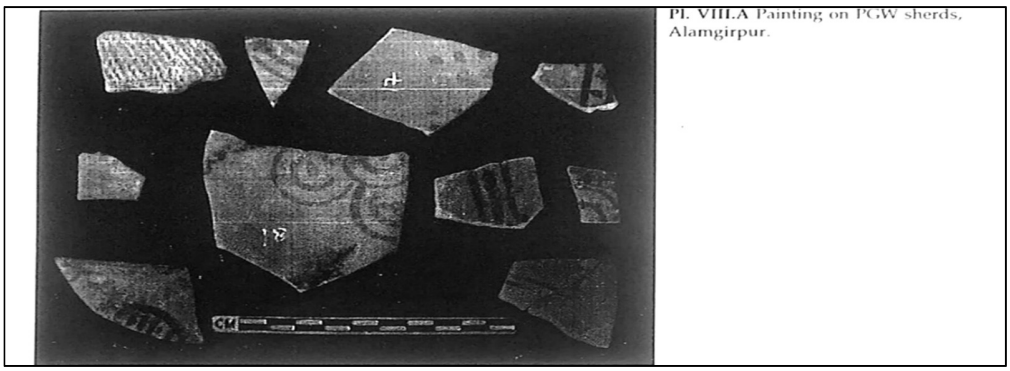

Pl. VIII.A Painting on PGW sherds, Alamgirpur.

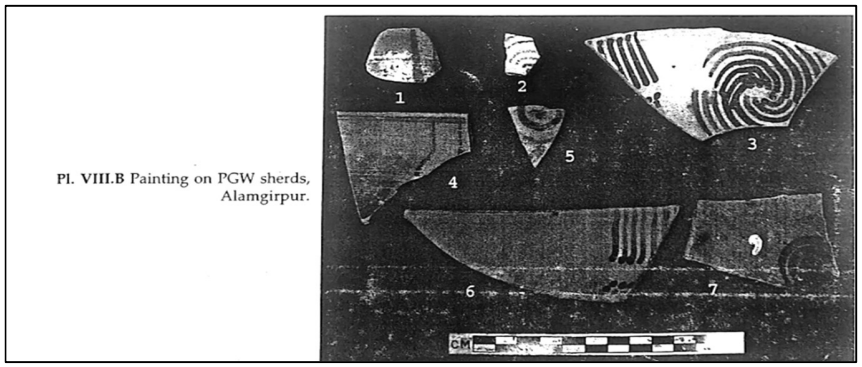

चित्र – 2.2 चित्रित धूसर मृदभाण्ड

2007–08 ईस्वी की खुदाई में एक दिलचस्प खोज सफेद राख के साथ PGW को पकाने के लिए कुम्हार का भट्ठा और उल्टे ढेर में रखे बर्तन हैं। यह आलमगीरपुर में पी. जी. डब्ल्यू के स्थानीय उत्पादन को इंगित करता है।

तृतीय काल – एक स्पष्ट अंतराल के बाद, लाल बर्तन के साथ प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के लोग पुरास्थल पर आ के बस गये। कोई NBPW जमाव नहीं देखा गया।

चतुर्थ काल – यह अवधि मध्य काल से संबंधित है, लेकिन पुरास्थल पर प्राचीन सांस्कृतिक अवशेषों के रूप में बहुत कुछ नहीं बचा है।

2.4 अतरंजीखेड़ा (27°41′ उत्तरी अक्षांश, 78°41′ पूर्वी देशान्तर)

अतरंजीखेड़ा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एटा जिला में गंगा की सहायक काली नदी के तट पर स्थित है। अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में अतरंजी का उल्लेख कन्नौज के एक महल के रूप में किया है। यहाँ पर 1962 ई. में परीक्षणात्मक खुदाई की गयी। 1964 ई. से सात वर्षों तक लगातार उत्खनन का कार्य यहाँ पर किया गया। प्रारम्भिक उत्खननों का निर्देशन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के प्रोफेसर नुरुल हसन और आर. सी. गौड़ ने किया। इस स्थान की खुदाई से विभिन्न काल की अनेकानेक पुरातात्विक वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, जिससे विभिन्न संस्कृतियों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। उत्खनन से यह भी स्पष्ट होता है कि पूर्व–मध्यकाल तक यह एक महत्वपूर्ण स्थल था।

इस स्थ्ल के बारे में कहा जाता है कि राजा बेन ने मुहम्मद गोरी को उसके कन्नौज–आक्रमण के समय परास्त किया था किंतु अंत में बदला लेकर गोरी ने राजा बेन को हराया और उसके नगर को नष्ट कर दिया। एक ढूँह के अन्दर से हजरत हसन का मकबरा निकला था– जो इस लड़ाई में मारा गया था। यहाँ के विशाल खंडहरों के उत्खनन में, जो एक विस्तृत टीले के रूप में हैं (टीला 3960 फुट लम्बा, 1500 फुट चौड़ा और प्रायः 65 फुट ऊंचा है) शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियाँ, सिक्के, ठप्पे, ईंटों के टुकड़े आदि बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं।

खंडहर के एक सिरे पर एक शिवमंदिर के अवशेष हैं जिसमें पांच शिवलिंग हैं। इनमें एक नौ फुट ऊंचा है। टीले की रूपरेखा से जान पड़ता है कि इसके स्थान पर पहले एक विशाल नगर बसा हुआ था। यहाँ से दो हजार वर्ष ई. पूर्व. से लेकर अकबर के शासनकाल तक के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषों के आधार पर यहाँ की संस्कृतियों को चार स्तरों में बाँटा जा सकता है।

अवशेषों के आधार पर अतरंजीखेड़ा की संस्कृतियों को चार स्तरों में बाँटा जा गया है।

- गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति
- कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड संस्कृति
- चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति
- उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा संस्कृति।

2.4.1 गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति

प्रथम गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति स्तर से प्राप्त गेरुए रंग के मृद्पात्रों के आधार पर इसे गैरिक मृद्भाण्ड परम्परा कहते हैं। गेरुए रंग के ये पात्र अधिकांशतः चाक निर्मित एवं कुछ हस्त निर्मित भी हैं। इनमें घड़े, कलश, पेंदीदार कटोरे, मटके, तसले, नाँद आदि मोटी गढ़न के हैं। तश्तरियाँ, चिलमची, घुण्डीदार कटोरेनुमा ढक्कन, दीपक और छोटे कलश पतली गढ़न के हैं। कुछ पात्र चित्रित हैं और कुछ पर अनियमित रेखाएँ हैं। इस काल के लोग अधिकांश खेतिहर थे। वे धान, जौ एवं दालों की खेती से परिचित थे। इस स्तर से अनाज पीसने के सिलबट्टे भी प्राप्त हुए हैं। प्रथम संस्कृति का समय आमतौर से 2000 ई.पू. से 1500 ई.पू. माना जाता है।

2.4.2 कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड संस्कृति

द्वितीय कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड संस्कृति के स्तर से जिस संस्कृति के अवशेष मिलते हैं, उनके निवासी काले–लाल मृद्भाण्डों का उपयोग करते थे। इस परम्परा के पात्रों का अन्दर एवं गर्दन का भाग काला और शेष भाग लाल रंग का होता है। पात्रों के अतिरिक्त इस स्तर से वर्गाकार एवं आयताकार चूल्हे मिले हैं। ताँबे और हड्डियों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड संस्कृति में माणिक्य के फलक काफी संख्या में मिले हैं। इस स्तर का काल 1450 ई. पूर्व. से 1200 ई. पूर्व. माना जाता है।

2.4.3 चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति

तृतीय कालखण्ड का सम्बंध चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से है क्योकि इस स्तर से चित्रित धूसर–मृद्भाण्ड के टुकडे प्राप्त हुए हैं। इनमें अधिकतर चाक निर्मित हैं, परंतु कुछ हाथ के बने हुए भी हैं। इन पात्रों में कटोरे एवं थालियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इस परम्परा में पात्रों पर चित्रण भी मिलते हैं। ये चित्रण प्रायः रेखीय, बिन्दु, वृत्त, अर्द्धवृत्त आदि के रूप में हैं। चित्रितधूसर मृद्भाण्ड संस्कृति में स्वस्तिक चिह्न का भी चित्रण मिलता है। ये प्रायः धूसर रंग के हैं। इस परम्परा के साथ काले–लाल एवं बिना अलंकरण वाले धूसर भाण्ड परम्परा के पात्र भी प्राप्त हुए हैं। इस स्तर से लौह उपकरण भी प्राप्त हुए हैं, जो निचले स्तर से ऊपर की ओर संख्या में अधिक होते गए हैं। मुख्यतः बाण के अग्र भाग, भाला–फलक, चिमटे, कीलें, कुल्हाड़ी, मछली पकड़ने के काँटे, छल्ले, छेनी, बरमा आदि मिले हैं। अतरंजी खेड़ा से लौह गलाने की भट्टियों के संकेत भी मिले हैं। इस काल में कृषि के साक्ष्य के रूप में गेहूँ के अवशेष भी प्राप्त होते हैं। कृषि के साथ मवेशी भी पाले जाते थे। गाय, बैल, भेड़, बकरी और घोड़े के चिह्न भी प्राप्त हुए हैं। इस स्तर से आवासीय चिह्न मिलते हैं। आवास बाँस–लकड़ी से निर्मित होते थे। मिट्टी की पशु मूर्तियाँ, पहिये एवं मनके प्राप्त हुए हैं। ताँबा और हड्डी से निर्मित वस्तुएँ भी मिली हैं। घरों में चूल्हों के साथ–साथ आग के गड्ढे भी मिले हैं। इस संस्कृति की काल गणना 1200 ई.पू. से 600 ई.पू. तक की जाती है।

2.4.4 उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा संस्कृति

चतुर्थ कालखण्ड का सम्बंध उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा संस्कृति से है क्योकि इस स्तर से उत्तरी काली ओपदार भाण्ड परम्परा के पात्र प्राप्त होते हैं। ये पात्र अच्छी तरह से गुँथी हुई मिट्टी से बने हुए, काले रंग की विशेष चमक लिए हुए हैं। ये पात्र पतली गढ़न के हल्के, अच्छी प्रकार के एवं धातु के पात्रों की तरह के खनक वाले हैं। पात्रों में थाली–कटोरे, छोटे कलश, हांडियाँ आदि प्रमुख हैं। यह स्तर अधिक व्यापक एवं मोटे जमाव में पाया गया है। इस स्तर के आवासों में क्रमशः ईंटों का प्रयोग देखने को मिलता है। घास–फूस एवं बाँस–लकड़ी के मकानों के साथ–साथ ऊपरी परतों में पकायी हुई ईंटों के मकानों के अवशेष मिलते हैं। इस स्तर से मिट्टी के मनुष्य, पशु एवं पक्षियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। लोहे, ताँबे एवं हाथी के दाँत तथा हड्डियों से निर्मित वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इस स्तर का समय बुद्ध काल से लेकर 50 ई.पू. का माना जाता है।

2.4.5 अन्य अवशेष

उत्खन्न में यहाँ पर पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति (1000 ई.पू.–600 ई. पू.) के समृद्ध निक्षेपों में लोहे से बनी वस्तुएं जैसे भाले की नोक, तीर की नोक, चाकू, कुल्हाड़ी इत्यादि हैं। यह संकेत करता है कि यहाँ पर लौह उद्योग भली प्रकार से विकसित था तथा लोहे के उपयोग के कारण ही गंगा की घाटी में वनों को कृषि हेतु साफ किया गया था।

प्राप्त साक्ष्य नरकुल एवं मिट्टी से बने घरों के साथ–साथ फसलों की खेती की ओर संकेत करते हैं। एन.बी.पी.डब्ल्यू. अवधि में (छठी–दूसरी शताब्दी ई.पू.) खेती हेतु लोहे से बने औजारों का प्रयोग बढ़ गया। सिक्कों, मुहरों, टेराकोटा से बनी लघुमूर्तियों तथा जली ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य भी इस अवधि में स्थल के नगरीय स्वरूप की ओर संकेत करते हैं। कुषाणकाल के सिक्के की प्राप्ति एक महत्वपूर्ण खोज है तथा इस बात की ओर संकेत करती है कि यहाँ पर कुषाण वंश का शासन था। जैन तीर्थंकर की मूर्ति के साथ अन्य उत्तम मूर्तियाँ गुप्त तथा उसके बाद के काल को दर्शाती हैं। अतरंजी खेड़ा के उत्खनन से प्राप्त पशुओं की अस्थियाों में अधिकांश गाय–बैलों की हैं। उन पर काटने के स्पष्ट चिह्न हैं तथा अधिकतर की तिथि 500 ई.पू. से पहले की है। इससे यह प्रमाणित होता है कि यज्ञों में इन पशुओं की बलि दी गई थी। इस प्रकार के तथ्यों के आधार पर प्रोफेसर रामशरण शर्मा ने 'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ में यह मत प्रकट किया है कि वैदिक धार्मिक स्वरूप लोहे के फल वाले हल से होने वाली कृषि के अनुकूल नहीं था। मोटे तौर पर अतरंजीखेड़ा से इसके आर्य संस्कृति के केन्द्र होने के व्यापक प्रमाण मिलते हैं। पशुपालन, खेतिहर समुदाय, चावल की खेती, लोहे की उपस्थिति, चित्रित धूसर भाण्ड संस्कृति आदि तथ्य अतरंजीखेड़ा की विशेषताएँ है।

2.5 सिनौली (29°8′28″उत्तरी अक्षांश 77°13′1″ पूर्वी देशान्तर)

पुरातात्त्विक स्थल सिनौली, भारत के पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बागपत जिले के बड़ौत तहसील में स्थित है। बागपत जिला राज्य के पश्चिमी भाग में यमुना और हिंडन के दोआब पर स्थित है। यह मेरठ से 50 किमी और दिल्ली से लगभग 40 किमी दूर है। दिल्ली से सिनौली की दूरी लगभग 68 कि.मी. है। वर्तमान में पुरास्थल से यमुना नदी लगभग 7.5 कि.मी. पश्चिम में प्रवाहित हो रही है। सिनौली में यह स्थल कृषि भूमि समतल करने वाले लोगों द्वारा संयोगवश खोजा गया था। किसानों को मानव कंकाल और प्राचीन मिट्टी के बर्तन मिले। ए.एस.आई. ने सितंबर 2005 में इस स्थल पर खुदाई शुरू की थी। सिनौली में उत्खनन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ए.एस.आई.) द्वारा 2005–06 और 2018 के मध्य में की गई थी। सिनौली पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त शवाधान अप्रत्याशित रूप से अपने आप में अद्‌भुत हैं, जिसने पारंपरिक पुरातात्त्विक अवधारणा ऐतिहासिक एवं पौराणिक साहित्य मे वर्णित कथाओं, उल्लेखों व वैदिक साहित्य की पुनर्व्याख्या करने का आधार व विचार प्रदान किया, साथ ही भारतीय संस्कृति व हड़प्पीय संस्कृति के अतिरिक्त ताम्र–पाषाणिक संस्कृति अथवा ताम्र–कांस्य काल में गंगा–यमुना दोआब मे पल्लवित पुष्पित होने वाली संस्कृति की समझ को भी एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। सिनौली की खुदाई में यहाँ से सिंधु घाटी सभ्यता से संबंधित 125 कब्रें पाई गईं थी (चित्र 3.1)।

चित्र –3.1 सिनौली से प्राप्त शवाधन

सिंधु घाटी सभ्यता के प्रमुख स्थल राखीगढ़ी, कालीबंगा और लोथल में खुदाई के दौरान भी कंकाल मिल चुके हैं। यहाँ पर जो कब्रें मिली है उन्हें 2200–1800 ई0पू0 का बताया जा रहा है। खास बात यह है कि यहाँ पर खुदाई में धरती के नीचे से प्राचीन भारत के रथ और हथियार भी पाए गए हैं। यहाँ सिर्फ खेतों में ही दुर्लभ पुरावशेष दफन नहीं हैं, बल्कि गाँव की गलियों और मोहल्लों में स्थित घर–घर के नीचे प्राचीन भारत का इतिहास दबा हुआ है। यहाँ पर एएसआइ की टीम ने लगभग 15–16 फुट खोदाई की तो जमीन से नर कंकाल, तांबे के दो कड़े, तांबे की म्यान, स्वर्णाभूषण, मनके, मिट्टी के बर्तन, बड़े मटके, खंडहरनुमा रसोई निकली है। सभी को महाभारत काल का माना जा रहा है।

सिनौली में ए.एस.आई. के वरिष्ठ पुरातत्वविद डॉ. डीवी शर्मा के निर्देशन में 2005–06 में प्रथम चरण का उत्खनन कार्य किया गया था। उत्खनन के दौरान 117 मानव कंकाल, दो तांबें की तलवारें, एक तांबे की म्यान, चार सोने के कंगन, एक सोने से बना मनके का हार, एक सोने की लघु मानवाकृति, सैंकड़ों मनकें, समेत अन्य पुरावशेष प्राप्त हुए थे। इसके अलावा एक 15–16 साल की लड़की का कंकाल बरामद हुआ था। इस कंकाल के हाथ–पैर में स्वर्णाभूषण (कडे), गले में एक हसुली की तरह का स्वर्ण हार जो कि तांबे के मोटे तार पर लिपटा हुआ था, बरामद हुआ था। यह उत्खनन कार्य गाँव के रहने वाले किसान प्रभाष शर्मा के खेत में किया गया था। इस उत्खनन के लिए ए.एस.आई. द्वारा किसान से सहमति भी ली थी, लेकिन किसान को आश्वस्त किया गया था कि उसे उचित मुआवजा भी दिया जाएगा। उत्खनन कार्य खत्म होने के बाद भी किसान को इस जमीन पर किसी तरह की फसल बुआई ना करने की बात अधिकारी कह गए थे।

2.5.1 उत्खननों उपरान्त प्रश्न

उत्खनन से उपजे अनेक प्रश्न यथा शवाधान से प्राप्त मृद्भाण्ड व वस्तुओं की विभिन्न संस्कृति से संबंध, बसावट की खोज? सांस्कृतिक सम्बंध? शवाधान से प्राप्त तलवार जो कि ताम्रनिधि संस्कृति से संबंध रखती है, उनका उत्तर हड़प्पीय संस्कृति से संबंध? इत्यादि ऐसे अनेक अनसुलझे प्रश्नों को समझने हेतु योजनागत उत्खन्न की आवश्यकता महसूस हो रही थी। फलतः वर्ष 2018 में इस पुरास्थल पर पुनः उत्खनन कार्य किया गया। परिणामस्वरूप आठ शवाधान के साक्ष्य प्राप्त हुए। जिनमें तीन शवाधानों में अन्य वस्तु के साथ खाटनुमा शवपेटिका थी तथा तीन शवाधानों से आंशिक मानव अस्थियाँ प्राप्त हुई, जिनमें एक शवाधान में दो मानव कंकालों को एक साथ रखा गया था तथा दो सांकेतिक शवाधान के भी साक्ष्य प्राप्त हुए, जिनमें मानव अस्थि नहीं थी। एक कुत्ते का शवाधान भी प्रकाश में आया। सीमित उत्खनित स्थल से बहुप्रथा युक्त शवाधानों की प्राप्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

2.5.2 रथ की प्राप्ति

चित्र – 3.2 रथ का साक्ष्य

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के इतिहास में पहली बार किसी उत्खनन से इस काल के रथों की प्राप्ति हुई। रथ की बनावट समकालीन संस्कृतियों तथा बाद के रथों से साम्य रखती है। रथ के दोनों पहिए पर ताँबे की तिकोने आकार की पच्चीकारी के कारण सम्पूर्ण ढांचे की पहचान कर उत्खनित किया जा सका। रथ के विभिन्न भागों

में अर्धगोलाकार अथवा अंग्रेजी के डी आकार के लकड़ी के ढांचे तथा चार डंडे महत्त्वपूर्ण है, जिन पर ताँबे का चादर चढ़ाया गया था। यह भी महत्त्वपूर्ण है, पहिये की धुरी को जोड़नें के लिये भी ताँबे की बड़ी कीलों के प्रयोग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। असंबंध भाग पूर्णतः विघटित हो गया है। इसके साथ ही दूसरा रथ भी रखा गया है और इसका दूसरे रथ का आकार–प्रकार भी लगभग ऐसा ही है।

2.5.3 वैज्ञानिक विधि का प्रयोग एवं नवीन सन्दर्भ

सिनौली के वर्तमान उत्खनन में सम्भवतः पहली बार बहुआयामी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग उत्खनन के दौरान ही किया गया जैसे – एक्स रे, सी0 टी0 स्कैन, 3डी स्कैनिंक, ड्रोनलिडार मैपिंग, जी– पी– आर एवं मैग्नोटोमीटर सर्वे, धातु विश्लेषण हेतु हैन्ड हैल्ड, क्स आर0,फ0,मानकों के विश्लेषण हेतु लघु माइक्रोस्कोप आदि। उत्खनन से प्राप्त धातु अवशेष व उसका सी0 टी0 स्कैन उत्खनन से प्राप्त धातु अवशेष व उसका सी0 टी0 स्कैन इत्यादि।

बड़ौत–छपरौली मार्ग पर स्थित लगभग 18 हजार आबादी वाला सिनौली आज दुनिया भर की मीडिया की सुर्खियाँ बटोर रहा है क्योंकि इस पर डिस्कवरी प्लस पर एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म प्रसारित होने वाली है। आईआईटी खड़गपुर और भारतीय पुरातत्त्व विभाग के वैज्ञानिकों की नई खोज से यह पता चला है कि सिंधुघाटी की सभ्यता लगभग 4000 ई0पू0 अर्थात आज से 6000 वर्ष पुरानी मानी गई है। सिंधु घाटी में ऐसी कम से कम आठ प्रमुख जगहें हैं, जहाँ संपूर्ण नगर खोज लिए गए हैं। जिनके नाम हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चान्हुदड़ो, लोथल, कालीबंगा, सुरकोटदा, रंगपुर और रोपड़ है।

अंग्रेजों की खुदाई से माना जाता था कि सिंधु सभ्यता के नगरों की 2600 ई0पू0 स्थापना हुई थी। इस सोच को गुजरात के धौलावीरा, हरियाणा के भिर्राना और राखीगढ़ी और उत्तर प्रदेश के सिनौली में पाए गए पुरावशेष ने बदल कर रख दिया है। भगवान श्रीराम का काल 5114 ई0पू0 का काल माना जाता है जबकि श्रीकृष्ण का काल 3228 ई0पू0 का माना गया है। नई पुरातात्विक खोज से पता चलता है कि अब तक भारत का जो इतिहास पढ़ाया या बताया गया था वह सच नहीं था। सच कुछ और है और जिसका सामने आना अभी बाकी है।

परीक्षण उत्खनन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष लगभग 2000–1500 ई0पू0 के हैं, और गेरू रंग के बर्तनों की संस्कृ ति, ताम्र संचय संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त गए हैं, जो कि उत्तर हड़प्पा संस्कृति के समकालीन थे। इनमें कई लकड़ी के ताबूत दफन, तांबे की तलवारें, हेलमेट और लकड़ी की गाड़ियाँ शामिल हैं। ठोस डिस्क पहियों के साथ और तांबे की चादरों द्वारा संरक्षित गाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं। गाड़ियों की खुदाई के निदेशक संजय मंजुल ने इन्हे रथ के रूप में प्रस्तुत किया था। और उन्होंने आगे नोट किया कि सिनौली दफन से संबंधित अनुष्ठानों ने वैदिक अनुष्ठानों के साथ घनिष्ठ संबंध दिखाता है।

कई विद्वानों का सुझाव है कि ठोस पहिये गाड़ियों के हैं, रथों के नहीं हैं। असको परपोला के अनुसार ये खोजें बैल द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियाँ थीं, जो यह दर्शाता है कि ये दफन प्रोटो–इंडो–ईरानी भाषी लोगों के भारतीय उपमहाद्वीप में प्रारंभिक आर्यन प्रवास से संबंधित हैं, तब एक प्रमुख उत्तर हड़प्पा बस्ती के शासक अभिजात वर्ग का गठन हुआ।

2.5.4 कालक्रम / तिथि

ए.एस.आई. के डीवी शर्मा की अध्यक्षता में 2005–06 में किए गए उत्खनन में सौ से अधिक शवाधान मिले, जिनकी तिथि अस्थायी रूप से लगभग 2200–1800 ई0पू0 बताई गई है।शर्मा ने इस खोज को हड़प्पा (सिंधु) सभ्यता से जोड़ा,जिस पर विवाद किया गया है, क्योंकि उत्तर हड़प्पा या हड़प्पा के बाद की पहचान अधिक संभावित लगती है। कार्बन डेटिंग ने अब पुष्टि कर दी है कि दफन लगभग 1865–1507 ई0पू0 के हैं, जो तीन नमूनों 3500, 3815 और 3457 ई0पू0 के आधार पर 295 वर्षों की त्रुटि के मार्जिन के साथ है।

2.5.5 शवाधान विन्यास और अन्त्येष्टि सामग्री

सभी शवाधान उत्तर–पश्चिम,दक्षिण–पूर्व दिशा में हैं और अधिकांश की पहचान प्राथमिक दफनाने के रूप में की गई है। कुछ द्वितीयक, बहुविध और प्रतीकात्मक दफनाने के रूप में पहचाने गए हैं। दफनाए गए लोगों की उम्र 1–2

साल से शुरू होती है और इसमें सभी आयु वर्ग और पुरुष और महिला दोनों शामिल हैं। कब्र के सामान में आम तौर पर सिर के पास विषम संख्या में फूलदान/कटोरे (3, 5, 7, 9, 11 आदि) होते हैं, जिसमें आमतौर पर कूल्हे के क्षेत्र के नीचे डिश–ऑन–स्टैंड रखा जाता है, साथ ही फ्लास्क के आकार के बर्तन, टेराकोटा मूर्तियाँ, सोने के कंगन और तांबे की चूड़ियाँ, अर्ध–कीमती पत्थरों के मोती (लंबे बैरल के आकार के दो हार), स्टेटाइट, फियान्स और कांच रखे होते थे।

सिनौली से प्राप्त दो एंटीना तलवारें, जिनमें से एक तांबे के म्यान के साथ कब्र में पाई गई थी, में लेट हड़प्पा संदर्भ में कॉपर होर्ड प्रकार की समानताएं हैं। एक डिश–ऑन–स्टैंड और एक वायलिन के आकार का सपाट तांबे का कंटेनर (जिसमें एक पंक्ति में लगभग 35 तीर के आकार के तांबे के टुकड़े रखे गए हैं) सिनौली से प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण कब्र के सामानों में शामिल हैं। सर्वेक्षण में पाया गया कि डिश–ऑन–स्टैंड को आमतौर पर कूल्हे के क्षेत्र के नीचे रखा जाता था, लेकिन कुछ मामलों में सिर या पैरों के पास रखा जाता था। दफन के पूर्वी हिस्से में एक जली हुई ईंट की दीवार के अवशेष हैं, जिसकी भीतरी सतह पकी है।

ऐसा लगता है कि दक्षिण एशिया में सबसे पहले आर्य–भाषी अप्रवासी, कॉपर होर्ड लोग , बैलगाड़ी (सिनौली और दैमाबाद) के साथ आए थे और उनकी भाषा प्रोटो–इंडो–ईरानी थी । हालाँकि, जल्द ही उनका अनुसरण किया गया, प्रारंभिक इंडो–आर्यों द्वारा सिनौली में लगभग 1900 की गाड़ी दफन की नाटकीय नई खोज, दक्षिण एशिया में आर्य भाषी लोगों के आने की एक पूर्व–ऋग्वेदिक लहर और उनके द्वारा हड़प्पा के अंतिम निवासियों से संपर्क बनाने के मेरे प्रस्ताव का समर्थन करती है। इन खोजों को हिंदू महाकाव्यों के साथ भी लोकप्रिय रूप से जोड़ा गया है, क्योंकि गाड़ियाँ महाकाव्य कथाओं में रथों के साथ समानताएं दर्शाती हैं और स्थानीय किंवदंतियाँ बताती हैं कि सिनौली उन पांच गांवों में से एक है, जहाँ कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में युद्ध से बचने के लिए कौरव राजकुमारों के साथ असफल बातचीत की थी।

2.6 सारांश

उक्त पुरास्थलों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश का इतिहास लगभग 4000 ई0पू0 से लेकर पूर्व मध्यकाल तक आबाद था। आलमगीर पुरास्थल उत्तरवर्ती सिंधु सभ्यता के साक्ष्य को प्रस्तुत करता है, वही सिनौली भी सिंधु सभ्यता का महत्वपूर्ण पुरास्थल है, साथ ही सिनौली से शवाधान परंपरा की प्राचीनता एवं महत्व पर प्रकाश पड़ता है। अतरंजीखेड़ा पुरास्थल लोहे की प्राचीनता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है। मृदभांड परंपराओं के विकास क्रम की गाथा भी अतरंजीखेड़ा पुरास्थल है। अंततः कह सकते हैं कि भारत की पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक विरासत को ये तीनों पुरास्थल संजोए हुए है।

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।

10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।

11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

12. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

13. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

14. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

15. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

2.8 बोध प्रश्न

- आलमगीरपुर के पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की विवेचना कीजिए।
- सिनौली से प्राप्त नवीन पुरावशेषों पर प्रकाश डालिए।
- अतरंजीखेड़ा के सांस्कृतिक जमाओं पर एक निबंध लिखिए।
- पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सिंधु सभ्यता से संबंधित पुरास्थलों की विवेचना कीजिए।

इकाई–3 : अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, बिठूर

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अहिच्छत्र

3.3.1 अहिच्छत्र : नामकरण

3.3.2 अहिच्छत्र का पौराणिक विवरण

3.3.3 अहिच्छत्र का इतिहास

3.3.4 पुरातात्त्विक इतिहास

3.4 हस्तिनापुर

3.4.1 विशाल नगर

3.4.2 महाभारत कालीन हस्तिनापुर

3.4.3 पुराण उल्लेख

3.4.4 जैन तीर्थ

3.4.5 त्रिधर्म स्थल

3.4.6 मेला स्थल

3.5 बिठूर

3.5.1 बिठूर के इतिहास के प्रमुख बिंदु

3.5.2 बिठूर से प्राप्त ताम्रनिधि और संबद्ध अवशेष

3.6 सारांश

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.8 बोध प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अहिच्छत्र, हस्तिनापुर और बिठूर इन तीनों पुरास्थलों का पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत में महत्वपूर्ण स्थान है। अहिच्छत्र एक ऐसा पुरास्थल है, जहाँ से सर्वप्रथम चित्रित धूसर मृदभांड परंपरा के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, जिसका संबंध महाभारत काल से है। वहीं हस्तिनापुर का भी संबंध महाभारत काल से है। हस्तिनापुर से प्राप्त साक्ष्य मृदभांण्डीय संस्कृतियों के उत्थान और पतन की कहानी को प्रस्तुत करते हैं। ताम्र निधियों की प्राप्ति के संदर्भ में बिठूर का महत्वपूर्ण स्थान है अर्थात कह सकते हैं कि इन तीनों पुरास्थलों का उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व के साथ–साथ भारत के पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक विकास के दृष्टिकोण से भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका विस्तृत विवेचन निम्नवत हैं–

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- अहिच्छत्र के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे

- चित्रित धूसर मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- हस्तिनापुर के इतिहास को जान सकेंगे।
- हस्तिनापुर के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- बिठूर पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक विरासत को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

3.3 अहिच्छत्र

अहिच्छत्र की पहचान उत्तर प्रदेश के बरेली जनपद के आँवला तहसील में स्थित रामनगर से की गयी है। यह उत्तर वैदिक काल में उत्तरी पाञ्चाल की राजधानी थी। महाभारत और पूर्व बौद्ध काल में यह एक प्रसिद्ध नगर था। यह हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म से सम्बन्धित स्थान रहा है। ऐसा माना जाता है कि यहीं 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ था। उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के आंवला स्टेशन से कोई 10 किमी उत्तर में प्राचीन अहिच्छत्र के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ तीन मील के त्रिकोणाकार घेरे में ईटों की किलेबंदी के भीतर बहुत से ऊँचे–ऊँचे टीले हैं। सबसे ऊँचा टीला 75 फुट का है। कनिंघम ने सबसे पहले यहाँ कुछ खुदाई कराई और बाद में फ्यूरर ने उसका अनुसरण किया। 1940–44 में यहाँ चुने हुए स्थानों की खुदाई हुई, जिसमें भूरी मिट्टी के ठीकरे मिले। महाभारतकाल का तो कोई प्रमाण यहाँ नहीं मिला, पर शुंग, कुषाण और गुप्तकाल की अनेक मुद्राएँ, पत्थर और मिट्टी की मूर्तियाँ मिलीं। बाद के काल के रहने के स्थान, सड़कें और मंदिरों के अवशेष भी मिले हैं।

महाभारत के अनुसार उत्तर पाँचाल की राजधानी अहिच्छत्र को कुरुओं ने वहाँ के राजा से छीनकर द्रोण को दे दिया था। कहा जाता है, द्रोण ने द्रुपद को अपने शिष्यों की सहायता से हराकर प्रतिशोध लिया था और उसका आधा राज्य बाँट लिया था। अहिच्छत्र के पाँचाल जनपद का इतिहास ई.पू. छठी शताब्दी से मिलता है। तब यह 16 महाजनपदों में से एक था। मुद्राओं और लेखों से ज्ञात होता है कि ई.पू. पहली शताब्दी में मित्रवंश के राजाओं ने अहिच्छत्र में राज किया। कुछ विद्वानों ने इस वंश को शुंग राजाओं का वंश सिद्ध करने का प्रयास किया। पर वास्तव में ये प्रांतीय शासक थे, मुद्रांकित नामों के आधार पर बनी, तालिका से इस वंश की लंबी सूची से ऐसा प्रतीत होता है। इसके बाद का इतिहास नहीं मिलता। गुप्तसाम्राज्य में निःसंदेह यह एक भुक्ति था। चीनी चात्री युवान च्वांग ने यहाँ पर 10 बौद्ध विहार और नौ मंदिर देखे थे। 11वीं शताब्दी तक इसका राजनीतिक महत्त्व था।

3.3.1 अहिच्छत्र : नामकरण

अहिच्छत्र के कई नाम मिलते हैं, जैसे – अहिछत्र, अहिक्षेत्र आदि। अहि का अर्थ होता है– नाग, सर्प। क्षेत्र का अर्थ है – भूभाग। इस अर्थ में नागवंशी लोगों के निवास स्थान होने के कारण इसका नाम अहिक्षेत्र पड़ गया।

'वेबर के अनुसार 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लिखित परिवका या परिचका नगरी को महाभारत में वर्णित एकचक्रा सम्भवतः अहिच्छत्र माना है।'

'महाभारत में इसको अहिक्षेत्र और छत्रावती भी कहा गया है।'

जैन अनुश्रुतियों के अनुसार अहिच्छत्र नाम का उद्भव 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ से है। जैनियों के अनुसार नगर में बाढ़ आयी तब ध्यानस्थ पार्श्वनाथ को बचाने के लिये नागवंशी शासक धरानिंद्र ने उनके चारों ओर कुंडली मारकर ऊपर फण का छत्र बना लिया। तब से इस स्थान का नाम अहिच्छत्र पड़ गया।

विविधतीर्थकल्प (जैन ग्रन्थ) में इसका एक नाम 'संख्यावती' भी मिलता है। साथ ही जैन ग्रन्थ तीर्थमालाचौत्यवंदन में इसका एक अन्य नाम 'शिवपुर' मिलता है।

वंदे श्री करणावती शिवपुरे नागद्रहे नाणके।

जैन ग्रन्थों में अहिच्छत्र का एक और नाम 'शिवनगरी' भी प्राप्त होता है।

टॉलमी ने अहिच्छत्र को 'अदिसद्रा' नाम से अभिहित किया है।

3.3.2 अहिच्छत्र का पौराणिक विवरण

महाभारत से ज्ञात होता है कि अर्जुन ने महाराज द्रुपद को परास्त करके गुरुदक्षिणा के रूप में उत्तरी पाञ्चाल को अपने गुरू द्रोणाचार्य को दिया था जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी। महाभारत के आदिपर्व में इसका विवरण इस तरह मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि पहले पाञ्चाल नामक एक ही जनपद था। बाल्यकाल में द्रुपद और द्रोण एक ही गुरूकुल में साथ–साथ पढ़ते थे। द्रुपद ने उस समय अपने मित्र द्रोण को कुछ वचन दिया था। कालान्तर में जब द्रोणाचार्य राजा द्रुपद से अपने पुत्र अश्वत्थामा को दूध पिलाने के लिए काम्पिल्य जाकर गाय माँगी तो राजसभा में उनका अपमान किया गया। इसी अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए द्रोणाचार्य कुरु राज्य में आये और ऐसे शिष्य तैयार किये जो उनको (द्रुपद) पराजित कर सके।

द्रोणाचार्य की इस इच्छा का अर्जुन ने मान रखा। द्रुपद को पराजित करके जब द्रोणाचार्य के समक्ष पाण्डवों ने प्रस्तुत किया तब पाञ्चाल राज्य के उत्तरी भाग को द्रोणाचार्य ने ले लिया और इसकी राजधानी बनी अहिच्छत्र। दक्षिणी पाञ्चाल द्रुपद के पास ही रही। अहिच्छत्र कुरु राज्य के बगल में ही स्थित था। इस तरह आधुनिक रुहेलखंड के बरेली, बदायूँ और फर्रुखाबाद से मिलकर बने पाञ्चाल राज्य के दो भाग थे–

1. उत्तरी पाञ्चाल जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी।
2. दक्षिणी पाञ्चाल जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी। काम्पिल्य की पहचान फर्रुखाबाद के कम्पिल से की गयी है।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि स्वयं द्रोपदी के अन्य नामों में पाञ्चाली भी उनका एक नाम था।

3.3.3 अहिच्छत्र का इतिहास

महाजनपदकाल में पाञ्चाल एक प्रमुख महाजनपद था। मौर्य सम्राट अशोक ने यहाँ पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। उत्खनन से ज्ञान होता है कि लगभग 300 ई०पू० में यहाँ बड़ी जनसंख्या आवासित थी। भवन कच्ची ईंटों के बनाये गये थे।

कुषाणकाल (लगभग प्रथम शताब्दी ई०पू०) में इस स्तूप को पक्की ईंटों की चहरदीवारी से आबद्ध कर दिया गया। इस चहरदीवारी के दीवार की लम्बाई लगभग 3.5 किलोमीटर है। इस काल में भवन निर्माण में पकी हुई ईंटों का प्रयोग देखने को मिलता है। भवनों को पंक्तिबद्ध स्वरूप में बनाया गया था। कुषाणकालीन अवशेष में कटोरे, सुराहीनुमा, हजारे, दावात इत्यादि प्रमुख हैं। यहाँ से मित्र शासकों के सिक्के मिलते हैं। कुषाण, पाञ्चाल और अच्युत नाम से अंकित मुद्राएँ भी मिली हैं। अहिच्छत्र से ताम्र व लौह उपकरण पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। एक गुप्तकालीन मुहर मिली है जिसपर 'अहिच्छत्र भुक्ति' अंकित है। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति की 13वीं पंक्ति में अच्युत नामक जिस शासक का उल्लेख है उसकी पहचान यहीं के राजा से की गयी है। अच्युत नागवंशी शासक थे।

हर्षवर्धन के समय आये चीनी यात्री ह्वेनसांग (युवानच्वांग) ने 640 ई० के लगभग इस स्थान की यात्रा की थी। वह लिखता है कि 'दुर्ग के बाहर नागह्रद नाम का एक सरोवर है, जिसके पास नागराज ने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया था और इस तालाब पर एक छत्र निर्मित करवाया था।' अहिच्छत्र से मिले ध्वंसावशेषों में से सर्वप्रसिद्ध पुरावशेष ढूहा एक स्तूप का है। इस स्तूप की आकृति चक्की के सदृश होने के कारण इसको स्थानीय लोग 'पिसनहारी का छत्र' कहकर बुलाते हैं। लोकानुश्रुति के अनुसार यह स्तूप उसी स्थान पर बना है है जहाँ पर भगवान बुद्ध ने स्थानीय नागवंशी शासकों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों को लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है।

3.3.4 पुरातात्त्विक इतिहास

पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार यह एक लौहयुगीन स्थल है। यहाँ से चित्रित धूसर मृदभाण्ड (Painted Grey Ware – PGW) मिलते हैं। कुषाणकाल से लेकर गुप्तकाल के प्रारम्भिक समय तक यह एक समृद्ध नगर था। गुप्तकाल के परवर्ती समय से इसके पतन की सूचना मिलती है। रामपुर के निकट स्थित अहिच्छत्र का इतिहास पुरातात्विक खोजों से ज्ञात हो जाता है कि इसका इतिहास काफी समृद्धशाली रह चुका है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल की अपनी

सभ्यता, संस्कृति और विशेषता रही है। रामपुर के निकट स्थित अहिच्छत्र लौह युग (1500 ई0पू0 से 800 ई0पू0) का एक प्रसिद्ध शहर था। जिसका उल्लेख महाभारत में पांडवों की राजधानी के रूप में कई बार किया गया है। वर्तमान समय में इसके अवशेष ही शेष रह गए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यहाँ चित्रित धूसर मृदभांड (पेंटेड ग्रे वेयर– (Painted Grey Ware culture- PGW) संस्कृति को अपनाया गया था, जो लौह युग की प्रमुख विशेषताओं में से एक थी। यह लाल और काले मृदभाण्डों के बाद प्रचलन में आयी। पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति गाँव और कस्बों, हाथी दांत पर किए जाने वाले कार्यों और लौह धातु विज्ञान के आगमन से जुड़ी है। अब तक 1100 से अधिक पी.जी.डब्ल्यू. स्थल खोजे जा चुके हैं।

पुरातत्त्वविद् विनय कुमार गुप्ता के ताजा सर्वेक्षण बताते हैं कि मथुरा क्षेत्र में लगभग 375 हेक्टेयर में सबसे बड़ी पी.जी.डब्ल्यू. साइट थी। सबसे बड़े स्थलों में हाल ही में खोदा गया अहिच्छत्र भी शामिल है। अहिच्छत्र 16 महाजनपदों में से एक थी और पांचाल इसकी राजधानी था। यह उन पुरातात्त्विक स्थलों में से एक है, जिसने लगातार विद्वानों और शोधकर्ताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद कनिंघम, चीनी यात्री ह्वेन सांग के मार्ग का पता लगाते हुए, 1862–64 के दौरान यहाँ पहुंचे। इन्होंने इस क्षेत्र का गहनता से अध्ययन किया। अपने विवरण में इन्होंने बताया कि अहिच्छत्र रामनगर गाँव के निकट स्थित एक क्षेत्र है, जो 30 से 35 फीट ऊँची प्राचीर से घिरा हुआ त्रिकोणीय आकृति का था। इसके पश्चिम में 1,462 मीटर लंबा क्षेत्र है तथा पूर्व में यह 2,000 से अधिक मीटर तक फैला हुआ है।

अहिच्छत्र के रामगंगा और गंगा के बीच स्थित होने के बावजूद भी यहाँ पानी का कोई बारहमासी स्रोत नहीं था। यह भारत में सबसे बड़ा (क्षेत्रवार) और संभवतः सबसे लंबे समय (2000 ई0पू0 से 1100 ईस्वी) तक जीवित रहने वाला स्थल है। यहाँ की सबसे पहली ज्ञात संस्कृति गेरू रंग के बर्तनों (Ochre Colour Pottery) की है। यहाँ के लोग पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति से प्रभावित थे। हालांकि अधिकांश पी.जी.डब्ल्यू. क्षेत्र छोटे खेती वाले गाँव थे। इस संस्कृति में चावल, गेहूँ, बाजरा और जौ आदि की खेती की जाती थी तथा भेड़, सूअरों और घोड़ों को पालतू पशु बनाया गया था। पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति गंगा के मैदान और भारतीय उपमहाद्वीप की घग्गर–हकरा घाटी तक फैली हुयी थी, जो संभवतः मध्य और उत्तर वैदिक काल से मेल खाती है। पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति के लोग कला और शिल्प के क्षेत्र में पारंगत थे। उनके द्वारा खूबसूरत आभूषण (टेराकोटा (Terracottaa), पत्थर, मिट्टी और कांच से निर्मित), मानव और जानवरों की मूर्तियाँ (टेराकोटा से निर्मित) तथा सजी हुई किनारियों और ज्यामीतिय आकृतियों वाली टेराकोटा के चक्र बनाए गए थे, जो संभवतः धार्मिक उद्देश्यों से संदर्भित रहे होंगे। अपने काल के अंतिम चरण में, पी.जी.डब्ल्यू. की कई बस्तियाँ उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड (Northern Black Polished Ware -NBPW) काल के बड़े नगरों और शहरों में विकसित हुईं।

3.4 हस्तिनापुर

महाभारत काल में हस्तिनापुर का उल्लेख एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में था। महाभारत में हस्तिनापुर को कुरु राजवंश के राजाओं की राजधानी बताया गया है। इसमें उल्लिखित है कि बाढ़ के बाद इसे कौशांबी में स्थानांतरित कर दिया गया था। छठी शताब्दी ई0पू0 में कुरु महाजनपद की यह नगर राजधानी थी। जैन परंपरा के अनुसार हस्तिनापुर जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म स्थल था और महावीर इस स्थान पर बहुधा जाया करते थे। हस्तिनापुर ऊपरी गंगा घाटी में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले की मवाना तहसील में गंगा नदी के किनारे पर स्थित है। इस पुरास्थल के उत्खनन से पहले यह परिकल्पना की गयी थी कि हड़प्पा सभ्यता और ऐतिहासिक काल के मध्य विकसित संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त होंगे। दूसरी परिकल्पना महाभारत महाकाव्य में इसका जिक्र था तो इससे संबंधित पुरातत्विक साक्ष्य की प्राप्ति की भी थी। इस पुरास्थल का सन् 1950–52 ईस्वी के मध्य प्रो0बी0बी0 लाल द्वारा उत्खनन कार्य करवाया गया। उत्खनन के परिणामस्वरूप यहाँ से पांच सांस्कृतिक कालों के साक्ष्य प्राप्त हुए, जिनका विवरण निम्नवत् हैं–

हस्तिनापुर का प्रथम काल गैरिक मृद्भांड संस्कृति से संबंधित है, जिसे मोटे तौर पर 1200 बी0सी0 के मध्य

का माना जाता है। इस चरण से गैरिक मृद्भांड और ताम्र निधियों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। यहाँ का दूसरा चरण चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति का है, जिसको 1100 से 600 बी0सी0के मध्य का माना जाता है। इस चरण से चित्रित धूसर मृदभांड के साथ–साथ कृष्ण–लोहित मृदभांड, कृष्ण–लेपित मृदभांड और लाल रंग के मृदभांड के साथ तांबे के उपकरण तथा बैल और घोड़े की मृण्मूर्तियाँ और आयरन स्लैग की प्राप्ति हुई है।

महाभारतकालीन महानगरों की श्रेणी में हस्तिनापुर भी आता था। हस्तिनापुर में युधिष्ठिर जुए में द्रौपदी सहित अपना सब कुछ हार गए थे। पांडवों की ओर से शांतिदूत बनकर श्रीकृष्ण यहीं धृतराष्ट्र की सभा में आए थे। अपने पिता शांतनु की सत्यवती से विवाह करने की इच्छा पूरी करने के लिए भीष्म पितामह ने अपना उत्तराधिकार छोड़ने और आजीवन अविवाहित रहने का प्रण यहीं पर किया था। द्रौपदी से विवाह के बाद कुछ समय के लिए पांडवों ने दिल्ली के निकट इंद्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया था, किंतु महाभारत युद्ध के बाद उन्होंने हस्तिनापुर को ही राजधानी रखा।

हस्तिनापुर उत्तर प्रदेश में मेरठ के निकट स्थित महाराज हस्ती का बसाया हुआ एक प्राचीन नगर, जो कौरवों और पांडवों की राजधानी थी। इसका महाभारत में वर्णित अनेक घटनाओं से संबंध है। महाभारत से जुड़ी सारी घटनाएँ हस्तिनापुर में ही हुई थीं। इसके अलावा हस्तिनापुर को चक्रवर्ती सम्राट भरत की भी राजधानी माना जाता है। यहाँ स्थित 'पांडेश्वर महादेव मंदिर' की काफी मान्यता है। कहा जाता है कि यह वही मंदिर है, जहाँ पांडवों की रानी द्रौपदी पूजा के लिए जाया करती थी। पौराणिक काल में हस्तिनापुर के राजा का नाम अधिसीम कृष्ण था।

मेरठ से 22 मील उत्तर–पूर्व में गंगा की प्राचीन धारा के किनारे हस्तिनापुर बसा हुआ है। हस्तिनापुर महाभारत के समय में कौरवों की वैभवशाली राजधानी के रूप में भारत भर में प्रसिद्ध था। प्राचीन नगर गंगा तट पर स्थित था, किन्तु अब नदी यहाँ से कई मील दूर हट गई है। गंगा की पुरानी धारा जिसे 'बूढ़ी गंगा' कहते हैं, यहाँ के प्राचीन टीलों के समीप बहती है। पौराणिक किंवदंती के अनुसार नगर की स्थापना पुरुवंशी वृहत्क्षत्र के पुत्र हस्तिन् ने की थी और उसी के नाम पर यह नगर हस्तिनापुर कहलाया। हस्तिन् के पश्चात् अजामीढ़, दक्ष, संवरण और कुरु क्रमानुसार हस्तिनापुर में राज्य करते रहे। कुरु के वंश में ही शांतनु और उनके पौत्र पाण्डु तथा धृतराष्ट्र हुए, जिनके पुत्र पाण्डव और कौरव कहलाए।

3.4.1 विशाल नगर

महाभारत के युद्ध के समय हस्तिनापुर बड़ा विशाल नगर था। महाभारत आदिपर्व में इसका वर्णन इस प्रकार है–

'नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा।
पांडवानागतांञ्छ्रुत्वा त्वा नागरास्तु कुतूहालात,
मंडयाँचकिरेतत्र नगरं नागसाह्वयम।
मुक्तपुष्पावकीर्ण तज्जलसिक्तं तु सर्वशः,
घूषितं दिव्यघूपेन मंडनैश्चापि संवृतम्।
पताकोछ्रितमाल्यमं च पुरमप्रतिमंबभौ,
शंबभेरीनिनादैश्चनागवादित्रनिःस्वनैः।
कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाभवत,
तत्र ते पुरुषव्याघ्राः दुःखशोकविनाशनाः।

महाभारत में इस नगर का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अनुसार विभिन्न शस्त्रों द्वारा सुरक्षित होने के कारण इस पुर के भीतर शत्रुओं का प्रवेश दुष्कर था। नगर के परकोटे में बने दरवाजे ऊँचे थे। नगर का भीतरी भाग राजमार्गों द्वारा विभक्त था। सड़कों के दोनों किनारों पर महल और बाजार सुशोभित थे। राजमहल नगर के बीच में स्थित था।

इसमें अनेक सरोवर और उद्यान थे। नागरिक धर्मरत, कर्तव्यपरायण, यज्ञादि में श्रद्धा रखने वाले, वर्णाश्रम–व्यवस्था के पोषक और धन–धान्य से सम्पन्न थे। सूत–मागध और बन्दी अपने–अपने कर्म में निरत थे। इनके द्वारा नगर की शोभा इतनी बढ़ गई थी कि वह इन्द्रलोक के समान सुन्दर लगता था।

3.4.2 महाभारत कालीन हस्तिनापुर

कहा जाता है कि महाभारत के समय हस्तिनापुर राज्य की उत्तरी सीमा 'शुक्करताल' (मुजफ्फरनगर जिला), दक्षिणी सीमा 'पुष्पवटी', और पश्चिमी सीमा 'वारणावत, तक थी। पूर्व की ओर गंगा प्रवाहित होती थी। गढ़मुक्तेश्वर शायद यहाँ का एक उपनगर था और मेरठ या 'मयराष्ट्र' भी इसकी परिसीमा के भीतर स्थित था। मेरठ से 15 मील उत्तर–पूर्व में स्थित 'मवाना' (मुहाना) नामक ग्राम को हस्तिनापुर का प्रमुख द्वार कहा जाता है। महाभारत के आदिपर्व में हस्तिनापुर के वर्धमान नामक पुरद्वार का उल्लेख है। पांडु की मृत्यु के पश्चात् शतश्रंग से हस्तिनापुर आते समय कुंती अपने पुत्रों सहित इसी द्वार से राजधानी में प्रविष्ट हुई थी–

'सात्वदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ताः कुरुजांगलम् वर्धमानपुरद्वारमाससाद यश–स्विनी।'

3.4.3 पुराण उल्लेख

पुराणों में कहा गया है कि जब गंगा की बाढ़ के कारण यह पुर विनष्ट हो गया, उस समय पाण्डव हस्तिनापुर को छोड़कर कौशाम्बी चले आये थे। यह घटना झूठी नहीं मानी जा सकती। हस्तिनापुर और कौशाम्बी में जो खुदाइयाँ हाल में हुई हैं, उनसे इसकी पुष्टि हो चुकी है। अब विद्वान इस बात को मानने लगे हैं कि गंगा की बाढ़ ने हस्तिनापुर को सचमुच ही किसी समय बहा दिया था। कौशाम्बी के कुछ प्राचीन बर्तन बनावट में हस्तिनापुर के बर्तनों के तुल्य हैं। इससे प्रमाणित होता है कि गंगा की बाढ़ के कारण पाण्डव हस्तिनापुर को छोड़कर कौशाम्बी में बस गये थे। हस्तिनापुर की आधुनिक खुदाइयों ने वहाँ की प्राचीन कला और संस्कृति पर प्रकाश डाला है। वहाँ के नागरिक अपने बर्तनों पर भूरे रंग की पालिश चढ़ाते थे। यह प्रथा मथुरा, इन्द्रप्रस्थ तथा महाभारतकालीन अन्य नगरों में भी प्रचलित थी। इससे सिद्ध होता है कि उनका सामाजिक जीवन एकाकी नहीं था। वे एक–दूसरे से कोई बहुत दूर भी नहीं थे। जलमार्ग से एक–दूसरे से वे जुड़े हुये थे, अतः इन नगरों के निवासियों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध कोई अनहोनी बात नहीं मानी जा सकती।

'विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि बलराम ने कौरवों पर क्रोध करके उनके नगर हस्तिनापुर को अपने हल की नोंक से खींच कर गंगा में गिराना चाहा था, किंतु बाद में उन्हें क्षमा कर दिया किन्तु उसके पश्चात् हस्तिनापुर गंगा की ओर कुछ झुका हुआ–सा प्रतीत होने लगा था–

'बलदेवस्ततोगत्वा नगरं नागसाह्वयम् बाह्योपवनमध्येऽभून्नविवेशतत्पुरम्।

'अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत्गुरं द्विज, एष प्रभावो रामस्य बलशौयोलक्षणः।'

इससे जान पड़ता है कि हस्तिनापुर को गंगा की धारा से भय कौरवों के समय में ही उत्पन्न हो गया था। परीक्षित के वंशज 'निचक्षु' या 'निचक्नु' के समय में तो वास्तव में ही गंगा ने हस्तिनापुर को बहा दिया और उसे इस नगर को छोड़कर वत्स देश की प्रसिद्ध नगरी कौशाम्बी में जाकर बसना पड़ा था–

'अधिसीमकृष्णान्निचक्नुः यो गंगया पहते हस्तिनापुरे कौशम्बयाँ निवत्स्यति।

पुरातात्विक खोजों से भी उपरोक्त तथ्य की पुष्टि होती है। उत्खनन से ज्ञात होता है कि हस्तिनापुर की सर्वप्राचीन बस्ती 1000 ई. पूर्व से पहले की अवश्य थी और यह कई शतियों तक स्थित रही। दूसरी बस्ती 900 ई. पू. के लगभग बसाई गई थी, जो 300 ई. पू. के लगभग तक रही। तीसरी बस्ती 200 ई. पू. से लगभग 200 ई. तक विद्यमान थी और अन्तिम 11वीं से 14वीं शती तक। इस प्रकार हस्तिनापुर का इतिहास कई बार बना और बिगड़ा।

परवर्ती काल में जैन धर्म के तीर्थ के रूप में इस नगर की ख्याति बनी रही। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस नगर के 'हस्तिनापुर', 'गजपुर', 'नागपुर', 'नागसाह्वय', 'हस्तिग्राम', 'आसन्दीवत' और 'ब्रह्मस्थल' आदि नाम मिलते हैं। कहा जाता है कि हाथियों के बहुतायत के कारण इस प्रदेश का प्रथम नाम 'गजपुर' था, बाद में राजा हस्तिन के नाम पर यह हस्तिनापुर कहलाया और महाभारत के युद्ध के पश्चात् यह नाग जाति का प्रमुख होने से 'नागपुर' या 'नागसाह्वय' कहलाया। ये सब पर्यायवाची नाम हैं। 'आसंदीवत का बौद्ध साहित्य में उल्लेख है। संभव है 'विष्णुपुराण' के उर्पयुक्त

उल्लेख के अनुसार गंगा की ओर झुके होने के कारण ही यह नाम पड़ा हो। इस उल्लेख में इसे 'कुरुद्व', की राजधानी बताया गया है। 'वसुदेव हिंडि' नामक ग्रंथ में 'ब्रह्मस्थल' नाम भी मिलता है। यह जैन ग्रंथ है।

कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतलम' में दुष्यंत की राजधानी हस्तिनापुर का उल्लेख किया है। दुष्यंत से 'गंधर्व विवाह' होने के पश्चात् शकुंतला ऋषि कुमारों के साथ कण्वाश्रम से दुष्यंत की राजधानी हस्तिनापुर गई थी–

'अनुसूये त्वरस्व, स्वरस्व, एतेखलु हस्तिनपुरगामिनः ऋषयः शब्दाय्यान्ते।

हस्तिनापुर के पूर्व की ओर गंगा के पार तत्कालीन समय में विस्तृत घना वन प्रदेश था, जहाँ दुष्यंत आखेट के लिए गया था और जहाँ मालिनी के तट पर कण्वाश्रम में उसकी भेंट शकुंतला से हुई थी। यह वन गढ़वाल की तराई क्षेत्र में स्थित था तथा इसका विस्तार बिजनौर तथा गढ़वाल के इलाके में था। वर्तमान हस्तिनापुर नामक ग्राम में, जो इसी नाम से आज तक प्रसिद्ध है, प्राचीन नगर के खंडहर, ऊंचे–नीचे टीलों की श्रृंखलाओं के रूप में दूर–दूर तक फैले हैं। मुख्य टीला 'बिदुर का टीला' या 'उलटखेड़ा' कहलाता है। इसकी खुदाई से अनेक प्राचीन अवशेष प्रकाश में आये हैं।

3.4.4 जैन तीर्थ

जैन समुदाय के बीच हस्तिनापुर को एक प्रमुख तीर्थ माना जाता है। हस्तिनापुर जैन धर्मावलंबियों का भी प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ जैन धर्म के कई तीर्थंकरों का जन्म हुआ था। यही वजह है कि यहाँ काफी संख्या में जैन मंदिर मौजूद हैं। यहीं पर राजा श्रेयाँस ने आदितीर्थकर ऋषभदेव को गन्ने के रस का दान दिया था। इसलिए इसको 'दानतीर्थ' कहते हैं। इसका संबंध शांतिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ नामक तीर्थकरों से भी है। यहाँ भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ के चार–चार कल्याणक हुए हैं। यहाँ अनेक जैन धर्मशालाएं और मंदिर हैं। खुदाई में यहाँ अनेक प्राचीन खंडहर मिले हैं। इनमें करीब 200 साल पुराना बड़ा मंदिर, जंबूद्वीप, कैलाश पर्वत, अष्टापद जी, कमल मंदिर और ध्यान मंदिर मुख्य हैं। प्राचीन बड़ा मंदिर में हस्तिनापुर की नहर की खुदाई के दौरान प्राप्त हुई जिन प्रतिमाओं को देखा जा सकता है। इन मंदिरों को काफी सुंदर और कलात्मक तरीकों से बनाया गया है।

जैन ग्रंथ 'विविधतीर्थकल्प' के अनुसार महाराज ऋषभदेव ने अपने सम्बंधी कुरु को कुरूक्षेत्र का राज्य दे दिया था। इन्हीं कुरु के पुत्र हस्ति ने हस्तिनापुर को भागीरथी के किनारे बसाया था। हस्तिनापुर में शान्ति, कुंधु और अरनाध तीर्थंकरों का जन्म हुआ था। ये क्रमशः 16वें, 17वें और 18वें तीर्थंकर थे। 5वें, 6वें और 7वें तीर्थंकरों ने यहाँ कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। हस्तिनापुर नरेश बाहुबली के पौत्र श्रेयाँश के निवास स्थान पर ऋषभदेव ने प्रथम उपवास का पारण किया था। विप्रग कुमार नामक जैन साधु जिन्होंने नमुचि नामक दैत्य को वश में किया था, हस्तिनापुर ही के निवासी थे। इनके अतिरिक्त सनत्कुमार, महापद्म, सुभूम और परशुराम का जन्म भी हस्तिनापुर में हुआ था। यहाँ चार चैत्यों का निर्माण किया गया था।

3.4.5 त्रिधर्म स्थल

हस्तिनापुर पहला ऐसा तीर्थ स्थान है, जो हिन्दू और जैनों के साथ सिक्खों का भी पवित्र तीर्थ है। हस्तिनापुर के पास ही स्थित 'सैफपुर' सिक्ख धर्म के पंच प्यारों में से एक भाई धर्मदास की जन्मस्थली है। देश भर के श्रद्धालु यहाँ स्थित पवित्र सरोवर में डुबकी लगाने के लिए आते रहते हैं।

3.4.6 मेला स्थल

हस्तिनापुर में साल में कई छोटे–बड़े मेले लगते हैं। इनमें अक्षय तृतीया, होली और 2 अक्टूबर का मेला प्रमुख है। अक्षय तृतीया को देश भर से श्रद्धालु यहाँ भगवान को गन्ने के रस का आहार कराने के लिए आते हैं। यदि किसी को होली के रंग पसंद नहीं आते, तो हस्तिनापुर उनके लिए इनसे बचने की एक बेहतरीन जगह साबित हो सकता है। दुल्हैंडी वाले दिन यहाँ लगने वाले मेले में देश भर से होली नहीं खेलने वाले लोग आते हैं। साथ ही 2 अक्टूबर को लगने वाले मेले में भी काफी भीड़ उमड़ती है।

3.5 बिठूर (26°36′46″ उत्तरी अक्षांश 80°16′19″ पूर्वी देशान्तर),

ताम्र निधि संस्कृति (Copper Hoards Culture) की जानकारी तब मिली, जब 1822 ई० में बिठूर से ताँबे के

काँटेदार बरछे (Copper Harpoon) प्राप्त हुई। अर्थात बिठूर ताम्रनिधि स्थलों में से एक है, जहॉ से सर्वप्रथम ताम्र वस्तुओं की प्राप्ति हुई। बिठूर पुरास्थल, भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर जिले में गंगा नदी के किनारे स्थित एक नगर है। कुछ लोग लव कुश की जन्मस्थली मऊ (तमसा के किनारे) जिले के वनदेवी धाम को नही बल्कि बिठूर को मानते है। बिठूर पुरास्थल का उत्खनन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India) द्वारा किया गया था। हालांकि, उत्खननकर्ता का नाम विशिष्ट रूप से ज्ञात नहीं है, लेकिन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने इस क्षेत्र में पुरातात्विक खुदाई की है।

3.5.1 बिठूर के इतिहास के प्रमुख बिंदु

बिठूर कानपुर के पश्चिमोत्तर दिशा में 27 किमी दूर स्थित एक नगर व नगरपंचायत है। मेरठ के अलावा बिठूर में भी सन 1857 में भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम का श्रीगणेश हुआ था। यह शहर कन्नौज रोड पर स्थित है। बिठूर गंगा–किनारे बसा हुआ एक ऐसा सोया हुआ सा छोटा सा कस्बा है, जो किसी जमाने में सत्ता का केंद्र हुआ करता था। यहाँ कई पुरानी ऐतिहासिक इमारतें, बारादरियाँ और मंदिर जीर्ण–शीर्ण हालत में हैं। ये नानाराव और तात्या टोपे जैसे लोगों की धरती रही है। टोपे परिवार की एक शाखा आज भी बैरकपुर में है और यहीं झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई का बचपन बीता।उसी दौर में कानपुर से अपनी जान बचाकर भाग रहे अंग्रेजों को सतीचौरा घाट पर मौत के घाट उतार दिया गया। बाद में उसके बदले में अंग्रेजों ने गाँव के गाँव तबाह कर दिए और एक–एक पेड़ से लटका कर बीस–बीस लोगों को फाँसी दे दी गई। जीत के बाद अँग्रेजों ने बिठूर में नानाराव पेशवा के महल को तो नष्ट कर ही दिया था, जब ताँत्या टोपे के रिश्तेदारों को 1860 में ग्वालियर जेल से रिहा किया गया तो उन्होंने बिठूर लौटकर पाया कि उनका घर भी जला दिया गया है।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के पूर्व यह तपस्या की थी। उसी को स्मरण दिलाता यहाँ का ब्रह्मावर्त घाट है। ये भी वर्णन मिलता है कि यहीं पर ध्रुव ने भगवान विष्णु की तपस्या की थी। महर्षि वाल्मीकि की तपोभूमि बिठूर को प्राचीन काल में ब्रह्मावर्त नाम से जाना जाता था। शहरी शोर शराबे से उकता चुके लोगों को कुछ समय बिठूर में गुजारना काफी रास आता है। बिठूर में ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व के अनेक पर्यटन स्थल देखे जा सकते हैं। गंगा किनारे बसे इस नगर का उल्लेख प्राचीन भारत के इतिहास में मिलता है। अनेक कथाएं और किवदंतियाँ यहाँ से जुड़ी हुईं हैं। इसी स्थान पर भगवान राम ने सीता का त्याग किया था और यहीं संत वाल्मीकि ने तपस्या करने के बाद पौराणिक ग्रंथ रामायण की रचना की थी। 1857 के संग्राम के केन्द्र के रूप में भी बिठूर को जाना जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगा नदी के किनार लगने वाला कार्तिक अथवा कतिकी मेला पूरे भारतवर्ष के लोगों का ध्यान खींचता है। मान्यता है कि ध्रुवटीला राजा उत्तानपाद के राजकाल के दौरान का है। यहाँ ही ध्रुव का जन्म हुआ।

3.5.2 बिठूर से प्राप्त ताम्रनिधि और संबद्ध अवशेष

1822 ईस्वी में पुरातात्त्विक साक्ष्य के रूप में यहाँ से ताम्र उपकरण प्राप्त हुए थे। यहाँ से मिले हथियारों में तांबे का बड़े आकार का फाल या कुल्हाड़ी, खड्ग, कांटेदार बरछी, भाला इत्यादि शामिल है। तांबे के गोलाकार छल्ला और पत्थरकाट बनी तांबें की आकृतियाँ भी यहाँ से मिल चुकी है। ये सभी ऐतिहासिक धरोहरें कोलकाता, लखनऊ और प्रयाग के संग्रहालय में संरक्षित हैं। इन हथियारों का काल लगभग 2500–1200 वर्ष ईसवी पूर्व का माना जाता है। विद्वानों का मत है कि यह स्थान उससे भी पूर्व का है। पुरातत्त्व विभाग द्वारा ध्रुव टीला को संरक्षित कर लिया गया है।

अब तक लगभग एक हजार ताँबे की वस्तुएँ भारत के विभिन्न भागों में लगभग 90 पुरास्थलों से प्राप्त की जा चुकी हैं। चूँकि ये ताँबे की वस्तुएँ अधिकतर एक साथ कई वस्तुओं के समूह यानी संचय या निधि के रूप में पायी गयी हैं, इसलिए उन्हें ताम्र संचय संस्कृति या ताम्र निधि संस्कृति कहा जाता है। सबसे बड़ा संचय गुंगेरिया (बालाघाट जनपद, मध्य प्रदेश) से प्राप्त हुआ है, जिसमें ताँबे की 424 वस्तुएँ और चाँदी की 102 पतली चादरें हैं। ताम्रनिधि की पहचान की शुरूआत सर्वप्रथम बिठूर से 1822 में हुई तब से लेकर आज तक बहुत प्रकार की ताम्रनिधियाँ प्राप्त हों चुकी है, कुछ का विवरण निम्नवत् है–

- ताँबे की कुल्हाड़ी – Celt
- मत्स्य भाला – Harpoon
- मानव आकृतियाँ – Anthropomorphs
- ताँबे की अँगूठियाँ या वलय – Copper Rings
- ताँबे की तलवारें – Copper Sword
- काँटेदार बरछे – Antennae Swords

उत्तर प्रदेश के इटावा के पास सैफई से ताँबे की वस्तुओं के साथ–साथ गेरुवर्णी या गैरिक मृद्भाण्ड (Ochre Coloured Pottery – OCP) पाये गये हैं। इसीलिए ताम्रनिधि संस्कृति का सम्बन्ध गैरिक मृद्भाण्ड से माना गया है।

3.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि तीनो पुरास्थलों अहिच्छत्र, हस्तिनापुर और बिठूर मृदभांड परंपराओं एवं इसकी विशेषताओं को संरक्षित करने के साथ–साथ धातु की वस्तुओं के प्रयोग एवं उनकी धात्विकी के इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। महाभारत तथा रामायण में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि हेतु प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अहिछत्र और हस्तिनापुर से मृदभांड एवं अन्य संस्कृतियों के विकास का पूरा खाका प्राप्त होता है। वही बिठूर गैरिक मृद्भांड संस्कृति के साथ सम्बद्ध ताम्र निधियों के पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक संदर्भ को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि यह तीनों पुरास्थल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के साथ–साथ ऊपरी गंगा मैदान की ऐतिहासिक विरासत को समेटे हुए है।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
13. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

14. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

15. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

3.8 बोध प्रश्न

- पश्चिमी उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण पुरास्थल अहिच्छत्र के सांस्कृतिक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए।
- हस्तिनापुर पुरास्थल के आवासीय जमाओं पर विस्तृत टिप्पणी लिखिये।
- बिठूर के बारे में आप क्या जानते हैं, लिखिए।
- हस्तिनापुर पुरास्थल, महाभारत से संबंधित है, स्पष्ट कीजिए

इकाई – 4 : मथुरा, काम्पिल्य, जखेड़ा

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मथुरा

- 4.3.1 नामकरण
- 4.3.2 मथुरा का भौतिक स्वरूप
- 4.3.3 कंकाली टीला
- 4.3.4 मथुरा के प्रसिद्ध मंदिर एवं मूर्तियाँ
- 4.3.5 महाजनपद काल
- 4.3.6 नंद–मौर्य एवं शुंग काल
- 4.3.7 शक–क्षत्रपों का अभ्युदय
- 4.3.8 कुषाण काल
- 4.3.9 कुषाणकालीन मूर्तियाँ
- 4.3.10 बुद्ध के जीवन से संबंधित दृश्य
- 4.3.11 मथुरा नाग वंशी राजाओं का शासन
- 4.3.12 गुप्त–साम्राज्य
- 4.3.13 मथुरा कान्यकुब्ज साम्राज्य का अंग
- 4.3.14 इस्लामिक काल
- 4.3.15 मूर्तियाँ प्रतिरोध का माध्यम

4.4 काम्पिल्य

- 4.4.1 पुरातात्त्विक सन्दर्भ
- 4.4.2 नामकरण एवं स्थान
- 4.4.3 भौगोलिक विवरण और इतिहास

4.5 जखेड़ा

- 4.5.1 प्रथम काल– गैरिक मृदभाण्ड संस्कृति
- 4.5.2 द्वितीय काल – कृष्ण लोहित पात्र परम्परा
- 4.5.3 तृतीय काल–'कृष्ण–लोहित पात्र और चित्रित धूसर पात्र का संक्रमण काल
- 4.5.4 तृतीय काल(ब)
- 4.5.5 अन्य पुरावशेष
- 4.5.6 लोहे की वस्तुएँ
- 4.5.7 तांबे की वस्तुएँ
- 4.5.8 सोने की वस्तुएँ
- 4.5.9 हड्डी की वस्तुएँ
- 4.5.10 अर्ध–कीमती पत्थरों के अवशेष
- 4.5.11 टेराकोटा की वस्तुएँ
- 4.5.12 चतुर्थ काल– उत्तरी काली मार्जित पात्र परम्परा

4.6 सारांश
4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.8 बोध प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मथुरा कांपिल्य और जखेड़ा ये तीनों पुरास्थल उत्तर प्रदेश के पुरातात्त्विक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास को प्रस्तुत करने के साथ–साथ महाजनपद कालीन राजनैतिक इतिहास को भी प्रस्तुत करते हैं। मथुरा जहाँ धार्मिक नगरी के रूप में प्रसिद्ध है, वही कांपिल्य पांचाल महाजनपद से संबद्ध महत्वपूर्ण धार्मिक एवं राजनीतिक केंद्र था। जखेड़ा पुरास्थल का मृदा और मृदा मूर्तन इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जब मिट्टी की वस्तुओं का प्रयोग करना शुरू करता है तो सर्वप्रथम अपनी आवश्यकतानुसार मिट्टी के बर्तनों को बनाता है। इन मृदभांडों के ऐतिहासिक विकास का क्रम जखेड़ा से प्राप्त होता है। मथुरा कल और आज दोनों ही कालखंडों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्तमान की राजनीति का मथुरा महत्वपूर्ण केंद्र है। महाभारतकालीन संदर्भ को देखा जाए तो तब भी मथुरा श्रीकृष्ण से जुड़ने की वजह से महत्वपूर्ण था। इन तीनों स्थलों पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्ता का विवेचन निम्नवत् प्रस्तुत है–

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- मथुरा में स्थित प्रमुख धार्मिक स्थानों से परिचित हो सकेंगे
- मथुरा के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विकास को जान सकेंगे
- कांपिल्य के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक संदर्भ को जान सकेंगे
- कांपिल्य के राजनीतिक संदर्भ से परिचित हो सकेंगे
- जखेड़ा की पुरातात्त्विक विरासत को जान सकेंगे।
- धार्मिक, प्रशासनिक और पुरातात्विक स्थलों की पहचान के लक्षणों को जान सकेंगे और नए स्थानों की तलाश करेंगे।

4.3 मथुरा (27^0 29′ 33′′ उत्तरी अक्षांश 77^{0}40′′ 25′′ पूर्वी देशान्तर)

मथुरा उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण पुरास्थल एवं नगर है। महाकाव्यों में इसका उल्लेख अधिकता में मिलता है। मथुरा को मूर्ति कला के इतिहास के संदर्भ में भी ख्याति प्राप्त है। कुषाण काल में विकसित हुई दो मूर्ति कला शैलियों में मथुरा कला शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यह भारतीय विषय और स्थानीय कलाकारों द्वारा विकसित शैली है। यह ऐतिहासिक नगर भारत के उन नगरों की कोटी में आता है, जिनका योगदान इस देश के सांस्कृतिक विकास में सदा से ही उल्लेखनीय रहा है। पुराण में भारत की सात मोक्षदायिका नगरियों में इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। महाभारत एवं रामायण के अनुसार यहाँ मधुवन नामक एक सघन वन विद्यमान था। इसमें मधु नामक एक राक्षस निवास करता था, जिसका संहार कर शत्रुघ्न ने इस नगर का निर्माण किया था। इस साहित्यिक उल्लेख में एक विशेष ऐतिहासिक तथ्य प्रतिबिंबित है। यह उस अवस्था की ओर संकेत करता है, जब गंगा घाटी में जंगलों को काटकर यमुना और गंगा नदियों के किनारे नगरों की स्थापना की प्रक्रिया लोहे के प्रयोग के कारण प्रारंभ हुई।

इंद्रप्रस्थ, मथुरा, हस्तिनापुर, अयोध्या, कांपिल्य एवं कौशाम्बी इत्यादि गंगा और यमुना के तट पर स्थित नगर थे। महाभारत के अनुसार खाण्डवप्रस्थ नामक वन को काटकर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ का निर्माण किया था। इसमें मय नामक एक राक्षस रहता था, जो शिल्प विद्या का मर्मज्ञ था। पांडवों ने वास्तुविद्या के क्षेत्र में उसकी उपलब्धि को देखकर उसका संहार नहीं किया और उसके द्वारा युधिष्ठिर प्रसाद का निर्माण कराया। महाभारत की यह परंपरा अभिव्यंजित करती है कि इंद्रप्रस्थ, मथुरा एवं हस्तिनापुर आदि गंगा घाटी के प्रथम नगरों के निर्माताओं ने असुर परंपरा के दास एवं दस्यु के वास्तु ज्ञान का लाभ उठाया, जो सिंधु सभ्यता काल में ही नगर निर्माण का परिचय दे चुके थे। इससे यह इंगित होता है कि मथुरा नामक नगर की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई होगी।

4.3.1 नामकरण

मथुरा के नामकरण के पीछे ये कहा जाता है कि मधुबन को काटकर मथुरा को बसाया गया था, इसीलिए इसका नाम मथुरा अथवा मधुपुरी पड़ा। महाभारत, रामायण, अगुंतरनिकाय एवं रघुवंश ने इस नगर का नाम मथुरा ही मिलता है। इस पुरास्थल का इतिहास कृष्ण के जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'अंधक वृष्णि' का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने वृष्णि संघ का उल्लेख किया है। महाभारत में वृष्णि गण का संदर्भ प्राप्त है। वृष्णि वंशी वासुदेव इसके प्रधान थे। इस गण के सदस्य यादव भोज एवं बंधक वृष्णि थे, जो इनके अधीन थे। इस संघ के भेद एवं विनाश को रोकने के लिए कृष्ण को संघ मुख्य चुना गया था। महाभारत के ही साक्ष्य के अनुसार अंधक एवं वृष्णि की यदुवंशी उत्पत्ति प्रमाणित होती है। 11 वीं शताब्दी की विदेशी पर्यटक अलबरूनी ने भी स्वीकार किया है कि मथुरा की विशेष प्रसिद्धि का कारण वासुदेव कृष्ण के हाथ इस नगर का संबंध था। इससे पहले मेगस्थनीज ने मथुरा के **शूरसेन** द्वारा हेराक्लीज की पूजा का उल्लेख किया है। यूनानी लेखक के विवरण में यह शब्द वासुदेव कृष्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संदर्भ से स्पष्ट है कि देवता के रूप में कृष्ण की प्रतिष्ठा चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 में स्थापित हो चुकी थी। यहाँ भागवत धर्म के विशेष विकास को परिलक्षित करते हुए, टालमी ने इसे देव नगर की संज्ञा दी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मथुरा की प्रसिद्धि और उस की प्राचीनता कृष्ण के नाम से जानी जाती है।

4.3.2 मथुरा का भौतिक स्वरूप

मथुरा के चारों ओर चार शिव मंदिर हैं– पूर्व में पिपलेश्वर का, दक्षिण में रंगेश्वर का और उत्तर में गोकर्णेश्वर का और पश्चिम में भूतेश्वर महादेव का मन्दिर है। चारों दिशाओं में स्थित होने के कारण भगवान शिव को मथुरा का कोतवाल कहते हैं। मथुरा को आदि वाराह भूतेश्वर क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। वाराह जी की गली में नीलवारह और श्वेतवाराह के सुंदर विशाल मंदिर हैं। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने श्री केशवदेवजी की मूर्ति स्थापित की थी पर औरंगजेब के काल में वह रजधाम में धरा दी गई व औरंगजेब ने मंदिर को तोड़ डाला और उसके स्थान पर मस्जिद खड़ी कर दी। बाद में उस मस्जिद के पीछे नया केशवदेवजी का मंदिर बन गया है। प्राचीन केशव मंदिर के स्थान को केशवकटरा कहते हैं। खुदाई होने से यहाँ बहुत सी ऐतिहासिक वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं। मुगलकाल में सौंख का किला जाट राजा हठी सिंह की वीरता के लिए प्रसिद्ध था।

4.3.3 कंकाली टीला

पास ही एक कंकाली टीले पर कंकालीदेवी का मंदिर है। कंकाली टीले में भी अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं। यह कंकाली वह बतलाई जाती है, जिसे देवकी की कन्या समझकर कंस ने मारना चाहा था पर वो उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई थी। मस्जिद से थोड़ा सा पीछे पोतराकुण्ड के पास भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि है, जिसमें वसुदेव तथा देवकी की मूर्तियाँ हैं, इस स्थान को मल्लपुरा कहते हैं। इसी स्थान में कंस के चाणूर, मुष्टिक, कूटशल, तोशल आदि प्रसिद्ध मल्ल रहा करते थे। नवीन स्थानों में सबसे श्रेष्ठ स्थान श्री पारखजी का बनवाया हुआ श्री द्वारकाधीश का मंदिर है। इसमें प्रसाद आदि का समुचित प्रबंध है। संस्कृत पाठशाला, आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक लोकोपकारी विभाग भी हैं।

4.3.4 मथुरा के प्रसिद्ध मंदिर एवं मूर्तियाँ

इस मंदिर के अलावा गोविंदजी का मंदिर, किशोरीरमणजी का मंदिर, वसुदेव घाट पर गोवर्द्धननाथ जी का मंदिर, उदयपुर वाली रानी का मदनमोहन जी का मंदिर, विहारी जी का मंदिर, रायगढ़वासी रायसेठ का बनवाया हुआ मदनमोहनजी का मंदिर, उन्नाव की रानी श्यामकुंवरी का बनाया राधेश्यामजी का मंदिर, असकुण्डा घाट पर हनुमानजी, नृसिंहजी, वाराहजी, गणेशजी के मंदिर आदि हैं, जिनमें कई का आय–व्यय बहुत है, प्रबंध अत्युत्तम है, साथ में पाठशाला आदि संस्थाएँ भी चल रही हैं। विश्राम घाट या विश्रान्त घाट एक बड़ा सुंदर स्थान है, मथुरा में यही प्रधान तीर्थ है। विश्रांतिक तीर्थ (विश्राम घाट) असिकुंडा तीर्थ (असकुंडा घाट) वैकुंठ तीर्थ, कालिंजर तीर्थ और चक्रतीर्थ नामक पांच प्रसिद्ध मंदिरों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में कालवेशिक, सोमदेव, कंबल और संबल, इन जैन साधुओं को मथुरा का बतलाया गया है। जब यहाँ एक बार घोर अकाल पड़ा था, तब मथुरा के एक जैन नागरिक खंडी ने अनिवार्य रूप से जैन आगमों के पाठन की प्रथा चलाई थी।

भगवान ने कंस वध के पश्चात् यहीं विश्राम लिया था। नित्य प्रातः–सायं यहाँ यमुनाजी की आरती होती है, जिसकी शोभा दर्शनीय है। यहाँ किसी समय दतिया नरेश और काशी नरेश क्रमशः 81 मन और 3 मन सोने से तुले

थे और फिर यह दोनों बार की तुलाओं का सोना व्रज में बांट दिया था। यहाँ मुरलीमनोहर, कृष्ण–बलदेव, अन्नपूर्णा, धर्मराज, गोवर्द्धननाथ आदि कई मंदिर हैं। विश्रान्त से पीछे श्रीरामानुज सम्प्रदाय का नारायणजी का मंदिर, इसके पीछे पुराना गतश्रम नारायणजी का मंदिर, इसके आगे कंसखार हैं। सब्जी मंडी में पं० क्षेत्रपाल शर्मा का बनवाया घंटाघर है। पालीवाल बोहरों के बनवाए राधा–कृष्ण, दाऊजी, विजयगोविंद, गोवर्द्धननाथ के मंदिर हैं। रामजीद्वारे में श्री रामजी का मंदिर है, वहीं अष्टभुजी श्री गोपालजी की मूर्ति है, जिसमें चौबीस अवतारों के दर्शन होते हैं। यहाँ रामनवमी को मेला होता है। यहाँ पर वज्रनाभ के स्थापित किए हुए ध्रुवजी के चरणचिह्न हैं। चौबच्चा में वीर भद्रेश्वर का मंदिर, लवणासुर को मारकर मथुरा की रक्षा करने वाले शत्रुघ्नजी का मंदिर, होली दरवाजे पर दाऊजी का मंदिर, डोरी बाजार में गोपीनाथ जी का मंदिर है।

आगे चलकर दीर्घ विष्णुजी का मंदिर, बंगाली घाट पर श्री वल्लभ कुल के गोस्वामी परिवारों के बड़े–छोटे दो मदनमोहनजी के और एक गोकुलेश का मंदिर है। नगर के बाहर ध्रुवजी का मंदिर, गऊघाट पर प्राचीन विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का श्री राधाविहारीजी का मंदिर, वैरागपुरा में प्राचीन विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के विरक्तों का मंदिर है। वैरागपुरा में गोहिल छिपि जाति के चाउधरि श्रि गोर्धनदास नागर पुत्र श्री हरकरन दास नागर ने सकल पंच मथुरा को सम्वत् 1981 (सन 1924) में मन्दिर बनाने के हेतु अपने भूमि दान में दे दिया और उस भूमि के ऊपर दाऊजी महाराज और रेवती देवी की मूर्ति प्रदान कर मन्दिर दान में दिया। इससे आगे मथुरा के पश्चिम में एक ऊंचे टीले पर महाविद्या का मंदिर है, उसके नीचे एक सुंदर कुण्ड तथा पशुपति महादेव का मंदिर है, जिसके नीचे सरस्वती नाला है। किसी समय यहाँ सरस्वती नदी बहती थीं और गोकर्णेश्वर–महादेव के पास आकर यमुनाजी में मिलती थीं।

एक प्रसंग में यह वर्णन है कि एक सर्प नंदबाबा को रात्रि में निगलने लगा, तब श्रीकृष्ण ने सर्प को लात मारी, जिस पर सर्प शरीर छोड़कर सुदर्शन विद्याधर हो गया। किन्हीं–किन्हीं टीकाकारों का मत है कि यह लीला इन्हीं महाविद्या की है और किन्हीं–किन्हीं का मत है कि अम्बिकावन दक्षिण में है। इससे आगे सरस्वती कुण्ड और सरस्वती का मंदिर और उससे आगे चामुण्डा का मंदिर है। चामुण्डा से मथुरा की ओर लौटते हुए बीच में अम्बरीष टीला पड़ता है, यहाँ राजा अम्बरीष ने तप किया था। अब उस स्थान पर नीचे जाहरपीर का मठ है और टीले के ऊपर हनुमानजी का मंदिर है। ये सब मथुरा के प्रमुख स्थान हैं। इनके सिवाय और बहुत छोटे–छोटे स्थान हैं। मथुरा के पास नरसिंहगढ़ एक स्थान है, जहाँ नरहरि नाम के एक महात्मा हुए हैं। कहा जाता है इन्होंने 400 वर्ष के होकर अपना शरीर त्याग किया था।

4.3.5 महाजनपद काल

महाजनपद काल से यहाँ का क्रमबद्ध इतिहास प्रारंभ होता है। इस समय यह नगर शूरसेन जनपद, यूनानी लेखकों द्वारा उल्लिखित शूरसेन की राजधानी के रूप में विख्यात था। उत्तर पथ पूर्व में ताम्रलिप्ति से पश्चिम में तक्षशिला पुष्कलावती की ओर जाने वाले वाणिज्य मार्ग, पर स्थित होने के कारण इसका निकट संपर्क राजगीर, वैशाली, कौशांबी, वाराणसी एवं श्रावस्ती इत्यादि उत्तर भारत के समकालीन नगरों के साथ था। इसके अतिरिक्त उज्जयिनी एवं भृगुकच्छ आदि के साथ भी इसका सांस्कृतिक संबंध था। शूरसेन नरेश अवन्ति पुत्र का नाम इस बात का द्योतक है कि सूरसेन एवं अवंती जनपदों के बीच विवाह संबंध भी था। बौद्ध ग्रंथों में स्थल मार्ग के अतिरिक्त जल मार्ग से भी अन्य नगरों में नावों के द्वारा मथुरा के वणिकों के आने जाने का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए इस तथ्य का वर्णन करते हुए, इसमें एक स्थान पर कहा गया है कि ऐसा लगता था मानो मथुरा एवं पाटलिपुत्र के बीच नावों का पुल बांध गया हो।

इससे लगता है कि बुद्ध काल में मथुरा में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव नहीं हो सका था। संभवतः यही कारण है कि अब उत्तर निकाय में यह नगर दोषयुक्त एवं घृणितपुर के रूप में वर्णित है। इसके अनुसार इसमें भयंकर कुत्ते रहते थे। जंगली जानवरों का खतरा रहता था तथा भिक्षा बड़ी कठिनता के साथ मिल पाती थी अंगुत्तर निकाय का यह भी विवरण इस नगर के सामान्य वातावरण पर भागवत धर्म की गहरी छाप का द्योतक है।

4.3.6 नंद–मौर्य एवं शुंग काल

नंद–मौर्य काल में शूरसेन जनपद मगध साम्राज्य का अंग बन गया। अशोक के आचार्य उपगुप्त मथुरा के नागरिक थे अतएव इस मौर्य सम्राट ने मथुरा में विशेष अभिरुचि दिखाई। मौर्य काल में इस पुर का विकास कला केंद्र के रूप में होने लगा था, जिसका प्रमाण परखम यक्ष है। इस यक्ष प्रतिमा का पता कनिंघम ने लगाया था, इसकी चरण

चौकी पर एक लेख भी मिलता है, जिसमें प्रारंभिक ब्राह्मी लिपि का प्रयोग इसे मौर्यकालीन प्रमाणित करता है।

मौर्य काल के उपरांत मथुरा शुंग साम्राज्य में सम्मिलित हो गया तथा संपूर्ण शूरसेन जनपद मथुरा जनपद के रूप में जाना जाने लगा। पतंजलि ने मथुरा के नागरिको की प्रशंसा करते हुए लिखा कि सांकाश्य और यहाँ तक कि पाटलिपुत्र निवासियों से भी मथुरा नागरिक कहीं अधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे लेकिन इसी दौरान बाख्वी यवनों के आक्रमण का मथुरा शिकार हो गया और उनके प्रलयकारी सैन्य अभियान से साकेत पांचाल एवं मथुरा पर अधिकार स्थापित कर लिया था। तदुपरान्त गंगा घाटी में और आगे बढ़ते हुए वे पाटलिपुत्र तक पहुँच गए थे। परिणामतः विभिन्न क्षेत्रों में हाहाकार मच गया था। परंतु उनके यहाँ गृह युद्ध होने की वजह से उन्हें वापस लौटना पड़ा।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा किये गए उत्खनन से प्राप्त साक्ष्य भी द्वितीय शताब्दी ई0पू0 मे यमुना तटवर्ती इस नगर में अग्निदाह के संकेत देते है। अन्य पुरातत्त्विक अवशेषों में दोहरे नुकीले वाणाग्र के साक्ष्य मिले हैं, जो मथुरा पर हिंद–यवन आक्रमण के प्रमाण है। गंगा घाटी को बाख्वी यवनों के शिकंजे से उन्मुक्त करने का श्रेय पुष्यमित्र शुंग को था, उसने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में दो अश्वमेघ यज्ञ करवाये थे।

शुंग काल में मथुरा कला केंद्र के रूप में पूर्व काल से कहीं अधिक विकसित था। अशोक के कारण इस नगर में बौद्ध धर्म की छाप पड़ चुकी थी। शुंगकालीन वेदिका स्तंभों के जो नमूने मथुरा एवं मथुरा के आसपास के स्थानों से मिले हैं उन पर जातक कथाओं का निरूपण एवं स्त्री जीवन से संबंधित दृश्यों के अंकन मिलते हैं, जो शुंगकालीन समाज एवं संस्कृति के विविध पक्षों को प्रकाशित करते हैं। मथुरा की शुंग कालीन बौद्ध कला ही ज्ञान धर्म से संबंधित है यही कारण है कि इस कला में बुद्ध की शारीरिक उपस्थिति बौद्ध धर्म के माँगलिक चिन्हों एवं अभिप्रायों से इंगित की गई है।

4.3.7 शक–क्षत्रपों का अभ्युदय

प्रथम शताब्दी ईस्वी में मथुरा में शक क्षत्रपों का अभ्युदय हुआ, जिसमें जूत (रंजुबुल) एवं उसका पुत्र शोडास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके काल के मथुरा के सिंह शीर्षक शिला–अभिलेख (खरोष्टी लिपि एवं प्राकृत में उत्कीर्ण) से ज्ञात होता है कि महाक्षत्र राजूल (जुबुल) के काल में वहाँ एक स्तूप का निर्माण किया गया, जिसमें भगवान् शाक्यमुनि बुद्ध का देहावशेष गर्भित था। इसके अतिरिक्त वहाँ एक सिंह शीर्षक शिलास्तम्भ भी स्थापित किया गया। साथ ही एक संघाराम का भी निर्माण हुआ था, जिसमें सर्वास्ववादी भिक्षुओं का निवास था। इनके लाभ के निमित्त एक दान भी दिया गया। यह लेख बौद्ध धर्म से संबंधित था। इस लेख से स्पष्ट है कि मथुरा में इस समय खरोष्ठी लिपि का भी प्रयोग विद्यमान था।

कंकाली टीला, मथुरा के एक आयागपट्ट–लेख (ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत में उत्कीर्ण) में स्वामी महाक्षत्रप शोडास का उल्लेख मिलता है, जिसके राज्य–काल (संवत्सर 72–15 ई०) में किसी जैन भिक्षु की शिष्या अमोहिनी तथा उसके पुत्रों (पालघोष, प्रौष्ठघोष एवं धनघोष) के द्वारा आयागपट (पूजाशिला) की स्थापना का इसमें उल्लेख मिलता है। यह लेख जैन धर्म से संबंधित है तथा 'जमी अरहतो वर्धमानस' से आरम्भ होता है। शोडास–कालीन मथुरा के एक अन्य शिलालेख (ब्राह्मी लिपि) में उसके गंजवर नामक कोषाध्यक्ष के द्वारा पुष्करिणी (तटाक), उदपान (कूप), आराम, स्तम्भ एवं शिलापट्ट की स्थापना का उल्लेख मिलता है। इसमें तत्कालीन मथुरा–नरेश का नाम 'स्वामि महाक्षत्रपशोडास' आता है। इसमें युगल पुष्करिणी (युगल तटाकों) के भी उल्लेख मिलते हैं, जिनके पश्चिम में गंजवर ने उपर्युक्त निर्माण किये थे। इन लेखों से स्पष्ट है कि इस समय इस नगर में विभिन्न धर्मावलम्बियों का निवास था।

मथुरा के दक्षिणी उपकण्ठ पर स्थित मिर्जापुर नामक पुरवा से हाल ही में (1979 ई० में) शोडास–कालीन एक शिलालेख मथुरा संग्रहालय के तत्कालीन निदेशक रमेश चन्द्र शर्मा द्वारा प्रकाश में लाया गया, जिसमें राजा का नाम 'स्वामि महाक्षत्रप शोडास' अंकित है। श्रीवत्स अभिप्राय से आरम्भ होने वाला यह अभिलेख मथुरा–संग्रहालय में संग्रहीत है। इसमें एक पुष्करिणी, वाटिका, कूप, सभागृह, शिलास्तम्भ तथा शिलापट के निर्माण एवं श्री (लक्ष्मी) प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है, जिसका श्रेय लेख के अनुसार भार्गव–गोत्री ब्राह्मण मूलवसु की पत्नी कौशिकी को था। अभिलेख वैष्णव धर्म से संबंधित है। श्री शर्मा के अनुसार इसमें उल्लिखित पुष्करिणी एवं कूप के दृष्टान्त इस लेख के प्राप्ति–स्थान पर अब भी विद्यमान हैं तथा यहाँ उत्खनन–कार्य ऐतिहासिक महत्ता की दृष्टि से अपेक्षित है। उक्त लेख जो एक आयताकार शिलापट्ट (96.44 सेमी०) पर उत्कीर्णित है, अपने प्राप्ति–स्थान पर निर्मित एक शिव–मन्दिर के पुजारी बाबा बाल कृष्णदास से श्री शर्मा को प्राप्त हुआ था। उनका अनुमान है कि इस लेख में जिस श्री (लक्ष्मी)

मन्दिर की अवस्थिति की ओर संकेत है, ठीक उसी स्थान पर उपर्युक्त शिवालय वर्तमान है। लगता है कि लेखयुक्त यह शिलापट्ट वस्तुतः वही है, जिसे इसमें कौशिकी द्वारा प्रदत्त शिलापट्ट कहा गया है।

शोडास–काल में मथुरा में वैष्णव धर्म के प्रभाव के विषय में मोरा (मथुरा से 7 मील दूर स्थित) के लेख (ब्राह्मी लिपि) द्वारा भी प्रकाश पड़ता है, जिसमें वृष्णि–वीरों की पाँच प्रतिमाओं की स्थापना का उल्लेख मिलता है। एक अन्य शोडास–कालीन मथुरा–लेख (ब्राह्मी लिपि) में जो जन्मभूमि (कृष्ण जन्मभूमि) के स्थान से मिला है, तोरण–वेदिका एवं मन्दिर (देवकुल) के उस पवित्र स्थल पर निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है, जहाँ 'भागवत वासुदेव' का जन्म हुआ था। वसु नामान्त नागरिक ने उक्त का निर्माण कराया था। इस लेख के अन्त में महाक्षत्रप शोडास के मंगलमय एवं दीर्घ राज्यकाल की कामना की गई है। इन लेखों से स्पष्ट है कि मथुरा में भागवत धर्म का प्रसार शोडास–काल में प्रचुर रूप में था तथा वहाँ कुछ वासुदेव (कृष्ण) मन्दिर अवश्य वर्तमान थे। उल्लेखनीय है कि शोडास–कालीन मथुरा के वैष्णव लेखों की भाषा संस्कृत तथा बौद्ध एवं जैन लेखों की भाषा प्राकृत है।

4.3.8 कुषाण काल

प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध से द्वितीय शती द्वितीयार्द्ध तक लगभग एक शताब्दी की अवधि में यह नगर कुषाणों का अधीनस्थ था। इस काल के भीतर सम्राट् कनिष्क एवं उसके उत्तराधिकारियों (वशिष्ठ, हुविष्क एवं वासुदेव) ने मथुरा पर राज्य किया। वस्तुतः यही काल मथुरा के इतिहास का स्वर्णिम काल था, जिसमें राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास हुआ। मथुरा के कुषाणकालीन लेख एवं मूर्तियों, मन्दिरों एवं स्तूपों के भग्नावशेषों–जिनमें से अधिकांश मथुरा–संग्रहालय में सुरक्षित हैं–इस तथ्य के प्रमाण हैं। कुषाणकालीन लेखों से स्पष्ट है कि इस समय मथुरा–नागरिक विविध सांस्कृतिक कार्यकलापों में संलग्न थे।

इस नगर से एक कनिष्क कालीन लेख (उसके राज्यकाल के आठवें वर्ष का) एक नागप्रतिमा की चरण चौकी पर प्राप्त हुई है। नागदेवता के दोनों ही ओर नागी आकृतियाँ अंकित हैं, जो अमृतघट धारण की हुई हैं। अभिलेख में महाराज–राजातिराजशाही–कनिष्क के राज्यकाल के आठवें वर्ष की ग्रीष्म ऋतु के चौथे महीने की पंचमी को भूमिनाग के मन्दिर को एक पुष्करिणी (तटाक) एवं आराम (वाटिका) के दान का उल्लेख मिलता है। इस लेख से स्पष्ट है कि कनिष्क काल में मथुरा में नाग–पूजा प्रचलित थी। नाग–पूजा से ही संबंधित एक अन्य कुषाण–लेख (हुविष्क के काल का) मथुरा से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख में 'महाराज राजातिराज हुविष्क' के राज्य–काल (शक संवत् 40, 118 ई०) के हेमन्त ऋतु के दूसरे महीने के तेईसवें दिन वीरवृद्धि नामक मथुरा नागरिक के पुत्रों द्वारा स्वनिर्मित पुष्करिणी के तट पर नाग–प्रतिमा की. स्थापना का उल्लेख हुआ है। लेख के अनुसार नाग–देव पुष्करिणी के प्रमुख देवता थे। लगता है कि इस प्रतिमा की प्राण–प्रतिष्ठा पुष्करिणी–तट पर विद्यमान किसी–नाग–मन्दिर में हुई थी।

मथुरा के अन्य उल्लेखनीय कुषाण कालीन अभिलेखों में चार, हुविष्क के काल के। हैं। इनमें से एक (शक) संवत् 28 (106 ई०) का है, जिसके अनुसार 'देवपुत्र षाहि हुविष्क' के राज्यकाल के उक्त वर्ष मेंगुर्पिय नामक (यवन) मास (भारतीय भाद्र–आश्विन मास) के प्रथम दिन रुक्माण नामक किसी मथुरा नागरिक के पुत्र ने एक धर्मशाला (पुण्यशाला) की स्थापना की थी, जिसमें एक सौ ब्राह्मणों को उक्त मास के शुक्लपक्ष चतुर्दशी के दिन भोजन कराया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन इससे बुभुक्षित एवं पिपासित व्यक्तियों को सत्तू, नमक एवं हरित शाक आदि भोजनार्थ वितरित होते थे। इस धार्मिक कृति से अर्जित पुण्य से 'देवपुत्र पाहि हुविष्क' लाभान्वित हों, इस प्रकार की कामना लेख के अन्त में की गई है।

हुविष्क के राज्यकाल का एक अन्य लेख जैन धर्म से संबंधित है। इसें 'महाराज हुविष्क' के शासनकाल में (शक) संवत् 44 (122 ई०) के ग्रीष्म मास तृतीय (पूर्णिमान्तज्येष्ठ) की द्वितीया को किसी मथुरा–नागरिक द्वारा एक जैन प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख मिलता है। मथुरा से हुविष्क के शासन काल का एक भग्न बोधिसत्व प्रतिमा–लेख (शक) संवत् 33 (111 ई०) का उपलब्ध हुआ है। इसमें 'महाराज देवपुव हुविष्क' के राज्यकाल के उक्त वर्ष के ग्रीष्म मास प्रथम (पूर्णिमान्त चौत्र) की अष्टमी को त्रैपिटक बलभिक्षु की शिष्या त्रैपिटकी बुद्धिमित्रा नामक भिक्षुणी की भागिनेयी भिक्षुणी धनवती द्वारा मधुरवन (मथुरा) में बोधिसत्त्व–प्रतिमा (बोधिसत्त्व–विग्रह), माता–पिता एवं आत्म–पुण्यार्थ किये जाने का उल्लेख किया गया है। यह भग्न लेख इस बोधिसत्व–प्रतिमा की चरण चौकी पर उत्कीर्ण है। हुविष्क–कालीन एक बौद्ध प्रतिमालेख भी मिला है। इसके अनुसार उसके राज्यकाल में (शक) संवत् 51 (129 ई०) के हेमन्तमास प्रथम (पूर्णिमान्त मार्गशीर्ष) में हुविष्क–प्रतिष्ठापित विहार (महाराज देवपुत्र विहार) में बुद्धवर्मा नामक भिक्षु द्वारा शाक्यमुनि–प्रतिमा सर्वबुद्ध–पूजार्थ एवं सर्व–सत्व–हित–सुखार्थ स्थापित की गई थी। .

उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त मथुरा से दो कुषाण–लेख वासुदेव–काल के मिले हैं, जिनमें से एक (शक) संवत् 64 (142 ई०) का है। इसमें देवपुत्र वासुदेव के राज्य–काल के इस वर्ष के द्वितीय वर्षामास (पूर्णिमान्त भाद्रपद) की दूसरी तिथि को मथुरा के गुहसेन नामक नागरिक (कुटुम्बी) द्वारा माता–पिता के पुण्यार्जन–निमित्त बौद्ध प्रतिमा की स्थापना का भी उल्लेख मिलता है। इसमें मथुरा के महासंधिक आचार्यों का भी सन्दर्भ मिलता है। वासुदेव–कालीन दूसरा लेख कंकाली टीला मथुरा से (शक) संवत् (80,158 ई०) भी मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि इस तिथि के हेमन्त ऋतु के प्रथम मास की द्वादशी को सनकदास की दुहिता द्वारा एक प्रतिमा स्थापित की गई थी।

4.3.9 कुषाणकालीन मूर्तियाँ

मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन मूर्तियों में विम कैडफिसेस और कनिष्क की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। विम कैडफिसेस मूर्ति में यह कुषाण–नरेश लंबा, चोगा, तंग मोहड़ी का पायजामा एवं जूता पहने सिंहसनारूढ़ है। दोनों पैरों के बीच वाले भाग में एक लघु लेख उत्कीर्ण है, जिसमें 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाणपुत्र षाहि विमकदफिसस' के राज्यकाल में मन्दिर (देवकुल), वाटिका (आराम), तटाक (पुष्करिणी), कूप (उपदान), सभाभवन एवं तोरणद्वार के निर्माण का उल्लेख मिलता है। कनिष्क की कायपरिमाण प्रतिमा में यह कुषाणवंशी सम्राट् युद्ध–वेश में प्रदर्शित है। वह एक लंबा चोंगा, तंग मोहड़ी का पायजामा एवं मजबूत जूता पहने है तथा उसका एक हाथ लटकती तलवार की मूठ पर टिका हुआ है। उसके दोनों पैरों के बीच वाले भाग में एक लघु लेख अंकित है, जिस पर 'महाराज राजाधिराज देवपुत्र कनिष्को' पाठ मिलता है।

कुषाणकालीन मूर्तियों एवं लेखों से स्पष्ट है कि यह काल समृद्धि एवं ऐश्वर्य का काल था। इस समय मथुरा में बौद्ध प्रभाव बढ़ता जा रहा था। महायान–धर्म से संबंधित होने के कारण कुषाणकालीन मथुरा की बौद्ध कला में बोधिसत्व एवं बुद्ध के मानवीय विग्रह प्रचुर रूप में अंकित होने लगे। मथुरा एवं इसके पार्श्ववर्ती स्थानों से स्तूप–तोरणो एवं वेदिका–स्तम्भों के उदाहरण उपलब्ध हैं, जिन पर विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृश्य अंकित हैं। इन वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण स्त्री–आकृतियाँ, अशोक–दोहद, बकुलदोहद, आम्रदोहद एवं शालभंजिका मुद्राओं में अंकित हैं। निशाभिसारिकाओं, सुरासुन्दरियों, परिभोगदर्शिनी एवं प्रसाधिकाओं के भी नृत्य इन पर अंकित हैं, जिनके वर्णन अश्वघोष के बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द तथा कालिदास के रघुवंश में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त नृत्याभिनय, तोयक्रीड़ा, कन्दुकक्रीड़ा एवं पुष्प–प्रचायिका आदि स्त्री–समाज से संबंधित दृश्य भी इन वेदिका–स्तंभों पर तराशे गये हैं।

कृष्ण–जीवन से संबंधित घटनाएँ (यथा, कृष्ण का जन्म एवं गोवर्द्धनधारण) भी मथुरा की कुषाण–कला में अंकित हैं। इस समय की अन्य मूर्तियाँ विष्णु, कामदेव–रति, दुर्गा, गजलक्ष्मी, सप्तमातृका, कुबेर, सूर्य एवं शिव–पार्वती आदि की हैं।

4.3.10 बुद्ध के जीवन से संबंधित दृश्य

बुद्ध के जीवन से संबंधित घटनाओं के दृश्य एवं जातक कथाओं के निरूपण कुषाण –कला में देखने को मिलते हैं। पश्चिम जर्मनी के प्रोफेसर हर्बट हर्टल के निर्देशन में किये हुए उत्खननों द्वारा 1972 ई० में सोख (मथुरा) से एक कुषाण कालीन नाग–मन्दिर के स्थापत्य–अवशेष (विशेषतः वेदिका स्तम्भ के नमूने एवं तोरणद्वार के अवशेष) प्रकाश में लाये गये। तोरणद्वार के एक कोष्ठक में यक्षिणी शालभंजिका मुद्रा में खड़ी है तथा उसके दोनों पैर अपने दोनों घुटनों एवं बाजुओं के बल लेटे, वामयक्ष की पीठ पर अवलम्बित हैं। तोरणद्वार के एक डाट पर नागराज के राज्याभिषेक का दृश्य अंकित है। वह सिंहासन पर ऐश्वर्य एवं तड़क–भड़क के वातावरण में आरूढ़ है। उसके सिर पर नाग के फण का आवरण प्रदर्शित है। उसके दक्षिण पार्श्व नाग–रानी सिंहासनारूढ़ हैं, जिसके सिर पर नाग का फण कुशलता के साथ उकेरा गया है। इस उच्चित्रण में नागराज के अनुचर उसे एक लंगी पगड़ी पहनाने का प्रयास करते निरूपित हुए हैं। कुषाण–काल में मथुरा में नाग–पूजा के विद्यमान होने का यह अन्य पुरातत्वीय प्रमाण है। इस तोरण–द्वार के भग्न डाट–खण्ड पर कोई नागवंशी पुरुषाकृति मगरमच्छ के खुले जबड़े से बाहर निकलती हुई दिखायी गयी है। उसके सिर पर फण का आवरण उसके नागवंशी होने की ओर संकेत करता है। इस दृश्य से किसी विशेष आपत्ति से नागराजवंश का उन्मुक्त होना अभिव्यंजित होता है। संभव है कि यह उच्चित्रण कालान्तर में मथुरा के नागवंशी राजाओं के राज्यकाल में हुआ हो।

4.3.11 मथुरा नाग वंशी राजाओं का शासन

कुषाणों के उपरान्त मथुरा नाग वंशी राजाओं का अधीनस्थ हो गया। इस पुर पर नाग–वंशियों ने लगभग डेढ़

सौ वर्षों तक (180 ई० से 335 ई० तक) राज्य किया। पुराणों के अनुसार इस समय मथुरा, पद्मावती, विदिशा एवं कान्तिपुरी में नव नाग नरेशों ने राज्य किया। मथुरा का नाग– राजवंश महत्वपूर्ण था। इसी राजवंश में गणपतिनाग का अभ्युदय हुआ था, जिसकी मुद्राएँ मथुरा से मिली हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में नागसेन (पद्मावती का भारशिव नाग), अच्युत (अहिच्छत्र), नन्दि (विदिशा), नागदत्त एवं गणपतिनाग (मथुरा) आदि नाग नरेशों के नामोल्लेख मिलते हैं। इनमें से गणपतिनाग, अच्युत एवं नागसेन के सम्मिलित दल को समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त की एक लड़ाई में हरा दिया था। पुनः गणपतिनाग को एक अलग युद्ध में परास्त कर उसने मथुरा को जीत लिया तथा इस समय से लेकर लगभग दो सौ वर्षों तक (350 ई०–555 ई०) यह नगर गुप्त–साम्राज्य में सम्मिलित था।

4.3.12 गुप्त–साम्राज्य

मथुरा से चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य के राज्यकाल के दो लेख मिले हैं, जिनमें से एक तिथियुक्त है (गुप्त संवत् 61, 380 ई०) इससे ज्ञात होता है कि मथुरा में पाशुपत नामक शैव सम्प्रदाय विकसित हो रहा था। इस लेख में इस सम्प्रदाय के आचार्यों के एक मन्दिर (गुरु–मन्दिर) का उल्लेख मिलता है, जिसमें इनकी प्रतिमाएँ उनके शिष्यों द्वारा स्थापित की जाती थीं। इसमें इस सम्प्रदाय के आचार्य उदिताचार्य का उल्लेख मिलता है, जो कुशिक की दसवीं पीढ़ी में आता था। कुशिक, लकुलीश का शिष्य था, जो पाशुपत सम्प्रदाय के जन्मदाता थे। मथुरा के इस लेख में उदिताचार्य का उल्लेख मिलता है जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन एवं उपमितविमल नामक आचार्य का शिष्य था। उसने अपने गुरुओं की ख्याति की वृद्धि के लिए उपमितविमल एवं उनके आचार्य कपिलविमल की प्रतिमाएँ मथुरा के उक्त गुरु–मन्दिर में स्थापित की थीं। मथुरा से प्राप्त एक अन्य खण्डित लेख (तिथिविहीन, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कालीन) में इस राजा की वंशावली का उल्लेख मिलता है।

तदुपरान्त कुमारगुप्त प्रथम, महेन्द्रादित्य–कालीन चार लेख मथुरा से प्राप्त हुए हैं। कालक्रम की दृष्टि से मथुरा का जैन लेख सर्वप्रथम उल्लेखनीय है, जिसमें कुमारगुप्त के 'विजय राज्यसंवत्सर' (गुप्त संवत् 113, 432 ई०) का उल्लेख मिलता है। यह एक जैन प्रतिमा की चरणचौकी पर उत्कीर्ण है, जिसकी स्थापना शामाढ्या नामक एक जैन महिला ने करायी थी। तदुपरान्त मथुरा का बुद्ध प्रतिमा–लेख (गुप्त संवत् 115, 434 ई०) आता है, जो गोविन्दनगर (मथुरा) से हाल ही में प्रकाश में लाया गया है। इस 'शाक्यमुनि–प्रतिमा' का निर्माण संघवर्मा नामक एक भिक्षु ने दिन्न नामक मूर्तिकार से कराया था। मथुरा के तीसरे पट एवं चौथे कुमारगुप्तकालीन लेख, जो हाल ही में (1964 ई० में) प्रकाश में लाया गया, एक टूटी प्रतिमा की चरणचौकी पर उत्कीर्ण है। इसमें गुप्त संवत् 125 को कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल का 'विजयराज्य संवत्सर' कहा गया है। गुप्त संवत् 135 (454 ई०) वाला लेख एक बौद्ध लेख है, जो प्रयाग संग्रहालय में प्रदर्शित है।

उक्त चारों लेखों से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में मथुरा में विभिन्न धर्मों का विकास स्वाभाविक रूप में हो रहा था। गुप्तकालीन चीनी यात्री फाह्यान ने मथुरा के नागरिकों की शिष्टता एवं समृद्धि की प्रचुर प्रशंसा की है। उसके अनुसार इस समय वहाँ कई बौद्ध विहार वर्तमान थे, जहाँ भिक्षु बहुसंख्या में निवास करते थे। इस समय इस नगर में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव था। मथुरा से प्राप्त गुप्त–कालीन मूर्तियाँ कृष्ण, शिव, विष्णु, बुद्ध, जैन, तीर्थंकर, नाग एवं सप्त मातृकाओं आदि विभिन्न देवी–देवताओं से संबंधित हैं। वे इस बात की सम्पुष्टि करती हैं कि गुप्त–काल में नागरिकों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी तथा लोगों के व्यक्तिगत मामलों में कोई राजकीय हस्तक्षेप नहीं था। लाक्षणिक विशेषताओं से युक्त गुप्तकालीन मथुरा कला, भारतीय कला के इतिहास में उल्लेखनीय स्थान रखती है।

4.3.13 मथुरा कान्यकुब्ज साम्राज्य का अंग

गुप्त–साम्राज्य के पतन के उपरान्त मथुरा कान्यकुब्ज साम्राज्य में सम्मिलित हो गया, जिसमें कई राजवंशों ने राज्य किया, जिनमें मौखरि, पुष्यभूति, प्रतिहार एवं गहड़वाल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हर्ष–काल में ह्वेनसांग मथुरा आया था। वह लिखता है कि वहाँ के नागरिक सम्पन्न एवं शिष्ट थे। इस नगर में कई बौद्ध मठ थे जिनमें रहने वाले भिक्षुओं का जीवन सरल एवं पवित्र था।

4.3.14 इस्लामिक काल

इसके उपरान्त मथुरा मुसलमान आक्रमणकारियों का निरन्तर शिकार होता रहा। 1017 ई० में महमूद गजनी

ने मथुरा के मन्दिरों को बुरी तरह लूटा। उत्बी लिखता है कि महमूद ने नागरिकों के समक्ष इस्लाम या मृत्यु का विकल्प रखा था। गहड़वाल काल में मथुरा पर पुनः मुसलमान आक्रमण हुआ। 1194 ई० में मुहम्मद गोरी ने जयचन्द्र गहड़वाल को हरा कर उसका राज्य छीन लिया। फलतः मथुरा पर हिन्दू–राजवंशों के स्थान पर मुसलमान का राज्य स्थापित हो गया।

4.3.15 मूर्तियाँ प्रतिरोध का माध्यम

मथुरा से जो मूर्तियाँ 700 से 1200 ई० के बीच की मिलती हैं, वे देश के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि में रोचक एवं महत्वपूर्ण हैं। समन्वित मूर्तियों के उदाहरण (यथा, हरिहर एवं हरिहर–पितामह आदि) इस बात के प्रमाण हैं कि विभिन्न धर्मावलम्बी साम्प्रदायिक भेदभाव छोड़कर विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध सम्मिलित राष्ट्रीय प्रतिरोध स्थापित करने के पक्ष में थे। इसी प्रकार जैन धर्म में भी हिन्दू देवी–देवताओं के समाहित होने के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरणार्थ, तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका पार्वती का जैन रूप है तथा प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी वैष्णवी देवी का जैन रूप है। वह प्रतिमाओं में चक्रधारिणी एवं गरुड़ासन रूप में प्रदर्शित है। धर्मसम्मिश्रण के इन पुरातत्वीय दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में लोग साम्प्रदायिक भेद भूलने लगे थे तथा फलस्वरूप समन्वित देवी–देवताओं की पूजा में राष्ट्रहित की दृष्टि से नागरिकों की आस्था अधिकाधिक जागृत हो रही थी।

4.4 काम्पिल्य (27⁰ 36′ उत्तरी अक्षांश 79⁰ 17′′ पूर्वी देशान्तर)

काम्पिल्य दक्षिण पांचाल की राजधानी थी। यह फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है, जहाँ द्रौपदी का जन्म हुआ था। उत्तर पांचाल पांडवों की सहायता से गुरु द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद से छीन लिया था और उसकी राजधानी रामनगर (रूहेलखंड) थी। महाभारत काल में पांचाल राज्य उत्तरी तथा दक्षिणी पांचाल के नाम से दो भागों में विभाजित हो गया। गंगा नदी इन दोनों को अलग–अलग करती थी। दक्षिण पांचाल की राजधानी कांम्पिल्य (वर्तमान फर्रुखाबाद जिला) थी तथा उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी। इस नगर के ध्वंसावशेष बरेली जनपद की आँवला तहसील के ग्राम रामनगर के निकट अब तक मौजूद है। छठी शताब्दी ई.पू. में पांचाल की गणना सोलह महाजनपदों में की जाती थी।

4.4.1 पुरातात्त्विक सन्दर्भ

यह स्थल फर्रुखाबाद जिले में गंगा के पुराने तल पर स्थित है। ए. कनिंघम ने इसकी पहचान प्राचीन कम्पिल्य से की है, जहाँ महाभारत के दिनों में द्रुपद ने शासन किया था, जो दक्षिण पांचाल की राजधानी थी (वार्षिक रिपोर्ट, संख्या 1 ए एस आई, 255)। 1976 में (स्वर्गीय) के.के. सिन्हा के निर्देशन में काशी हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा किए गए एक छोटे पैमाने पर किये गये उत्खनन से पता चला कि यह पी0 जी0 डब्ल्यू (चित्रित धूसर मृदभाण्ड) संस्कृति की एकल–संस्कृति वाली साइट है। 1.30–2 मीटर के जमाव से पी.जी.डब्ल्यू. के अलावा, अच्छी प्रकार का ग्रे (धूसर पात्र) और लाल बर्तन, काले रंग के लेपित बर्तन और बीआरडब्ल्यू (कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड) के कुछ टुकड़े मिले। पी.जी. डब्ल्यू. में हस्तिनापुर में पहचाने गए सभी पारंपरिक प्रकार के बर्तन और कटोरे थे, हालांकि चित्रित टुकड़ों की संख्या बहुत सीमित थी। यह देखा गया है कि बाद के काल की ओर बढ़ने पर चित्रित टुकड़ों की संख्या कम हो जाती है। अन्य पुरावशेषों में डिस्क, टेराकोटा स्टॉपर, तांबे की पिन, जानवरों की मूर्तियाँ और तांबे की गेंदें शामिल थीं। एक खाई में मिट्टी के तटबंध के निशान प्राप्त किये गए। NBPW (उत्तरी काली चमकीले मृदभाण्ड) के कुछ टुकड़े भी यहाँ से पाए गए। मध्ययुगीन काल के सांस्कृतिक अवशेष भी टीले पर छिटपुट रूप से पाए गए।

4.4.2 नामकरण एवं स्थान

इसके नाम का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता में 'कंपिला' रूप में मिलता है। बहुत संभव है, पुराणों में वर्णित पांचाल नरेश भृम्यश्व के पुत्र कपिल या कांपिल्य के नाम पर ही इस नगरी का नामकरण हुआ हो। महाभारत काल से पहले पांचाल जनपद गंगा के दोनों ओर विस्तृत था। उत्तर–पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिण पांचाल की कांपिल्य थी। दक्षिण पांचाल के सर्वप्रथम राजा अजमीढ़ का पुराणों में उल्लेख है। इसी वंश में प्रसिद्ध राजा नीप और ब्रह्मदत्त हुए थे। महाभारत के समय द्रोणाचार्य ने पांचाल नरेश द्रुपद को पराजित कर उससे उत्तर–पांचाल का प्रदेश छीन लिया था। इस प्रसंग के वर्णन में महाभारत में कांपिल्य को दक्षिण पांचाल की राजधानी

बताया गया है। उस समय दक्षिण पांचाल का विस्तार गंगा के दक्षिण तट से चंबल नदी तक था। ब्रह्मदत्त जातक में भी दक्षिण पांचाल का नाम कंपिलरट्ठ या कांपिल्य राष्ट्र है। बौद्ध साहित्य में कांपिल्य का बुद्ध के जीवनचरित के संबंध में वर्णन मिलता है। किंवदंति के अनुसार इसी स्थान पर बुद्ध ने कुछ आश्चर्यजनक कार्य किए थे, जैसे स्वर्ग में जाकर अपनी माता को उपदेश देने के पश्चात् वह इसी स्थान पर उतरे थे। चीनी यात्री युवान च्वांग ने भी सातवीं सदी ई. में इस नगर को अपनी यात्रा के प्रसंग में देखा था।

4.4.3 भौगोलिक विवरण और इतिहास

यही पांचाल जनपद मध्य काल से रूहेलखण्ड नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में रूहेलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, रामपुर, बरेली, बदायूँ, पीलीभीत तथा शाहजहाँपुर जनपद आते हैं, जो बरेली व मुरादाबाद दो कमिश्नरी (मण्डल)में बँटे हैं। महाभारत में वर्णित विवरणों के अनुसार शांतनु के समय पांचाल का राजा द्वीभठ था, जिसके पौत्र राजा द्रुपद ने पांचाल राज्य पर राज्य किया तथा अहिच्छत्र को अपना राजधानी बनाया, किन्तु द्रोणाचार्य से शत्रुता हो जाने पर द्रोण ने राजा द्रुपद को पराजित कर उत्तरी पांचाल को अपने अधीन कर लिया तथा दक्षिण पांचाल द्रुपद को दे दिया। द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर कांम्पिल्य में हुआ, जो दक्षिण पांचाल की राजधानी थी। महाभारत युद्ध में उत्तरी पांचाल ने पाण्डवों का साथ दिया तथा युद्ध के उपरांत भीम ने अपना विजय यात्रा पांचाल प्रदेश से ही प्रारम्भ की तथा कौशल, अयोध्या, काशी, अंग, चेदि और मत्स्य राज्यों को अपने अधीन किया था।महाभारत युद्ध के पश्चात् पांचाल पर पाण्डवों के वंशज तथा बाद में नाग राजाओं का अधिकार रहा ।

4.5 जखेड़ा (27°50′ उत्तरी अक्षांश और 78°41′ पूर्वी देशान्तर)

जाखेड़ा पुरास्थल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एटा जिले में काली नदी के बायें तट पर अन्तरंजीखेड़ा से 16 कि०मी० की दूरी पर स्थित है। स्थानीय लोग इसे 'कुशक' के नाम से जानते हैं। यह स्थल एटा जिले में, कासगंज तहसील मुख्यालय के उत्तर–पश्चिम में 8 किमी की दूरी पर, गंगा की एक सहायक नदी, काली नदी के बाएं किनारे पर स्थित है (साही 1994)। 500×500 मीटर के क्षेत्र में फैले, इस स्थल की खोज और खुदाई वर्ष 1974–76 में और फिर 1985–86, 1986–87, 1988–89 और 1992 –93 में अलीगढ मुस्लिम युनीवर्सिटी, अलीगढ़ के इतिहास विभाग के तत्वावधान में 1974–76 ईस्वी में के0 ए0 निजामी के निर्देशन में एम० डी० एन० साही ने उत्खनन कार्य किया था। दो टीले पाए गए, जो अर्धवृत्ताकार रूप में पूर्व–पश्चिम दिशा में फैली घाटी द्वारा सीमाँकित थे, जिसके दोनों छोर चौड़े होकर नदी की ओर खुलते थे। नदी अब लगभग एक किमी दूर चली गई है इस स्थल पर उत्खनन का उद्देश्य कृष्ण लोहित पात्र परम्परा और चित्रित धूसर पात्र परम्परा के पारस्परिक सम्बन्ध का निरुपण करना तथा चित्रित धूसर पात्र परम्परा की संस्कृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना था। उत्खनन के फलस्वरूप चार सांस्कृतिक स्तर प्रकाश में आए जो क्रमश इस प्रकार है–

- **प्रथम काल**–गैरिक मृदभाण्ड संस्कृति
- **द्वितीय काल**–कृष्ण लोहित पात्र परम्परा
- **तृतीय काल** – यह काल खण्ड पुनः दो खण्डों में विभाजित किया गया ।
  - **तृतीय काल** 'अ'–कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा और चित्रित धूसर पात्र परम्परा का संक्रमण काल
  - **तृतीय काल** 'ब'–चित्रित धूसर पात्र परम्परा
- **चतुर्थ काल** – उत्तरी काली मार्जित पात्र परम्परा

4.5.1 प्रथम काल – गैरिक मृदभाण्ड संस्कृति

प्राकृतिक मिट्टी का निर्माण करने वाली कठोर गंगा की जलोढ़ मिट्टी के ऊपरी जमाव में बहुत कम मात्रा में छिटपुट गैरिक मृदभाण्ड/ गेरू रंग के मृदभाण्ड (ओसीपी) के टुकड़े मिले हैं। अतरंजीखेड़ा में भी इसी तरह के जमाव

से ओसीपी प्राप्त किया गया था। निर्धारित आकार वाले बहुत अधिक टुकड़े नहीं मिले (साही 1994,चित्र 11)

4.5.2 द्वितीय काल – कृष्ण लोहित पात्र परम्परा

इस काल के जमावों से सादे कृष्ण लोहित (Black and red ware), कृष्ण लेपित पात्र परम्परा (Black slipped ware) तथा लाल पात्र परम्परा (Red ware) के मृद्भाण्ड प्रकाश में आए थे। इनके अतिरिक्त कतिपय रगड़कर चमकाये हुए धूसर पात्र (Burnished Grey Ware) भी मिले थे। इसके अतिरिक्त एक फर्श जिसपर कहीं–कहीं जलने के निशान थे तथा स्तम्भ गर्त एवं सरकण्डों तथा बास के निशान से युक्त जली मिट्टी के पिण्ड भी प्रकाश में आए। उत्खनन से अंडाकार, गोलाकार संरचनाएं सामने आईं, जिनमें अच्छी तरह से बनाई गई और चिकनी फर्श थी। फर्श के ऊपर एक टूटा हुआ अण्डाकार, चूल्हा भी मिला था। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सरकण्डों, बास–बल्ली, घास–फूस और मिट्टी के माध्यम से आवास का निर्माण किया जाता था। तीन क्रमिक मंजिल की स्तरों का पता चला। प्रत्येक मंजिल में राख, मिट्टी के बर्तन, हड्डियों और पुरावशेषों से भरे दो से अधिक गोलाकार अग्नि–कुंड थे। ऐसे ही एक गड्ढे में, एक यू–आकार के पोर्टेबल चूल्हे की टूटी भुजा मिली। दूसरे में, ताम्रपाषाण काल से संबंधित एक ब्लैक स्लिप्ड वेयर बाउल और लोहे की दो वस्तुएँ मिलीं। इस अवधि की महत्वपूर्ण पुरावशेषों में दो लोहे की वस्तुएँ शामिल हैं, जिनमें एक लंबी तांग वाला तीर का सिरा शामिल है। अन्य उल्लेखनीय वस्तुओं में गोलाकार डिजाइन वाले नुकीले और कांटेदार हड्डी के तीर के सिरे, अधूरे हड्डी के उपकरण, पहले की खुदाई के दौरान बरामद लैमिनेटेड हेमेटाइट का एक टुकड़ा, एक मनका, और एक छोटा टेराकोटा मनका और मिट्टी के बर्तनों की डिस्क शामिल हैं। अन्य पुरावशेषों में मिट्टी की चकरी (Pottery disce) एक अगेट का टुकड़ा, बेलनाकार मनके तथा पुच्छलवाणाग्र, जिसके ऊपर एक वृत्त का निशान था, प्राप्त हुए थे।

4.5.3 तृतीय काल – 'कृष्ण–लोहित पात्र और चित्रित धूसर पात्र का संक्रमण काल

इस काल में भी पूर्ववर्ती पात्र परम्परा पूर्ववत मिलती है किन्तु साथ में कतिपय संख्या में चित्रित धूसर मृदभाण्ड भी मिलने लगते है। चित्रण काले रंग से लाल सतह के ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त इनके ऊपर के स्तर से चित्रित धूसर पात्र भी मिलते हैं। चित्रित अभिप्रायों में चौड़ी सीधी अथवा आढी सामनान्तर रेखायें है। कुछ में काले रंग में चित्रित कृष्ण लोहित और धूसर पात्रों पर भी किया गया है। यह स्तर चित्रित धूसर पात्र परम्पर के प्रारम्भिक स्तर का निर्देशन करता है।

इस स्तर को आद्य चित्रित धूसर पात्र परम्परा (Proto- PGW) के नाम से भी अभिहित करते हैं। उनके अनुसार कुछ पात्रों के प्रारम्भिक स्वरूप गैरिक पात्र परम्परा मालवा तथा बनास से सम्बन्धित किए जा सकते हैं जैसे पैरदार छिद्रयुक्त कटोरे (Legged bowl with perforations), होठदार गहरी तश्तरियों (Lipped spouted basin) आदि। इनके अतिरिक्त एक गोलाकार बाँस बल्ली से निर्मित घर की भूमितल योजना के प्रमाण मिले थे। इस काल के प्राप्त पुरावशेषों में ताम्बें की चूडियाँ, लोहे की वस्तुयें, पत्थर की गेंद, दो कंधी, वाणाग्र, हड्डी के सिर, टेराकोटा के मनके तथा गेंदें उल्लेखनीय है। सबसे महत्वपूर्ण चार ज्यामितीय आकार की टेराकोटा वस्तुयें थी।

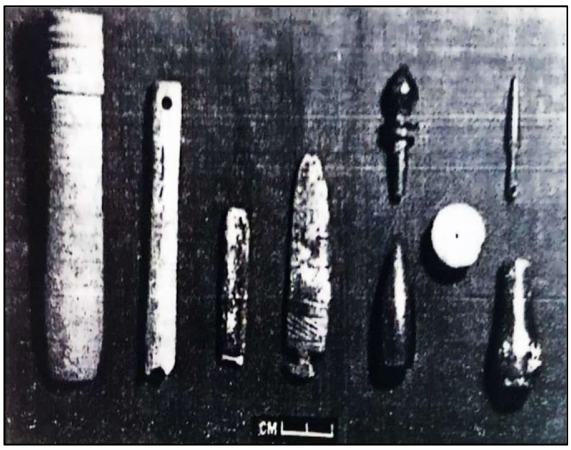

चित्र – 4.1 जखेड़ा से प्राप्त विविध अवशेष

चित्रित मिट्टी के बर्तनों की आवृत्ति बहुत कम है, जबकि मिट्टी के बर्तनों का बड़ा हिस्सा वही बना हुआ है जो द्वितीय काल में पाया गया था। ब्लैक स्लिप्ड वेयर, कृष्ण लोहित मृदभाण्ड से अधिक हैं। लाल बर्तन दो किस्मों में पाए जाते हैं, (अ) महीन से मध्यम कपड़े के साथ लेपित और (ब) बिना लेपित। पेंटिंग जो कि अधिकतर समानांतर रैखिक पैटर्न में की गई थी, उन्हें भी डबल स्लिप्ड वेयर पर नकारात्मक रूप से निष्पादित किया गया था। चित्रित लाल वेयर के कुछ टुकड़े मालवा ताम्रपाषाण मिट्टी के बर्तनों में बहुत करीब से मिलते–जुलते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अवधि के दौरान बस्ती का क्षेत्र काफी बढ़ गया है, जो कि साइट के लगभग आधे हिस्से को कवर करता है, जो कि पहले के द्वतीय काल की तुलना में जनसंख्या वृद्धि को दर्शाता है। उत्खनन से नियमित पोस्ट–होल से घिरी गोलाकार संरचनाएँ सामने आई हैं, जिनमें से सबसे बड़ा 6 मीटर व्यास का है। प्रोटो–पी.जी. डब्ल्यू. स्तरों से बरामद वस्तुएँ द्वतीय काल की तुलना में अधिक भौतिक समृद्धि का संकेत देती हैं। पुरावशेषों में कुदाल, दरांती, अंगूठियाँ, तीर के सिरे, लोहे की गांठें और स्लैग शामिल हैं, जिनकी कुल संख्या 19 है और एक चूड़ी सहित तांबे की 2 वस्तुएँ हैं। एक समृद्ध स्थानीय हड्डी उद्योग का प्रमाण मिला है। हड्डियों को आकार देने से पहले फर्श पर या विशेष रूप से तैयार प्लास्टर किए गए गड्ढों में भून दिया जाता था। बड़ी संख्या में सूक्ष्म–हड्डी के औजार और एक नालीदार कोर विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि वे ताम्रपाषाण संस्कृतियों के सूक्ष्मपाषाण उद्योग से बहुत मिलते–जुलते हैं। अन्य अस्थि अवशेष, जिनमें एक मनका, एक कंघी, सजे हुए पेंडेंट, बढ़िया पॉलिश वाले दर्पण के हैंडल, बिंदु, तीर के सिरे, आरी के निशान वाले सींग और अधूरी वस्तुएं पाई गईं थीं। बलुआ पत्थर की गेंदों के अलावा कार्नेलियन, एगेट, चैल्सेडनी और क्वार्ट्ज जैसे अर्ध–कीमती पत्थरों के मनके भी पाए गए। पाई गई टेराकोटा वस्तुओं में एक मातृ देवी की आकृति, घट के आकार का मनका, गेममैन, गेंदें और ज्यामितीय वस्तुएं शामिल हैं। विविध खोजों में क्रूसिबल और मिट्टी के बर्तनों की डिस्क शामिल हैं।

4.5.4 तृतीय काल(ब)

इस चरण का आवासीय जमाव 0.50–2.00 मीटर से भिन्न होता है, जो वर्तमान आकार तक फैले बस्ती क्षेत्र में आगे विस्तार को इस चरण के दौरान देखा गया है, जिसकी विशेषता बी आर डब्लू, ब्लैक स्लिप्ड और रेड वेयर की निरंतरता और चित्रित धूसर और ग्रे वेयर की अधिक संख्या में उपस्थिति है। विभिन्न मिट्टी के बर्तन और उनके प्रकार जोधपुरा द्वितीय, नोह तृतीय, अतरंजीखेड़ा तृतीय, आलमगीरपुर द्वितीय और हस्तिनापुर द्वितीय से मिलते जुलते हैं।

इस कालखण्ड में उन्नत चित्रित धूसर पात्र परम्परा के पात्र मिले थे। इनके साथ अचित्रित धूसर पात्र, कृष्ण लोहित पात्र, कृष्ण लेपित पात्र, लाल लेपित पात्र तथा सादे भी मिले थे। इस काल में आवास के कुछ भागों को मिट्टी की एक दीवार से घेरा गया था सम्भवतः यह सुरक्षा प्राचीर था । प्राप्त दीवार नीचे आधार पर 4.80 मी० चौड़ी है तथा 1.20 मी० की ऊचाई तक मिली थी। नदी की तरफ इसके दक्षिण में एक परिखा भी चिन्हित की गई थी। घरों को अण्डाकार, गोलाकार, आयताकार भूमितल योजनायें भी चिन्हित की गई थीं, और इस काल के 20 क्रमिक फर्श चिन्हित किए गए थे। पकी ईटों का प्रयोग सम्भवतः धार्मिक अनुष्ठानों के निमित्त करते थे।

ज्यामितिक शास्त्र में भी सम्भवतः इनकी प्रगति हो गई थी। एक धूसर पात्र पर प्रतिच्छेदी वृत्त (Intersecting circles) उत्कीर्णित मिले हैं। पुरावशेषों में उपरत्नों के मनके, हड्डी तथा लोहे की वस्तुयें, जैस्पर की कोर, आरी से कटे हुए हिरण की सींग आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त चूड़ियाँ, सुरमें की श्लाका मछली पकड़ने की कटिया, सूई (ताम्बे), कुदाल (Hoe), हसियाँ, माले के कल बरारीन कुल्हाडी, कौले, टेराकोटा की चकरी तकुआ (Spindle whris) मोहरे, डैबर (Dabber) आदि उल्लेखनीय है । उत्खनन में सोने के आभूषण तथा उनको बनाने के उपकरण प्रकाश में आए हैं, जिनसे स्पष्ट है कि स्वर्णाभूषणों का प्रचलन व्यापक हो गया था। इनके अतिरिक्त मिट्टी की तीन मानव आकृतियाँ, जो काले धूसर रंग की थी महत्वपूर्ण हैं। इनमें से एक स्त्री आकृति सम्भवतः साड़ी पहने है। इस काल की एक सड़क 4.45 मी० चौड़ी चिन्हित की गई थी। सड़क सम्भवतः पूर्व–पश्चिम दिशा में थी।

4.5.5 अन्य पुरावशेष

इन अवशेषों में अनूठी की तरह की संरचनाएँ, जिनमें से कुछ पकी हुई ईंटों से बनी हैं, किसी अन्य PGW साइट से रिपोर्ट नहीं की गई हैं। खाइयों G4 & H4 में, जो अलग–अलग मंजिलों से जुड़ी हैं, चार भूमिगत भंडारण गड्ढे पाए गए, जिन्हें अंदर से प्लास्टर किया गया था। उनमें से एक में बेलनाकार लैपिस लाजुली मनका और बीच में दो छेद

वाले हाथीदांत के पाँच सजे हुए बटन, कुछ मनकों के अलावा महत्वपूर्ण पुरावशेष मिले। खाई G7 में, एक उथले अनुष्ठानिक अग्नि–कुंड से, एक छोटे से हस्तनिर्मित कच्चे कटोरे के साथ एक साँप का कच्चा टेराकोटा हुड बरामद किया गया। इसी तरह, खाई C2 और F11 में प्रत्येक में अग्नि–कुंडों से जुड़ी पुरुष और महिला टेराकोटा मानव मूर्तियों की एक जोड़ी मिली, जबकि खाई 18 में अग्नि–कुंड से केवल एक महिला की टेराकोटा की मूर्ति मिली है। खाई C2 से मूर्तियाँ अच्छी कारीगरी प्रदर्शित करती हैं, जबकि अन्य बहुत ही अपरिष्कृत हैं, जो शायद संबंधित घरों में रहने वाले परिवारों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को दर्शाती हैं। विभिन्न घरों से मिली गोलाकार और अंडाकार भट्टियों के अलावा, अन्य उल्लेखनीय खोजों में दो गहरी कटोरे के आकार की मिट्टी की ओखली थीं, जिनमें आंतरिक रूप से कंकर की गांठें लगी हुई थीं और जो पत्थर की तरह कठोर थीं, जैसे कई अन्य पी.जी.डब्ल्यू. साइटों पर मिली थीं।

4.5.6 लोहे की वस्तुएँ

पी जी डब्ल्यू लोगों की भौतिक संस्कृति पर नई रोशनी डालते हुए, काल III बी के जमावों से बड़ी संख्या में पुरावशेष बरामद किए गए। कुल मिलाकर, लगभग 181 लोहे की वस्तुएं मिली हैं, जिनमें गांठ, गोटी के आकार की सिल्लियाँ, लावा और मैग्नेटाइट अयस्क का एक टुकड़ा शामिल है। लोहे की वस्तुओं को कई भागों वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. आक्रमण और रक्षा के हथियार, जैसे–तीर के सिरे, भाले, खंजर, लांस और मछली के हुक इत्यादि।
2. गृहपयोगी उपकरण, जैसे– पिन, सुई, चाकू, रिंग, बेंगल्स इत्यादि।
3. शिल्प उपकरण जैसे कुल्हाड़ी, कुल्हाड़ी, छेनी, छेदक और खुरचनी इत्यादि।
4. कृषि उपकरण, जिसमें दरांती, कुदाल, हल आदि शामिल हैं, इसके अलावा, कई अनिश्चित वस्तुएँ भी प्राप्त हुई है।

4.5.7 तांबे की वस्तुएँ

इस चरण से तांबे की 85 वस्तुएँ प्राप्त हुई है, उनमें कंगन, चूड़ियाँ, आँख वाली सुई, टूथपिक, सुरमा की छड़ें, नाखून छीलने वाली छड़ें, मोती, आभूषण के टुकड़े और एक थाली के अलावा कई अनिश्चित वस्तुएँ शामिल हैं।

4.5.8 सोने की वस्तुएँ

पाँच सोने की वस्तुएँ और सोने की पीन के दो छोटे टुकड़े विशेष उल्लेख के योग्य हैं क्योंकि ऐसी वस्तुएँ किसी अन्य उत्खनित PGW पुरास्थल से रिपोर्ट नहीं की गई हैं। सोने की वस्तुओं में गोल टर्मिनलों वाली एक सपाट शीट से बनी एक पूरी 'सर्पिल नाक की अंगूठी', एक पत्ती के आकार का आभूषण टुकड़ा, और अलग–अलग मोटाई के तार और गोल और चौकोर क्रॉस सेक्शन शामिल हैं। इनमें से बहुत पतले और महीन तार का एक छोटा कुंडल, जिसका कढ़ाई के काम में इस्तेमाल से इंकार नहीं किया जा सकता है, सोने में तार खींचने की एक उन्नत तकनीक को दर्शाता है।

4.5.9 हड्डी की वस्तुएँ

बड़ी मात्रा में प्राप्त की गई हड्डी की वस्तुएं, जिनकी संख्या 300 से अधिक है, उद्योग के आगे प्रसार का संकेत देती हैं। आरी के निशान और अधूरे सींगों की उपस्थिति से संकेत मिलता है कि उपकरण और वस्तुएं स्थानीय रूप से साइट पर निर्मित की गई थीं। उल्लेखनीय वस्तुओं में हड्डी के तीर के सिरे, जिनमें नक्काशीदार सजावट वाले कांटेदार और सॉकेट वाली किस्में, एकल या दोहरे नुकीले सूआ, सुइयाँ, मोती, सजाए गए दर्पण हैंडल, गेममैन, रील जैसे कान के आभूषण, हेयर–पिन, कंघी, सुरमा की छड़ें, सॉकेट वाली शंक्वाकार वस्तुएं, परिष्कृत और अत्यधिक पॉलिश की गई एवं सजायी गई शंक्वाकार वस्तुएं, जो संभवतः दर्पण के हैंडल के निचले सिरे पर फिट की जाती थीं, सजाए गए मातृ देवी मूर्तियाँ और कई अनिश्चित प्रकार शामिल थे। हाथीदांत की वस्तुएं जैसे कंघी, सजाए गए खंजर के आकार का पेंडेंट, और पाँच कोट के आकार के समान बटन जिन पर नक्काशीदार सजावट और बीच में दो छेद हैं, विशेष उल्लेख के योग्य हैं।

4.5.10 अर्ध–कीमती पत्थरों के अवशेष

अर्ध–कीमती पत्थरों का उपयोग मुख्य रूप से मोतियों के निर्माण के लिए किया जाता था, जिनमें से लगभग 106 नमूने PGW जमाव से प्राप्त किए गए थे। इन पत्थरो में एगेट, चौलेडोनी, क्वार्ट्ज, कार्नेलियन, जैस्पर इत्यादि हैं। ये मनके विभिन्न आकार–प्रकार और रंगों के होते हैं। कुछ कार्नेलियन मनकों पर नक्काशी भी की गई है। गंगा के दोआब में स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं होने वाले एगेट, क्वार्ट्ज, कार्नेलियन और जैस्पर के टुकड़े और फलक की उपस्थिति से संकेत मिलता है कि ये कच्चे माल न केवल दूर के व्यापार के माध्यम से प्राप्त किए गए थे, बल्कि इस स्थल पर पत्थर तराशने का एक समृद्ध स्थानीय उद्योग था। इस संबंध में, एक बेलनाकार लापीस लाजुली के मनके की खोज, जो किसी अन्य संबंधित गंगा घाटी स्थलों से रिपोर्ट नहीं की गई है, हालांकि राजस्थान में चक 86 से रिपोर्ट की गई है, अधिक महत्व रखती है।

4.5.11 टेराकोटा की वस्तुएँ

ऊपरी गंगा घाटी के प्रोटो–ऐतिहासिक काल की टेराकोटा कला के क्षेत्र में, जखेडा ने विलक्षण योगदान दिया है। इस अवधि के जमावों से दस से अधिक अद्वितीय मानव मूर्तियाँ – पुरुष और महिला दोनों, या तो जोड़े में या एकल में प्राप्त की गई हैं। उनका अनुष्ठानिक महत्व, जैसा कि पहले चर्चा की गई है, संदेह से परे भी है, क्योंकि उनमें से कुछ एक अनुष्ठानिक संदर्भ में पाए गए थे। अन्य उल्लेखनीय वस्तुओं में एक पक्षी का सिर, जानवरों की मूर्तियाँ, टेराकोटा ज्यामितीय आकृतियाँ, गेंदें (कुछ सजावट के साथ), एक शीर्ष (फिरकिनी) सहित गेममैन, कान की बालियाँ, सिर खुजलाने वाले, जाल–सिंकर, चमड़े की रबर, मूसल, विभिन्न आकारों के रोटी–टेकना और सजे हुए डिस्क शामिल हैं, जो बाकी की तुलना में अधिक संख्या में हैं। क्रूसिबल और मिट्टी के बर्तनों की डिस्क प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।

4.5.12 चतुर्थ काल– उत्तरी काली मार्जित पात्र परम्परा

इस काल में उत्तरी काली मार्जित पात्र परम्परा का प्रारम्भ होता है। यह चित्रित धूसर पात्र परम्परा में अतिच्छादन (Overlap) करती है। यह काल श्रावस्ती के समकालीन माना जा सकता है। इस काल में पुरावशेषों की संख्या में बहुलता हो जाती है। इस अवधि के शुरुआती चरणों के दौरान खोदी गई एक विशाल खाई मिली थी। इसकी लंबाई लगभग 90 मीटर थी। जली हुई ईंटों से बनी एक अपसाइडल संरचना के अवशेषों की पहचान मंदिर के रूप में की गई है (साही, 1994)। इसमें ईंटों की तीन क्रमिक परतें हैं, जो 4.70 मीटर लंबी और 1.55 मीटर चौड़ी हैं। संरचना में इस्तेमाल की गई ईंटें एक समान आकार की नहीं हैं। अन्य उल्लेखनीय वस्तुओं में नुकीले और सॉकेट वाली किस्मों के तीर के सिरे, बिंदु, मोती, स्टॉपर, कान की बालियाँ और हड्डी के गेममैन, अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के 52 मोती और चूड़ियाँ, कांच के मोती और गेममैन, टेराकोटा वायलिन के आकार की मानव मूर्तियाँ, मुड़े हुए सींगों के साथ बैल, कुत्ते और मेढ़े जैसी पशु मूर्तियाँ, पूरे शरीर पर नक्काशीदार सजावट और पैरों में छेद इत्यादि है। बलुआ पत्थर और क्वार्टजाइट की बरामद वस्तुओं में गेंदें, मोती, नेट सिंकर, शार्पनर, और मूसल शामिल थे। लोहे की लगभग 139 वस्तुएं मिलीं, जिनमें दरांती, तीर के सिरे, भाले, खंजर, चाकू, चॉपर, उस्तरा, सॉकेट, खूंटे, कीलें, हुक, छड़ें, अंगूठियाँ, पीन और लावा शामिल हैं। कुल मिलाकर, तांबे की 41 वस्तुएं भी प्राप्त की गईं है, जिनमें सुरमा की छड़ें, कान की बाली, नाक की अंगूठी, मोती, सुई, चूड़ियाँ और बर्तन शामिल हैं। धीरे–धीरे एनबीपीडब्ल्यू के अंतिम चरण के दौरान बस्ती उजडने लगी और यह स्थल बाढ़ की वजह से वीरान हो गया था। इस काल खण्ड की समाप्ति के साथ यहाँ की आबादी भी समाप्त हो जाती है।

सारांश

इस इकाई में वर्णित पुरास्थलों मथुरा कांपिल्य और जखेड़ा के उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन तीनों पुरास्थलों का अपना अलग–अलग महत्त्व था। मथुरा जहाँ धार्मिक और सांस्कृतिक नगरी के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वही कांपिल्य धार्मिक दृष्टिकोण से महत्त्व रखते हुए प्रशासनिक महत्त्व का स्थल प्रतीत होता है और जखेड़ा पुरातात्विक सांस्कृतिक विरासत को संजोए हुए, आज वर्तमान में भी अपने महत्त्व को बनाए हुए है। अंततः कह सकते हैं कि इन स्थलों के ऐतिहासिक एवं पुरातत्विक संदर्भ उत्तर प्रदेश और भारत दोनों के लिए महत्वपूर्ण विरासत है। यहाँ से प्राप्त कला और स्थापत्य अवशेष तत्कालीन समय की कला और स्थापत्य की झांकी को भी प्रस्तुत करते हैं। मथुरा से जो मूर्तियाँ 700 से 1200 ई० के बीच की मिलती हैं, वे देश के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि में रोचक एवं महत्वपूर्ण

हैं। समन्वित मूर्तियों के उदाहरण (यथा, हरिहर एवं हरिहर–पितामह आदि) इस बात के प्रमाण हैं कि विभिन्न धर्मावलम्बी साम्प्रदायिक भेदभाव छोड़कर विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध सम्मिलित राष्ट्रीय प्रतिरोध स्थापित करने के पक्ष में थे। इसी प्रकार जैन धर्म में भी हिन्दू देवी–देवताओं के समाहित होने के प्रमाण मिलते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
13. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।
14. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।
15. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44.
16. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

बोध प्रश्न

- मथुरा के प्रमुख धार्मिक स्थलों पर एक निबंध लिखिए।
- मथुरा पुरास्थल के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों की विवेचना कीजिये।
- कांपिल्य पुरास्थल पर एक निबंध लिखिए।
- जखेड़ा पुरास्थल के पुरातत्विक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए

इकाई – 5 : चोपानीमाण्डो, कोल्डिहवा, महगड़ा

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 चोपानीमाण्डो

5.3.1 अनुपुरापाषाण काल

5.4 कोल्डिहवा

5.5 महगड़ा

5.6 सारांश

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.8 बोध प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारत की प्रागैतिहासिक संस्कृति में विंध्य क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। चोपानीमंडो, कोल्डिहवा और महगड़ा उत्तर प्रदेश के विंध्य क्षेत्र में स्थित पुरास्थल है। इन तीनों पुरास्थलों से प्रागैतिहासिक संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। चोपानीमाण्डो से अनु पुरापाषाण काल, मध्यपाषाणकाल और विकसित मध्यपाषाणकाल के साक्ष्य प्राप्त हुए है। कोल्डिहवा और महगड़ा पुरास्थल से विंध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त होते हैं ये दोनों पुरास्थल एकल संस्कृति से संबंधित है, जो बेलन नदी घाटी के तट पर स्थित है। कोल्डिहवा पुरास्थल प्राचीनतम कृषि के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि लहुरादेवा पुरास्थल की खोज से पहले कृषि के प्राचीनतम साक्ष्य का प्रमाण कोल्डिहवा को माना जाता था। महगड़ा पुरास्थल से पशुपालन के महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। चोपानीमाँडो पुरास्थल से मध्य पाषाण कालीन आवासीय संरचना के साथ प्राप्त हुए है। अगर इन तीनों पुरास्थलों के इतिहास को देखा जाए तो प्रागैतिहासिक काल से लेकर ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति तक के साक्ष्य क्रमवार प्राप्त हुए हैं। इन पुरास्थलों की महत्ता को देखते हुए इनका विस्तृत विवेचन निम्नवत हैं–

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- अहिच्छत्र के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- चित्रित धूसर मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- हस्तिनापुर के इतिहास को जान सकेंगे।
- हस्तिनापुर के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- बिठूर पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक विरासत को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

5.3 चोपानीमाण्डो ($24^0 55'30''$ उत्तरी अक्षांश तथा $82^0 4'45''$ पूर्वी देशान्तर)

चोपानीमाण्डो एक ऐसा पुरास्थल है, जिसको कुछ विद्वान विन्ध्य क्षेत्र के अन्तर्गत रखते है, जैसे राधाकान्त

वर्मा, जी0 आर0शर्मा, जे0एन0 पाल आदि तथा कुछ विद्वान मध्य गंगा घाटी के स्थलों से साम्यता होने के कारण इस स्थल को इसी क्षेत्र के साथ समीकृत करके देखते है जैसे ए0के0 दूबे (दूबे. 2005 : 69)। विदुला जायसवाल द्वारा इस स्थल को नदी घाटीय वास–स्थल के रुप वर्णन किया गया है (जायसवाल. 1989 : 43)। यदि भौगोलिक वृद्धि दर को आधार बनाकर देखा जाय तो मध्य गंगा मैदान के अन्तर्गत को रखा जा सकता है क्योकि मध्य गंगा मैदान का विस्तार $27^0$30′ से 24′50′′ उत्तरी अक्षांश तथा $81^0$47′ से $87^0$50′ पूर्वी देशान्तर तक है (सिंह. 1971 : 183) और चोपानीमाण्डो पुरास्थल की स्थिति $24^0$55′30′′ उत्तरी अक्षांश तथा $82^0$4′45′′ पूर्वी देशान्तर पर है (शर्मा. 1980 : 1–10) जो मध्य गंगा मैदान के अन्तर्गत आता है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि चोपानीमाण्डो मध्य गंगा मैदान के अन्तर्गत तथा उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र के समीप स्थित है।

चोपानीमाण्डो इलाहाबाद जिले की मेजा तहसील में इलाहाबाद मुख्यालय से 77 किमी0 दक्षिण–पूर्व और देवघाट नामक स्थान से 3 किमी0 पूर्व दिशा में बूढ़ी बेलन नदी के बाये तट पर स्थित है। इस पुरास्थल पर सर्वप्रथम बी0डी0 मिश्रा ने 1967 में जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में उत्खनन किया था (आई0ए0आर0 1966–67: 38), जिसके द्वारा इस स्थल का कालानुक्रम निर्धारित हुआ। इस स्थल का पुनः बड़े पैमाने पर उत्खनन सन् 1978–79 में बी0बी0 मिश्रा द्वारा करवाया गया। उत्खनन के फलस्वरुप दस स्तर मिले है, जिनको तीन सांस्कृतिक कालों में बांटा गया है–

(1) अनुपुरापाषाण काल

(2) मध्य पाषाण काल

(अ) आरम्भिक मध्य पाषाण काल

(ब) प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल

(3) विकसित मध्य पाषाण काल

5.3.1 अनुपुरापाषाण काल

इस काल का प्रमाण, इस पुरास्थल के दसवें स्तर से मिलता है जो 20 से0मी0 मोटा है। इस जमाव से उपलब्ध सामग्री में लगभग 20 प्रतिशत अपेक्षाकृत बड़े, मोटे तथा चौड़े ब्लेड हैं जो उच्च पुरापाषाणिक ब्लेड परम्परा के अनुरुप हैं अधिकांश उपकरण रासायनिक रंग से युक्त हैं। इसमें अधिकांश ब्लेडों का अनुभाग त्रिकोणात्मक है यद्यपि नालीगत कोरों का विकास भी होने लगा था। 80 प्रतिशत उपकरण ब्लेड, भुथड़े पृष्ठ ब्लेड तथा छिद्रक आदि मध्य पाषाण युगीन उपकरणों के अनुरुप है। सम्मिलित रुप से न तो ये उच्च पुरापाषाण काल के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं न तो मध्य पाषाण युगीन उपकरण समुदाय के अन्तर्गत (वर्मा. 2001 : 102–103)। इस काल में प्रमुख उपकरण प्रकार फ्लेक, ब्लेड, बेधक, प्वाइंट छिद्रक, स्क्रेपर आदि मिलते है।

मध्य गंगा मैदान में प्राचीनतम मानव आवास का प्रारम्भ प्रारम्भिक नूतन काल की पाषाण संस्कृतियाँ से सम्बन्धित है जिसकी पहचान अनुपुरापाषाणिक संस्कृति के रुप में पहचानी गयी है। इस संस्कृति के उपकरण एक प्रकार से कड़ी मिट्टी के जमावों में बिखरे हुए मिलते हैं। ये स्थल घनुषाकार झीलों से निकलने वाली नदियों के किनारे स्थित हैं। इनका पुरातात्त्विक धरातल फाफामऊ (इलाहाबाद) के समीप गंगा के अनुभाग के तीसरे स्तर से सम्बन्धित है जो बेलन नदी अनुभाग के चतुर्थ ग्रेवेल से समीकृत किया जा सकता है, जहाँ से अनुपुरापाषाण संस्कृति के उसी प्रकार के उपकरण उपलब्ध हुए हैं जैसे गंगा के मैदान के उपरोक्त स्थलों से।

मध्य गंगा घाटी में इस प्रथम पाषाण संस्कृति के उपकरणों का निर्माण विभिन्न रंगो के काला, लाल, पीला और सफेद चर्ट पर किया गया है। कुछ उपकरण चैल्सिडनी पर बने हुए भी प्राप्त हुए हैं। पूर्णतः निर्मित और प्रयुक्त उपकरणों के साथ–साथ कोर और फलक की उपस्थिति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन उपकरणों का

निर्माण और प्रयोग इन्ही स्थलों पर किया गया था क्योंकि गंगा के मैदान में इन पत्थरों का मूल स्त्रोत नहीं था इसलिए कोर से तब तक ब्लेड निकाला गया जब तक वह अत्यन्त छोटा नहीं हो गया। पूर्णतः निर्मित उपकरणों को सारणी संख्या–5.1 में प्रस्तुत किया गया है–

सारणी संख्या–5.1 : पूर्णतः निर्मित उपकरण

क्रं0सं0	उपकरण	प्रतिशत
1.	पुनर्गठित ब्लेड	1.63
2.	भोथरे ब्लेड	4.65
3.	नॉचेज	0.15
4.	छिद्रक	1.63
5.	ब्यूरिन	0.38
6.	स्क्रैपर	2.01
7.	अर्घचन्द्रक	1.51

उपकरण वर्तमान स्थिति में धरातल के ऊपर है, इसलिए उन पर अत्यधिक रासायनिक काई है और ये अधिकांशतः टूटे हुए हैं। इन उपकरणों से सम्बन्धित जमाव अधिक मोटा नहीं है जिससे लगता है कि ये स्थल अस्थायी आवास के लिए ही प्रयुक्त किये गये थे। सम्भवतः ये अस्थायी अथवा ऋतुनिष्ठ आवास हैं (पाल. 1984 : 37–38)। इन स्थलों से कोई जैविक अवशेष भी नहीं मिला है, जिससे प्रतीत होता है कि प्रातिनूतन काल के अन्त में और नूतन काल के प्रारम्भ में मानव की जनसंख्या में वृद्धि और विन्ध्य क्षेत्र की शुष्क जलवायु तथा भोजन और पानी की कमी के कारण पाषाण युगीन मानव को गंगा और यमुना जैसी बड़ी नदियों को पार करके गंगा के मैदान में आना पड़ा जिसका प्रमाण अनुपुरापाषाण काल के ये स्थल प्रस्तुत करते है (पंत और पंत 1980)। प्रारम्भ में मानव का प्रव्रजन ऋतुनिष्ठ रहा होगा लेकिन आगे चलकर गंगा के मैदान की वन सम्पदा और झीलों तथा नदियों के हरे भरे होने कारण यहाँ की वानस्पतिक और जैविक सम्पदा के कारण मनुष्य यहाँ स्थायी रूप से आवास बनाने के लिए उन्मुख हुआ। यही कारण है कि अनुपुरापाषाण काल में हमें स्थायी आवास के प्रमाण नहीं मिलते हैं (शर्मा, मण्डल, मिश्रा एवं पाल. 1980 : 229–230)।

मध्य गंगा मैदान में अनुपुरापाषाण काल की तिथि की गणना विन्ध्य क्षेत्र के अवशेषों से प्राप्त रेडियों कार्बन तिथि विधि के आधार पर की जाती है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि गंगा के मैदान में मानव विन्ध्य क्षेत्र से ही आया था। बेलन घाटी के तृतीय ग्रेवेल से दो कार्बन चौदह तिथि (जूलाई 1973 फिजिकल रिसर्च लैबोरेटरी, अहमदाबाद) तथा महगड़ा के चतुर्थ ग्रेवेल से पाँच कार्बन 14 तिथि प्राप्त हुई है, जिन्हें सारणी संख्या–5.2 में प्रदर्शित किया गया है–

सारणी संख्या–5.2 : कार्बन चौदह तिथि

क्रं0सं0	पुरास्थल	तिथि
1.	बेलन घाटी के तृतीय ग्रेवेल से दो कार्बन 14 तिथि	23840±830 ई0पू0 17765±340 ई0पू0
2.	महगड़ा के ग्रेवल चार से पाँच कार्बन 14 तिथि	8080±115 ई0पू0 8175±160 ई0पू0 9360±190 ई0पू0 9945±180 ई0पू0 12000±400 ई0पू0

इन सबके आधार मध्य गंगा मैदान के अनुपुरापाषाण काल की तिथि लगभग 17,000 ई0पू0 से 10,000 ई0पू0 के बीच मानी जा सकती है (मिश्रा और गुप्ता. 1995 : 30)।

चोपानीमाण्डो एक ऐसा स्थल है जिसे कुछ विद्वान विन्ध्य क्षेत्र के अर्न्तगत तथा कुछ लोग मध्य गंगा मैदान के अर्न्तगत रखते है लेकिन यदि चोपानीमाण्डो की भौगोलिक स्थिति ($24^0$55′30′′ उत्तरी अक्षांश तथा $82^0$4′45′′ पूर्वी देशान्तर) पर ध्यान दिया जाय तो यह स्थल मध्य गंगा मैदान के अर्न्तगत आता है जिसका उत्खनन बी0डी0 मिश्र के द्वारा 1967 में करवाया गया था। स्थल के मध्य पाषाणिक चरण से लघु पाषाण उपकरणों के अलावा अन्न का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है यहाँ के तीसरे उपकाल से हस्त निर्मित मृदभाण्ड भी मिले जो अत्यन्त भंगुर है तथा बहुत अच्छी तरह से पके हुए नहीं हैं (चित्र सं0: 5.1)।

चित्र संख्या 5.1:चोपानीमाण्डो : हस्तनिर्मित मृदभाण्ड, बी0बी0मिश्र(1980)के सौजन्य से

चित्र संख्या 5.2: चोपानीमाण्डो :धान के भूसी का चित्र, (बी0बी0 मिश्र, 1980)

बर्तनों की मिट्टी भली–भॉति गुँथी हुई नहीं थी। उसमें बालू तथा कभी–कभी धान की भूसी और पुआल के छोटे–छोटे टुकड़े सालन के रुप में प्रयुक्त हुए है (चित्र संख्या: 5.2)। छोटे–छोटे कटोरे तथा कलश प्रमुख पात्र प्रकार है। बर्तनों की बाहरी सतह पर फूल–पत्ती तथा राख की सी छाप मिलती है (पाण्डेय. 2008: 301)। धान की भूसी का मृदभाण्ड बनाने के सालन में प्रयोग करना धान के उत्पादन की ओर संकेत करता है जो कि आगे चलकर नवपाषाण काल में स्पष्ट रुप से दिखाई देता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल में मानव का जीवन अत्यंत कठिन और

जटिलताओं से भरा हुआ था और मानव पहाड़ों, कन्दराओं और शैलाश्रयों में निवास करता था तथा शिकार के द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करता था। इस काल के बारे में जानने के साधन के रूप में उनके द्वारा निर्मित उपकरण उपलब्ध होते हैं। इन उपकरणों में उत्तरोत्तर विकास परिलक्षित होता है। उपकरण अच्छी किस्म के तथा आकार में छोटे (हैण्डएक्स से लघुपाषाण उपकरण) होते जाते हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि मानव का निरंतर प्रयास रहता है कठिनतापूर्ण जीवन को आसान और सरल बनाना। इस काल के अंत तक आते–आते मानव द्वारा शैल–चित्रकला, हस्तशिल्प (बेलन घाटी के लोहदा नाले से प्राप्त अस्थि मानव आकृति) तथा अस्थाई आवास का (पैसरा से प्राप्त प्रमाण) निर्माण करना प्रारंभ हो जाता है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य पाषाण कालीन मानव के भरण–पोषण के आधारभूत तत्व जंगली जानवरों के शिकार के साथ–साथ जंगली अनाज के दानों का प्रयोग भी था। परन्तु लघु पाषाण उपकरणों की अधिकता, सिल–लोढ़ों का प्रमाण, महदहा से प्राप्त लेपन युक्त फर्श का प्रमाण तथा चोपानीमाण्डो से प्राप्त मृदभाण्डों में धान की भूसी का प्रयोग मानव द्वारा अन्न उत्पादन करने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का संकेत करता है, अर्थात यह कहा जा सकता है कि मध्य पाषाण काल के उत्तरवर्ती चरण तक आते–आते अन्न का उत्पादन एवं पशुपालन किया जाने लगा था।

5.4 कोल्डिहवा

कोल्डिहवा पुरास्थल का भारतीय नव पाषाणिक संस्कृति के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुरास्थल से प्राचीनतम खेती के साक्ष्य की प्राप्ति हुई है, इस विशेषता की वजह से यह पुरास्थल विश्व पटल पर चमत्कृत है। विंध्य क्षेत्र में स्थित यह पुरास्थल नवपाषाण कालीन संस्कृति के इतिहास को समेटे हुए है। यह पुरास्थल इलाहाबाद (वर्तमान में प्रयागराज) जिले की कोरांव तहसील में नगर मुख्यालय से दक्षिण पूर्व दिशा में लगभग 85 किलोमीटर की दूरी पर बेलन नदी के बाएं तट पर स्थित एक छोटा सा गाँव है। इस पुरास्थल को प्रकाश में लाने का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के बी.डी. मिश्र को है। इनके द्वारा सन् 1964 ईस्वी में किए गए पुरातत्विक अन्वेषण के फलस्वरूप कोल्डिहवा पुरास्थल विद्वानों की नजर में आया। भारतीय पुरातत्व के लिए अमिट छाप छोड़ने वाले प्रोफेसर जी.आर. शर्मा के निर्देशन में सन 1972–73 एवं 1973–74 में बी.बी. मिश्र तथा रंजीत सिंह के द्वारा उत्खनन कराया गया। इसके पश्चात् सन् 1974–75 एवं 1975–76 में डी मण्डल तथा जे.एन. पाल के द्वारा उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के परिणामस्वरूप यहाँ से तीन सांस्कृतिक कालों के साक्ष्य प्राप्त हुए है, जो निम्नवत् है–

1. नवपाषाणिक संस्कृति
2. ताम्रपाषाणिक संस्कृति
3. लौह कालीन संस्कृति

कोल्डिहवा पुरास्थल विन्ध्य क्षेत्र का सबसे पहला पुरास्थल है जहाँ से विंध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति के बारे में जानकारी हुई। यहाँ की नवपाषाणिक संस्कृति का जमाव 45 सेंटीमीटर मोटा है तथा नीचे से चौथे तथा तीसरे स्तर इस काल से संबंधित है। इस स्तर से गोल समनातन्तर वाली प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ, गदा शीर्ष, हथौड़े एवं सिल–लोढ़े प्राप्त किए गए हैं। चर्ट, चाल्सेडनी अगेट, क्वार्टज आदि के बने हुए लघु पाषाण उपकरण भी इस स्तर से प्राप्त होते हैं।

यहाँ के नवपाषाणिक स्तर से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर आवासीय संरचना से संबंधित साक्ष्य स्पष्ट नहीं प्राप्त हुए हैं। उत्खनन से सरकंडों की छाप से युक्त जली हुई मिट्टी के टुकड़े मिले हैं जिससे यह इंगित होता है कि बांस–बल्लियों एवं घास–फूस से निर्मित झोपड़ियों में लोग निवास करते थे। यहाँ के लोगों का आर्थिक जीवन कृषि तथा पशुपालन पर निर्भर था। कोल्डिहवा पुरास्थल से धान की खेती के साक्ष्य मिले हैं। इस काल के हाथ से बने मिट्टी के बर्तनों में धान के अधजले दाने भूसी तथा पुआल के टुकड़े चिपके हुए प्राप्त हुए हैं, जिनके विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यहाँ के लोग धान की खेती करते थे तथा गाय, बैल, भैस तथा भेड़ बकरी प्रमुख पालतू पशु थे। सुअर तथा हिरण आदि जंगली पशुओं का शिकार भी करते थे। छोटे–जीव एवं जलीय जीव जैसे कछुआ, मछली इत्यादि को खाने में प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यहाँ का मानव शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों था।

यहाँ के लोग मिट्टी के हस्त निर्मित बर्तनों का प्रयोग करते थे, जिसमे डोरी छाप मृदभांड, खुरदरे मृदभांड, चमकाए हुए लाल मृदभांड, चमकाए हुए काले मृदभांड प्रमुख हैं। प्रमुख पात्रों में छिछले और गहरे कटोरे, टोटीदार कटोरे तथा घड़े प्रमुख हैं। खुरदरे मृदभांड लाल रंग के हैं जिनके बाहरी भाग को जानबूझकर खुदरा बनाया गया है। इसमें कटोरे, छिछले तसले, तश्तरियाँ चौड़े मुँह की हांडियाँ तथा घड़े प्रमुख प्रकार हैं। बर्तनो की बाहरी सतहों पर आड़ी–तिरछी तथा अंगुष्ठ–नख डिजाइनों से अलंकृत किया गया है। यहाँ की नव पाषाणिक संस्कृति को मोटे तौर पर लगभग 7000 ई0पू0 से लेकर 4500 ई0पू0 के मध्य रखा जा सकता है।

5.5 महगड़ा

विंध्य क्षेत्र की नवपाषाण कालीन संस्कृति में महगड़ा पुरास्थल का महत्वपूर्ण स्थान है। यह पुरास्थल इलाहाबाद जिले (प्रयागराज) की कोरांव तहसील के पहाड़ी क्षेत्र में बेलन नदी के दाहिने तट पर इलाहाबाद मुख्यालय से दक्षिण पूर्व दिशा में लगभग 85 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह पुरास्थल कोल्डिहवा पुरास्थल से विपरीत दिशा में स्थित है अर्थात कह सकते हैं की बेलन नदी के बायें तट पर कोल्डिहवा और दाहिने तट पर महगड़ा स्थित है। इस पुरास्थल की खोज 1975–76 ईसवी में हुई। सन् 1976–77 और 1977–78 ईस्वी के बीच दो उत्खनन सत्रों में डी. मंडल तथा जे. एन. पाल ने प्रोफेसर जी आर शर्मा के निर्देशन में करवाया। उत्खनन के उपरान्त यहाँ से 2.60 मीटर का सांस्कृतिक जमाव प्रकाश में आया है जिसे 17 स्तरों में विभाजित किया गया है। इस पुरास्थल से नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, जिनका विवरण निम्नवत हैं–

इस पुरास्थल के उत्खनन में डोरी छाप मिट्टी के बर्तन, खुरदरे तथा रगड़कर चमकाए गए मृदभाण्ड के टुकड़े प्रायः सभी स्तरों से मिले हैं। झोपड़ियों के साक्ष्य के रूप में फर्श और स्तम्भ गर्त प्राप्त हुए हैं। इस पुरास्थल पर कुल मिलाकर 20 झोपड़ियों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, जो गोलाकार अथवा अंडाकार है। इन झोपड़ियों का ब्यास औसतन 4. 30 मीटर से 6.40 मीटर तक मिलता है। झोपड़ियों की फर्श से नवपाषाणिक प्रस्तर उपकरण, मृदभांड तथा पशुओं की हड्डियाँ प्राप्त हुई है। गाय, बैल, भैस, भेड़, बकरियाँ महगड़ा के लोगों के पालतू पशु थे और हिरण तथा जंगली सुअर इत्यादि का भी शिकार करते थे। महगड़ा की बस्ती के पूर्वी सिरे पर 12.5 X 7.5 मीटर के आयताकार पशुबाड़े के साक्ष्य मिले हैं, जिनमें पूर्व दिशा में दो और दक्षिण में एक, कुल तीन दरवाजे थे। पशुबाड़े की पहचान जानवरों के खुरों से की गयी है। कुछ विद्वान इसे पशुबाड़ा नहीं स्वीकार करते हैं।

महगड़ा से प्राप्त नवपाषाणकालीन उपकरणों में कुल्हाड़ियाँ, वसुली, छेनी, हथौड़ी, सिल–लोढे, गोफन पाषाण, चकरी का पत्थर तथा लघु पाषाण उपकरण हैं। इसके अलावा महगड़ा के मृदभांडों को बनाने में धान की भूसी, पुआल इत्यादि का प्रयोग हुआ है। इनके कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले हैं, जो महगड़ा में निवास करने वाले मानव के द्वारा धान की खेती करने की ओर संकेत करते हैं। महगड़ा से सांवा के दाने तथा झरबेर की अधजली गुठलियाँ भी यहाँ से मिली है। महगड़ा के नवपाषाणिक साक्ष्यों को पांचवीं से चौथी सहस्त्राब्दी ई0पू0 के आस–पास का माना जाता है।

5.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है विभिन्न क्षेत्र में मानव की प्रारंभिक इतिहास का का साक्ष्य प्राप्त होता है जिसमें चोपानीमाँडो से प्राप्त साक्ष्य लघु पाषाण उपकरण, मिट्टी के बर्तन (जिसमे धान की भूसी का प्रयोग हुआ है हस्त निर्मित और खुरदरे प्रकार के हैं) एवं झोपड़ियों के साक्ष्य इस ओर संकेत करता है कि यहाँ रहने वाले लोगों का जीवन खाद्य संग्रहण और शिकार पर निर्भर था। चोपानीमाँडो से कुछ दूरी पर स्थित कोल्डिहवा और महगड़ा व्यवस्थित कृषि एवं पशुपालन के साक्ष्य के प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं यह इस बात की ओर संकेत करते हैं कि मानव खाद्य संग्रहण से कृषक जीवन की ओर अग्रसर हुआ। इन विशेषताओं की वजह से ही विंध्य क्षेत्र के ये तीनों पुरास्थल मानवीय इतिहास की विकास की गति को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।

3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार 2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
13. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
14. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।
15. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44
16. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

5.8 बोध प्रश्न

- अनुपुरापाषाण काल से आप क्या समझते हैं? चोपानीमाण्डो के संदर्भ में इसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
- चोपानीमाण्डो पुरास्थल के महत्त्व पर एक निबंध लिखिए।
- नवपाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में कोल्डिहवा पुरास्थल पर विस्तृत टिप्पणी लिखें।
- महगड़ा पुरास्थल के सांस्कृतिक जमावों की विवेचना कीजिये।

इकाई – 6 : श्रृंग्वेरपुर, झूँसी, हेतापट्टी, मादरडीह

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 श्रृंग्वेरपुर,

6.3.1 प्रथम कालखण्ड

6.3.2 द्वितीय कालखण्ड

6.3.3 तृतीय कालखण्ड

6.3.4 चतुर्थ कालखण्ड

6.3.5 पंचम कालखण्ड

6.3.6 षष्ठम कालखण्ड

6.3.7 सप्तम कालखण्ड

6.4 झूँसी

6.5 हेतापट्टी

6.6 मादरडीह

6.6.1 खोज एवं उत्खनन

6.6.2 मृदभाण्ड एवं अन्य पुरावशेष

6.6.3 आवासीय साक्ष्य

6.6.4 मूर्ति और स्थापत्य

6.7 सारांश

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.9 बोध प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

उत्तर प्रदेश के गंगा नदी एवं उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित मैदान में स्थित पुरास्थल श्रृंग्वेरपुर,झूँसी, हेतापट्टी तीनों पुरास्थल प्रयागराज में स्थित है और मादर डीह पुरास्थल जौनपुर जनपद में स्थित हैं। प्रयागराज में स्थित श्रृगवेरपुर वहीं पुरास्थल है, जहाँ पर प्रभु श्रीराम के आगमन पर केवट निषादराज ने गंगा पार कराया था। गंगा पार करके प्रभु श्रीराम पहले गंगा किनारे पर स्थित भारद्वाज आश्रम पहुंचे थे, जो आज का बालसन चौराहा के नाम से प्रसिद्ध है। इस भारद्वाज आश्रम के विपरीत दिशा में गंगा के उस पार हेतापट्टी पुरास्थल स्थित है। इस पुरास्थल पर उत्खनन कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रोफेसर जगन्नाथ पाल के द्वारा करवाया गया था और नव पाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए थे। आज के संगम स्थल के एक तरफ अकबर का किला स्थित है और दूसरी तरफ झूँसी पुरास्थल स्थित है, जो कभी प्रतिष्ठानपुर के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ से भी नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं अर्थात् हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय का प्रयागराज शहर गंगा नदी के दाहिनी तरफ स्थित है और उसके विपरीत दिशा में या दूसरी तरफ झूँसी और हेतापट्टी जैसे नवपाषाणिक स्थल स्थित है, जो केवल प्रयागराज ही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश और भारत की नव पाषाणिक संस्कृति तक की प्राचीनता को स्थापित करते हैं। मैदानी क्षेत्रों में स्थित यह दोनों पुरास्थल इस दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण

है क्योंकि विंध्य क्षेत्र से निकल कर मानव द्वारा गंगा मैदान में अपने आवास को बनाया गया था। मादरडीह पुरास्थल का उत्खनन काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रोफेसर अनिल कुमार दुबे के निर्देशन में करवाया गया। यह पुरास्थल प्रयागराज के पड़ोसी जनपद जौनपुर के इतिहास को प्रकाशित करता है। इन चारों पुरास्थलों का विस्तृत विवेचन निम्नवत हैं–

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- श्रृंग्वेरपुर के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- धूसर मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- झूँसी के इतिहास को जान सकेंगे।
- झूँसी के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- मादरडीह के इतिहास को जान सकेंगे।
- हेतापट्टी पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक विरासत को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

6.3 श्रृंग्वेरपुर (25^0 35'' 14.11'' उत्तरी अक्षांश, 81^0 38'' 30.49'' पूर्वी देशान्तर)

श्रृंग्वेरपुर पुरास्थल,उत्तर प्रदेश के प्रयागराज से 36 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में इलाहाबाद उन्नाव राज्यमार्ग से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर सिंगरौर गाँव में गंगा के बायें तट पर स्थित है। प्राचीन टीला उत्तर–दक्षिण दिशा में फैला हुआ है, जिसकी अधिकतम ऊचाई निकटवर्ती भूमि से लगभग 10 मीटर है। श्रृंग्वेरपुर एक धार्मिक स्थल है, हिंदू धर्म में श्रृंग्वेरपुर धाम प्रभु श्री राम से जुड़ा पवित्र स्थलों में से एक माना जाता है।रामायण में जिन श्रृंगी ऋषि का नाम हमें सुनने को मिलता है, वो इसी धाम पर निवास किया करते थे। यह मंदिर गंगा किनारे बसे एक टीले पर बना हुआ है। राम नवमी के दिनों में इस मंदिर में काफी भीड़ देखने को मिलती है। यहाँ दर्शनार्थी आकर माँ गंगा का स्नान करते हैं और इसके बाद प्रभु श्री राम के दर्शन पाते हैं। इस पुरास्थल पर सात भिन्न स्थनों पर दिसम्बर 1977 से तीन सत्रों में बी०बी०लाल ने शिमला एडवांस्ड स्टडी तथा पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग के सयुक्त तत्वाधान में उत्खनन कार्य किया है।उत्खनन के फलस्वरूप द्वितीय सहस्राब्दी ईसापूर्व के अन्तिम चरण से मध्यकाल तक के जमाव प्रकाश में आए जिन्हें निम्न काल खण्डों में विभाजित किया गया है–

प्रथम कालखण्ड – 1050 – 1000 ईसापूर्व

द्वितीय कालखण्ड – 950 – 700 ईसापूर्व

तृतीय कालखण्ड – 700 – 250 ईसापूर्व

चतुर्थ कालखण्ड – 250 ईसापूर्व – 200 ईस्वी

पंचम कालखण्ड – 300 – 600 ईस्वी

षष्ठम् कालखण्ड – 600 – 1300 ईस्वी

सप्तम् कालखण्ड– 17 वीं – 18 वीं शताब्दी

6.3.1 प्रथम कालखण्ड

सबसे निचला जमाव 30–50 से०मी० मोटा पीली मिट्टी का था, जिसे लेयर 19E कहा गया है। यह प्राकृतिक मिट्टी पर आधारित था। इस जमाव से लाल मृदभाण्ड प्राप्त हुए थे. जिन्हें दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वर्ग के बर्तन भली–भाँति गूँथी मिट्टी से बने थे तथा उन्हें ठीक से पकाया भी गया था। दूसरे वर्ग के बर्तन थोड़ा रूक्ष

प्रकार के थे तथा उन्हें भलीभाँति पकाया भी नहीं गया था। दोनों ही वर्गों के बर्तनों पर प्रायः एक प्रकार का लेप मिलता है तथा कभी–कभी प्रथम वर्ग के बर्तनों पर काले रंग से चित्रण मिलता है। चित्रण साधारण रेखाओं अथवा रेखांकित हीरक (Hatched Diamonds) अभिप्रायों द्वारा काले रंग से किया गया है। कुछ बर्तनों पर अलंकरण क्षैतिज पट्टी चिपकाकर (Applique horizontal bands) तथा उत्कीर्णन (Incised designs) द्वारा किया गया है। उत्कीर्णित अभिप्रायों में कंघी अभिप्राय (Comb pattern), समानान्तर रेखायें आदि उल्लेखनीय है। बर्तनों के प्रकारों में ऊपर की ओर मुड़ी बारी के जार, कटोरे, छिछले प्रकार के बेसिन, प्लैटर, घड़े, तश्तरियों है। कुछ ठीकरों के आकार साधार तश्तरियों, गोलाकार टोटीवाले (Tubualer Spout) कटोरे अथवा बेसिन (Bowl or Basin) अथवा लूप हैंडिल के समान है। बी० बी० लाल की धारणा है कि यह कहना कठिन है कि कहाँ तक यह गैरिक पात्र परम्परा से मिलती है। इसका कोई सम्बंध ककोरिया से प्राप्त मृदभाण्ड से भी नहीं प्रतीत होता है।उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर अनुमान किया जाता है कि ये लोग बांस, बल्ली, आदि से घरों का निर्माण करते थे। पुरावशेषों के रूप में मात्र कुछ मिट्टी की छिद्रयुक्त अथवा बिना छेद की चकरी तथा कार्नेलियन का एक फलक प्राप्त हुआ है।

इस काल खण्ड से तीन ऊष्मादीप्ति तिथियाँ प्राप्त है, जो क्रमशः 3015±280 वर्ष पूर्व, 2850±270 वर्ष पूर्व तथा 2900±380 वर्ष पूर्व है। चूँकि इस कालखण्ड का जमाव बहुत कम था अतः इसे 1050–1000 ईसापूर्व के अन्तर्गत रखा गया है।बी० बी० लाल यहाँ से प्राप्त लाल पाटरी को गैरिक मृदभाण्डों के समकक्ष रखते हैं। उनके अनुसार गंगा घाटी में गैरिक पात्र परम्परा द्वितीय सहस्त्राब्दी ईसापूर्व के अन्तिम चरण तक थी। श्रृगवेरपुर इस पात्र परम्परा के अन्तिम चरण का निर्देश करता है।

6.3.2 द्वितीय कालखण्ड

प्रथम कालखण्ड तथा दूसरे कालखण्ड के मध्य थोडा अन्तराल मिलता है।इस कालखण्ड का औसत जमाव 1.50 मीटर है, जिसके अन्तर्गत स्तर19 से 14 तक आता है। इस काल खण्ड के जमाव से काली लेपित (Black Slipped) कृष्ण लोहित (Black and Red Ware), बर्निश्ड धूसर पात्र (Burnished Grey Ware) तथा लाल मृदभाण्ड मिलते है। इस काल खण्ड को भी द्वितीय उपकाल 'अ' तथा द्वितीय उपकाल 'ब' में विभाजित कर सकते है। कालखण्ड द्वितीय उपकाल 'अ' में कृष्ण लोहित मृद्भाण्डों का आधिक्य है जो द्वितीय उपकाल 'ब' में समाप्त होने लगते हैं। जिन कृष्णलेपित (Black slipped) मृदभाण्डों से लेप हट गया था, वे साधारण धूसर पात्रों के समान प्रतीत होते हैं। पुरावशेषों में शर पुच्छयुक्त हड्डी के वाणाग्र, हड्डी के लटकन तथा मिट्टी एवं उपरत्नों–जैस्पर तथा एक सोने का मनका उल्लेखनीय है ।

इस काल खण्ड के स्तर 19 से एक कार्बन तिथि 2856 वर्ष पूर्व प्राप्त हुई है, जो MASCA शुद्धि के बाद 1010–900 ई0पू0 निर्धारित की गई है। अतः द्वितीय काल 'अ' को 950–900 ईसापूर्व के मध्य रखा गया है। द्वितीय उपकाल 'ब' के लिए 2743±300 वर्ष पूर्व की ऊष्मादीप्ति तिथि है तथा एक कार्बन –14 तिथि 2700±130 वर्ष पूर्व है। लेयर 17 से भी तीन ऊष्मादीप्ति तिथियाँ प्राप्त हुई है, जो क्रमशः 2690±280 वर्ष पूर्व, 2769±400 वर्ष पूर्व तथा 2600±280 वर्ष पूर्व की है। सम्मिलित रूप से इन तिथियों के आधार पर इस कालखण्ड को 950–700 ईसापूर्व में रखा गया है।

6.3.3 तृतीय कालखण्ड

तृतीय काल खण्ड में उत्तरी–कृष्ण–मार्जित मृदभाण्ड परम्परा के पात्र मिलने लगते हैं। इस जमाव की औसत मोटाई 2.80 मीटर है तथा इसे 'अ', 'ब' तथा 'स'तीन उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। काल खण्ड 'अ' में उत्तरी–कृष्ण मार्जित मृदभाण्डों का बाहुल्य था, जो विविध रंगों–सुनहले, रजत, नीले, स्पात रंग, धूसर तथा काले में मिलते हैं। इसके साथ कृष्ण–लेपित पात्र भी मिलते थे। चित्रित धूसर प्रकार के भी कुछ बर्तनों के चित्रण अभिप्रायों आदि के आधार पर कहा जा सकता है कि इनका चित्रित धूसर पात्र परम्परा के लोगों से घनिष्ठ सम्बंध था। उपकाल तृतीय 'ब' में अहिछत्र XA प्रकार के लघुपात्र तथा कोखदार हाण्डी प्रयोग में आ जाती है। उपकाल तृतीय 'स' में उत्तरी–कृष्ण मार्जित पाटरी की गुणवत्ता तथा संख्या में कमी आ जाती है तथा रूक्ष धूसर पात्रों की अधिकता होने लगता है। उपकाल प्रथम तथा द्वितीय में पकी ईटों से निर्मित संरचनायें उपलब्ध नहीं थीं किन्तु तृतीय 'स' में इनके

प्रयोग के प्रमाण मिलने लगते हैं।

इस चरण से प्राप्त प्रमुख पुरावशेषों में तीन ताम्रपात्रों, जिसमें से एक टोंटीदार था, एक लम्बे हाथ वाली कलछी, मिट्टी की बनी स्त्री प्रतिमा तथा गेंदें, उपरत्नों, सोने तथा चॉदी के मनके मिट्टी के मनके, अगेट तथा चाल्सेडनी के बेलनाकार माप (Weight) हड्डी के शर, ताबें तथा लोहे की वस्तुएं, लेखविहिन आहत तथा ढले ताबें तथा चांदी के सिक्के आदि है। चूंकि इस तथा इसके पूर्ववर्ती काल में अन्तराल नहीं है अतः इसका प्रारम्भ भी 700 ई0पू0 में रखा गया है। बी० बी० लाल के अनुसार उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा NBPW का प्रारम्भ 700 ई0पू0 से तथा अन्त 300 ई0पू0 के लगभग निश्चित किया जा सकता है।

6.3.4 चतुर्थ कालखण्ड

इस काल खण्ड का सम्पूर्ण औसत जमाव 2.75 मीटर है, जिसे दो उपकालों में विभाजित कर सकते हैं। इस काल की प्रमुख पाटरी लाल पाटरी है तथा उत्तरी कृष्ण मार्जित तथा चित्रित धूसर पात्रों का नितान्त अभाव है। लाल पात्रों में अन्दर की ओर मुड़े बारी के कटोरे तथा चौरस आधार के सीधी बारी की तश्तरियाँ चतुर्थ 'अ' उपकाल के उल्लेखनीय पात्र प्रकार हैं। चतुर्थ 'ब' उपकाल के पात्र प्रकारों में सीधी तीक्ष्ण बारी के कटोरे, छिद्रयुक्त बर्तन, लम्बी सीधी गर्दन वाले पात्र, दवात की आकृति के ढक्कन तथा गहरी धारीदार तश्तरी इत्यादि प्रमुख है। पकी ईटों से निर्मित संरचनायें इस काल के उपकालों में चिन्हित की गई थी, जिनमें SVP-1 की एक संरचना विशेष उल्लेखनीय थी, जिसमें अनेक कमरे तथा उनसे सम्बधिंत पकी ईटों से निर्मित फर्शे एक नाली तथा सोकेज पिट थे। सोकेज पिट को चार मीटर तक की गहराई तक खोदा गया था किन्तु उसका अन्त नहीं मिला।उपकाल चतुर्थ 'अ के महत्वपूर्ण पुरावशेषों में शुभ बृषभ प्रकार का सिक्का अयोध्या नरेशों के सिक्के तथा शुंग मृण्मूर्तियाँ थी। उपकाल चतुर्थ 'ब' के पुरावशेषों में कुछ सील तथा सीलिंग जिसमें से एक पर 'घनकश' पहली शती ई0पू0–ईसवी की लिपि में लिखा था तथा विमकैडफसीस के सिक्के थे, उल्लेखनीय हैं।

उपकाल चतुर्थ 'ब' में पकी ईटों से निर्मित एक विशाल तालाब मिला था। इसकी दो इकाइयाँ थी तथा पानी आने तथा निकलने की बहुत सुन्दर व्यवस्था थी। यह टैंक ऊँचे टीले के उत्तर में निचले क्षेत्र में परती भूमि में खोदा गया था। टैंक के किनारे तीन सोपान पकी ईटों से निर्मित थे। भारत में उत्खनित यह विशालतम तालाब है।तालाब में पानी एक नहर के द्वारा आता था जो तालाब के उत्तरी किनारे पर थी। इसमें गंगा का पानी एक नाले से आता था जब गंगा में बाढ़ होती थी। गंगा का पानी पहले एक जलाशय में जाता था, जिसकी तलहटी तालाब से काफी नीची थी, जिसकी वजह से सभी कीचड़ तथा मिट्टी उसकी तलहटी में रह जाता था तथा केवल स्वच्छ जल ही तालाब में जाता था। पानी का प्रवेश जहाँ से होता था वहाँ एक आर्च के आकार की पकी ईंटों की संरचना थी। इस चाप के मध्य में 1.60 मी० चौड़ा जल प्रवेश का मार्ग था, जो कुछ सोपानों से होता हुआ गिरता था। टैंक में पानी जिस स्थान पर गिरता था वहीं पर 64X48 X 12से०मी० आकार की ईंटें बिछी थी, जबकि ईटों का औसत आकार 43X28X7 से०मी० था।जल प्रवेश की दिशा से तालाब की प्रथम ईकाई (टैंक अ) 34 मीटर लम्बी,13 मीटर चौडी तथा चार मीटर गहरी है। तालाब की दूसरी ईकाई (टैंक ब) की वास्तविक लम्बाई का आकलन नहीं किया जा सका किन्तु यह कम से कम 43 मीटर लम्बी, 26 मीटर चौड़ी तथा 4 मीटर गहरी है। दोनों तालाब 5.30 मीटर लम्बी तथा 1.35 मीटर चौडी नहर से जुड़े थे। इस नहर से थोड़ापूर्व की ओर पाँच सोपानों की सीढ़ियों थी, जिससे स्नान करने वाले नीचे जा सकते थे। टैक दो प्रथम की अपेक्षा अधिक बड़ा तथा गहरा था। इस तालाब में भी एक स्थान पर सात सीढियों बनी थी, जिसके द्वारा नीचे उत्तरा जा सकता था।इस टैंक के धरातल से गोद में बच्चे के साथ हारीति की मिट्टी की प्रतिमा मिली थी।

6.3.5 पंचम कालखण्ड

इस काल खण्ड की प्रमुख पात्र परम्परा गहरी लाल लेपित पात्र परम्परा (Bright Red Slip bed Pottery)

थी। इस काल के प्रमुख पात्र प्रकारों में साधार कटोरे (Bowls with footed base), नीचे झुके बारी के जार (Jars with drooping rim) थे। इस काल के पुरावशेषों में गुप्तयुगीन मृण्मूर्तियाँ उल्लेखनीय थी। इस काल की तिथि लगभग 300–600 ईस्वी के मध्य थी।

6.3.6 षष्ठम कालखण्ड

इस काल के पुरावशेषों में गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र के 13 चांदी के सिक्के थे, जो कुछ आभूषणों के साथ एक पात्र में रखे थे ।इस काल की तिथि लगभग 300–600 ईस्वी के मध्य थी।

6.3.7 सप्तम कालखण्ड

इस काल का एक बड़ा घर मिला था, जिसकी अधिकांश दीवारें चोरी हो गई थी किन्तु प्लास्टर अभी भी उपलब्ध था, जिससे उसकी रूप रेखा निर्मित की जा सकी । इस काल की तिथि लगभग 17 वीं–18वीं ईस्वी के मध्य थी।

इस प्रकार शृंग्वेरपुर से प्राप्त अवशेषों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस पुरास्थल पर लगभग 1100 ई0पू0 के आस–पास मानव का आगमन होता है और मुगल काल के अंतिम समय तक गुलजार रहता है। इस स्थल के बारे मेंकहा जाता है कि वनवास के समय में भगवान राम, माता सीता और लक्ष्मण सहित यहाँ आए थे। उस समय शृंग्वेरपुर निषादराज की राजधानी था। निषादराज मछुआरों के राजा थे, यहीं निषादराज की प्रभु श्री राम से मुलाकात हुई थी। इसके बाद उसी जगह से भगवान राम ने नाव से गंगा पार करने की बात कही, निषादराज ने नाव पार करने की यह शर्त रखी कि उन्हें प्रभु के पैर धुल कर उनके पैरों से लगा पानी पीना है। प्रभु निषाद का प्रेम देखकर उसे मना ना कर सके, और उनकी इच्छा को पूरा किया। जहाँ पर केवट ने प्रभु के पैर धोए थे उस जगह के प्रभु के चरणों के पग चिन्ह बने हुए हैं। यह स्थान इस लिए भी महत्वपूर्ण है क्यों कि यह प्रभु के वनवास का पहला पड़ाव माना जाता है।

6.4 झूँसी (25^0 26′ 10′′ उत्तरी अक्षांश, 81^0 54′ 30′′ पूर्वी देशान्तर)

झूँसी पुरास्थल का प्राचीन नाम 'प्रतिष्ठानपुर' है । यह पुरास्थल उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में गंगा–यमुना के बॉये तट पर स्थित है (मिश्रा. 2002–2003:227–229) (मानचित्र. 6.1)। पुरास्थल का विस्तार लगभग 3 कि0मी0 के क्षेत्र में विस्तृत है। इस टीले के अधिकांश भाग पर वर्तमान झूँसी गाँव बसा हुआ है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में कई टीले विद्यमान हैं किन्तु उन सभी में समुद्र कूप का टीला सबसे अधिक लगभग 16 मीटर ऊँचा तथा सुरक्षित अवस्था में है (चित्र संख्याः 6.1)।

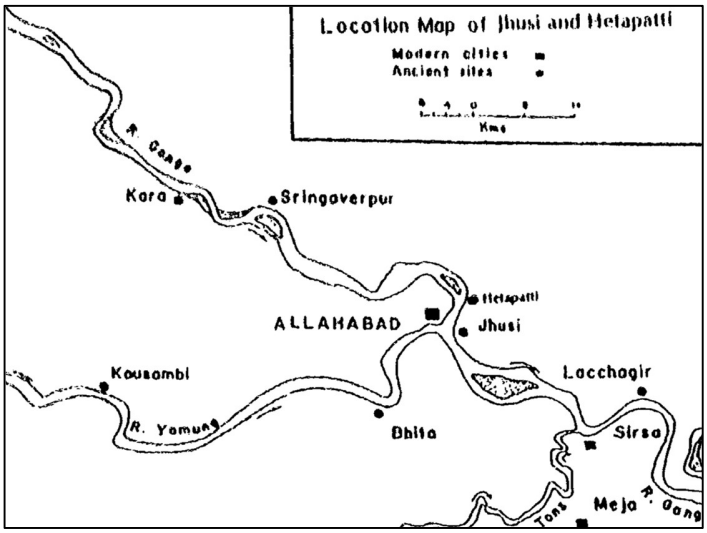

मानचित्र 6.1: झूँसी पुरास्थल का मानचित्र

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग द्वारा समय–समय पर पुरास्थल का सर्वेक्षण कार्य किया जाता रहा है और सर्वेक्षण के दौरान मिट्टी के बर्तन,सिक्के, मृण–मूर्तियाँ, पाषाण मूतियाँ, मुहरें, हड्डी, लोहे और ताँबे के उपकरण आदि प्राप्त होते रहे हैं जो इस स्थल की प्राचीनता को प्राक् एन0बी0पी0 डब्ल्यू काल से लेकर मध्यकाल तक के विस्तृत सांस्कृतिक काल का संकेत देते हैं। इस स्थल का उत्खनन कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के बी0डी0 मिश्र, जे0एन0 पाल तथा मानिक चन्द्र गुप्त के निर्देशन में 1995, 1999, 2002–03 ई0 में किया गया। परिणामस्वरूप छः सांस्कृतिक कालों के अवशेष प्राप्त हुए हैं (पाल. 2008: 263–282) जो निम्नवत् है–

प्रथम काल – नवपाषाणकालीन संस्कृति

द्वितीय काल – ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति

तृतीय काल – उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

चतुर्थकाल – शुंग कुषाण काल

पंचमकाल – गुप्त काल

षष्ठ काल – प्रारम्भिक मध्ययुगीन

चित्र संख्या 6.1: झूँसी पुरास्थल का दृश्य

झूँसी के नवपाषाणिक चरण की जानकारी 2002–2003 ई0 में किये गये उत्खनन कार्य से होती है (सिंह. 2010:80)। यह जमाव केवल एक मीटर ही खोदा जा सका तथा उत्खनन प्राकृतिक स्तर से पहले ही बन्द कर दिया गया ।

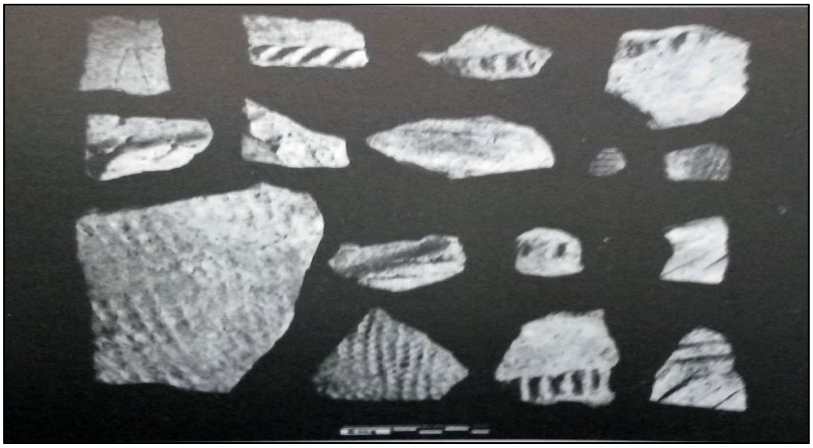

चित्र संख्या 6.2: रस्सी छाप मृद्भाण्ड

जितना उत्खनन किया गया उससे प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर इस काल के मानवीय क्रियाकलापों पर प्रकाश पड़ता है। मानव बाँस–बल्लियों और घास–फूस तथा मिट्टी की सहायता से बनायी गयी झोपड़ियों में निवास करता था। इस काल के मृदभाण्डों में हस्तनिर्मित डोरी–छाप मृदभाण्ड (चित्र संख्याः 6.2), रस्टिकेटेड वेयर, चमकदार काली पात्र परम्परा, लाल पात्र (चित्र संख्याः 6.3) और क्रुड काला व लाल पात्र आदि है। धान की भूसी का प्रयोग मिट्टी में सालन के रूप में किया गया है। पात्र मोटी बारी के तथा भली–भाँति पके नहीं हैं। बारी का रंग काला है तथा मिट्टी को अच्छी तरह से गूँथा नहीं गया था (वर्मा. 2003 : 146)।

मृदभाण्डों के अलावा यहाँ से लघुपाषाण उपकरणों की भी प्राप्ति हुई है जिसमें ब्लेड, स्क्रैपर, ट्रांयगल, ट्रैपीज, प्वांइट ड्रील, और लुनेट्स हैं। इनका माध्यम चर्ट, कैल्सेडोनी, कार्नेलियन और क्वार्टज है। स्टेटाइट के बने हुए अत्यन्त छोटे मनके तथा बेलनाकार मनके भी इस काल से प्राप्त होते हैं। हड्डी के औजार में वाणाग्र की प्रमुखता है (चित्र संख्याः 6.4)। यहाँ से प्राप्त प्राचीन पेड़–पौधों के अवशेषों की जाँच सारस्वत और पोखरिया द्वारा की गयी है। इसके द्वारा की गयी अनाज की जाँच में गेहूँ, जौ, ज्वार, चावल, मसूर, मटर, चना, और फलों में ऑवला, अमरूद और बेर तथा तेल के पौधों में तिल के दाने प्राप्त होते हैं (पाल. 2008: 272)। पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, बारहसिंगा आदि है। मछली, कछुआ और पक्षियों को अपने भोजन के लिए इस काल के मानव द्वारा प्रयोग किया जाता था (पाल. 2008:273)।

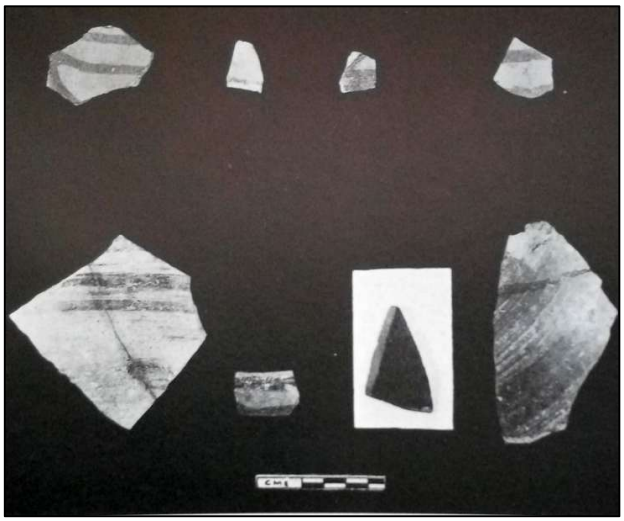

चित्र संख्या 6.3: चित्रित लाल पात्र

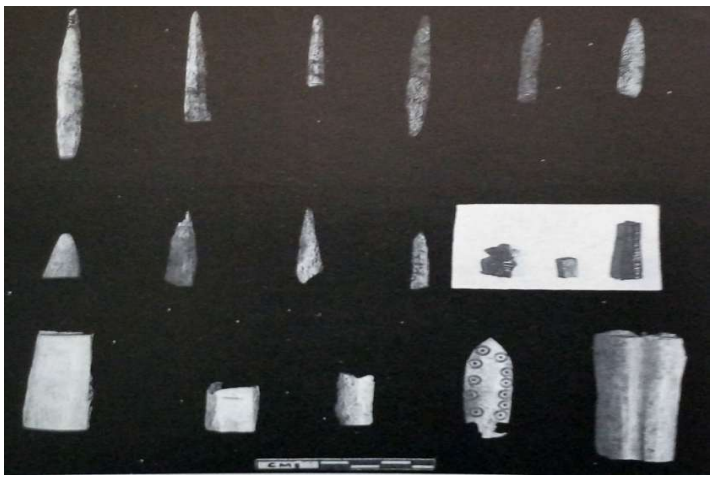

चित्र संख्या 6.4: अस्थि अवशेष

जिनमें द्वितीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से है (मिश्रा एवं अन्य. 1995–96:63)। इस काल का जमाव 70 सेमी0 का प्राप्त हुआ। इस जमाव से कृष्ण लेपित पात्र,कृष्ण लोहित पात्र तथा लाल पात्र प्राप्त हुए हैं। लाल रंग के पात्रों में कई प्रकार के साधारण लाल, चाकलेटी रंग तथा नारंगी रंग के पात्र मिलते हैं। मृदभाण्डों का निर्माण चाक पर किया जाता था। प्रमुख पात्र प्रकारों में छोटे आकार के घड़े (चित्र संख्याः 6.5), साधारण कटोरे, गहरे कटोरे, होठदार कटोरे (चित्र संख्याः 6.9), उन्तोदर किनारे के कटोरे, टोंटीदार कटोरे तथा बेसिन और साधार छिद्रयुक्त बर्तन आदि हैं। मृदभाण्डो के ऊपर आड़ी–तिरछी एवं सीधी रेखाओं द्वारा अलंकरण किया गया है (चित्र संख्याः 6.6)। अन्य पुरावशेषों मे हड्डी के प्वांइट, सॉकेटेड वाणाग्र (चित्र संख्याः 6.7), हाथीदांत तथा उपरत्नों के मनके (चित्र संख्याः 6.8) आदि उल्लेखनीय हैं (वर्मा. 2003: 147)। उत्खनन से प्राप्त बाँस की छापयुक्त जली मिट्टी के टुकड़ों की प्राप्ति के आधार कहा जा सकता है कि इस काल का मानव बॉस–बल्लियों एवं मिट्टी की सहायता से बनी झोपड़ियों में निवास करता था। फर्श के उपर स्तम्भगर्त, चूल्हे तथा पशुओं की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं (सिंह. 2010:152)।

पशुओं की हड्डियों में पालतू और जंगली दोनो जानवरों की मिली है जिसमें गाय, बैल, भैंस, भेंड़, बकरी और सुअर आदि हैं। चुल्हों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव द्वारा भोजन के रूप में माँस का भी प्रयोग किया जाता था। जले हुए अनाज के दानों के अवशेष की भी प्राप्ति इस काल से हुई है। इन अनाजों में गेहूँ, जौ, चावल, मूँग आदि हैं जिनकी प्राप्ति पुरास्थल से प्राप्त गढ्ढों (Pits) से हुई है। इन अवशेषों की प्राप्ति से मानव के शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों होने की पुष्टि होती है।

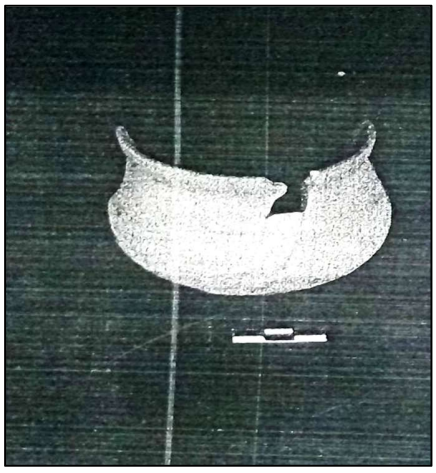

चित्र संख्या 6.5: छोटे आकार का घड़ा (झूँसी)

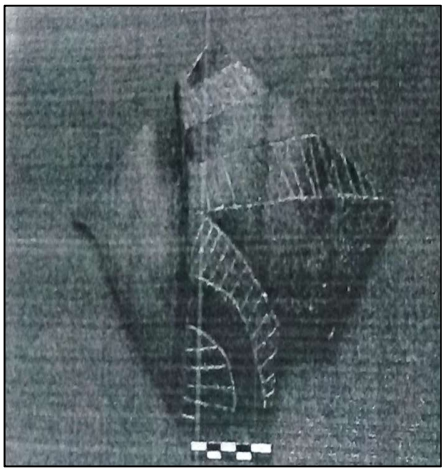

चित्र संख्या 6.6: झूँसी से प्राप्त चित्रित पात्र

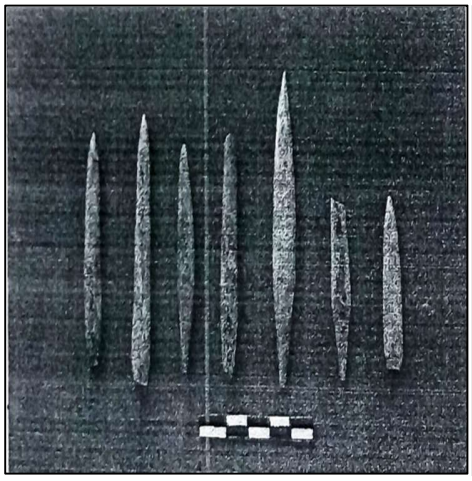

चित्र संख्या 6.7: अस्थि उपकरण

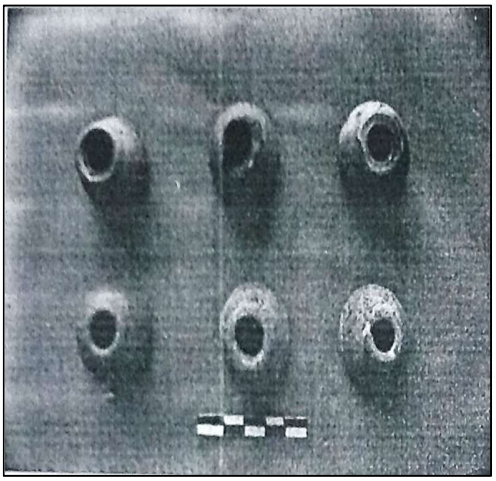

चित्र संख्या 6.8: मनके

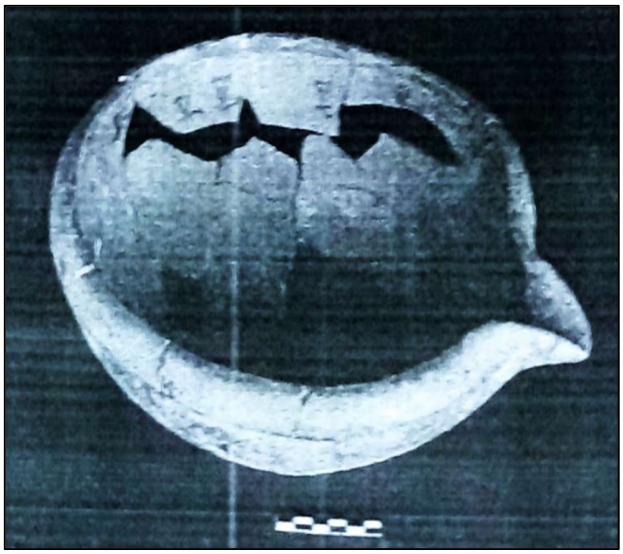

चित्र संख्या 6.9: झूँसी से प्राप्त होठदार कटोरा

इस सांस्कृतिक चरण की तिथि द्वितीय शताब्दी ई0 पूर्व के मध्य से 1000 ई0पू0 के अन्तर्गत रखी गयी है (मिश्रा एवं अन्य. 1990–2000: 38)। इसकी पुष्टि द्वितीय उपकाल 'अ' से प्राप्त कार्बन तिथियों से होती है जो क्रमशः PRL No. 2083, 1340±90 ई0पू0 है (सारणी–6.1)। द्वितीय उपकाल 'ब' को 1000–700 ई0पू0 के मध्य रखा गया है। इसके लिए भी दो कार्बन तिथियाँ PRL No 2077 तथा 2081 प्राप्त हुई हैं जो क्रमशः 950±90 ई0पू0 तथा 780±90 ई0पू0 है।

6.5 हेतापट्टी–(25°29'0'' उत्तरी अक्षांश 81°55'31'' पूर्वी देशान्तर)

हेतापट्टी (पाल एवं अन्य. 2005: 63–168) पुरास्थल उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद जिले में स्थित है। यह पुरास्थल गंगा नदी के बायें किनारे पर इलाहाबाद मुख्यालय से 20 कि0मी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है। इस पुरास्थल का उत्खनन कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के द्वारा 2006 ईस्वी में करवाया गया (पाल. 2008:273)। उत्खनन के परिणाम स्वरूप यहाँ से चार कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ है जिसमें पहले काल का सम्बन्ध नवपाषाण कालीन संस्कृति से है। इस काल से हस्तनिर्मित डोरी छाप मृदभाण्ड (चित्र संख्या: 6.10), रस्टिकेटेड मृदभाण्ड और लाल मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं। प्रमुख पात्रों में छिछला जार और गहरा कटोरा तथा नाद के विभिन्न प्रकार मिलते हैं।

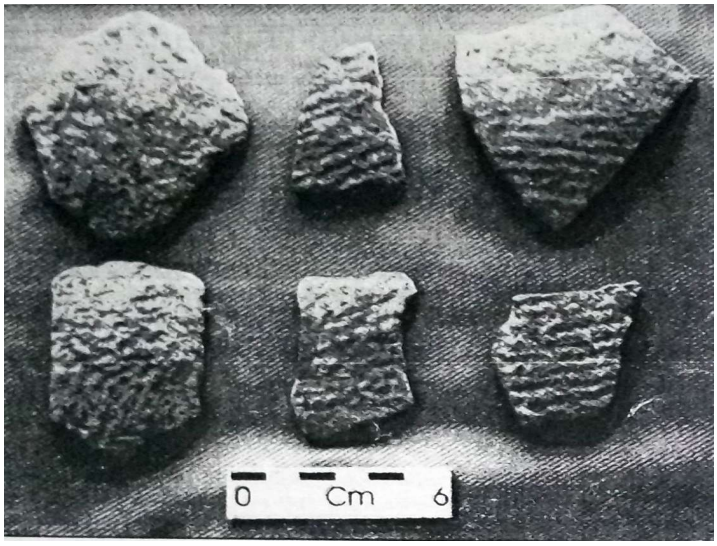

चित्र संख्या 6.10: हेतापट्टी से प्राप्त रस्सी छाप मृद्भाण्ड

झोपड़ियों की फर्श को मिट्टी को पीटकर बनाया गया था तथा जली मिट्टी के ढोंको पर बाँस–बल्लियों की छाप से स्पष्ट होता है कि मानव बाँस–बल्लियों की सहायता से बनी झोपड़ियों में निवास करता था (सिंह. 2010,82)।

सारणी – 6.1 विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त नवपाषाणकालीन तिथि

क्र.सं.	पुरास्थल	तिथि
1	चिरॉंद	1270 ± 105 ई0 पू0 1375 ± 100 ई0 पू0 1575 ± 155 ई0 पू0 1540 ± 110 ई0 पू0 1570 ± 115 ई0 पू0 1580 ± 100 ई0 पू0 1675 ± 140 ई0 पू0 1755 ± 155 ई0 पू0
2	लहुरादेवा	5230 ± 90 ई0 पू0 6290 ± 160 ई0 पू0
3	सेनुवार (नवपाषाणिक–ताम्रपाषाणिक)	1770 ± 120 ई0 पू0 1660 ± 120 ई0 पू0 1500 ± 110 ई0 पू0 1400 ± 110 ई0 पू0
4	झूँसी	7110, 5649, 5938 ई0पू0
5	कोल्डिहवा	4530 ± 185 ई0 पू0=5432–5051 ई0 पू0 5440 ± 240 ई0 पू0= 6190–5764 ई0 पू0 6570 ± 210 ई0 पू0= 7505–7033 ई0 पू0 (चक्रवर्ती. 2006:216)
6	टोकवा	4797 ई0पू0, 2675 ई0पू0, 3500 ई0पू0
7	कुनझुन	1565 ई0पू0, 2675 ई0पू0 3500 ई0पू0

इन पुरास्थलों के अलावा और भी पुरास्थल नवपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित हैं जिनके बारे में विवाद है कि मध्य गंगा मैदान में है या विन्ध्य क्षेत्र में ऐसे पुरास्थल कोल्डिहवा, महगड़ा तथा टोकवा हैं ये सभी पुरास्थल इलाहाबाद जिले में स्थित है। यहाँ से भी नवपाषाण कालीन मानव के रहन सहन,मृदभाण्ड, उपकरण इत्यादि पक्षों पर

प्रकाश पड़ता है लेकिन विवाद होने के कारण यहाँ इनका विस्तार से वर्णन नहीं किया गया है। यदि भौगोलिक अक्षांशीय और देशान्तरीय विस्तार को देखा जाय तो ये पुरास्थल मध्य गंगा मैदान की सीमा रेखा के अर्न्तगत या सीमा पर स्थित है।

6.6 मादरडीह (25^{0}44′56′′ उत्तरी अक्षांश 82^{0}41′55′′ पूर्वी देशान्तर)

मादरडीह पुरास्थल, उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के मुंगरा बादशाहपुर में स्थित है। यह स्थल बसुही नदी के तट पर है। यह जिला मुख्यालय से लगभग 55 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में मुंगराबादशाहपुर के पास स्थित एक गाँव है। यह गाँव जनश्रुति के अनुसार कभी राजाओं के निवास का केंद्र था। लगभग 2 किलोमीटर की परिधि में फैली यह ग्राम–पंचायत आज भी टीले पर ही अवस्थित है। गाँव के बीच में ही डीह–बाबा का स्थान भी है, जहाँ आज भी हर वर्ष मेला लगता है, उनकी पूजा होती है और उन्हें ग्राम–देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। 5000 साल से भी अधिक पुरानी सभ्यता का इतिहास समेटे हुए है। यहाँ उत्खनन में बौद्ध स्तूप, आवासीय संरचनाएं और व्यापारिक गतिविधियों के प्रमाण मिले हैं, जिनमें रोमन परंपरा के मृदभांड भी शामिल हैं।

6.6.1 खोज एवं उत्खनन

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग और बीएचयू के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के उत्खनन निदेशक प्रो. अनिल कुमार दुबे के संयुक्त सहयोग से मादरडीह गाँव में उत्खनन कार्य किया गया था। 2011 और 2014 में यहाँ उत्खनन किया गया था, जिसमें 32 दिन और 21 दिन तक खुदाई की गई थी (चित्र 6.11)। इस स्थल के उत्खनन में ढाई हजार वर्ष पुरानी कुषाण कालीन सभ्यता के दुर्लभ साक्ष्य मिले हैं। ट्रेंच संख्या तीन में 1.25 मीटर की खुदाई के बाद कमरे की फर्श के नीचे एक मिट्टी के घड़े में चांदी के 50 सिक्के मिले हैं। सिक्कों पर जारी करने वाले तत्कालीन शासक की आकृति बनी है। सिक्के देखने में कुषाणकालीन प्रतीत होते हैं। सिक्के 2100 से 2200 वर्ष पहले के हो सकते हैं। सिक्कों के दूसरे भाग पर ब्राह्मी लिपि में कुछ लिखा गया है। उत्खनन टीम ने सिक्कों को विस्तृत अध्ययन के लिए अपने पास सुरक्षित रख लिया।

चित्र 6.11–मादरडीह का टीला, उत्खनन का दृश्य

6.6.2 मृदभाण्ड एवं अन्य पुरावशेष

इस स्थल पर तीन ट्रेंच में दो दर्जन से अधिक मजदूरों को लगाकर खुदाई का कार्य करवाया गया। पुरातत्त्व विभाग को मादरडीह में प्राचीन नगर होने का संकेत मिलने के बाद खुदाई का काम शुरू कराया गया। खुदाई के

दौरान अलंकृत मृदभांड, हड्डियाँ और शीशा गलाने के उद्योग, टोटीदार बर्तन, आमोद–प्रमोद और धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग में लाई जाने वाली सामग्री आदि प्राप्त हो चुकी है। उत्खनन टीम का दावा है कि मादरडीह कुषाण काल का एक नगर था, जहाँ बड़े पैमाने पर उद्योग धंधे चलते थे। यह उस समय का प्रमुख व्यापारिक केंद्र रहा होगा। उत्खनन में मिट्टी का चूल्हा और सिल्ली नुमा लोहे के बड़े टुकड़े भी मिले हैं। खुदाई में मिले साक्ष्यों के आधार पर विशेषज्ञों का मानना है कि यहाँ कृषि यंत्र बनाने की फैक्ट्री रही होगी।

6.6.3 आवासीय साक्ष्य

यहाँ के उत्खनन से आवासीय साक्ष्य भी प्राप्त हुए है। इस स्थल के निचले जमाव से प्राप्त अवशेषों स्पष्ट होता है कि मानव ने अपने प्रारंभिक आवास को बनाया और जीवन की शुरुआत की थी। यह पुरास्थल की प्रारंभिक अवस्था है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मानव ने इसी स्तर पर प्रथम बस्ती बनाई कालांतर में एक प्रसिद्ध नगर और व्यवसायिक केंद्र बन गया। मिट्टी के बने लोटा के आकार के बर्तन भी मिले हैं। उन्होने बताया कि अब तक मिले ज्यादातर साक्ष्य गुप्त और कुषाण कालीन हैं। यहाँ की ट्रेच संख्या तीन में चूल्हा मिला है।

6.6.4 मूर्ति और स्थापत्य

यहाँ के उत्खनन में कुषाण कालीन यक्ष देवता की मूर्ति प्राप्त हुई, जिनकी पूजा उस काल में गाँव अथवा नगर के रक्षक शक्तिशाली देवता के रूप प्रवेश द्वार पर होती थी। प्रोफेसर अनिल कुमार दुबे ने बताया कि कुषाण काल में गाँव के रक्षक के रुप में यक्ष देवता का प्रचलन था, जिनकी स्थापना प्रायः गाँव के प्रवेश द्वार अथवा जलाशयों के किनारे की जाती थी। कुषाण काल में महिलाएं धनधान्य समृद्धि एवं संतानों की रक्षा हेतु यक्ष देवता की पूजा करती थीं(चित्र – 6.13)। गाँव के अन्दर यक्ष देवता की स्थापना नहीं की जाती थी। इस स्थल से स्तूप और स्तूप के बगल में बौद्ध विहार के साक्ष्य भी मिले है। बौद्ध भिक्षुओं को ठहरने के लिए कुषाण काल में बनी बौद्ध विहार की दीवार के अवशेष मिले हैं। निर्देशक के अनुसार स्तूप के चारों तरफ से खुदाई किया गया। जिससे स्तूप होना प्रमाणित हो चुका था, लेकिन फिर भी अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई थी। वह अनिश्चितता भी समाप्त हो गई, जब स्तूप की निचली सतह पर चल रहे उत्खनन कार्य में बौद्ध विहार की अवशेष दीवार प्राप्त हो गई (चित्र – 6.12)। यह बौद्ध विहार कुषाण काल में बौद्ध भिक्षुओं को ठहरने के लिए बनाया गया था। स्तूप के बगल में ही बौद्ध विहार बने होने से यह कहा जा सकता है कि यह बौद्धस्तूप है।

चित्र–6.12 स्थापत्यिक अवशेष

चित्र 6.13 मूर्ति अवशेष

इस स्थल पर लगभग ढाई हजार वर्ष के आस–पास यहाँ नगरीय सभ्यता पुष्पित थी, संभव है कि यह स्थान विशेष व्यापर–वाणिज्य का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव भी रहा हो। उत्खनन में जो अवशेष प्राप्त हुए है उनके कालक्रम कुषाणकालीन संस्कृति से सम्बन्धित है। यहाँ बौद्ध स्तूप, आवासीय संरचनाएं, और रोमन परंपरा के मृदभांड पाए गए हैं, जो इस स्थल के महत्व को दर्शाते हैं। मादरडीह टीले पर ढाई हजार साल पहले व्यापार के लिए विदेशों से भी लोग आते थे, जिसके प्रमाण यहाँ मिले हैं।

6.7 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस इकाई में वर्णित चारों पुरास्थल प्रयागराज और जौनपुर जनपद के प्रागैतिहासिक काल से ऐतिहासिक तक के साक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं। श्रृंग्वेरपुर जहाँ ऐतिहासिक काल के इतिहास को संजोए हुए हैं। वही झूँसी और हेतापट्टी प्रागैतिहासिक काल से ऐतिहासिक काल तक के इतिहास के साक्षी है। मादरडीह पुरास्थल, जौनपुर के इतिहास को छठी शताब्दी ई0पू0 तक स्थापित करता है। कुषाण काल तक आते–आते यह क्षेत्र पूरी तरह से बस्तीमय हो चुका था। इस समय में झूँसी और श्रृंग्वेरपुर एक दर्शनीय स्थल के रूप में भी प्रसिद्ध है, जिसका उत्तर प्रदेश के पर्यटन में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बी बी लाल .1993. एक्स केवेगन एट श्रृंग्वेरपुरः 1977.86, ए.एस.आई., नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिह्रास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*

13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।

14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।

15. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

16. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

17. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।

18. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

19. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44

20. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

6.9 बोध प्रश्न

- शृंग्वेरपुर पुरास्थल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
- झूँसी के सांस्कृतिक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए।
- हेतापट्टी पुरास्थल पर टिप्पणी लिखिए।
- मादरडीह पुरास्थल जौनपुर के इतिहास का साक्ष्य प्रस्तुत करता है, स्पष्ट कीजिए।

इकाई–7 : सरायनाहर राय, महदहा, दमदमा

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 सरायनाहर राय

7.4 महदहा

7.4.1 आवास–स्थल एवं कब्रगाह

7.4.2 चतुर्थ उपकाल

7.4.3 बूचड़स्थल (जानवरों के वध करने का स्थल)

7.4.4 झील का क्षेत्र

7.5 दमदमा

7.6 तिथि

7.7 सारांश

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

सरायनाहरराय, महदहा और दमदमा ये तीनों पुरास्थल प्रतापगढ़ के पट्टी तहसील में स्थित है, जो मानव के प्रारंभिक जीवन के इतिहास को संजोए हुए है। इन तीनों पुरास्थलों से पाषाण काल से मध्यवर्ती चरण मध्यपाषाणकाल के साक्ष्य प्राप्त हुए है। इन तीनों पुरास्थलों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ से मृतकों के शवाधान के साक्ष्य अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं। मैदानी क्षेत्र के इतिहास मृतकों को दफन करने के प्रारंभिक साक्ष्य के रूप में है। इन तीनों पुरास्थलों का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के द्वारा करवाया गया। उत्खनन के परिणामस्वरूप एकल संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए, जिसका संबंध मध्यपाषाण काल से था। मानव इतिहास के विकास की कड़ी को जोड़ने और पारिवारिक संदर्भ को प्रस्तुत करने, परलोक के प्रति आस्था को परिलक्षित करने, मृतकों के साथ अंत्येष्टि सामग्री रखने एवं मध्य गंगा मैदान मध्यपाषाण संस्कृति और उत्तर प्रदेश के इतिहास को उद्घाटित करने में इन तीनों पुरास्थलों का महत्वपूर्ण स्थान है, जिनका विस्तृत विवेचन निम्नवत हैं–

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- सरायनाहर राय पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे।
- मृदभांड परंपरा के उद्भव के बारे में जान सकेंगे
- महदहा पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- सरायनाहर राय के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- दमदमा के इतिहास को जान सकेंगे।
- महदहा पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।

- पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

7.3 सराय–नाहर–राय (अक्षांश $25^0$48′उ0 देशान्तर $81^0$50′ पू0)

सरायनाहर राय मध्य गंगा मैदान की मध्यपाषाणिक बस्ती का सर्वप्रथम खोजा गया स्थल है, जो गोखुर झील के किनारे स्थित है(आई0ए0आर0 1971–72 : 48–49)। यह स्थल प्रतापगढ़ जनपद के मुख्यालय से 15 किमी दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है (मानचित्र 7.1)। सन् 1970 ई0 में उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व विभाग ने भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के पी0सी0 दत्त के सहयोग से एक मानव कंकाल का उत्खनन कराया था। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने उत्तर प्रदेश शासन के वित्तीय सहयोग से सन् 1971–72 तथा 1972–73 ई0 में अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर सरायनाहर राय का उत्खनन स्वर्गीय जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में आर0के0 वर्मा, वी0डी0 मिश्र और धनेश मण्डल ने करवाया था (शर्मा, 1973: 134–146)।

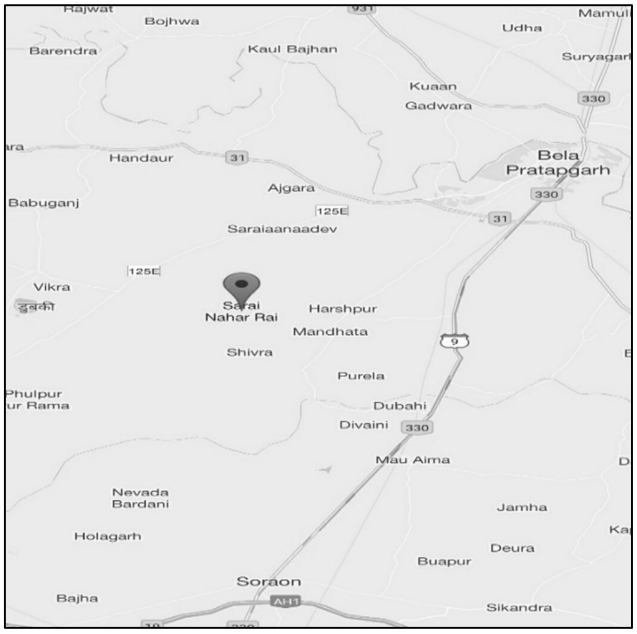

मानचित्र 7.1 : सरायनाहर राय पुरास्थल की मानचित्र में स्थिति

यह पुरास्थल लगभग 1800 वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। सम्पूर्ण क्षेत्र में लघुपाषाण उपकरण तथा जानवरों की हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। पानी के बहाव के फलस्वरूप ऊपरी सतह के कट जाने के कारण मानव कंकाल स्पष्ट रूप से दिख रहे थे। मध्य पाषाणिक मानव ने इस क्षेत्र का उपयोग आवास– स्थल और शव–स्थल के रूप में किया था।उल्लेखनीय है कि शवस्थल इस क्षेत्र के उत्तरी पूर्वी भाग में सीमित था। दक्षिण–पश्चिम भाग में चूल्हे तथा एक फर्श का प्रमाण उपलब्ध हुआ था। यहाँ से कुल 11 मानव समाधियों तथा आठ गर्त–चूल्हों का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा किया गया था (वर्मा, 2001 : 115–116)। इस तरह एक मानव शवाधान का पी0सी0 दत्त द्वारा तथा 11 मानव शवाधान का इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा उत्खनन कराया गया। इस प्रकार कुल 12 समाधियों से 15 मानव कंकाल प्रकाश में आये (कनेडी और अन्य, 1986 : 1–55)। एक समाधि में एक साथ चार कंकाल दफनाये गये थे। इन कंकालों का प्रथम अध्ययन पी0सी0 दत्त ने किया था (दत्त, 1973 : 249–253 दत्त और पाल, 1972 : 334–335; दत्त और अन्य, 1971 : 15–28; दत्त, 1984 : 35–50)। इसके बाद इसका विस्तृत भौतिक नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन केनेडी ने किया है (केनेडी. 1996: 291–331; केनेडी और एलगार्ट. 1998:9–30)। सराय नाहर राय से प्राप्त शवधानों के उत्खनन से मध्यपाषाणिक मानव प्रकार तथा उसके कर्मकाण्डों एवं मान्यताओं पर प्रकाश पड़ता है। समाधियाँ प्रायः आवास क्षेत्र के अन्दर बनी थी। कब्रें छिछली तथा अण्डाकार हैं।

शव को समाधि में रखने के पहले सिरहाने के रूप में 3–4 से0मी0 मोटी मिट्टी की पर्त देकर मृतकों को पश्चिम–पूर्व दिशा में चित लिटाकर विस्तीर्ण रूप से दफनाया गया था। प्रायः सभी कंकालों का एक हाथ शरीर के समानान्तर तथा दूसरा हाथ पेट के ऊपर रखकर दफनाने की प्रथा पायी गयी। पुरुषों के कंकाल में दाहिना हाथ

(चित्र संख्याः 7.1) तथा स्त्रियों के कंकाल में बायाँ हाथ पेट के ऊपर रखा हुआ मिला था।

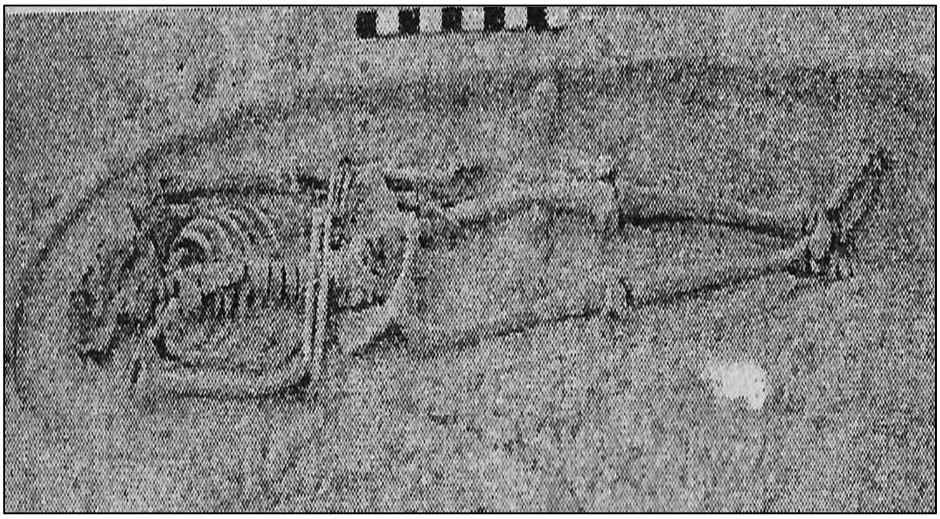

चित्र संख्या 7.1: सरायनाहर राय– पेट पर हाथ रखा हुआ पुरुष कंकाल

उत्खनित 12 समाधियों में से 11 में एक–एक मानव कंकाल दफनाये हुए मिले तथा एक समाधि में चार मानव कंकाल एक साथ दफनाये हुए मिले हैं (चित्रसंख्याः 7.2)। मृत्योपरान्त दूसरे जीवन में भी लोग आस्था रखते थे, इसलिए कब्रों में लघु पाषाण उपकरण, जानवरों की हड्डियाँ तथा घोंघे आदि मृतकों को भेट के रूप में रखे हुए प्राप्त हुए हैं। कब्रों को ढ़कते समय चूल्हों की राख भी प्रयुक्त होती थी। जिस कब्र में चार शव एक ही साथ दफनाये हुए मिले उसमें पहले एक पुरुष और एक नारी के कंकाल रखे हुए थे तथा उसके ऊपर पुनः एक पुरुष और नारी के कंकाल रखे हुए मिले हैं। उल्लेखनीय है कि मध्य पाषाण काल की इस कब्र में नारियाँ पुरुषों के बायीं ओर रखी गयी थीं। क्या ये पति–पत्नी थे? ये एक साथ क्यों दफनाये गये थे आदि अनिर्णीत महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। अगर वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर कहा जाय तो पति–पत्नी होने की सम्भावना प्रबल लगती है, क्योंकि वर्तमान समय में भी पत्नी को अपने पति के बायीं ओर रहने का प्रचलन हैः पत्नी को वामांगी भी कहा जाता है।

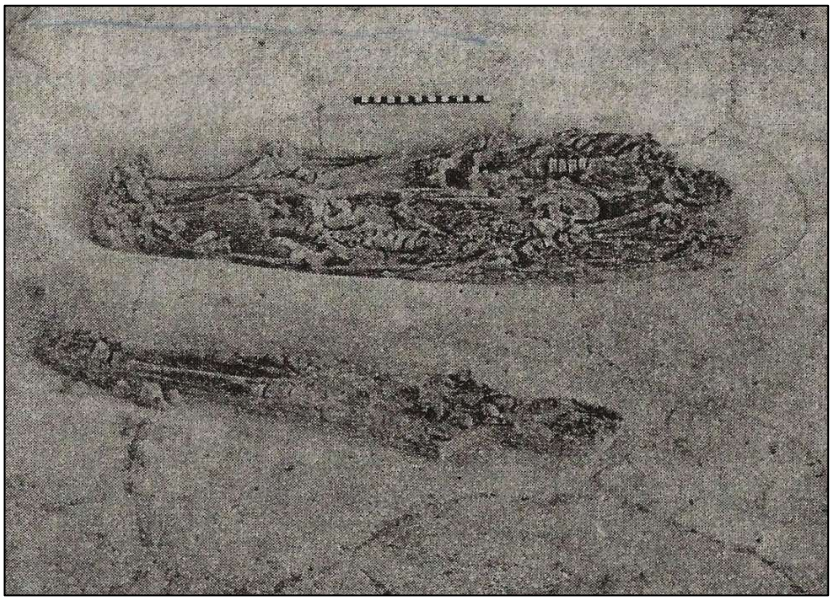

चित्र संख्या 7.2: सरायनाहर राय–संयुक्त रूप से समाधिस्थ चार मानव कंकाल

ऐसा भी हो सकता है कि एक स्त्री और एक पुरुष का शव रखने के बाद पुनः पुरुष के ऊपर एक अन्य पुरुष तथा स्त्री के ऊपर दूसरी स्त्री का शव रखकर दफनाया गया हो। इनको खुदाई से निकली मिट्टी चूल्हों की

मिट्टी एवं राख से भरा गया था। अन्त्येष्टि सामग्री के रूप में केवल लघु पाषाण उपकरण मिले थे। कंकालों के साथ जो बड़े–बड़े कंकड़ मिले थे, उन्हें प्रारम्भ में भ्रमवश घोंघा समझ लिया गया था। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के पी0सी0 दत्ता ने अपने निबन्धों में हस्त–निर्मित कुण्डलित मृद्भाण्ड के रूप में इनका उल्लेख किया है (दत्ता, 1984 : 35–50)। वस्तुतः मध्य गंगा मैदान के अब तक उत्खनित किसी भी मध्य–पाषाणिक पुरास्थल से मृद्भाण्डों के अवशेष अभी तक नहीं प्राप्त हुए हैं (दुबे, 2005 : 74)।

इस पुरास्थल से प्राप्त 15 मानव कंकालों में से 10 मानव कंकालों के लिंग की पहचान की जा चुकी है जिनमें सात कंकाल पुरुषों के तथा तीन कंकाल स्त्रियों के थे। सराय नाहर राय से बच्चों के कंकाल की प्राप्ति नहीं हुई है, यद्यपि अवयस्क कंकालों की प्राप्ति हुई है (कनेडी, 1986 : 23)। जे0एन0 पाण्डेय और ए0के0 दुबे ने अपनी पुस्तक में सराय नाहर राय से प्राप्त 15 कंकालों में से 11 कंकालों के पहचान की बात की है जिनमें 7 पुरुष तथा 4 स्त्री के कंकाल हैं तथा 4 मानव कंकाल की पहचान नहीं हो पायी है।

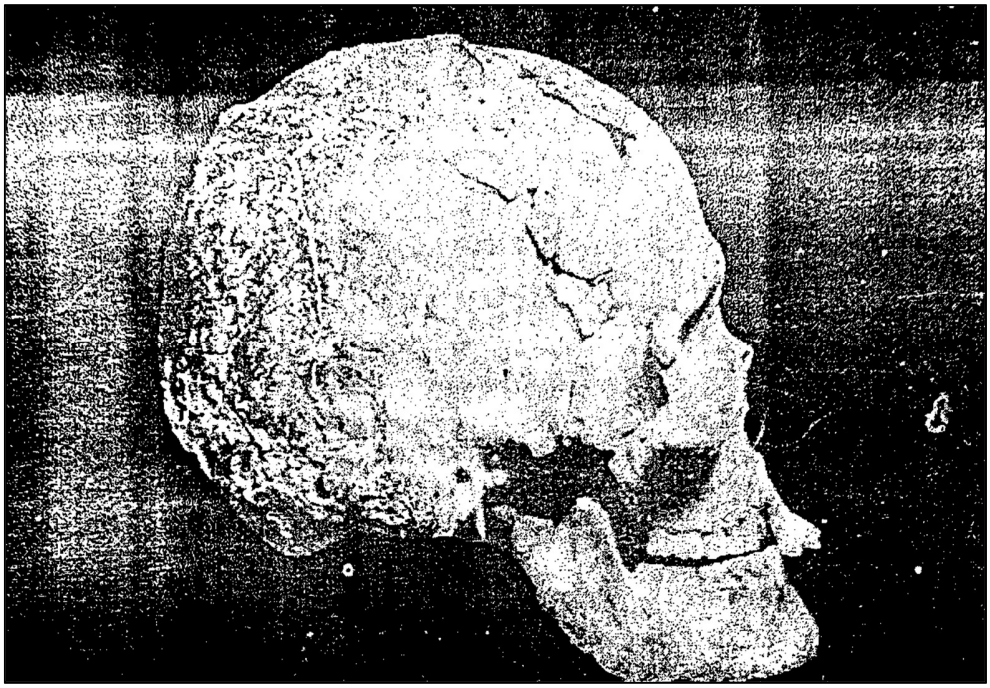

चित्र संख्या 7.3: सरायनाहर राय से प्राप्त खोपड़ी (कनेडी व अन्य, 1986)

इन कंकालों के उम्र की गणना के लिए कंकाल की खोपड़ी (चित्र संख्याः 7.3) का प्रयोग किया गया है। यहाँ से जो पुरुष मानव कंकाल प्राप्त हुए हैं, उनकी आयु मृत्यु के समय 16 से 34 वर्ष के बीच आँकी गयी है तथा औसत आयु 17 से 31 वर्ष निर्धारित की गयी है स्त्री कंकालों के आधार पर स्त्रियों की आयु मृत्यु के समय 15 से 35 वर्ष के बीच आंकी गई है। स्त्रियों की आयु का औसत 16 से 32.5 वर्ष के बीच आंका गया है (कनेडी, 1986 : 23)। यहाँ से प्राप्त कंकालों की लम्बाई की गणना दत्ता एवं उनके साथियों के द्वारा की गयी है। पुरुष कंकालों की औसत लम्बाई 173.93 से 192.08 से0मी0 के मध्य निर्धारित की गयी है तथा स्त्री कंकालों की औसत लम्बाई 174. 89 से0मी0 से 187.68 से0मी0 के बीच आंकी गयी है (दत्त एवं पाल, 1972 : 334–335)। ट्रोटर महोदय के द्वारा भी मानव कंकाल के डील–डौल या कद की गणना की गयी। इनके द्वारा मानव की फीमर नामक हड्डी पर गणना की गयी और जो औसत लम्बाई पुरुष मानव कंकाल की अपनी तालिका में इन्होंने दी है वह 175.65 से 183.26 से0मी0 के बीच है। इनके द्वारा स्त्री कंकालों के फिमोरा की माप नहीं की गई है (ट्रोटर, 1970 : 71 : 83)। सराय नाहर राय से प्राप्त मानव कंकालों के आधार पर जी0आर0 शर्मा द्वारा स्त्री और पुरुष दोनों को लम्बे कद वाला बताया गया है (शर्मा, 1978: 20–26)।

सराय नाहर राय से आठ गर्त–चूल्हों की प्राप्ति हुई है जिसका उत्खनन कार्य भी किया गया है। ये गोलाकार, अण्डाकार तथा अनियमित आकार के हैं। गर्त–चूल्हों का मुख भाग चौड़ा तथा पेंदी का भाग संकरा है। चूल्हे के

ऊपरी भाग की माप 1.49 मीटर से 72 से0मी0 है, तथा पेदी 1.02 मीटर से 45 से0मी0 चौड़ी है। इन गर्त चूल्हों की गहराई .25 मीटर से लेकर .10 मीटर तक है। इन्हें खोदने के लिए सींग अथवा कड़ी लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। कुछ चूल्हों का एक से अधिक बार प्रयोग करने के प्रमाण मिलते हैं। सार्वजनिक चूल्हों को भी दो बार प्रयोग में लाने के प्रमाण मिले हैं (वर्मा एवं नीरा, 2001 : 116)। गर्त–चूल्हों से गाय, भैंस, बैल, भेड़, बकरी आदि की जली–अधजली हड्डियाँ मिली हैं। इसके अतिरिक्त कछुआ की खोपड़ी के टुकड़े तथा हाथी की पसली प्राप्त हुई है। के0 आर0 आलूर ने सराय नाहर राय से प्राप्त बकरी और भेड़ की हड्डियों की पहचान की है (आलूर, 1980, 2008), लेकिन थॉमस और पी0पी0 जोगलेकर के अनुसार ये हड्डियाँ हिरणों की है। इन्हें किसी पालतू पशु के अवशेष नहीं मिले हैं (थामस एवं अन्य, 1996 : 255–266)। गर्त–चूल्हों का उपयोग सम्भवतः पशुओं का माँस भूनने के लिए होता था। इन चूल्हों में केवल राख मिली है, कोयले के टुकड़े नहीं मिले हैं। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः घाँस–फूस आदि का उपयोग ही ईधन के लिए किया जाता था। अत्यधिक संख्या में जंगली पशुओं की हड्डियों का मिलना शिकार की ओर संकेत करता है। कछुए के हड्डियों की प्राप्ति इस बात का प्रमाण है कि झील भी लोगों की खाद्य सामग्री प्राप्ति का एक स्रोत था (साहू, 1988: 97–98)। आवास क्षेत्र से 5X4 मीटर आकार का एक फर्श मिला है जिसके चारो कोनों पर एक–एक स्तम्भ–गर्त मिले हैं। जी0आर0 शर्मा ने इसको सामुदायिक झोपड़ी की संज्ञा दी है, क्योंकि इसके फर्श से लघु पाषाण उपकरण, पशुओं की हड्डियाँ तथा कई छोटे–छोटे चूल्हे भी मिले हैं (पाण्डेय, 2008: 309)।

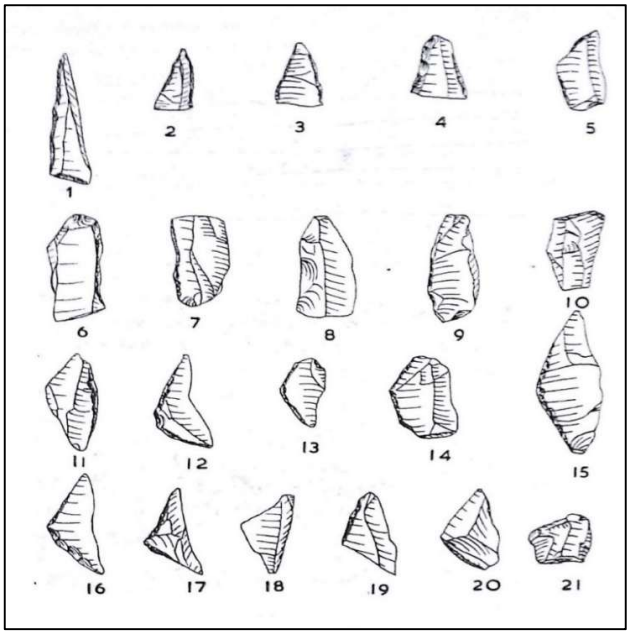

चित्र संख्या 7.4 : सराय नाहर राय से प्राप्त लघुपाषाण उपकरणों का रेखाचित्र

सराय नाहर राय पुरास्थल से लघुपाषाण उपकरण निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में प्राप्त हुए हैं। उपकरण निर्माण के लिए केल्सीडोनी, चर्ट, जैस्पर और कार्नेलियन जैसे पत्थरों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ से जो उपकरण प्राप्त हुए हैं उनमें कई तरह के ब्लेड, समानान्तर बाहु और भूथडे ब्लेड, अर्द्ध चन्द्र, विषमबाहु और समाद्विबाहु त्रिभुज, खुरचनी, नोक, चान्द्रिक, तक्षणी इत्यादि उपकरण है (चित्र संख्याः 7.4)

जानवरों की हड्डियों पर बने उपकरण यहाँ से ज्यादा नहीं मिले हैं, लेकिन पशुओं की नुकीली हड्डियों तथा श्रृंगों को उपकरण की तरह प्रयोग किया जाता था। कुछ हड्डियों पर भौंड़ी तराश के प्रमाण मिलते हैं। सामान्य रूप से प्राकृतिक हड्डियों के प्रयोग की ही प्रथा थी, क्योंकि अधिकांश तराश के बावजूद हड्डियों पर बने अच्छे अस्त्रों का अभाव था। इस वृद्धि दर से पाषाण उपकरणों का समूह विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण दिखाई पड़ता है (जायसवाल. 1989 : 51)। एक 13.2 से.मी. लम्बे तथा 3 से0मी0 चौड़े हड्डी के बने हुए ब्लेड का भी उल्लेख किया जा सकता है जिस पर फलकीकरण से तेज धार बनाई गयी है। कुछ लघु पाषाण उपकरणों का प्रयोग वाणाग्र के रूप में युद्ध के दौरान किया गया था। एक कंकाल में पसली की हड्डी को वेधता हुआ एक शर मिला था। इसके अतिरिक्त कुछ और भी

उपकरण ऐसी स्थिति में मिले थे जिससे अनुमान किया जाता है कि वे तीर में लगाकर प्रयोग में लाये गये होगे (वर्मा एवं वर्मा. 2001 : 117–118)

7.4 'महदहा' (25⁰ 29′ 2′′ उत्तरी अक्षांश, 22⁰ 10′ 36′′ पूर्वी देशान्तर)

'महदहा' मध्य गंगा मैदान की मध्य पाषाण कालीन संस्कृति का दूसरा महत्वपूर्ण स्थल है। यह पुरास्थल प्रतापगढ़ जनपद की पट्टी तहसील में प्राचीन गोखुर झील के पश्चिमी तट पर महदहा गाँव के पूर्व में स्थित है (मानचित्र 7.2 व 7.3)।

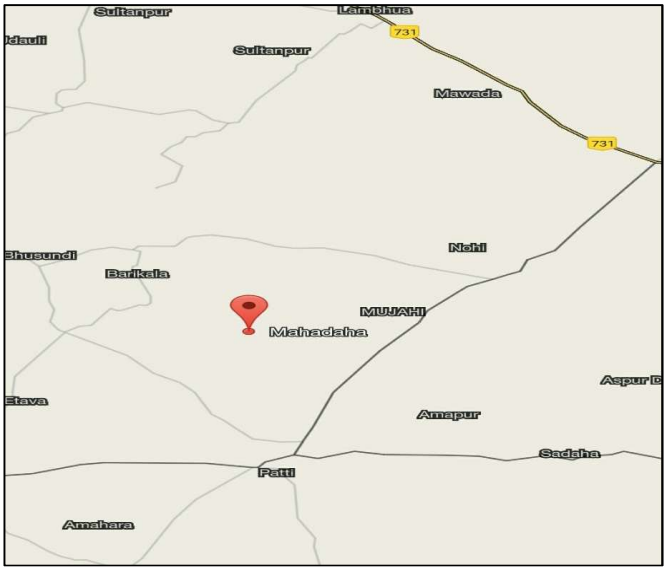

मानचित्र 7.2: महदहा पुरास्थल की मानचित्र में स्थिति

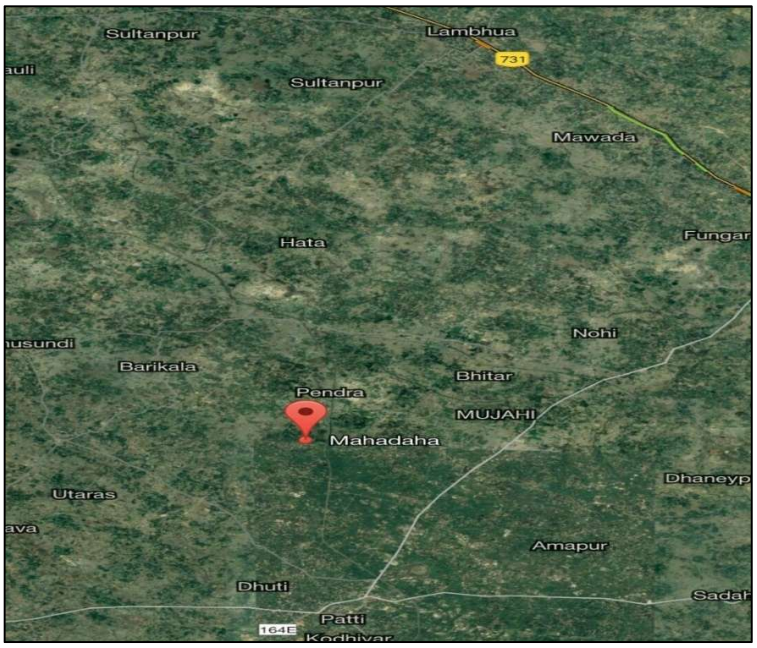

मानचित्र 7.3 : महदहा पुरास्थल का सेटेलाइट मानचित्र में स्थिति

यहाँ पर उत्खनन कार्य जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में 1978–79 ई0में वी0डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाल तथा डी मण्डल द्वारा बचाव उत्खनन के तहत किया गया था। (आई0ए0आर0 1977–78 : 58–59)। यह पुरास्थल शारदा की

सहायक नहर परियोजना के चौड़ीकरण की प्रक्रिया के दौरान सन् 1978 में प्रकाश में आया। इस पुरास्थल को प्रकाश में लाने का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के पूर्व छात्र एवं पट्टी तहसील के तत्कालीन परगनाधिकारी लाल बिहारी पाण्डेय को है। यह पुरास्थल लगभग 8000 वर्ग मी0 क्षेत्र में फैला हुआ था (वर्मा. 2005 : 118)।

इस पुरास्थल से होकर गुजरने वाली नहर के पश्चिम में आवास तथा कब्रगाह के प्रमाण मिले हैं और पूर्व में मध्य पाषाण कालीन जानवरों की बहुत सी कटी हुई हड्डियाँ मिली हैं जिससे अनुमान लगाया गया है कि यहाँ बूचड़खाना रहा होगा। (चित्र संख्या–7.6)

इस पुरास्थल के उत्खनन के परिणाम स्वरूप मानव शवाधान, पशुओं की हड्डियाँ, हड्डियों के आभूषण तथा उपकरण आदि प्रकाश में आये हैं। पुरास्थल की सतह पर भी बहुत से अवशेष बिखरे हुए पाये गये थे, जैसे मानव एवं पशु अस्थियाँ, लघु पाषाण उपकरण, जली मिट्टी के ढ़ोके आदि (शर्मा . 1980 : 37)।

महदहा पुरास्थल पर चार क्षेत्रों में उत्खनन कार्य किया गया है। प्रथम स्थल 216 वर्ग मी0 के क्षेत्र में फैला है जिसका क्षैतिज उत्खनन कार्य किया गया है। यह नहर के पश्चिम में स्थित है। दूसरे स्थल पर उत्खनन कार्य केवल 34.56 वर्ग मी0

चित्र संख्या 7.5: स्तर में दिखते शवाधान और गर्त चूल्हे

में किया गया है। यह भी नहर के पश्चिम में ही स्थित है। तीसरा स्थल नहर के पूर्व में प्रथम स्थल के सामने स्थित है। चतुर्थ स्थल पुरानी झील के दक्षिण–पश्चिम कोने में स्थित है। यहाँ पर लम्बवत उत्खनन संस्कृतियों का क्रम जानने के लिये किया गया है।

उत्खनन के परिणामस्वरूप यहाँ तीन क्षेत्र प्रकाश में आये हैं–

1. आवासस्थल एवं कब्रगाह
2. बूचड़ स्थल (जानवरों का वध करने वाला स्थल)
3. झील का क्षेत्र

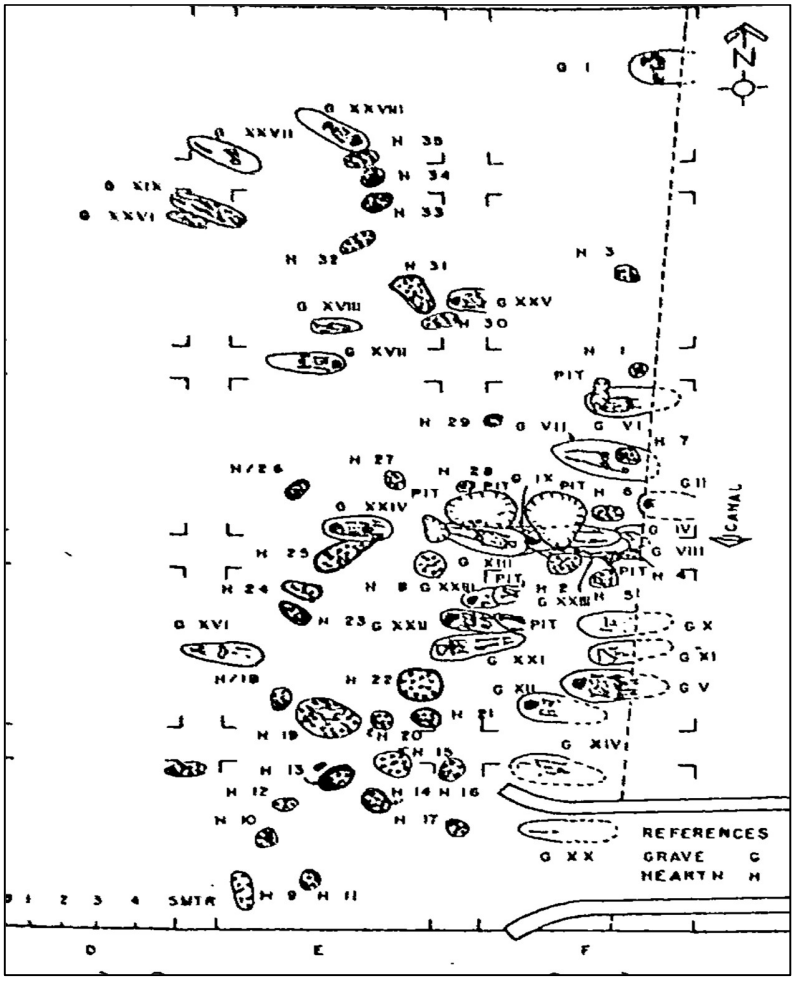

चित्र संख्या 7.6: महदहा पुरास्थल की रूपरेखा का रेखाचित्र (शर्मा, 1986)

7.4.1 आवास–स्थल एवं कब्रगाह

यह स्थल नहर के पश्चिम में स्थित है। आवास–स्थल एवं कब्रगाह को एक साथ देखना वर्तमान समय में एक–दूसरे के विपरीत लगता है, क्योंकि आवास स्थल जहाँ मानव निवास करता है तथा कब्रगाह का मतलब जहाँ मृत आदमी को दफन किया जाता है, जो कि प्रायः आवास–स्थल से दूर रहता है। इस काल का मानव अपने आवास–क्षेत्र के अन्तर्गत ही अपने मृतकों को भी दफन करता था। इसलिए दोनों को साथ–साथ देखना आवश्यक हो जाता है। आवासीय क्षेत्र का विस्तार लगभग 2400 वर्ग मीटर है जिसमें से दो पुलियों के बीच 25.56 वर्ग मीटर का क्षेत्र उत्खनित किया गया है। इस क्षेत्र से मुख्यतः कब्रों एवं चूल्हों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। चूल्हे का प्रमाण पुरास्थल के पूरे आवास–क्षेत्र में मिलता हैं।

महदहा के आवास तथा शवाधान क्षेत्र में मध्य पाषाणिक मानव के सांस्कृतिक अवशेष 60 सेमी मोटे जमाव में दबे पड़े हैं (पाल. 1994 : 91–101)। इस जमाव को स्तरीकरण के सिद्धान्त के आधार पर चार स्तरों में विभाजित किया जाता है । इतना मोटा जमाव महदहा से मिलना इस बात का द्योतक है कि यहाँ पर खुले क्षेत्र में मध्य पाषाणिक मानव द्वारा लम्बे समय तक अधिवास किया गया था।

चार उपकाल निम्नवत् हैं–

60 सेमी का जमाव

(आवास एवं कब्रगाह क्षेत्र)

प्रथम स्तर	द्वितीय स्तर	तृतीय स्तर	चतुर्थ स्तर
(10 सेमी0)	(13 सेमी0)	(19 सेमी0)	(18 सेमी0)

इस जमाव के सबसे नीचले स्तर का जमाव ठोस हल्के पीले रंग के आधार पर है जिसमें चूने का जमाव भी दिखता है जिसे स्तर 5 का नाम दिया गया है। प्रथम चार स्तरों से जानवरों की हड्डियाँ, जली मिट्टी के टुकड़े एवं लघु पाषाण उपकरण प्राप्त होते हैं लेकिन पाचवाँ स्तर अवशेष रहित है। स्तर प्रथम की सभी कब्रें स्तर 5 तक को काटकर बनी हुई है (वर्मा. 1985 : 41)।

महदहा के आवास क्षेत्र से कुल मिलाकर 28 समाधियाँ (सारणी संख्या–7.1) और 35 गर्त–चूल्हों की प्राप्ति होती है जिनका उत्खनन कार्य किया जा चुका है। 28 शवाधान स्तरीकरण तथा एक कब्र के दूसरी कब्र के ऊपर होने के आधार पर चार विभिन्न चरणों से सम्बन्धित किये गये हैं (चित्र संख्याः 7.5) । सभी शवाधानों में शवों को विस्तीर्ण रूप से दफनाया गया है। यहाँ की समाधियाँ सरायनाहर राय की तरह छिछली और अण्डाकार है (चित्र संख्या–7.7)।

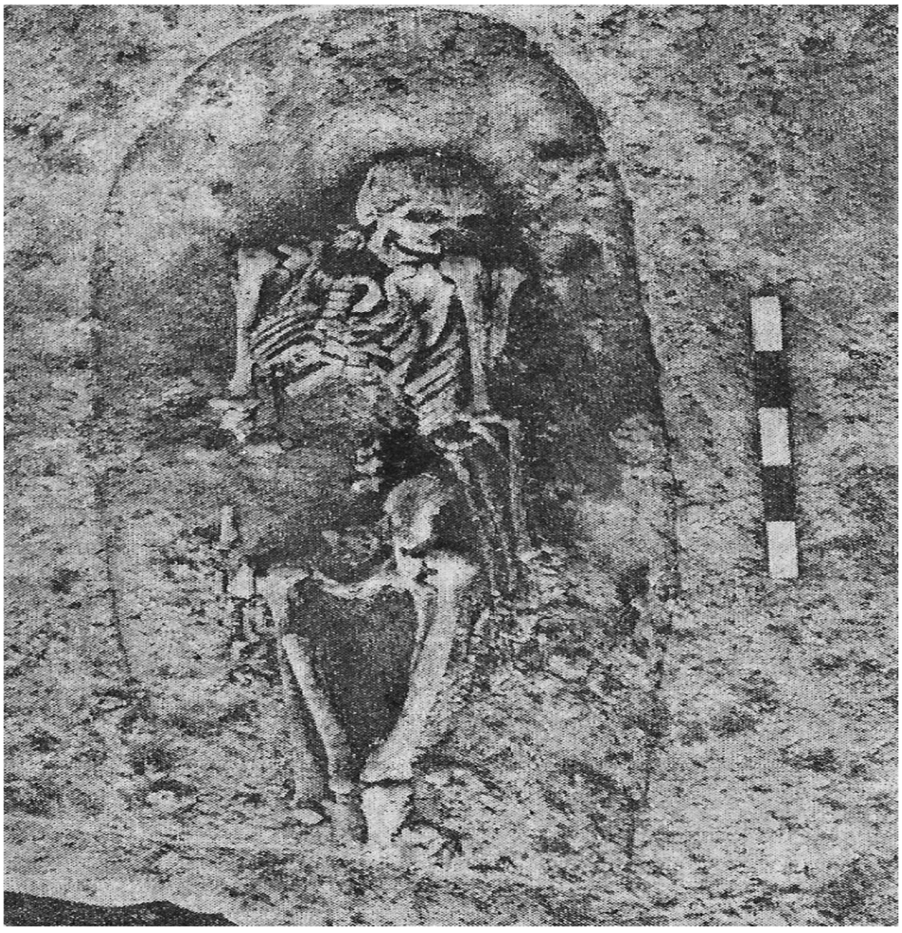

चित्र संख्या 7.7ः महदहा : समाधिस्थ मानव कंकाल (शर्मा, 1989)

यद्यपि महदहा में भी अधिकतर मृतकों को पश्चिम–पूर्व दिशा में लिटाकर दफनाया गया है (पाल. 1985 :

28–37) तथापि इस स्थल पर कभी–कभी पूर्व और पश्चिम में भी दिक्स्थापन मिलता है। इस काल का मानव कभी–कभी अपने मृतकों का सिर पूर्व तथा पैर पश्चिम दिशा में करके दफनाता था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ दो तरह से शव को दफनाने की मान्यता रही हो या दो प्रजाति के लोग साथ–साथ रहते रहे हों। यहाँ की समाधियों में सराय नाहर राय की समाधियों से भिन्नता पायी जाती है क्योंकि यहाँ की समाधि में मृतकों के दोनों हाथ समानान्तर रखे हुए हैं, जबकि सराय नाहर राय की समाधि में मृतकों का एक हाथ शरीर के समानान्तर और दूसरा पेट पर रखा हुआ है। महदहा में कुछ मृतकों का एक हाथ कटि के नीचे तथा दूसरा जांघों के बीच में रखा हुआ है। महदहा से तीन बच्चों के भी शवाधान प्राप्त हुए हैं (वर्मा. 2005 : 120) जिनमें दो की उम्र का निर्धारण किया जा चुका है जिसमें एक 6 वर्ष का बालक है (चित्र संख्या–7.8) और दूसरा 4 वर्ष की बालिका है। यहाँ से प्राप्त 28 समाधियों के 30 कंकालों का दिक्स्थापन का विवरण सारणी संख्या–7.2 में दिया गया है–

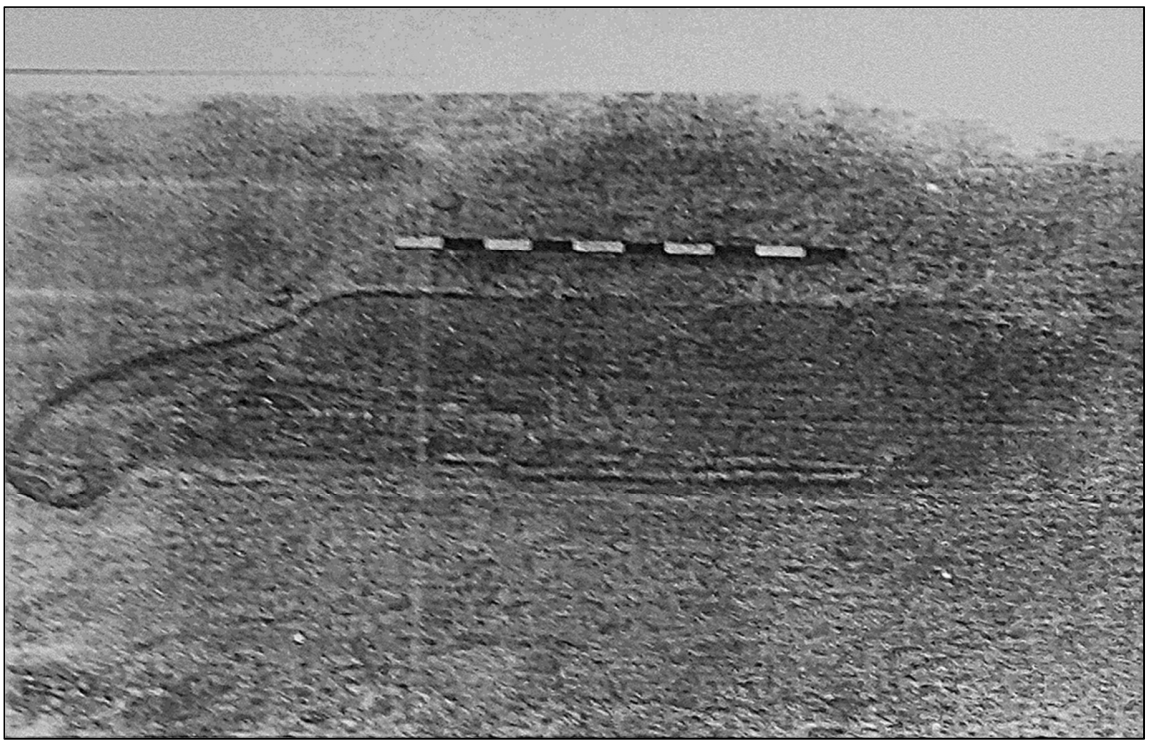

चित्र संख्या 7.8: महदहा से प्राप्त बच्चे का शवाधान

सारणी संख्या – 7.1

कंकालों का दिक्विन्यास (वर्मा व अन्य. 2005 : 120)

क्र.सं.	कंकाल	दिक्विन्यास
1.	21 कंकाल	पश्चिम–पूर्व
2.	5 कंकाल	पूर्व–पश्चिम
3.	4 कंकाल	दक्षिण–पूर्व से उत्तर पश्चिम दिशा में

महदहा से दो युग्मित शवाधान के प्रमाण प्राप्त हुए है। एक समाधि में नारी बायें और पुरुष को दायें रखकर दफनाया गया है तथा दूसरी समाधि में पुरुष नीचे तथा नारी ठीक ऊपर है। पुरुष के कान में कुण्डल तथा गले में हार है (चित्र संख्या–7.9)। एक दूसरी समाधि में भी पुरुष कपाल के साथ हार उपलब्ध हुआ है। इस प्रमाण से ऐसा लगता है कि पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक आभूषण प्रेमी था।

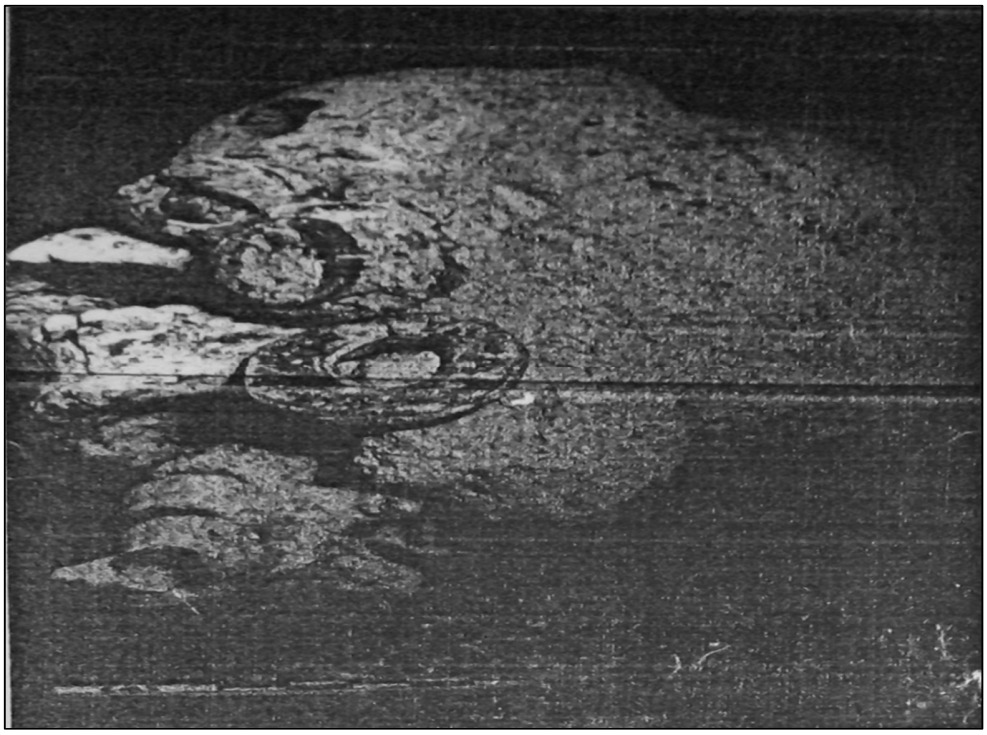

चित्र संख्या 7.9: महदहा से प्राप्त मृगश्रृंग की मुद्रिका युक्त पुरुष कंकाल (शर्मा. 1980)

ये आभूषण छिद्रयुक्त गोल हड्डियों और मृगश्रृंगों को काटकर बनाये गये थे (चित्र संख्या–7.10)। आभूषण के प्रयोग का भारतीय प्रागैतिहास में यह प्राचीनतम प्रमाण प्रतीत होता है। उत्खनन के दौरान आभूषण निर्माण प्रक्रिया पर प्रकाश डालने वाले बहुत से अर्द्धनिर्मित आभूषण प्राप्त हुए हैं (चित्र संख्या–7.11)। जानवरों की जली हुई हड्डियाँ व हड्डियों के उपकरण तथा पाषाण उपकरण शव सामग्री के रूप में प्राप्त हुए हैं (शर्मा एवं अन्य. 1980 : 60)।

चित्र संख्या 7.9: महदहा से प्राप्त आभूषण निर्माण का प्रमाण (शर्मा. 1980)

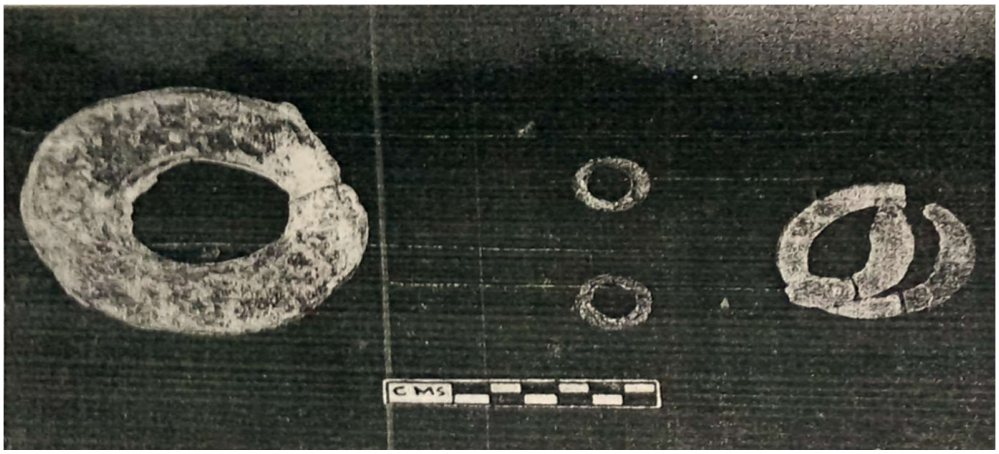

चित्र संख्या 7.10: महदहा से प्राप्त मृगश्रृंग एवं हड्डी पर बना आभूषण (शर्मा. 1980)

शवाधान संख्या XXIV को छोड़कर सभी विस्तीर्ण शवाधान था। कंकाल को पीठ के बल लिटाया गया था तथा उनका सिर बायीं ओर मुड़ा हुआ था। केवल एक कंकाल में बायें हाथ की केहुनी के नीचे का भाग पेट पर था अन्य सभी कब्र में हाथ शरीर के बगल में था। एक कब्र में कंकाल के दोनों हाथ सीने पर रखे हुए थे। शव को दफन करने से पूर्व मिट्टी की एक परत रखी जाती थी तथा सिर के पास थोड़ी ज्यादा मिट्टी डाली जाती थी। मृतकों के साथ अंत्येष्टि सामग्री के रूप में पशुओं की जली हुई हड्डियाँ, लघु पाषाण उपकरण तथा गेरू के घिसे टुकड़े आदि रखे गये थे। कंकालों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मृत्यु के समय पुरुषों की औसत आयु 18–40 वर्ष तथा स्त्रियों की 30–60 वर्ष थी (वर्मा. 2005 : 120)। शवाधान संख्या IX के कंकाल में हिरण के श्रृंग से निर्मित पाँच छल्लों की माला थी तथा शवाधान संख्या V का पुरुष 12 छल्लों की माला गले में तथा बायें कान में कुण्डल पहने हुए था (चित्र संख्या–7.11)।

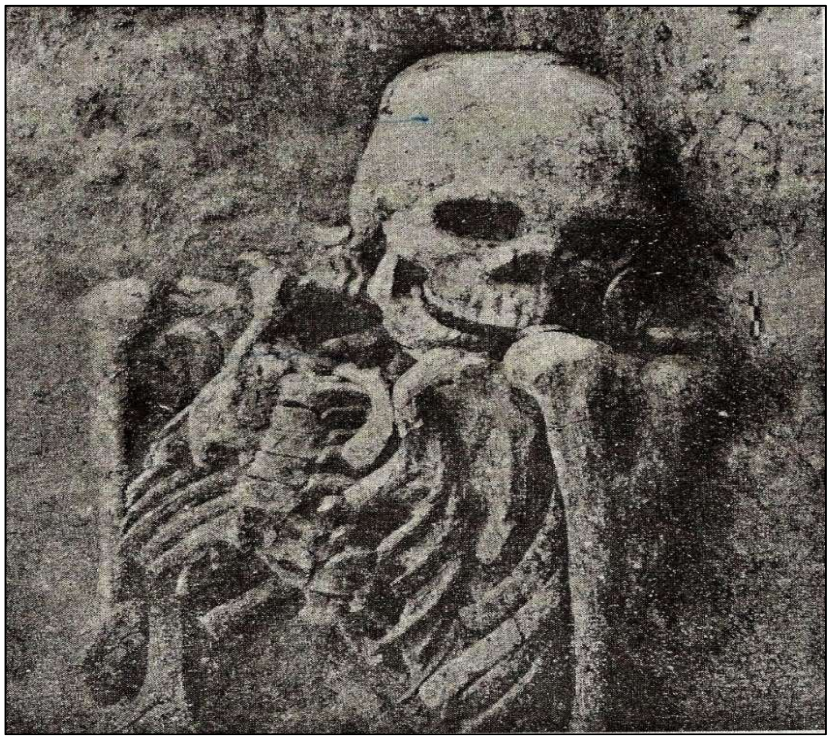

चित्र संख्या 7.11: महदहा से प्राप्त कुण्डल पहने मानव कंकाल (शर्मा, 1980)

सारणी संख्या–7.2

महदहा से प्राप्त शवाधनों का विवरण

सारणी सन्दर्भ– (कनेडी और अन्य. 1992 : 104–115;पाल, 1992 b : 34–46;शर्मा और अन्य, 1980: 87, 90 91, 94, 95, 96)

स्तर क्रम	शवाधान संख्या	शवाधान	लिंग	आयु	दिक्विन्यास	वर्ष
प्रथम उपकाल	I/XIV	युग्म शवाधान	स्त्री पुरुष	युवा	पश्चिम–पूरब	1978
	II/XIII	एकल	पुरुष	युवा	,,	,,
	III/XIII	,,	,,	,,	,,	,,
द्वितीय उपकाल	IV/XI	एकल	पुरुष	युवा 22–26 वर्ष	,,	,,
	V/X	युग्म शवाधान	पुरुष स्त्री	युवा 18–20 वर्ष	,,	,,
तृतीय उपकाल	V/IX	एकल	पुरुष	युवा 19–22	,,	,,
	VII/VIII	,,	,,	युवा	,,	,,
	VIII/VII	,,		बच्चा	,,	,,
	IX/VI	,,	पुरुष	युवा	,,	,,
	XV/V	,,	,,	,,	,,	,,
	XI/IV	,,	,,	,,	,,	,,
	XII/III	,,	,,	युवा 24–28 वर्ष	,,	,,
	XV/VIA/ XV	,,	–	–	,,	,,

महदहा के उत्खनन के फलस्वरूप जितनी भी समाधियाँ मिली हैं उनको चार उपकालों में विभाजित किया गया है।

प्रथम उपकाल

↓

तीन शवाधान एवं चार कंकाल

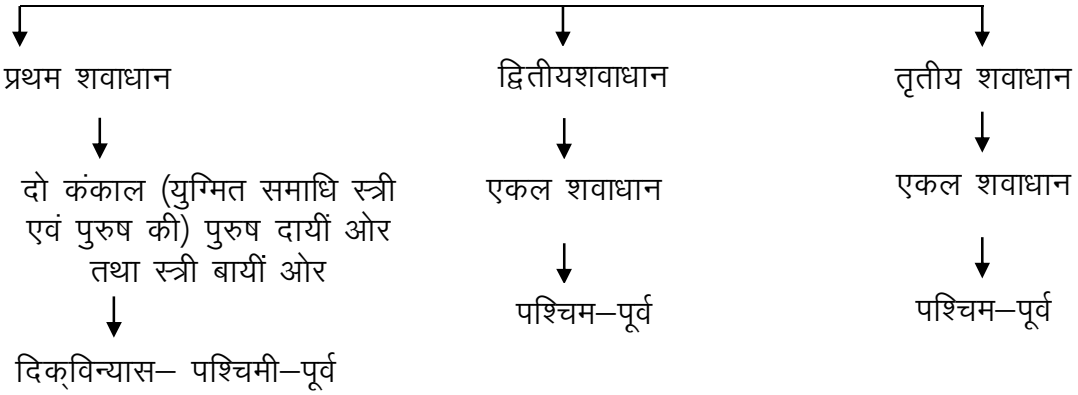

द्वितीय उपकाल

दो शवाधान, तीन कंकाल

- प्रथम शवाधान
  - एकल शवाधान
  - पुरुष–कंकाल
  - दिक्विन्यास–पश्चिम–पूर्व
  - अन्त्येष्टि सामग्री रखी हुई मिली है
  - पुरुष कंकाल हिरण के श्रृंग की बनी पाँच मुद्रिकाओं की माला गले में पहने हुए था
- द्वितीय शवाधान
  - युग्म शवाधान
  - एक स्त्री एवं एक पुरुष का कंकाल, पुरुष कंकाल के ठीक ऊपर स्त्री कंकाल है
  - दिक्विन्यास–पश्चिम–पूर्व
  - अन्त्येष्टि सामग्री रखी हुई है

तृतीय उपकाल

10 शवाधान, 10 कंकाल

- 6 का लिंग निर्धारण हुआ है
  - 4 पुरुष कंकाल
  - 2 स्त्री कंकाल
    - एक स्त्री कंकाल के साथ मृगश्रृग की दो गुरिया तथा एक बाण मिला है
      - अन्त्येष्टि सामग्री
    - दूसरे स्त्री कंकाल के साथ कछुआ की खोपड़ी का एक टुकड़ा मिला है
      - अन्त्येष्टि सामग्री
- दिक्विन्यास
  - सात कंकालों का पश्चिम–पूर्व में
  - एक कंकाल पूर्व–पश्चिम दिशा में तथा दो कंकाल तिरछा पूर्व–दक्षिण से उतर दक्षिण की तरफ सिर करके दफनाया गया है
- 4 का लिंग निर्धारण नहीं हो पाया है

7.4.2 चतुर्थ उपकाल

इस उपकाल से सबसे अधिक 13 शवाधान मिले हैं और प्रत्येक शवाधान से एक–एक कंकाल प्रकाश में आये हैं। इन 13 कंकालों में 11 का लिंग परीक्षण हो पाया है जिसमें 7 महिला तथा चार पुरुष के कंकाल हैं। दो कंकालों के लिंग की पहचान नहीं की जा सकी है। 13 शवाधानों में 12 कंकालों का विस्तीर्ण शवाधान किया गया है तथा एक को मोड़कर दफनाया गया है। 13 में से 10 कंकाल वयस्क लोगों के हैं तथा एक कंकाल वृद्ध व्यक्ति का तथा दो बच्चों का कंकाल है (लुकाज और पाल. 1992 : 45–55)। इस काल में 13 कंकालों में से 6 कंकालों का दिक्स्थापन पश्चिम–पूर्व की ओर तथा 5 का पूर्व–पश्चिम की ओर है तथा दो कंकालों का दिक्विन्यास तिरछी रेखा में है।

महदहा के उत्खनन से शवाधान के अलावा 35 गर्त–चूल्हों के भी प्रमाण मिले हैं। इनमें से कुछ में प्लास्टर भी किया गया है जिनमें पशुओं की जली हुई हड्डियाँ भी मिली हैं। एक चूल्हे में भैसे का पूरा सिर मिला था (वर्मा. 2005 : 120)। सराय नाहर राय की तरह यहाँ भी अण्डाकार एवं गोल आकार के चूल्हों की प्राप्ति होती है। इन चूल्हों में माँस के टुकड़े को रखकर भूनने का कार्य किया जाता रहा होगा। महदहा से अण्डाकार चूल्हे अधिकता में मिलते हैं (चित्र संख्या–7.12)।

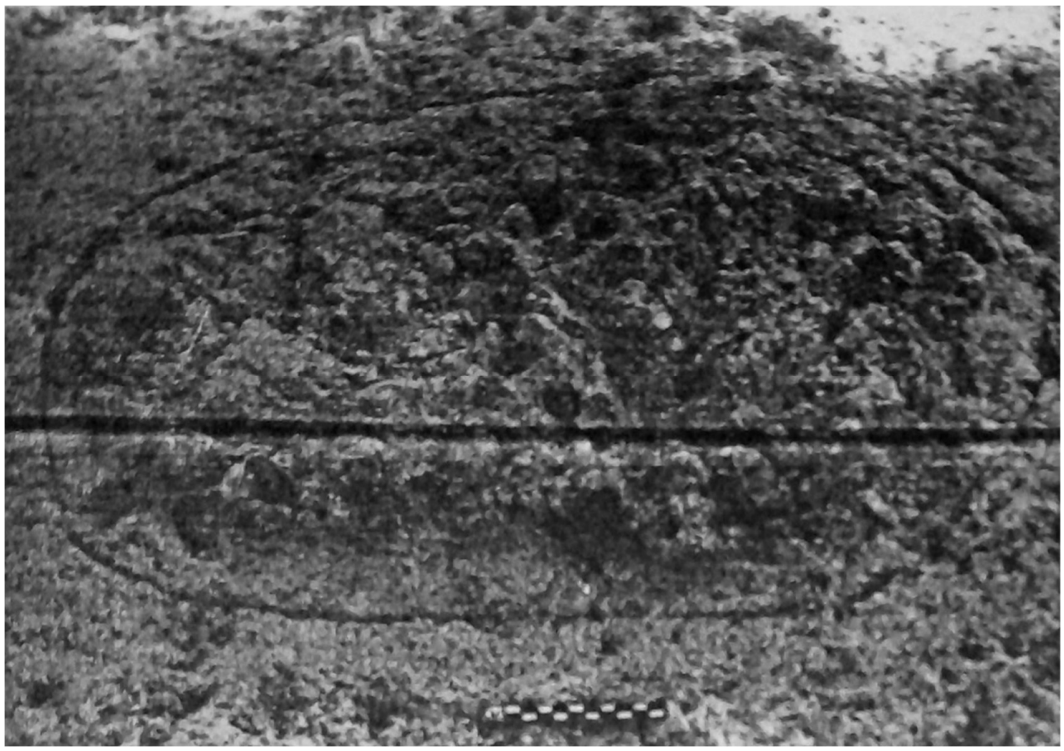

चित्र संख्या 7.12 : महदहा से प्राप्त अण्डाकार गर्त चूल्हा (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

इन अण्डाकार चूल्हों से प्राप्त जली मिट्टी के ढोकों के साथ मिलने वाली जली हड्डी के अवशेष यह इंगित करते हैं कि सम्भवतः माँस को मिट्टी से ढ़क कर पकाया गया होगा (शर्मा. 1980 : 54–55)। यहाँ से प्राप्त कुछ गर्तों में लेप की कई परतें हैं लेकिन इनमें जली मिट्टी के टुकड़े, हड्डी तथा राख आदि की प्राप्ति नहीं होती है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः इनका प्रयोग संग्रहित अनाज को रखने के लिये किया जाता रहा होगा। महदहा के गर्त चूल्हों तथा गोखुर झील से जंगली जानवरों एवं कुछ पालतू जानवरों की हड्डियाँ मिलती हैं जिनमें बैल, जंगली भैंस, हिरण, बारह सिंगा, सुअर, दरियाई घोड़ा, गैंडा, भेड़–बकरी और घोड़ा विशेष उल्लेखनीय हैं (आलूर. 1980 : 201–227)।

7.4.3 बूचड़स्थल (जानवरों के वध करने का स्थल)

आवासीय स्थल तथा झील वाले क्षेत्र के मध्य में 756 वर्ग मीटर में सतह पर जानवरों की हड्डियाँ अत्यधिक

मात्रा में फैली हुई मिलती है। इसमें मानव अस्थियों का पूर्णतः अभाव है। प्राप्त जानवरों की हड्डियों में अधिकांश पर कटे का निशान है। सम्भवतः जानवरों को लाकर यहाँ काटा गया होगा। इसी कारण इस स्थल को बूचड़ स्थल (बूचड़खाना) कहा गया है। जानवरों में दरियाई घोड़ा, गाय, बैल, जंगली भैंसा, हिरण, मृग एवं कछुआ की हड्डियाँ प्राप्त होती हैं (आलूर. 1980 : 205–210)। हिरण एवं मृग की हड्डियाँ सर्वाधिक संख्या में हैं।

7.4.4 झील का क्षेत्र

महदहा पुरास्थल के आवासीय क्षेत्र के दक्षिण–पश्चिम भाग पर झील का क्षेत्र अवस्थित है। इस क्षेत्र से भी पशुओं की अस्थियाँ मिलती हैं जिसका विस्तार क्षेत्र लगभग 1344 वर्ग मीटर है। झील के स्तर 8 एवं 9 से जली हुए मिट्टी के ढ़ोके, लघु पाषाण उपकरण, सिल–लोढ़ा तथा जली–अधजली हड्डियों की प्राप्ति होती है (शर्मा, 1980: 56)। सिल–लोढ़ो के प्रमाण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के मानव द्वारा जंगली अनाज के दानों का संग्रह कर भोज्य–सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता रहा होगा। इन स्तरों से लिये गये मिट्टी के नमूने पुरापुष्प पराग से युक्त हैं जिनका प्राथमिक विश्लेषण इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के डी0डी0 पंत ने किया है। इस विश्लेषण से घास के पुष्प पराग होने का पता चलता है जिससे लगता है यह क्षेत्र हरी घासों से युक्त रहा होगा।

महदहा से लघु पाषाण उपकरण शवाधान के साथ सतह पर बिखरे मिले हैं लेकिन सराय नाहर राय एवं दमदमा की अपेक्षा कम मात्रा में मिले हैं। प्रमुख उपकरणों में ब्लेड, शर, भुथड़े ब्लेड, पार्श्व ब्लेड, अर्धचान्द्रिक स्क्रेपर, त्रिभुज, खात युक्त ब्लेड, बेधक, समलम्ब चतुर्भुज आदि हैं (सारणी संख्या–7.3) (चित्र संख्या–7.13)।

इन उपकरणों का निर्माण चर्ट, केल्सीडोनी, कार्नेलियन, अगेट, क्वार्टज तथा क्रिस्टल से किया गया था (सारणी संख्या–7.4)। महदहा से पाषाण उपकरणों के अलावा पाषाण की अन्य वस्तुएँ भी मिली हैं जिनमें सिल–लोढ़े, गोफन तथा हथौड़े आदि प्रमुख हैं (सारणी संख्या–7.5)। पाषाण के उपकरण के साथ–साथ महदहा से हड्डी के भी उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनमें वाणाग्र, बेधक, खुरचनी, आरी, रुखानी, चाकू आदि है (सारणी संख्या–7.6)। इसके अलावा श्रृंग के आभूषण भी महदहा से मिलते हैं जिसमें कुण्डल तथा मुद्रिकाएँ उल्लेखनीय है।

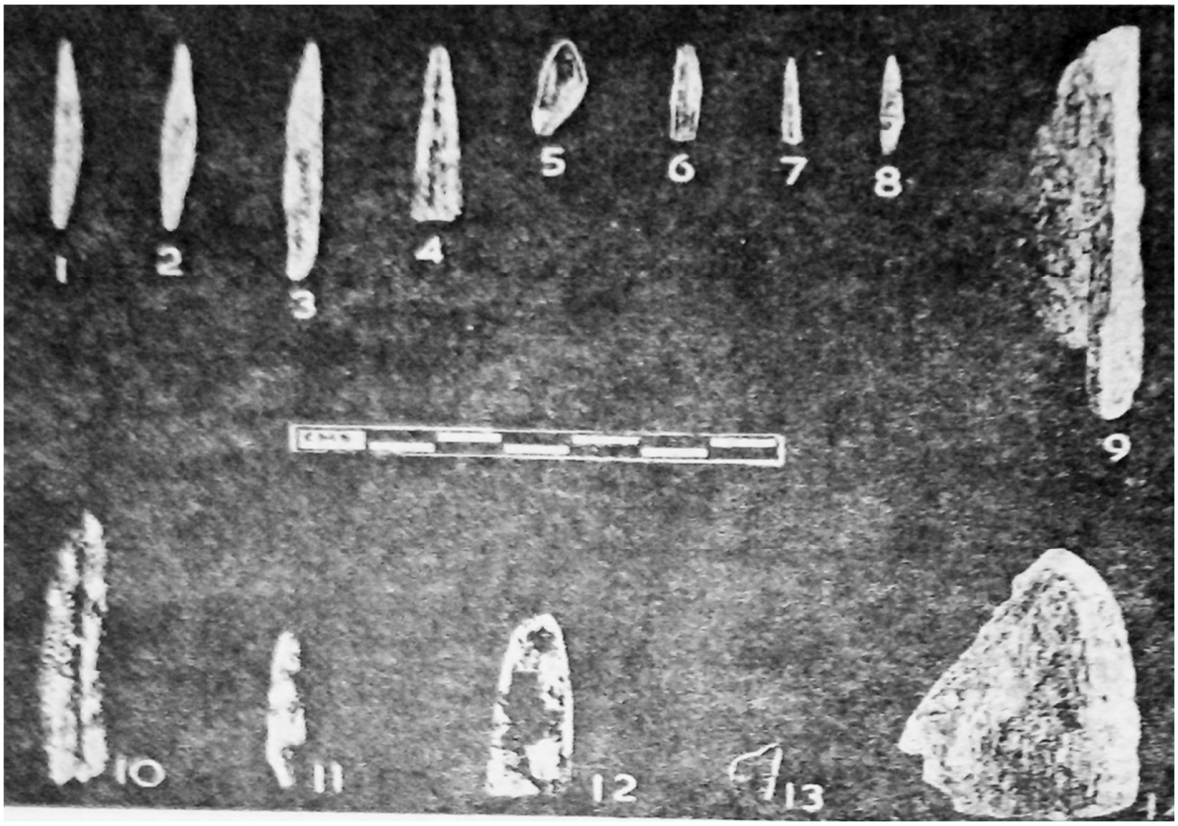

चित्र संख्या 7.13: महदहा से प्राप्त अस्थि उपकरण (शर्मा, 1980)

आर0के0 आलूर यहाँ से प्राप्त भेड़–बकरियों के प्रमाण के आधार पर और मनुष्यों से इन पशुओं की सन्निकटता के आधार पर पशुपालन प्रारम्भ होने की प्रक्रिया के प्राथमिक प्रमाण को मानते हैं (थॉमस, 1995 : 29–36)। लेकिन आलूर के मत के विपरीत थॉमस और पी0पी0 जोगलेकर ने दिया है इनका मानना है कि जिन हड्डियों को आलूर भेड़–बकरी की हड्डी मानते है, वे वास्तव में हिरण की हड्डी है। अतः इनका मानना है कि यहाँ से किसी पालतू पशु के अवशेष नहीं मिले हैं (थॉमस. 1995 : 29–36)।

महदहा से प्राप्त अवशेषों के आधार पर इसे मध्य पाषाण काल के ज्यामितिक चरण के साथ तिथिबद्ध किया जाता है। यहाँ से प्राप्त जली हुई हड्डियों के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट आफ पैलियो बॉटनी, लखनऊ ने तीन रेडियो कार्बन तिथियाँ निकाली हैं। ये तिथियाँ क्रमशः 4010 $\pm$ 120 ई0पू0, 2880 $\pm$ 250 ई0पू0 एवं 4840 $\pm$ 30 ई0पू0 है। इसके आधार पर महदहा के पुरातात्विक अवशेषों को 5000 ई0पू0 के लगभग का माना जा सकता है जो गंगा मैदान की मध्य पाषाणिक संस्कृति की गाथा को आधार प्रदान करते हैं।

सारणी संख्या : 7.3

महदहा से प्राप्त लघु पाषाण उपकरण (शर्मा. 1980 : 60)

ऊपकरण	ब्लेड	छिद्रक	कुण्ठित ब्लेड	चान्द्रिक	खुरचनी	दाँतेदार ब्लेड	बेधक	समलम्ब चतुर्भुज	कुल
संख्या	27	20	17	8	8	2	1	1	87
प्रतिशत	31.03	22.98	19.54	9.19	9.19	2.29	1.14	1.14	100

सारणी संख्या : 7.4

लघु पाषाण उपकरण के निर्माण में प्रयुक्त पाषाण प्रकार (शर्मा. 1980 : 60)

पाषाण	चर्ट	केल्सीडोनी	कार्नेलियन	अगेट	क्वार्टज	क्रिस्टल	कुल
संख्या	802	538	93	37	26	6	1502
प्रतिशत	53.39	35.81	6.19	2.46	1.73	0.39	100

सारणी संख्या : 7.5

महदहा से प्राप्त पाषाण पुरावशेष (शर्मा. 1980 : 61)

पाषाण पुरावशेष	सिल	लोढ़ा	निहाई	हथौड़ा	गेंद	धार तेज करने वाला पत्थर	कुल
संख्या	191	25	4	6	3	70	301
प्रतिशत	53.45	8.30	1.32	1.99	0.99	23.25	100

सारणी संख्या : 7.6

महदहा से प्राप्त अस्थि उपकरण (शर्मा.1980 : 63)

उपकरण	वाणाग्र	छिद्रक	ब्लेड	चाकू	छेनी	खुरचनी	छोटी आरी	अन्य	कुल
संख्या	22	13	1	2	1	2	1	3	45
प्रतिशत	48.8	28.8	2.2	4.4	2.2	4.4	2.2	6.6	100

7.5 दमदमा (26°1′0′′ उ0 अक्षांश, 82°10′36′′ पूर्वी देशान्तर) या वारीकलान दमदमा

भारत की मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के परिदृश्य को समझने के लिए मध्य गंगा मैदान के पुरातात्विक स्थलों (सरायनाहर राय, महदहा एवं दमदमा) में दमदमा एक महत्वपूर्ण पुरास्थल है(आई0ए0आर0. 1982–83 : 99–100)। इस पुरास्थल के उत्खनन के परिणाम स्वरूप मध्य गंगा मैदान के इतिहास को जानने के लिए एक और महत्वपूर्ण आधार मिला जो कि सराय नाहर राय एवं महदहा से प्राप्त प्रमाणों को और अधिक पुष्ट करता है क्योंकि यह पुरास्थल अपने समग्र रूप में उपस्थित है तथा इसका विस्तारपूर्वक उत्खनन कार्य किया गया है। इस पुरास्थल की खोज एवं उत्खनन का कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के आर0के0 वर्मा, जे0एन0 पाण्डेय तथा जे0एन0 पाल द्वारा करवाया गया। पुरास्थल की खोज 1978 ईस्वी में तथा उत्खनन कार्य 1982–83 से 1986–87 तक पाँच सालों में करवाया गया। यह पुरास्थल महदहा से 5 किमी उत्तर दिशा में प्रतापगढ़ जनपद की पट्टी तहसील

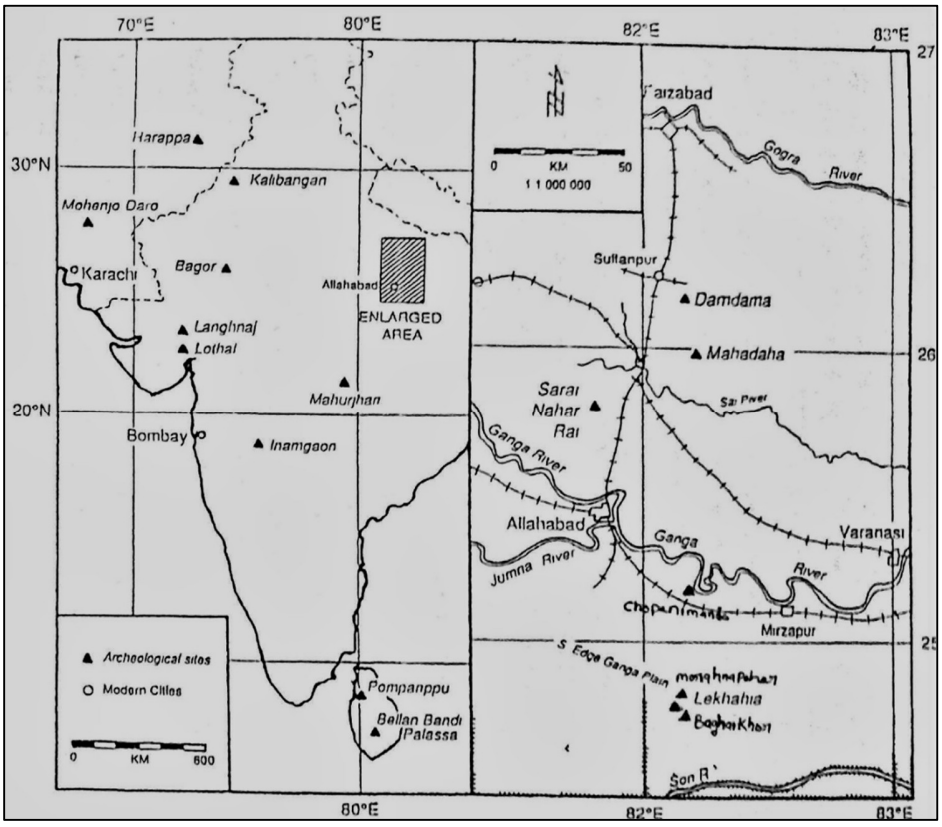

मानचित्र 7.4 : मध्य पाषाण काल के उत्खनित पुरास्थल

तहसील में बारीकला नामक गाँव के पास स्थित है (मानचित्र 7.4)। पुरास्थल का आकार गोलाकार है तथा पीली नदी की सहायक तम्बूरा नाले की दो भुजाओं के संगम पर स्थित है। इन नालों की सम्भावना प्राचीन गोखुर झील के अवशेष के रूप में की जाती है। यह पुरास्थल मध्य पाषाणिक अवशेषों से परिपूर्ण लगभग 8,750 वर्ग मी0 क्षेत्र में फैला है (वर्मा और अन्य. 1985 : 45–65) (चित्र संख्या 7.14)।

पुरास्थल के उत्खनन के फलस्वरूप 1.5 मी0 का आवासीय जमाव प्रकाश में आया है जिसे 10 स्तरों में विभाजित किया गया है। प्रथम काल का सम्पूर्ण आवासीय जमाव एक ही तरह की पीली मिट्टी का है जिसे अलग करना सम्भव नहीं है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मानव द्वारा यहाँ लम्बे समय तक अधिवास किया गया था (शर्मा. 2005 : 121)।

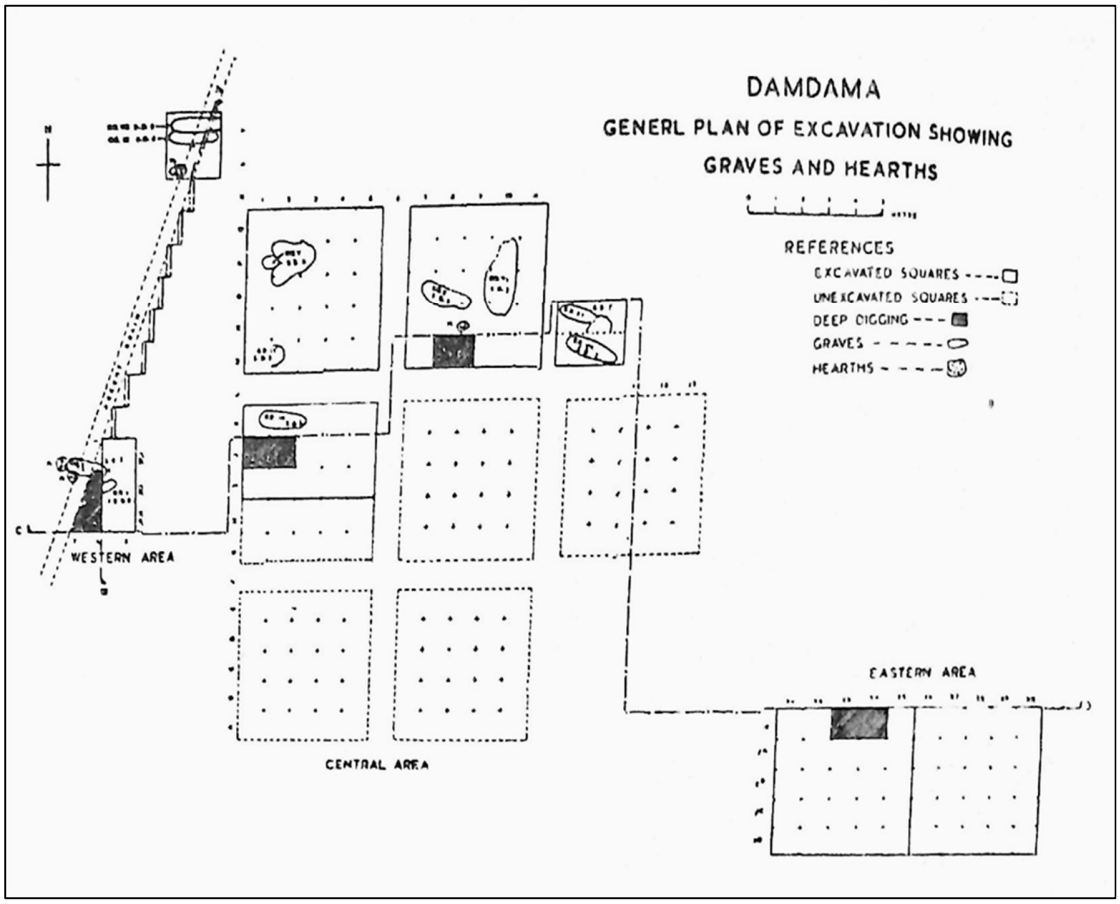

चित्र संख्या 7.14: दमदमा पुरास्थल का रेखाचित्र (वर्मा एवं अन्य. 1985)

इस पुरास्थल पर उत्खनन के लिए तीन स्थान का चयन किया गया था जो टीले के पूर्ववर्ती, मध्यवर्ती तथा पश्चिमवर्ती क्षेत्रों में स्थित है। उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ से लघु पाषाण उपकरण, जली मिट्टी के ढ़ोके, पशुओं की हड्डियाँ तथा भारी संख्या में शवाधानों की प्राप्ति हुई है। इस पुरास्थल के मध्यवर्ती तथा पूर्ववर्ती भाग से कुल 41 शवाधान अब तक प्रकाश में आ चुके हैं (पाल. 1988 : 115–122)। डी0के0 भट्टाचार्य का मानना है कि उत्खनन में यहाँ अनेक क्रमिक चरण सामने आये हैं जिसके आधार पर इस क्षेत्र में मध्य–पाषाण कालीन संस्कृति की धीमी प्रगति का प्रदर्शन सामने आता है (भट्टाचार्य. 2007 : 130)। इस पुरास्थल से मध्य गंगा मैदान के अन्य मध्य पाषाणिक स्थल सराय नाहर राय एवं महदहा की तुलना में सबसे अधिक 41 शवाधानों की प्राप्ति हुई है (मिश्रा. 1997 : 35) (चित्र संख्याः 7.15) जो इस बात की ओर संकेत करती है कि इस काल का मानव पारलौकिक जीवन की मान्यता में अधिक विश्वास करता था।

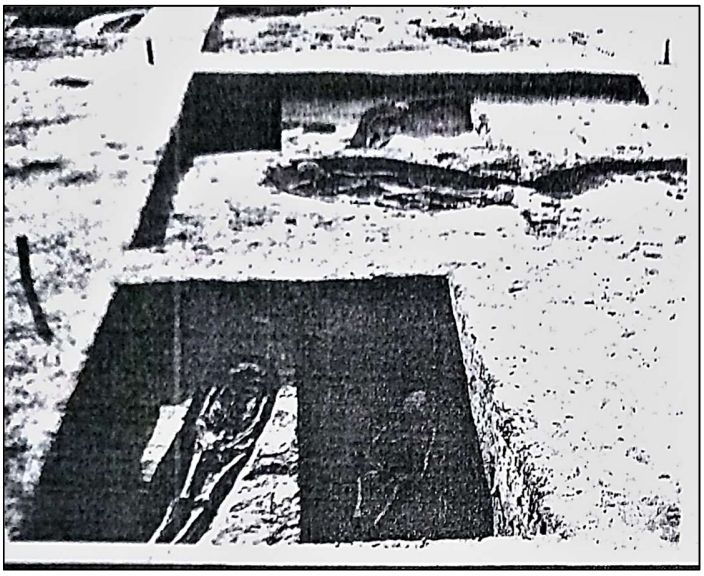

चित्र संख्या 7.15: दमदमा से प्राप्त शवाधानों का विहंगम दृश्य

यहाँ से प्राप्त आवासीय जमाव को 10 स्तरों में विभाजित किया गया है जिसमें नीचे से नौ स्तर तक का जमाव मध्य पाषाण कालीन संस्कृति का है तथा ऊपरी स्तर या 10वीं स्तर का जमाव बाद का है। सम्पूर्ण मध्य पाषाण कालीन जमाव को नौ उपकालों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक जमाव से मध्य–पाषाण कालीन मानव के रहन–सहन के उल्लेखनीय प्रमाण मिलते हैं जिनमें गर्त–चूल्हे लघु पाषाण उपकरण, श्रृंग से बने उपकरण, मिट्टी का प्लास्टर युक्त फर्श (चित्र संख्याः 7.16) तथा मानव शवाधान महत्त्वपूर्ण हैं। गर्त–चूल्हों को मिट्टी के कई लेप युक्त तथा बिना लेपन के भी बनाये जाने का प्रमाण मिलता है (चित्र संख्याः 7.17)। इन गर्त चूल्हों में पशुओं की जली हुई हड्डियाँ तथा मिट्टी के जले टुकड़े मिलते हैं। चूल्हों का आकार छिछला तथा गोलाकार है।

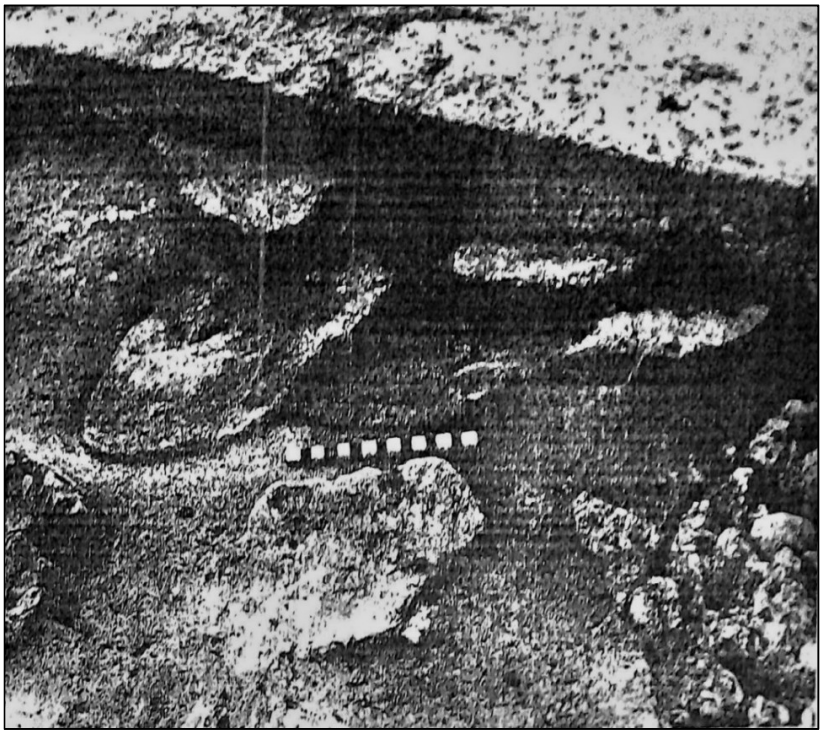

चित्र संख्या 7.16: दमदमा से प्राप्त जली हुई फर्श

जानवरों की हड्डियों में कुछ जंगली तथा कुछ पालतू जानवरों की हैं (चित्र संख्याः 7.18) जैसे गैंडा, चीतल साभर, बारह सिंगा तथा जंगली सुअर तथा भेड़–बकरी, बैल आदि (थॉमस और अन्य. 1995 : 29–36)। इनमें ज्यादातर जली हुई है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल के मानव द्वारा पशुओं के मॉस को भूनकर खाया जाता था। इसके अलावा पक्षियों, कछुआ तथा मछली की भी हड्डियाँ मिली हैं (पाल. 1988 : 115–122)।

दमदमा के स्तर स0 2, 3 एवं 5 से मिट्टी के साथ अनाज के दानों की भी प्राप्ति हुई है (सारणीः 7.7) जिसकी सम्भावना बाजरा के दाने से की जाती है (वर्मा एवं अन्य. 1985 : 65)। साथ ही साथ बेर के बीज के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं (पाल. 1994 : 91–101)।

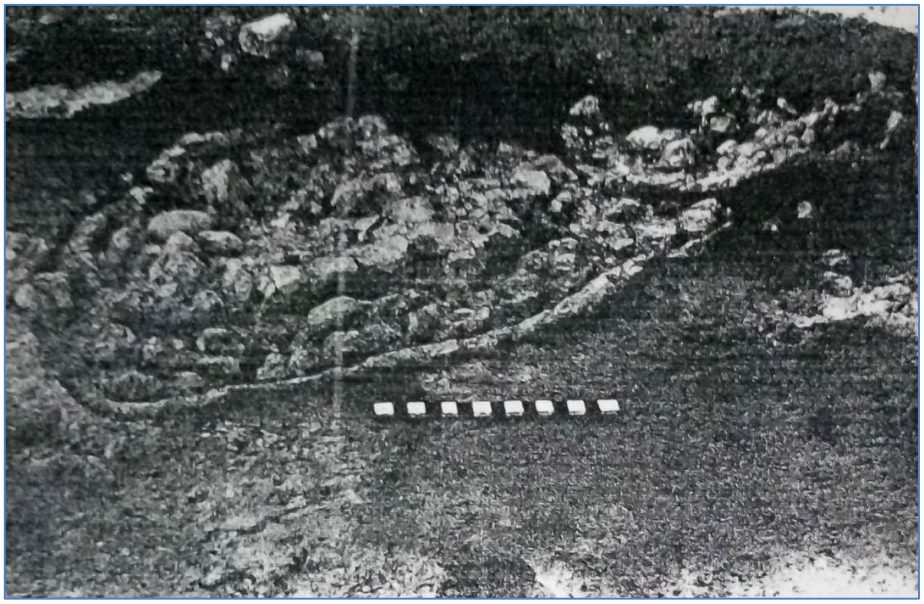

चित्र संख्या 7.17 दमदमा से प्राप्त लेप युक्त तथा बिना लेप युक्त चूल्हा

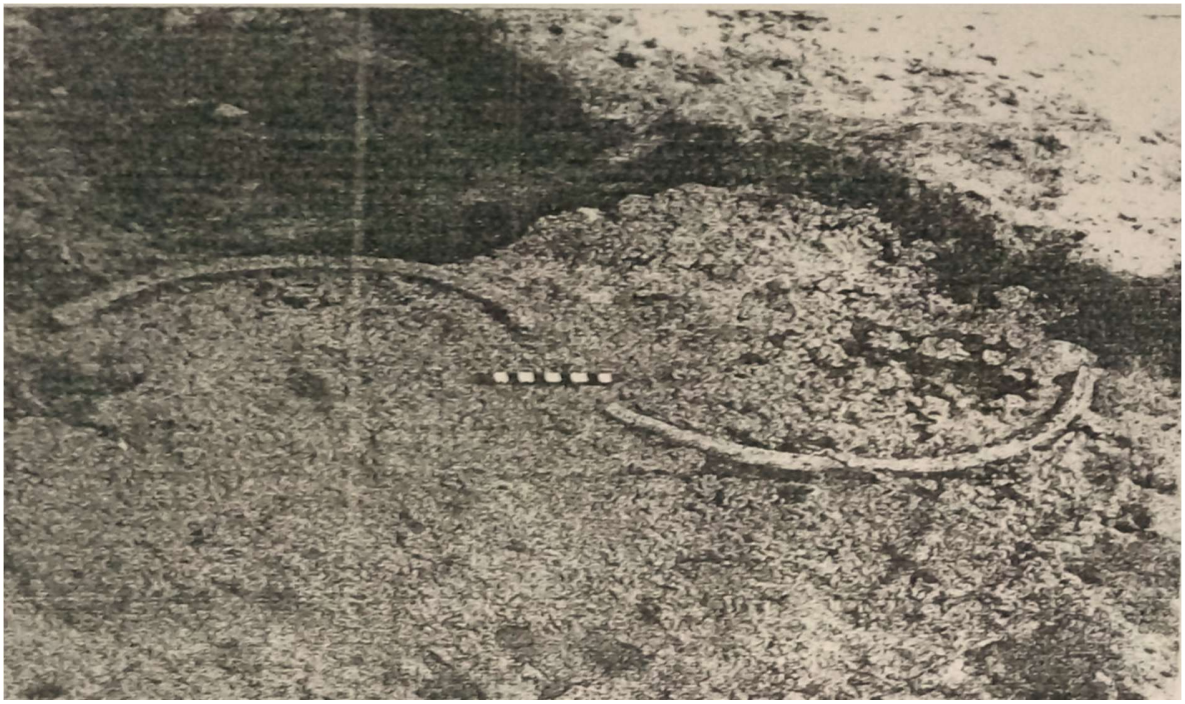

चित्र संख्या 7.18ः दमदमा के उत्खनन से प्राप्त पशुओं की हड्डियाँ

सारणी संख्या : 7.7

कुछ अनाज की प्रजाति एवं वैज्ञानिक नाम (काजले. 1990 : 82–102)

क्र.सं.	अनाज का नाम	
1.	जंगली घराना	हेटेरोपोगॉन कन्टोरटस
2.	गुजफुट (Goosefoot)	चेनोपोडीयम एल्बम
3.	पर्सलेन (Purslane)	पोंटुलाका ओलेरेसीया

कुछ और पौधों के बीज की पहचान की गयी है। इनमें बकह्वीट ;पॉली मोनेसीय डी नाइटसेड (सोलैनसीय) और माइन्ड लैबीयेट चावल की जंगली तथा उपजाऊ दानों की किस्म प्राप्त होती है (चट्टोपाध्याय. 2010 : 63; बोस. 2009 : 73–123)।

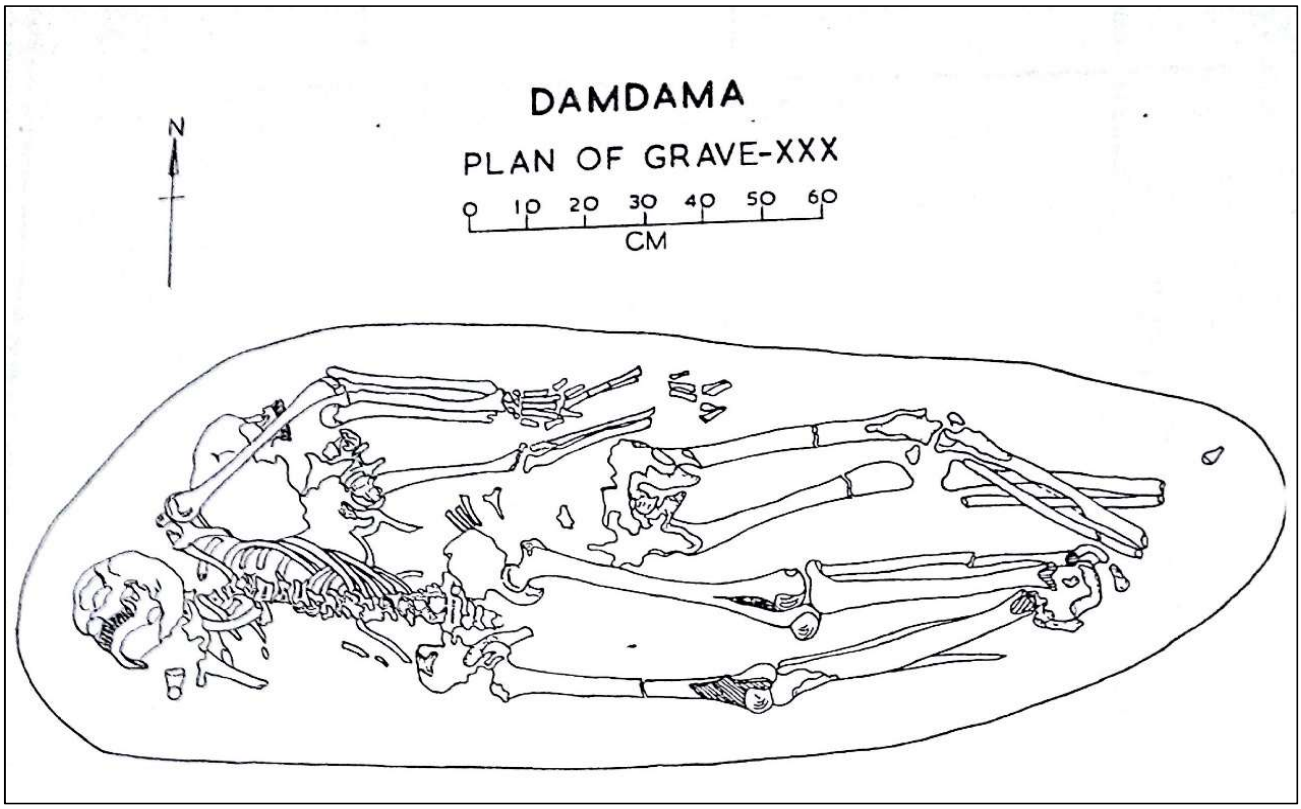

चित्र संख्या 7.19 : दमदमा से प्राप्त मुख्य शवाधान का रेखाचित्र

दमदमा के उत्खनन से गंगा मैदान के सभी मध्य पाणाणिक स्थल से ज्यादा शवाधान मिले हैं जिनकी संख्या 41 है। इन शवाधानों के साथ, इस संस्कृति से सम्बन्धित भौतिक वस्तुओं को भी रखा गया था जैसे, पाषाण–उपकरण, अस्थि–उपकरण, जंगली एवं पालतू जानवरों की अस्थियाँ इत्यादि जो इस काल के मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्व को उद्घाटित करते हैं। इन 41 शवाधानों में 5 शवाधान युग्मित एवं एक शवाधान में तीन कंकाल एक साथ दफनाये गये थे (चित्र संख्याः 7.19)। इनके साथ समानान्तर एवं कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, चान्द्रिक, समबाहु व विषमबाहु त्रिभुज एवं वाणाग्र आदि रखे गये हैं जो चर्ट एवं केल्सीडोनी पर बने हैं। युग्मित शवाधानों में शवाधान संख्या VI में पुरुष एवं नारी को एक–दूसरे की विपरीत दिशा में रखकर दफनाया गया है (चित्र संख्याः 7. 21)।

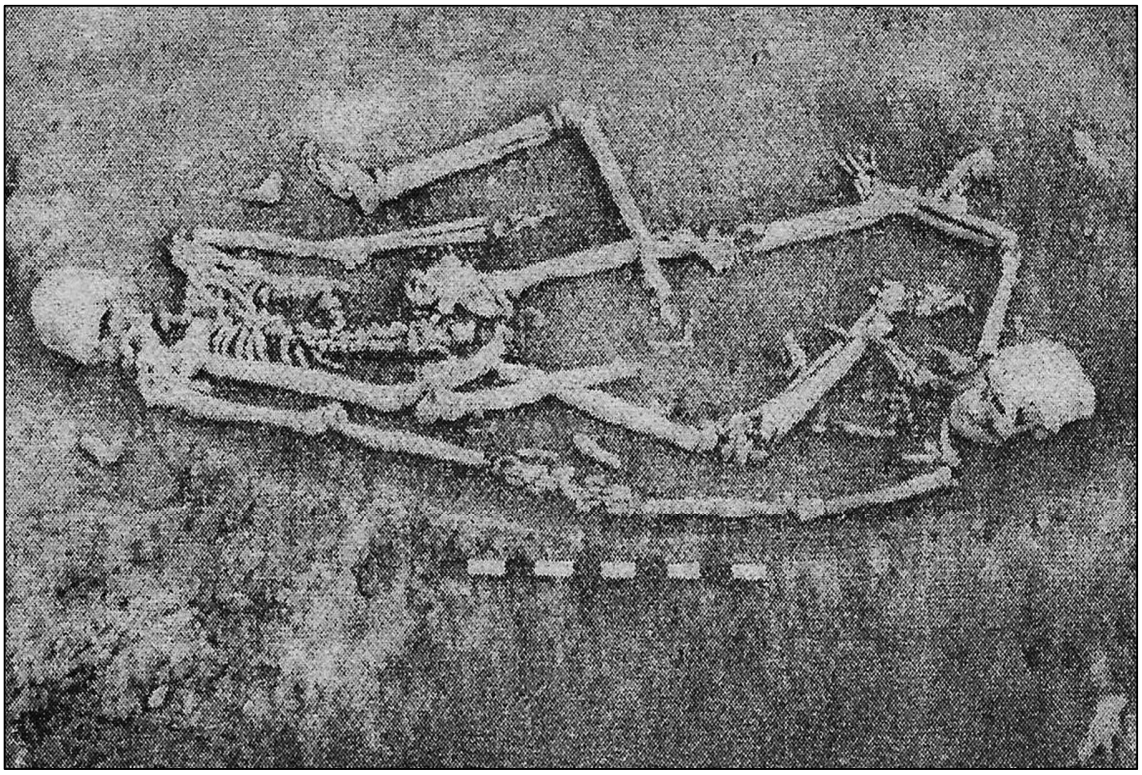

चित्र संख्या 7.20: दमदमा से प्राप्त युग्म मानव समाधि (वर्मा एवं अन्य. 1985)

शवाधान संख्या XVI, XX, XXX एवं XXXVI भी युग्मित शवाधान है (चित्र संख्या: 7.20)। शवाधान संख्या XVIII में तीन कंकाल एक साथ दफनाये गये हैं तथा अन्य शवाधान में एक–एक कंकाल है।

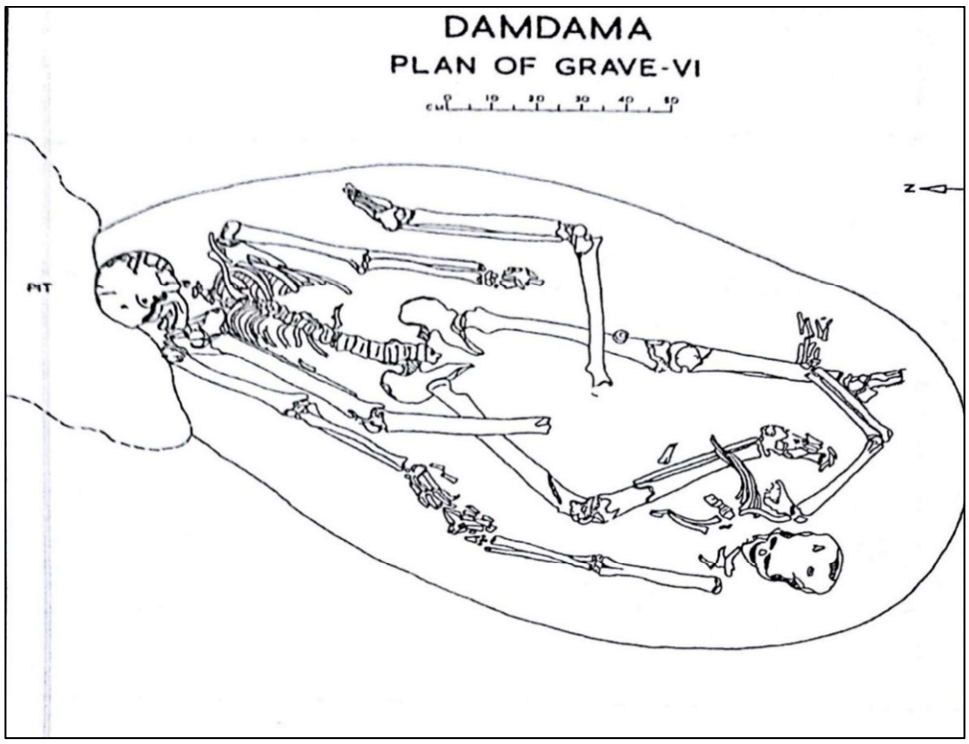

चित्र संख्या 7.21: दमदमा से प्राप्त विपरीत दिशा में दफनाये गये शवाधान का रेखाचित्र

इन शवाधानों में 30 कंकालों को पश्चिम–पूर्व दिशा में दफनाया गया है, तीन को पूर्व–पश्चिम में, चार कंकालों को दक्षिण–उत्तर से उत्तर–पूर्व दिशा में, चार कंकाल उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम दिशा में तथा एक कंकाल को उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व दिशा में दफनाया गया है। इन शवाधानों में अधिकांश को विस्तीर्ण अवस्था में पीठ के बल लिटाया गया है। दो कंकाल को पेट के बल तथा दो कंकालों को पैर मोड़कर दफनाया गया है (चित्र संख्याः 7.22–7.24)।

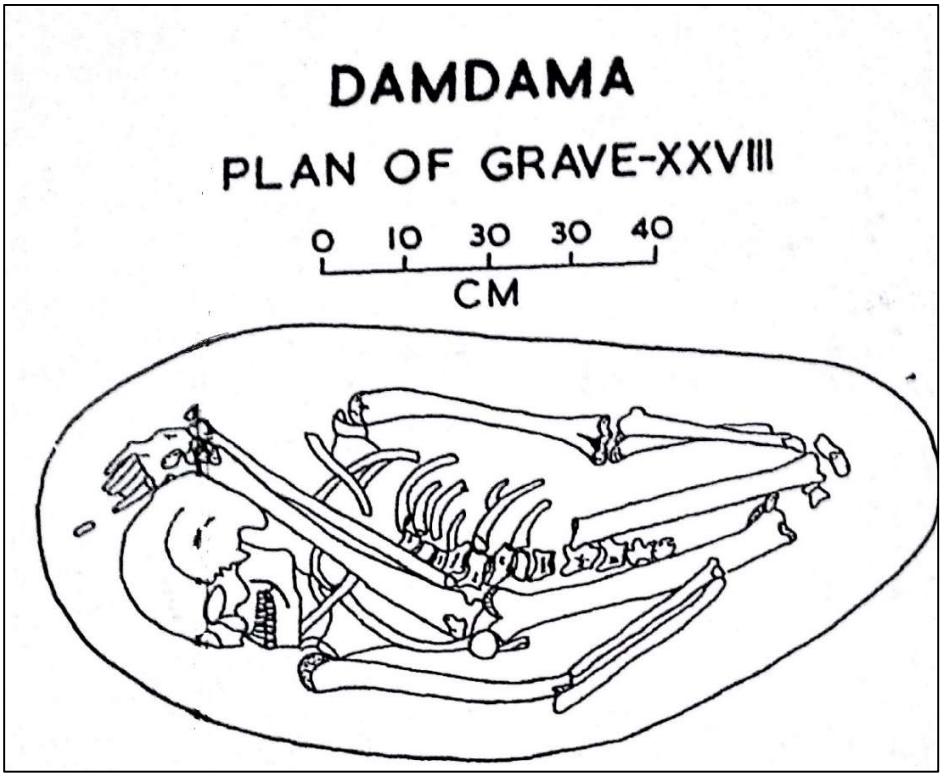

चित्र संख्या 7.22: दमदमा से प्राप्त हाथ–पैर मोड़कर दफनाया गया कंकाल का रेखाचित्र

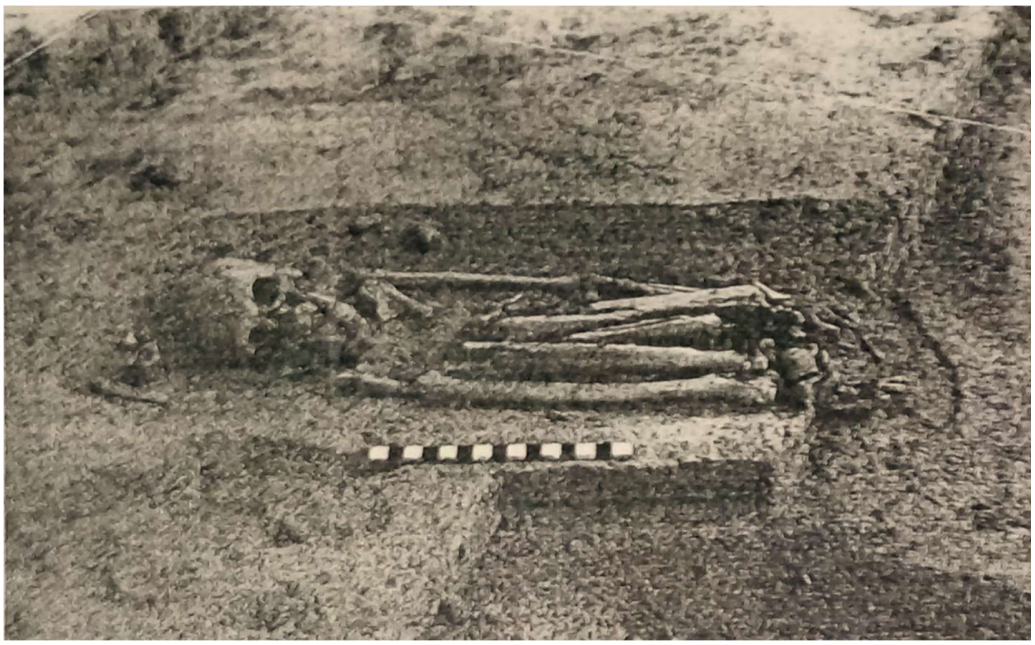

चित्र संख्या 7.23: दमदमा से प्राप्त हाथ–पैर मुड़ा कंकाल

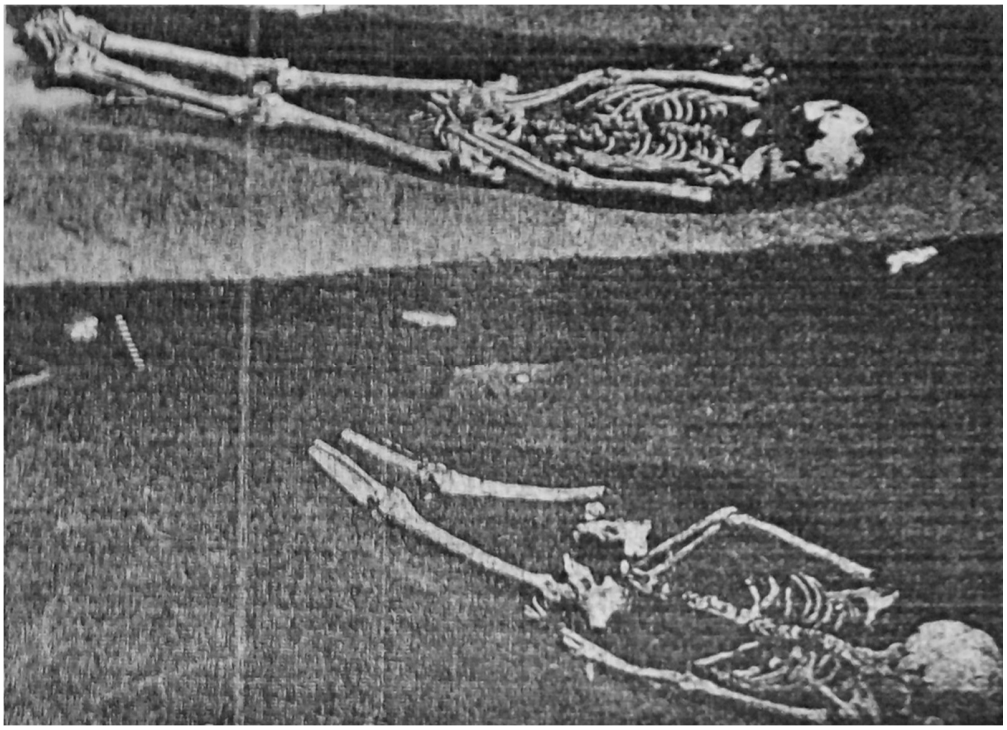

चित्र संख्या 7.24: दमदमा से प्राप्त पेट एवं पीठ के बल लिटाया गया कंकाल

इस तरह की शवाधान–व्यवस्था लंघनाज पुरास्थल से भी प्राप्त होती है। उत्खनित कंकालों को देखने से ऐसा लगता है कि यहाँ के मानव मजबूत एवं हृष्ट–पुष्ट थे। यहाँ से प्राप्त पुरुष कंकालों की लम्बाई 173.93 से0मी0 से 198.08 से0मी0 थी (वर्मा. 208 : 122)। इनमें अधिकांश शवाधान वयस्क स्त्री–पुरुष के थे जिनकी औसत आयु 16 से 35 वर्ष के बीच ऑकी गयी है। बच्चों के कंकाल यहाँ से प्राप्त नहीं हुए हैं। इन शवाधानों के साथ पाषाण–उपकरण के अलावा अस्थि के बाण, आभूषण तथा हाथीदाँत की सामग्री रखी गयी थी (पाण्डेय. 2008 : 320–321)।

इन कंकालों का अध्ययन ओरेगन विश्वविद्यालय के भौतिक नृतत्व शास्त्रविद् जान0आर0 लुकास ने किया है (लुकास एवं अन्य. 1996 : 301–311)। स्तरीकरण के प्रमाण के आधार पर इन शवाधानों को नौ उपकालों में विभाजित किया गया है जिनका विस्तृत विवरण सारणी संख्या–7.8 में दिया गया है

सारणी स0: 7.8

दमदमा से प्राप्त मध्य पाषाणिक शवाधान एवं शव कंकाल

उपकाल	कब्र संख्या	शवाधान	दिशा विन्यास	लिंग	आयु	वर्ष	सन्दर्भ
प्रथम	XII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1985	पल. 1992: 43; पाल. 1992 : 61
द्वितीय	XXVIII	,,	,,	,,	,,	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 c: 62
तृतीय	XVI	युग्म शवाधान	,,	,,	,,	1985	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
	XVII	एकल	पूर्व–पश्चिम	,,	,,	1985	,,
	XL	–	–	–	–	उत्खनन	,,

						नहीं	
चतुर्थ	XI	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1984	वर्मा व अन्य. 1985: 50, आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43
पंचम	XX	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	स्त्री पुरुष	वयस्क	1986	आई0ए0आर0 एवं पाल पूर्वोक्त
	XXII	एकल	,,	पुरुष	युवा वयस्क	1986	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
षष्ठ	X	एकल	,,	स्त्री	वयस्क	1984	पल. 1992 a: 43 पाल. 1992 c: 62
	XV	,,	,,	,,	,,	1985	,,
सप्तम	IX	–	–	–	–	1984 अव्यवस्थित	वर्मा व अन्य. 1985 :48; पाल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
	XIV	एकल	पश्चिम–पूर्व	लिंग निर्धारण नहीं दो संख्या है	–	1987	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
	XXVII	एकल	उत्तर–पश्चिम दक्षिण–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
अष्ठम	II	,,	पश्चिम–पूर्व	,,	,,	1983	वर्मा एवं अन्य, 1985: 48, पाल, 1992 a: 43, पाल, 1992 c: 62
	IV	,,	,,	लिंग का निर्धारण नहीं	–	1984	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
	V	,,	,,	स्त्री	वयस्क	1984	वर्मा एवं अन्य, 1985: 48, पाल, 1992 a: 43
	VI	युग्म शवाधान	दक्षिण–उत्तर	स्त्री–पुरुष	,,	1984	,,
	VII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1984	,,
	VIII	,,	,,	पुरुष	,,	1984	,,
	XVIII	तीन	,,	पुरुष,	,,	1985–86	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992

		कंकाल का शवाधान		पुरुष–स्त्री			c: 62
	XXX	युग्म शवाधान	,,	स्त्री–पुरुष	,,	1987	आई0ए0आर0, 1986–87: 84, पाल, 1992 a: 43, पाल, 1992 c: 62
	XXXII	एकल	दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व	पुरुष	युवा वयस्क	1987	,,
	XXXIII	,,	पश्चिम–पूर्व	,,	वयस्क	1987	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 62
	XXXVI	युग्म शवाधान	,,	स्त्री–पुरुष	वयस्क युवा वयस्क	1984	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल, 1992 a: 43, पाल, 1992 c: 62
	XXXVII	एकल	,,	स्त्री	युवा वयस्क	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43 पाल. 1992 c: 62
	XXXIX	,,	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	पुरुष	वयस्क	1987	,,
नवम्	I	,,	पूर्व–पश्चिम	स्त्री	वयस्क	1983	वर्मा एवं अन्य. 1985: 48; पाल. 1992 a: 43, पाल, 1992 c: 63
	III	,,	,,	,,	,,	1984	,,
	XIII	,,	,,	,,	,,	1985	1992 c: 63
	XIX	,,	,,	पुरुष	,,	1986	,,
	XXI	,,	,,	स्त्री	,,	1986	पल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 63
	XXIII	,,	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	,,	,,	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43
	XXIV	,,	,,	,,	,,	1987	,,
	XXV	,,	,,	,,	,,	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43 पाल. 1992 a: 43
	XXVI	,,	,,	,,	युवा वयस्क	1987	,,

	XXVII	''	''	पुरुष	वयस्क	1987	''
	XXIV	''	''	''	''	1987	''
	XXXI	''	पश्चिम–पूर्व	–	–	1987	पल. 1992 a: 43
	XXXIV	''	दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1987	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43
	XXXV	''	पश्चिम–पूर्व	–	''	1987	''
	XLI	–	–	–	–	उत्खनन नहीं	आई0ए0आर0 1986–87: 84, पाल. 1992 a: 43, पाल. 1992 c: 63

दमदमा से प्राप्त युग्मित शवाधानों को देखा जाय तो एक अलग तरह की प्रकृति उभर कर सामने आती है जो परिवार की कल्पना की शुरूआत की ओर संकेत करती है क्योंकि यहाँ से जो पाँच युग्मित शवाधान मिले हैं उनमें प्रत्येक में स्त्री एवं पुरुष को साथ–साथ दफनाया गया है इन युग्मित शवाधानों का विवरण सारणी संख्या–7.9 में दिखाया गया है–

सारणी संख्या : 7.9

दमदमा से प्राप्त युग्मित शवाधान

उपकाल	कब्र संख्या	दिक्स्थापन	लिंग	आयु	वर्ष
तृतीय	XVI	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1985
पंचम्	XX	पश्चिम–पूर्व	स्त्री–पुरुष	युवा वयस्क, वयस्क	1986
अष्टम्	VI	दक्षिण–उत्तर	स्त्री–पुरुष	वयस्क	1984
	XXX	पश्चिम–पूर्व	स्त्री–पुरुष	वयस्क	1987
	XXXVII	पश्चिम–पूर्व	स्त्री–पुरुष	वयस्क, युवा वयस्क	1984

सारणी में दर्शायी गयी एक कब्र (XVI) को छोड़ दिया जाय तो प्रत्येक में स्त्री–पुरुष साथ दफनाये गये हैं जो परिवार की अवधारणा को पुष्ट करते हैं। इन शवाधानों के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि ये लोग स्थायी रूप से रहने लगे थे और उनके आवास–स्थल अपेक्षाकृत अधिक स्थायी तथा बड़े होते थे जिनमें लगभग 450 से 1000 तक की आबादी रही होगी। पारिवारिक ईकाई के रूप में माता, पिता तथा बच्चे का गठन हो गया था जिसकी पुष्टि इन युग्मित शवाधानों एवं छोटे–छोटे चूल्हों से होती है (वर्मा. 2005 : 99)। एक अन्य शवाधान (XVIII) में तीन शव एक साथ दफनाये गये हैं (चित्र संख्या : 7.25) जिनमें से दो पुरुष का तथा एक कंकाल स्त्री का है (पाल. 1992 : 43)। यह शवाधान पारिवारिक ईकाई की सम्भावना को और अधिक स्पष्ट करता है।

शवाधानों के अलावा दमदमा से बहुत से पाषाण उपकरणों की भी प्राप्ति हुई है जिनमें लघु पाषाण उपकरणों की प्रमुखता है। प्रमुख लघु पाषाण उपकरणों में ब्लेड, भुथडे ब्लेड, पार्श्व ब्लेड, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, स्क्रेपर, छिद्रक, अर्धचान्द्रिक, खुरचुनियाँ एवं चान्द्रिक आदि है (चित्र संख्या : 7.26) (सारणी संख्या: 7.10)। दमदमा में लघु

पाषाण उपकरणों की अधिकता के कारण जे0एन0 पाल इसके लघु पाषाण उद्योग होने की बात करते हैं (पाल. 1987 : 1–5)।

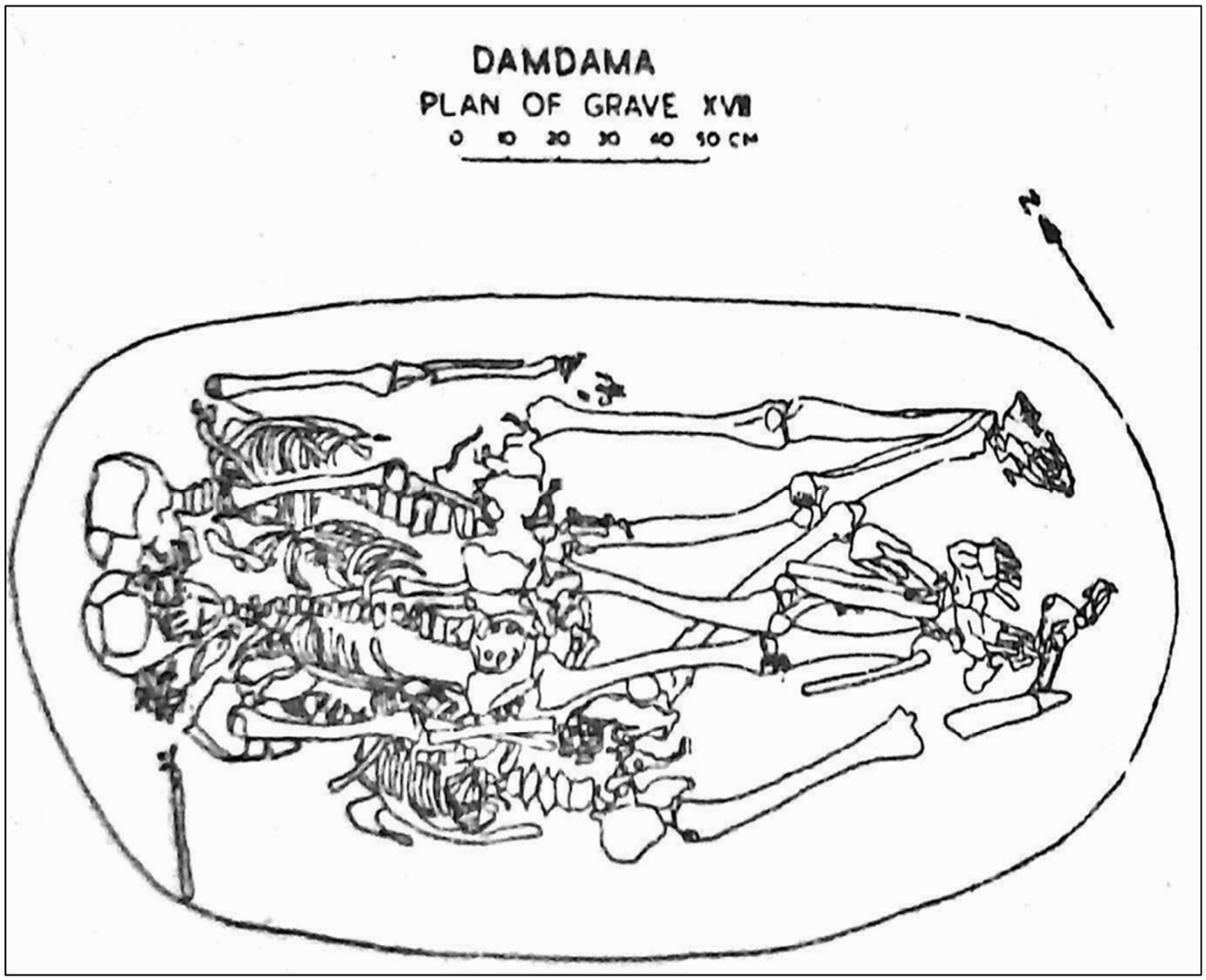

चित्र संख्या 7.25: एक साथ दफनाये गये तीन कंकाल का रेखाचित्र

यहाँ पर उपकरणों के साथ–साथ टूटे हुए पाषाण के छोटे–छोटे खण्ड भी मिलते हैं जिसके कारण पाल द्वारा यहाँ से प्राप्त उपकरणों को दो भागों में बाँटा गया है– (1) अपरिवर्तित पाषाण अवशेष/बिना आकार के अवशेष/अनिर्मित पाषाण खण्ड (2) निर्मित और उपयोगी पाषाण उपकरण (पाल. 1987 : 1–8)।

अनिर्मित पाषाण के अवशेष में ब्लेड (0.950%), ब्लेड के टुकड़े (6.082%), फलक (8.037%), फलक के टुकड़े (80.885%), कोर (2.688%), कोर की छटनी के दौरान निकलने वाले फलक (0.841%) और कोर की मरम्मत के दौरान निकलने वाले फलक (0.515%) है (चित्र संख्या: 7.27)। ये बिना पुर्नगठित और अनुपयोगी पाषाण के अवशेष या आर्टिफैक्ट हैं जिनका विवरण सारणी संख्या: 7.11 में दिया गया है।

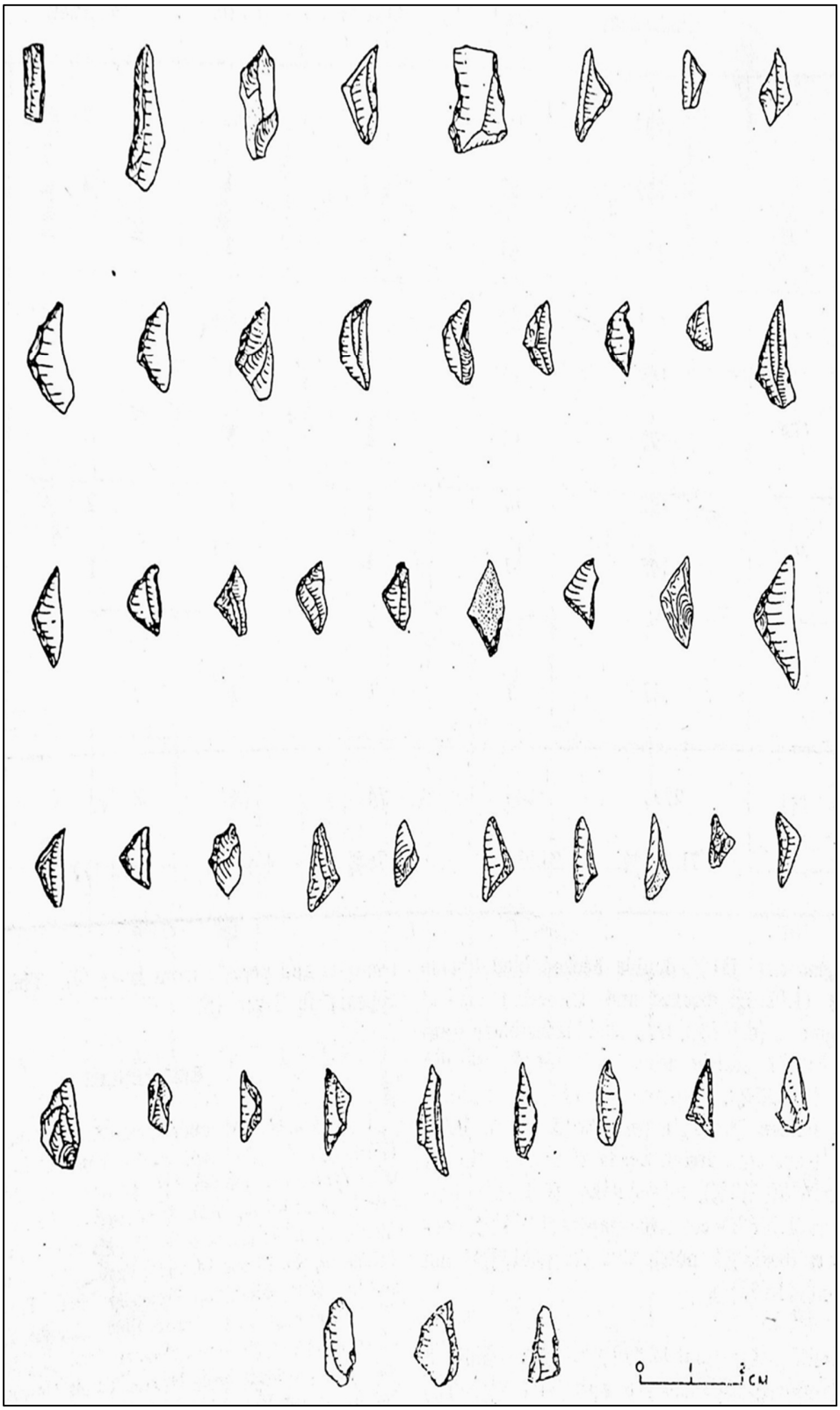

चित्र संख्या 7.26 : दमदमा से प्राप्त लघु पाषाण उपकरण

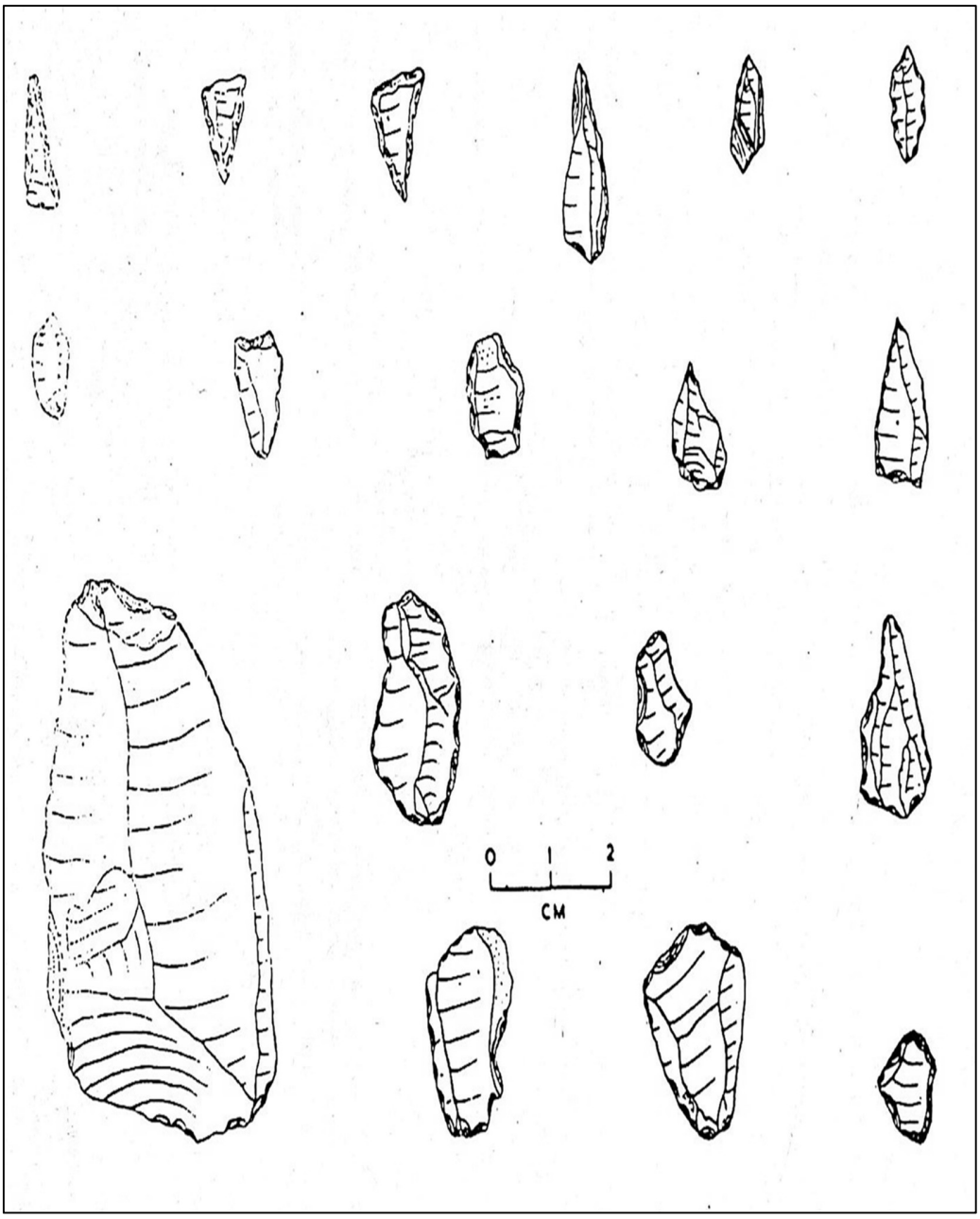

चित्र संख्या 7.27 : अनिर्मित लघु पाषाण उपकरण

दूसरा प्रकार निर्मित और उपयोगी पाषाण शिल्प कृति का है। इनमें उपयोगी ब्लेड/ब्लेड के टुकड़े (2.249), सामान्य पुर्नगठित ब्लेड (10.429), विपरीत दिशा से पुर्नगठित ब्लेड (3.271), सामान्य और विपरीत ढंग से पुर्नगठित ब्लेड (0.817), स्ट्रेट बैक्ड ब्लेड (12.883), कॉनवेक्स बैक्ड ब्लेड (0.408), पार्टली बैक्ड और पुर्नगठित ब्लेड (1.431), डबल बैक्ड ब्लेड (1.022), ट्रंकेट ब्लेड (4.294), स्कैलेन ट्रायग्लस (7.361), आइसोसेल्स ट्रांयग्लस (10.020) इत्यादि है जिसका विवरण सारणी संख्याः 7.12 में दिया गया है।

यहाँ से प्राप्त पाषाण उपकरणों के निर्माण में केल्सीडोनी, चर्ट क्वाट्र्ज, अगेट, कार्नेलियन आदि पाषाण माध्यमों का प्रयोग किया गया है जिसका स्तर के आधार पर विवरण सारणी संख्याः 7.13 में दिया गया है (पाल. 1987 : 3)।

सारणी संख्यः 7.11
अपरिवर्तित पाषाण अवशेषों का विवरण (पाल. 1987 : 2)

शिल्प कृति का प्रकार स्तर के क्रम में	ब्लेड	ब्लेड के टुकड़े	फलक	फलक के टुकड़े	कोर की छटाई में निकलने वाले फलक	कोर की मरम्मत में निकलने वाले फ्लेक	योग
1	19	157	199	1752	13	8	2212
2	5	18	34	352	5	4	433
3	3	10	7	178	3	—	205
4	5	8	20	110	—	3	149
5	—	5	8	150	4	—	172
6	1	6	6	90	1	—	105
7	0	7	9	74	3	4	100
8	4	4	4	150	1	—	163
9	—	8	4	78	—		92
10	—	1	5	45	1	—	52
योग	35	224	896	2979	31	19	3683
प्रतिशत	0.950%	6.082%	8.073%	80.885%	0.841%	0.515%	100%

सारणी संख्याः 7.12
परिष्कृत (निर्मित/तैयार) उपकरण और उपयोगी शिल्पकृति (अवशेष)

क्र.सं.	तैयार उपकरण या उपयोगी शिल्पकृति	प्रतिशत	प्रमुख उपकरण
1.	ऊपयोगी ब्लेड/ब्लेड के टुकड़े	2.249	ब्लेड/ब्लेड के टूटे भाग
2.	सामान्य पुर्नगठित ब्लेड	10.429	
3.	विपरीत दिशा से पुर्नगठित ब्लेड	3.271	
4.	सामान्य और विपरीत दिशा से पुर्नगठित ब्लेड	0.817	
5.	स्ट्रेट बैक्ड ब्लेड	15.337	
6.	कानर्वेक्स बैक्ड ब्लेड	12.883	
7.	कानकेव बैक्ड ब्लेड	04.08	
8.	डबल बैक्ड ब्लेड	1.022	
9.	बैक्ड और पुर्नगठित ब्लेड	4.294	
10.	ट्रंकैटेड ब्लेड	1.635	
11.	स्केलेन ट्रॉयंगल्स	7.361	त्रिभुज (ट्रायंगल्स)
12.	आइसोसेल्स ट्रायंगल्स	10.020	

13.	ट्रैपोजोइट	0.613	ट्रैपिज (समलम्ब चतुर्भुज)
14.	ट्रैपिज	1.022	
15.	लुनेट्स	8.793	चान्द्रिक
16.	ड्रिल्स	1.840	छिद्रक
17.	अनुप्रस्थ वाणाग्र	0.817	वाणाग्र
18.	उपयोगी फलक	1.731	फलक
19.	सामान्य स्क्रेपर	1.226	स्क्रेपर (खुरचनी)
20.	अवतल स्क्रेपर	1.022	
21.	उत्तल स्क्रेपर	0.613	
22.	दाँतेदार स्क्रेपर	0.613	
23.	माइक्रो–ब्यूरिन	1.635	लघु तक्षणी

सारणी संख्याः 7.13

दमदमा के लघु पाषाण के निर्माण में प्रयुक्त माध्यम का विवरण

(पाल. 1987 : 3)

स्तर	केल्सीडोनी	चर्ट	क्वार्टज	अगेट	कार्नेलियन	योग
प्रथम	1737	750	53	41	7	2588
द्वितीय	339	97	9	8	2	455
तृतीय	159	61	–	3	–	223
चतुर्थ	135	22	–	2	–	159
पंचम	169	15	1	1	–	186
षष्ठम्	99	16	2	3	–	120
सप्तम्	92	17	1	1	2	113
अष्ठम्	145	47	4	–	1	197
नवम्	81	12	3	1	1	98
दशम्	49	7	1	1	–	48
योग	2995	1044	74	61	13	4187
प्रतिशत	71.531	24.934	1.76	1.457	0.310	100

सारणी संख्याः 7.10

दमदमा से प्राप्त लघु पाषाण उपकरण प्रकार (वर्मा व अन्य. 1985 : 2–3)

स्तर	ब्लेड	विषमबाहु	समबाहु	विषम चतुर्भुज	समलम्ब चतुर्भुज	चान्द्रिका	क्रोड	छिद्रक	वाणाग्र	त्रिभुज	फलक	खुरचनी	माइक्रो ब्यूरिन	कुल
1	146	13	20	1	2	2	5	2	1	1	12	10	6	241
2	31	3	4	1	–	–	–	4	–		6	5	1	58
3	3	1	–	–	–	–	–	–	2	–	1	–	–	11
4	2	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	3
5	1	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	2
6	2	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	2
7	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	1
8	3	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	3
9	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	1	–	2
10	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
योग	193	19	25	2	2	26	5	6	3	1	19	16	7	323

दमदमा के उत्खनन से पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त श्रृंग पर बने उपकरण, मुद्रिकाएँ, हड्डी की चुडियाँ, कुण्डल आदि भी प्राप्त हुए हैं। बलुआ पत्थर के सिल–लोढ़े, हथौड़े, निहाई, मूसल, धार तेज करने का पत्थर आदि के अवशेष मिले हैं (वर्मा व अन्य. 1985 : 6) जिसका विवरण सारणी संख्याः 7.14 में दिया गया है–

सारणी संख्याः 7.14

दमदमा से प्राप्त पाषाण के पुरावशेष

स्तर क्रम	सिल के अवशेष	मूसल जैसा निहाई	मूसल	हथौड़ा	घार बनाने वाला पत्थर	कुल योग
धरातल	110	3	8	6	–	127
प्रथम	8	1	1	2	1	13
द्वितीय	5	–	–	–	–	5
तृतीय	4	1	–	–	–	5
चतुर्थ	2	1	–	–	–	3
पंचम	2	–	–	–	–	2
षष्ठम	4	–	–	–	–	4
सप्तम	2	–	–	–	–	2
अष्ठम्	4	–	–	–	–	4
नवम्	–	–	1	–	–	1
दशम्	–	–	–	–	–	–
योग	141	6	10	8	1	166
प्रतिशत	84.94	3.61	6.02	4.82	0.66	100

इस तरह से दमदमा पुरास्थल के उत्खनन से मध्य पाषाणिक संस्कृति के ऊपर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। यहाँ से प्राप्त शवाधानों के आधार पर पारिवारिक इकाई की शुरूआत, पारलौकिक जीवन की मान्यता में विश्वास, अन्त्येष्टि सामग्री के स्पष्ट रूप से रखने के प्रचलन की शुरूआत तथा गर्त–चूल्हों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों से इस काल के मानव की जीविका प्रारूप इत्यादि पक्षों को उद्घाटित किया गया है। प्रो0 वर्मा द्वारा यहाँ से प्राप्त छोटे–छोटे गर्त चूल्हों, सिल–लोढ़ों तथा शवाधानों की प्राप्ति के आधार पर इन स्थलों की मध्य पाषाणिक जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास गया किया है (वर्मा. 2005 : 128) और दमदमा की जनसंख्या 550 से 650 तक होने का अनुमान लगाया है।

7.6 तिथि

दमदमा से प्राप्त कंकालों की हड्डियों से दो ए0एम0एस0 कार्बन–14 तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जो क्रमशः 8640 ± 65 तथा 8865 ± 65 ई0पू0 है (लुकास एवं अन्य. 1996 : 301–311)। इन तिथियों के परिप्रेक्ष्य में ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मध्य गंगा मैदान के इस पुरास्थल पर मध्य पाषाणिक मानव का आगमन लगभग 8000 ई0पू0 में हो चुका था।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्य पाषाण काल एक ऐसा काल था जब जलवायु लगभग आज की तरह हो गयी थी। ऐसी स्थिति में मानव को भी समकालीन वातावरण में ढ़लने के लिए कुछ बदलाव करने जरुरी थे। इन्ही बदलावों में एक बदलाव खाद्य सामग्री में भी दिखाई देता है। सर्वविदित है कि पाषाण काल के प्रारम्भिक चरण पुरापाषाण काल में मानव का जीवन मुख्यतया जानवरों के शिकार पर निर्भर था। इनकी खाद्य सामग्री जंगली जानवरों से प्राप्त माँस थी लेकिन मध्य पाषाण काल में इसमें अभूतपूर्व बदलाव दिखाई देता है। यह काल अपने पूर्ववर्ती काल से प्रत्येक क्षेत्र में भिन्नता लिए हुए था। इस काल के जीव और वनस्पती जगत के अध्ययन से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है कि अब घास के मैदानों की अधिकता हो गयी थी।

मनुष्य को शिकार करने के लिए और खाने योग्य जंगली घासों को काटने के लिए नये प्रकार के उपकरण की आवश्यकता हुई। ये उपकरण आकार में अत्यन्त छोटे थे। पूर्व की संस्कृति के उपकरण प्रायः चर्ट पर बने थे। अब अगेट, कार्नेलियन, क्वार्टज आदि पत्थरों का प्रयोग उपकरण निर्माण में होने लगा था। यद्यपि इन उपकरणों के निर्माण की तकनीक वही थी जो उच्च पुरापाषाण तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण काल की है लेकिन उपकरण प्रकारों में अब अधिक विविधता वृद्धि दरगोचर होती है (पाल. 2002: 24)।

मध्य गंगा मैदान के प्रमुख स्थलों सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा, पैसरा एवं चोपानीमाण्डो का उत्खनन विस्तृत रुप से किया गया है । उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के अवलोकन से इनके द्वारा प्रयुक्त खाद्य सामग्री तथा पशुपालन और कृषि के आरम्भ के बारे में जानकारी मिलती है।

सराय नाहर राय (प्रतापगढ़ जनपद) के उत्खनन से कुल 11 मानव समाधियों का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा किया गया (शर्मा. 1973 : 135–196)। इन कंकालों का अध्ययन पी0सी0 दत्ता ने किया है (दत्ता. 1975, 1984; दत्ता और पाल 1972; दत्ता और अन्य 1971)। कब्रों में लघु पाषाण उपकरण, जानवरों की हड्डियाँ तथा घोघें आदि रखे गये हैं। कब्रों को ढ़कते समय चूल्हों की राख का भी प्रयोग किया गया है। सराय नाहर राय में कुल 8 गर्त चूल्हों का उत्खनन किया गया है (पाण्डेय. 1983 : 298–300)। गर्त चूल्हों से गाय, भैंस तथा विभिन्न प्रकार के हिरण की अधजली हड्डियाँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त कछुआ की खोपड़ी के टुकड़े तथा हाथी की एक पसली भी प्राप्त हुई है। सरायनाहर राय से भेड़–बकरी की हड्डियों की पहचान आलूर ने की थी, लेकिन थामस और पी0पी0 जोगलेकर के अनुसार इन हड्डियों का प्रयोग संभवतः पशुओं का माँस भूनने के लिए होता था (थामस और जोगलेकर. 1995: 29–36)। इन चूल्हों में केवल राख मिली है। कोयले के टुकड़े नहीं मिले हैं। इसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः घास–फूस आदि का उपयोग ईधन के रूप में किया गया था।इस पुरास्थल से कई तरह के ब्लेड, समानान्तरबाहु और भुथड़े ब्लेड फलक, अर्द्धचन्द्र, विषमबाहु और समद्विबाहु त्रिभुज, खुरचनी, नोक तथा तक्षणी आदि उपकरणों की प्राप्ती होती है। पशु की हड्डी से बने उपकरण यहाँ से नहीं प्राप्त हुए है लेकिन पशुओं की सींगों से जमीन को खोदने का काम लिया जाता था। इसलिए उनकी नोक अत्यन्त चिकनी हो गयी है।

महदहा मध्य गंगा मैदान का दूसरा मध्य पाषाणिक स्थल है, जिसका उत्खनन किया गया है (इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू 1977–78 एवं इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू 1978–79)। यह स्थल प्रतापगढ़ जिले की पट्टी तहसील में स्थित है। इस स्थल के कुल 30 शवाधानों का उत्खनन किया गया है। जानवरों की जली हड्डियों व हड्डियों के उपकरण तथा पाषाण उपकरण शव सामग्री के रूप में प्राप्त हुए हैं (शर्मा एवं अन्य 1980)। इस स्थल के उत्खन्न से 35 गर्त चूल्हें भी प्रकाश में आये हैं। इन गर्त चूल्हों में माँस पिण्ड को मिट्टी के टुकड़ों से ढ़ककर आग जलाया जाता था। इसलिए आग में जली हुई हड्डियों के साथ राख और जली

मिट्टी के टुकड़े भी प्राप्त होते हैं। महदहा के एक गर्त चूल्हें में भैंस का सींग युक्त पूरा सिर मिला है। यहाँ से प्राप्त कतिपय गर्तों में लेप की कई पर्तें हैं पर उनमें हड्डी, राख या जली मिट्टी के टुकड़ें नहीं मिलते हैं। इनका उपयोग सम्भवतः संग्रहित जंगली अनाजों को रखने के लिए किया जाता रहा होगा।

महदहा से बलुआ पत्थर पर बने टूटे हुए सिल एवं लोढ़े, गोफन पाषाण तथा हथौड़े आदि भी मिले हैं। सिल–लोढ़ों की प्राप्ति से यह इंगित होता है कि सम्भवतः घास के दानों को पीसकर भोज्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जाने लगा था। पुरा पुष्प पराग के विश्लेषण से हरे घास के मैदान के विषय में संकेत मिलता है।

महदहा के गर्त चूल्हों तथा गोखुर झील से वन्य पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं। यहाँ से उपलब्ध जानवरों की हड्डियों में बैल, जंगली भैंस, हिरण, बारहसिंगा, सुअर, दरियाई घोड़ा, गैंडा, भेड़ बकरी और घोंघा विशेष उल्लेखनीय है (आलूर. 1980: 201–227)।

दमदमा में उत्खनन से अधिक संख्या में लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख उपकरण प्रकारों में ब्लेड, फलक, क्रोड, माइक्रोब्यूरिन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के ब्लेड, समद्विबाहु त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज विभिन्न प्रकार की खुरचनियाँ, छिद्रक, चान्द्रिक आदि है । उपकरण निर्माण के लिए प्रयुक्त पत्थरों में केल्सीडनी, चर्ट, क्वार्टज, अगेट, कार्नेलियन आदि का उल्लेख किया जा सकता है (पाण्डेय. 2008: 321)। पाषाण उपकरणों में बलुआ पत्थर के सिल लोढ़े के टूटे हुए टुकड़े, हथौड़े, निहाई आदि अन्य प्रमुख पुरावशेष है। आर0के0 वर्मा ने मध्य पाषाणिक स्थलों से प्राप्त सिल–लोढ़े, चूल्हों और शवघानों के आधार पर इन स्थलों की मध्य पाषाणिक जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास किया है (वर्मा. 2000: 1–6)।

दमदमा के उत्खनन से प्राप्त हुए पुरापुष्प तथा वनस्पतियों और खाद्य पदार्थों के विषय में कुछ अध्ययन एम0डी0 कजाले (1966) ने किया है और कुछ बीरबल साहनी इन्स्टीट्यूट ऑफ पैलियोबाटनी के के0एम0 सारस्वत कर रहे हैं लेकिन अन्न का कोई स्पष्ट साक्ष्य इन तीनों स्थलों से नहीं मिला है। एम0डी0 कजाले के अध्ययन से जंगली घास के रूप में प्रकृति द्वारा प्रदत्त जंगली धान एवं गेहूँ की प्रजाति का अनुमान किया गया है। इन घासों को समकालीन मानव द्वारा अपने खाद्य सामग्री के रुप में प्रयोग किया गया होगा धीरे–धीरे जनसंख्या वृद्धि होने तथा आवश्यकता बढ़ने के कारण इसका उत्पादन करना भी प्रारम्भ किया होगा जो कि एक अन्य स्थल चोपानीमाण्डों से प्राप्त साक्ष्यों के द्वारा स्पष्ट होता है।

7.7 सारांश

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्य पाषाण काल एक ऐसा काल था जब जलवायु लगभग आज की तरह हो गयी थी। ऐसी स्थिति में मानव को भी समकालीन वातावरण में ढ़लने के लिए कुछ बदलाव करने जरुरी थे। इन्ही बदलावों में एक बदलाव खाद्य सामग्री में भी दिखाई देता है। सर्वविदित है कि पाषाण काल के प्रारम्भिक चरण पुरापाषाण काल में मानव का जीवन मुख्यतया जानवरों के शिकार पर निर्भर था। इनकी खाद्य सामग्री जंगली जानवरों से प्राप्त माँस थी लेकिन मध्य पाषाण काल में इसमें अभूतपूर्व बदलाव दिखाई देता है। यह काल अपने पूर्ववर्ती काल से प्रत्येक क्षेत्र में भिन्नता लिए हुए था। इस काल के जीव और वनस्पती जगत के अध्ययन से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है कि अब घास के मैदानों की अधिकता हो गयी थी।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सरायनाहरराय, महगड़ा और दमदमा उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है जो मध्यपाषाण काल के मानव के जीवन की कहानी को प्रस्तुत करते हैं। मध्य पाषाण कालीन संस्कृति का मानव शिकार के साथ साथ जंगली अनाज के दानों का संग्रह करने लगा और उसके ऊपर जीवन–यापन करता था। इस काल का मानव अपने मृतकों को दफन करना शुरू कर दिया था और उसके साथ अंत्येष्टि सामग्री को भी रखता था। शवाधान करने की यह व्यवस्था इस काल के लोगों की परलोक के प्रति आस्था को प्रदर्शित करता है।

मध्य गंगा मैदान के प्रमुख स्थलों सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा, पैसरा एवं चोपानीमाण्डो का

उत्खनन विस्तृत रुप से किया गया है। उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के अवलोकन से इनके द्वारा प्रयुक्त खाद्य सामग्री तथा पशुपालन और कृषि के आरम्भ के बारे में जानकारी मिलती है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आलूर, के0आर0. 1980. ''फॉनल रिमेन्स फ्रॉम दी विन्ध्याज एण्ड दी गंगा वैली'', जी0आर0 शर्मा, वी0डी0 मिश्र, डी0 मण्डल, बी0बी0 मिश्र और जे0एन0 पाल कृत *विगनिग्स ऑफ एग्रीकल्चर* में, इलाहाबाद, डिपार्टमेन्ट ऑफ एन्शियन्ट हिस्ट्री, कल्चर एण्ड आर्कियोलाजी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजीः* ए रिव्यू, 1968–69।
3. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1971–72।
4. *इण्डियन आर्कियोलाजी ए रिव्यू* : 1977–78।
5. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1978–79।
6. *इण्डियन आर्कियोलाजी : ए रिव्यू* : 1982–83।
7. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1983–84।
8. इण्डियन आर्कियोलाजी : ए रिव्यू, 1986–87।
9. काजले, एम0डी0. 1990. ''समइन्टरनल आवजरवेशन ऑन पेलियोबाटनिकल एवीडेन्स फार मेसोलिथिक प्लाण्ट इकोनामी फ्राम एक्सक्वेशन एट दमदमा, प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश'', *'इन एडेप्टेशन एण्ड अदर एसेज'* (एन0जी0 घोष एण्ड एस चक्रवर्ती सम्पा0), शान्तिनिकेतन विश्वभारती।
10. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
11. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
12. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
13. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
14. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
15. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
16. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
17. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
18. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
19. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
20. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।
21. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

7.9 बोध प्रश्न

- मध्यपाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में सरायनाहरराय पुरास्थल से प्राप्त अवशेषों पर एक निबंध लिखें।
- महदहा पुरास्थल के सांस्कृतिक संदर्भ की विवेचना कीजिए।
- सरायनाहरराय, महदहा और दमदमा पुरास्थल के संदर्भ में मध्य गंगा मैदान की शवाधान परंपरा पर एक टिप्पणी लिखें।
- दमदमा पुरास्थल से प्राप्त अवशेषों की विवेचना कीजिए।

इकाई–8 : सारनाथ, राजघाट, रामनगर

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 सारनाथ

- 8.3.1 सारनाथ का परिचय
- 8.3.2 सारनाथ का इतिहास
- 8.3.3 सारनाथ का उत्खनन एवं पुरावशेष
- 8.3.4 साहित्य में सारनाथ
- 8.3.5 स्तूप और स्तम्भ के पुरावशेष एवं माध्यम
- 8.3.6 सारनाथ कला शैली का विकास
- 8.3.7 धमेख स्तूप
- 8.3.8 सारनाथ शैली की मूर्तियाँ
- 8.3.9 कला व स्थापत्य केन्द्र एवं समीपवर्ती स्थल

8.4 राजघाट

- 8.4.1 राजघाट की स्थिति एवं टीले का विस्तार
- 8.4.2 उत्खनन से प्राप्त अवशेष
- 8.4.3 प्रथम काल
- 8.4.4 द्वितीय काल
- 8.4.5 तृतीय काल
- 8.4.6 चतुर्थ काल

8.5 रामनगर

- 8.5.1 खोज एवं पुरास्थल की संरचना
- 8.5.2 सांस्कृतिक अनुक्रम
- 8.5.3 भौगोलिक दृष्टिकोण एवं प्राचीन मार्ग
- 8.5.4 रामनगर का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व
- 8.5.5 पात्र प्रकार एवं तकनीक
- 8.5.6 धातु के उपकरण
- 8.5.7 शिल्प व उद्योग
- 8.5.8 विशिष्ट अवशेष
- 8.5.9 आवासीय सन्दर्भ

8.6 सारांश

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.8 बोध प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

ये तीनों स्थल वाराणसी, उत्तर प्रदेश में स्थित प्राचीन पुरास्थल है।सारनाथ, उन लोगों के लिए एक अद्वितीय स्थान है, जो बौद्ध इतिहास और आध्यात्मिकता के समृद्ध इतिहास को जानना चाहते हैं। यह पवित्र स्थल अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं पर भगवान बुद्ध, जिन्हें सिद्धार्थ गौतम के नाम से भी जाना जाता है, ने अपना पहला उपदेश दिया था। पुरातत्त्व की दृष्टि से, सारनाथ की समृद्ध पुरातात्विक विरासत है। राजघाट पुरास्थल, गंगा–वरुणा के संगम से काशी स्टेशन तक फैला था, जो आज एक विस्तृत टीले में भूमिगत है। इस स्थापना के बाद काशी राज्य की बहुत प्राचीन राजधानी का उत्खनन आवश्यक हो गया। बींसवीं सदी के छठवें दशक में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पुराविदों के दल ने अवध किशोर नारायण के नेतृत्व में राजघाट कोट का उत्खनन प्रारम्भ किया। यहाँ के अवशेषों से भी काशी के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। रामनगर पुरास्थल का सर्वेक्षण काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा ज्ञान प्रवाह के संयुक्त तत्वाधान में प्रो0 बिदुला जायसवाल के निर्देशन में वर्ष 2005 तथा 2006 में किया गया। इसके परिणामस्वरूप या निर्धारित किया जा सका कि लगभग तीन किलोमीटर का गंगा तट, जो रामनगर के किले व शास्त्री पुल के मध्य स्थित हैं – प्राचीन भूमिगत आवासीय अवशेषों से युक्त है। इन तीनों पुरास्थलों से प्राप्त अवशेषों के आधार पर काशी की ऐतिहासिकता एवं प्राचीनता उद्घाटित होती है, विस्तृत विवरण निम्नवत् है–

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- सारनाथ पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे।
- मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- राजघाट पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- राजघाट के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- रामनगर के इतिहास को जान सकेंगे।
- सारनाथ पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

8.3 सारनाथ (25^0 22′ 40–8′′ पूर्व, 83^0 1′ 30–36′′ उत्तरी)

सारनाथ वाराणसी, उत्तर प्रदेश में स्थित एक प्राचीन पुरास्थल है (मानचित्रः 8.1) । सारनाथ, उन लोगों के लिए एक अद्वितीय स्थान है, जो बौद्ध इतिहास और आध्यात्मिकता के समृद्ध इतिहास को जानना चाहते हैं। यह पवित्र स्थल अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं पर भगवान बुद्ध, जिन्हें सिद्धार्थ गौतम के नाम से भी जाना जाता है, ने अपने शिष्यों के एक छोटे समूह को अपना पहला उपदेश दिया था, जो बौद्ध संघ की स्थापना और उनकी शिक्षाओं के प्रसार का प्रतीक था। सारनाथ के शांत वातावरण के बीच पुरातात्विक खजाना छिपा है, जो भव्य स्तंभों और स्तूपों से सुसज्जित है, तथा यह सब ज्ञान प्राप्ति की यात्रा के एक महत्वपूर्ण क्षण की याद दिलाता है। सारनाथ का इतिहास भगवान बुद्ध (सिद्धार्थ गौतम या गौतम बुद्ध) के जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है और यह बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का प्रमाण है। सारनाथ का महत्व इस तथ्य से है कि यहीं पर भगवान बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था, जिसे धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त या "धर्म चक्र प्रबर्तन" के नाम से जाना जाता है। यह घटना बुद्ध द्वारा बोधगया में बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति के कुछ

समय बाद हुई थी। सारनाथ में, उन्होंने अपने पांच पूर्व तपस्वी साथियों के साथ चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग के बारे में अपनी गहन अंतर्दृष्टि व्यक्त की साथ ही बौद्ध संघ या मठवासी समुदाय की औपचारिक स्थापना को प्रस्तुत किया।

8.3.1 सारनाथ का परिचय

पुरातत्त्व की दृष्टि से, सारनाथ की समृद्ध पुरातात्विक विरासत है। मौर्य राजवंश के सम्राट अशोक, जो एक कट्टर बौद्ध थे, ने तीसरी शताब्दी ई0पू0 में सारनाथ का दौरा किया और बुद्ध की शिक्षाओं को याद करने के लिए कई स्तूप और मठ बनवाए। सबसे प्रसिद्ध संरचनाओं में से एक धमेख स्तूप है, जिसके बारे में माना जाता है कि यह वही स्थान है जहाँ बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था। एक शेर चौकी में और चार शेर शीर्ष पर कुल पांच शेरों वाला अशोक स्तंभ भी यहीं बनाया गया था और अब यह भारत का राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह है। समय के साथ साथ सारनाथ का महत्व बौद्ध तीर्थस्थल के रूप में बढ़ता गया। बौद्ध मठों का विकास हुआ, जो भारत के विभिन्न भागों और विदेशों से भिक्षु– भिक्षुणियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है । हालाँकि, भारत में बौद्ध धर्म के पतन के साथ, सारनाथ उपेक्षित अवस्था में चला गया।

19वीं और 20वीं शताब्दी में, पुरातात्विक खुदाई में प्राचीन खंडहर, स्तूप और स्तंभ मिले, जिससे इसके ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश पड़ा। आज, सारनाथ बौद्ध धर्म के जन्म और विकास का जीवंत प्रमाण है, जो दुनिया भर से तीर्थयात्रियों, विद्वानों और इतिहास के प्रति उत्साही लोगों को आकर्षित करता है। यह अत्यधिक पुरातात्विक और आध्यात्मिक महत्व का स्थल बना हुआ है, जो आगंतुकों को भगवान बुद्ध की शिक्षाओं और भारत में बौद्ध धर्म के समृद्ध इतिहास से जुड़ने का अवसर देता है। सारनाथ का इतिहास भगवान बुद्ध (सिद्धार्थ गौतम या गौतम बुद्ध) के जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है और यह बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का प्रमाण है।

8.3.2 सारनाथ का इतिहास

सारनाथ केवल बौद्ध धर्म के लिए ही प्रसिद्ध नहीं है बल्कि काशी की प्राचीन विरासत, कला और स्थापत्य के विकास, सारनाथ कला शैली इत्यादि के लिए भी यह पुरास्थल में ख्यातिलब्ध है। हालांकि सारनाथ की विश्व में ख्याति बौद्ध धर्म से जुड़ी हुई है। काशी का प्राचीन पुरातात्विक अन्वेषण सारनाथ के क्षेत्र में संपन्न किया गया। पाषाणखंड की प्राप्ति के लिए सारनाथ की वीरान खंडहरों का दोहन आधुनिक वाराणसी के कुछ मुहल्लों के निर्माण के लिए वीं सदी में बड़ी मात्रा में हुआ राजा चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने 1793–94 ईस्वी में वास्तु संरचना के माध्यम की उपलब्धि के लिए सारनाथ स्थित एक स्तूप को खुदवा डाला।

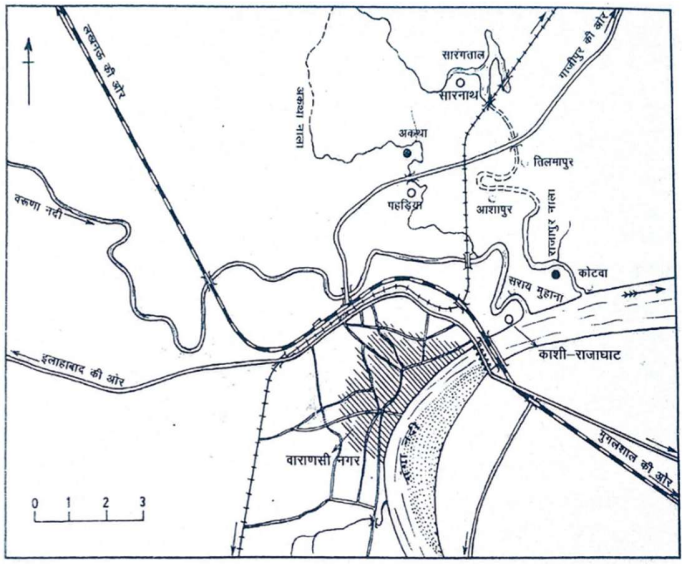

मानचित्रः 8.1 काशी के प्रमुख उत्खनित पुरास्थल

चेतगंज मोहल्ले के निर्माण में प्रयुक्त पाषाणखंड इसके ज्वलंत उदाहरण है। इस दुर्भाग्यपूर्ण उपक्रम में हालांकि सारनाथ की प्राचीन धरोहर को काफी क्षति पहुंची, परंतु वाराणसी के नवनिर्माण में सारनाथ से ढोकर लाए जाने वाले पाषाणखण्डों व ईंटों के मलबे ने इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट किया। मिस्टर डंकन के अनुसार भी इस स्तूप में 18 हाथ की गहराई पर एक प्रस्तर पात्र के भीतर संगमरमर की मंजुषा में कुछ हड्डियाँ व स्वर्णपत्र मोती के दाने और रत्न मिले पर किसी अर्थ के न होने से उन्हें गंगा में प्रवाहित कर दिया गया। 1905 में पुरातत्व विभाग के द्वारा यहाँ की खुदाई से यह पता चला कि अशोक द्वारा बनवाए गये धर्मराजिका स्तूप का व्यास 44 फुट तीन इंच था। इसमें लगे हल्की कलाकारी की ईंटों की माप 19 x 14 x 2 और 16 x 12 x 3 इंच थी। कुषाण युग में इस स्तूप पर 17x10 x 3 इंच माप की ईंटों का एक आवरण चढ़ा पांचवीं या छठी सदी में एक दूसरा आवरण चढ़ाकर इस स्तूप के चारों ओर करीब 16 फुट चौड़ा प्रदक्षिणापथ बना दिया गया उसके चारों ओर एक मजबूत दीवार खींच दी गई और उसमें चार दरवाजे लगा दिए गए। सातवीं सदी में प्रदक्षिणापथ भर दिया गया और स्तूप तक पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ लगा दी गई। नौवीं और दसवीं शताब्दियों में भी कुछ हेरफेर हुए 12 वीं शताब्दी में पुनः उसपर आवरण चढ़ा और यही आवरण इस स्तूप का अंतिम आवरण था क्योंकि इसके बाद ही मुसलमानों ने सारनाथ नष्ट कर दिया (मोतीचंद्र काशी का इतिहास, पृष्ठ संख्या 43–44, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी)।

8.3.3 सारनाथ का उत्खनन एवं पुरावशेष

कुछ अंतराल के बाद 21वीं तथा 20वीं सदी में सारनाथ में क्रमबद्ध पुरातात्विक उत्खनन किए गए उदाहरण के लिए 1815 में कर्नल मैंकेंजी के प्रथम वैज्ञानिक अनावरण की श्रृखला की कड़ियाँ अलेक्जैंडर कनिंघम, किटोई, जान मार्शल, निकोलस ओरटेल तथा दयाराम साहनी के 1921–22 तक के प्रयासों से अग्रसरित हुई, जिसके फलस्वरूप बींसवीं सदी के पूर्वार्ध तक सारनाथ का प्राचीन वैभव उत्कृष्ट शिल्प वास्तु के अवशेषों के लिए विश्व प्रसिद्ध हो गया। भगवान बुद्ध की प्रथम उपदेश का यह स्थल सम्राट अशोक के काल से मध्य युग महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थ बना रहा (चित्र 8.1)। इन्हीं पुरावशेषों में अशोक स्तंभ का सिंहशीर्ष भी प्राप्त हुआ, जो भारतीय कला व दर्शन के चिन्हात्मक प्रतीकों के कारण आधुनिक भारत का राष्ट्रीय चिन्ह भी माना गया। भगवान बुद्ध की कई विश्वविख्यात पाषाण प्रतिमाएं भी सारनाथ की अमूल्य धरोहर है, ये स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है। बुद्ध के प्रथम धर्मचक्रप्रबर्तन का स्थल ऋषिपत्तनम, इसी पत्तन तथा मृगदाव या मृगदाय की पहचान भी सारनाथ से की गई है।

चित्र–8.1 सारनाथ की स्थापत्य कला

उपरोक्त उपलब्धियों के बावजूद पुरातत्त्व की आधुनिक विधा की तुलना में यह प्रयास असंतोषजनक थे। कलात्मक प्रतिमाओं वास्तु अवशेषों की समृद्धि ने समकालीन पुराविदों को उन पक्षों से दूर रखा, जो स्थान या क्षेत्र के इतिहास के महत्वपूर्ण आयाम होते हैं। उदाहरण के लिए बौद्ध प्रतिमाओं के साथ ही अन्य धर्म की देव प्रतिमाओं जैसे शैव–शाक्त आदि का पूरा संदर्भ देश व काल को परिप्रेक्ष्य में और स्पष्ट बना रहा। इसी तरह प्रत्येक महत्वपूर्ण वस्तुओं की उपयोगिता व धर्म विशेष से संबंध आज भी धूमिल है। इसका प्रमुख कारण स्थल के प्राचीन जमाओं तथा संबंधित पुरातात्त्विक सांस्कृतिक क्रम की तालिका का अभाव है। अतः ऐसे प्रश्न जो वास्तु विशेष या स्थल आवास से संबंधित है, वह अनुत्तरित है। बुद्धकालीन सारनाथ साहित्यिक विवरण में मृगदाव आवासीय खुला उपवन था। इसका संबोधन ऋषिपत्तन हिमालय से मुनियों ऋषियों के आवागमन व ठहराव का संकेत माना जाता है। इन दोनों ही स्वरूपों के न तो काल के प्रमाण सारनाथ से उपलब्ध हुए, न हीं संनिवेशीय विशेषताएँ।

लगभग नौ दशकों के बाद भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा अशोक स्तंभ के पास के क्षेत्र में उत्खनन कार्य संपन्न किया गया। परिणामस्वरूप पक्की ईंटों की एक वृत्ताकार नींव प्राप्त की गई तथा फर्श की स्थिति व संरचना एवं आकार के आधार पर, इसको उत्तर मौर्यकालीन माना गया। इन सब खोजों के फलस्वरूप सारनाथ के इतिहास के ठोस प्रमाण ई0पू0 तृतीय शताब्दी तक ही तिथिबद्ध किए जा सके, जबकि प्राचीन ग्रंथों के संदर्भ में सारनाथ की प्राचीनता बुद्ध के समकालीन या पूर्व बुद्ध काल तक प्रतीत होती हैं।

8.3.4 साहित्य में सारनाथ

बौद्ध साहित्य में सारनाथ के लिए **'ऋषिपत्तन'** शब्द का प्रयोग किया गया है। महावस्तु के अनुसार 'ऋषिपत्तन' एक खुला क्षेत्र था, जो वाराणसी नगर के समीप स्थित था। इसी क्षेत्र में मिगदाय या मृगवन स्थित था। इस स्थल का नाम ऋषिपत्तन इसलिए पड़ा क्योंकि यहाँ हिमालय से ऋषि आकर रुकते थे तथा यहाँ से ही वह हिमालय की ओर वायुमार्ग से चले जाते थे। हिमालय और काशी क्षेत्र के मध्य आवागमन की प्रक्रिया प्राचीन काल से निरंतर थी। इसके संकेत जातक कथाओं में भी उपलब्ध होते हैं, उदाहरण के लिए भदंत जातक की कथा में ब्रह्मदत्त द्वारा वाराणसी पर शासन काल में शहर से दूर एक काश्तकारों का गाँव था। यहाँ ब्राह्मण बढ़ही के रूप में बोधिसत्त्व का जन्म हुआ, जब वह युवा हुए तो गाड़ियों का निर्माण करने लगे गाड़ियों के लिए काले रंग की लकड़ी का स्रोत हिमालय के जंगल थे, जहाँ से वह लकड़ी प्राप्त करते थे। ऐसे ही कई अन्य संदर्भ प्राप्त होते हैं, जिसमें गंगा स्थित काशी की घनिष्ठता सुदूर के हिमालय पर्वतीय क्षेत्र से कई संदर्भों में वर्णित है। उद्योग–धंधों व व्यापार की इस प्रक्रिया के साथ ही ज्ञानी व्यक्तियों व साधु संतों का आवागमन भी होता रहा। स्वभाव अनुकूल साधु व ऋषि पृथक संतों की आवास व पड़ाव का न केवल स्वरूप आमजन से कुछ पृथक स्थित होता है बल्कि भौतिक संपदा व समृद्धि से अलग यह स्थल क्रमशः ज्ञान व विद्वता के लिये प्रख्यात भी हो जाते हैं। ऋषियों के आवागमन के ऐसे पड़ाव आश्रम तुल्य होते हैं। आधुनिक बौद्ध तीर्थ स्थली सारनाथ बौद्ध साहित्य के ऋषिपत्तन से अधिक मृगदाय स्वरूपी है। सारनाथ के पुरावशेषों में मृगदाय की पहचान सारंग ताल के दक्षिणी तट से की जा सकती है, जहाँ धर्मचक्रप्रबर्तन की घटना के स्मरण में कालांतर में स्तूप मंदिर व विहारो की संरचना की गई। इस परिसर से प्राप्त बुद्ध के धर्मचक्रप्रबर्तन प्रतिमाओं की अधिष्ठान पर मृगों का आंकलन इस अवधारणा के पुष्ट आधार है।

8.3.5 स्तूप और स्तम्भ के पुरावशेष एवं माध्यम

सारनाथ क्षेत्र के उत्खनन से यहाँ की प्राचीनतम संरचना व जमाव मौर्यकालीन माने गए हैं। ई0पू0 लगभग तृतीय शताब्दी में प्रचलित बड़ी व चौड़ी ईंटों की एक वृत्ताकार इमारत के नींव प्राप्त की गई है, उसको बिहार, भिक्षुओं का आभास गृह माना गया है। इसके दक्षिण की ओर पासही धर्मराजिका स्तूप स्थित था, जिसका निर्माण भी अशोक कालीन प्रतीत होता है। इस भग्न स्तूप के ऊपर की वेदिका तथा छत्रावली के प्राप्त अवशेष चुनार के बलुआ पत्थर के शिल्प है। इन पर अशोक कालीन ओप व चमक आज भी विद्यमान हैं। चुनार के गुलाबी बलुआ प्रस्तर खंडों से निर्मित एक स्तंभ, स्तूप व बिहार के सामने स्थापित किया गया था। इस स्तंभ के ऊपर अशोक का बौद्ध संघ के संगठन संबंधी अध्यादेश को खुदवाया गया था। साथ ही इसका प्रयोग आगे के कालों में पृष्ठ रूप में कुषाण व गुप्त काल तक किया गया। इस स्तंभ का मुख्य भाग

सिंह शीर्ष है, जो भारतीय कला की अमूल्य धरोहर है। इस रचना में चार सिहों को चार दिशाओं में मुख किए बिठाया गया है। यह सिंह समूह एक अलंकृत पीठिका पर स्थित है, जिसपर बुद्ध के जीवन के प्रमुख पक्षों को पशु–पक्षियों से उकेरा गया है। हस्ती जन्म का प्रतीक, अश्व गृहत्याग, सिंह शाक्य कुल व वृषभ राशि के प्रतीकों के रूप में मान्य है। सिंहों ने धर्मचक्र का वहन किया हुआ था। प्रस्तर चक्र के भग्न अवशेष भी स्तंभ के समीप ही उपलब्ध किए गए थे। सिंहशीर्ष का सार गर्भित विषय तथा उत्कृष्ट कला अभिव्यक्ति की विलक्षण जोड़ के कारण इसको आधुनिक भारत के प्रशासनिक राज्य चिन्ह के रूप में स्वीकार किया है।

सारनाथ स्तम्भ उत्तरप्रदेश के वाराणसी जिले में स्थित है। सारनाथ का अशोक स्तम्भ मौर्य कालीन स्तम्भ कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके मुख पर 4 सिंह है, जो एक–दूसरे की ओर पीठ किए हुए है। इसके नीचे घण्टे के आकार का पद्म के ऊपर चित्र–बल्लरी में एक हाथी, चौकड़ी भरता हुआ एक घोड़ा, एक साँड़ तथा एक सिंह की उभरी हुई आकृतियाँ है। इनके बीच–2 में चक्र बने हुए है। एक ही पत्थर को काटकर बनाए गए। इस सिंह स्तम्भ के ऊपर धर्म चक्र रखा हुआ है। भारत सरकार ने यह चिन्ह 26 जनवरी 1950 को अपनाया इसमें केवल तीन सिंह दिखायी देते है,चौथा दिखाई नहीं देता। पट्टी के मध्य में उभरी हुयी नक्काशी में चक्र है। जिसके दाँयी ओर एक साँड़ तथा बाँयी ओर एक घोड़ा है। दाएँ व बाएँ कोने पर अन्य चक्रों के किनारे है आधार पद्म छोड़ दिया गया है। फलक के नीचे मुण्डकोपनिषद से लिया गया'सत्यमेव जयते'देवनागिरी लिपि में अंकित है, जिसका अर्थ है सत्य की विजय होती है।

8.3.6 सारनाथ कला शैली का विकास

प्रतिमाशास्त्रियों व कलाविदों की मान्यता है कि काशी में मूर्तन विद्या का सुचारू रुप से प्रारंभ प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी ईस्वी में हुआ। सारनाथ संग्रहालय में बृहद आकार की बोधिसत्व प्रतिमाओं का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। इनमें कुछ तो सिकरी के बलुआ पत्थर पर बनी मथुरा कला केंद्र की कृतियाँ हैं। इसी काल की अन्य काशी निर्मित बोधिसत्व प्रतिमाएं भी यहाँ सुरक्षित है। काशी की बनी यह कुषाण कालीन प्रतिमाएं मथुरा कृतियों से प्रेरित किया, उनकी नकल मानी जाती है। संभवतः अभिलेख युक्त इन प्रतिमाओं की बौद्ध तीर्थों पर चढ़ाएं जाने की प्रथा कुषाण काल में स्थापित हो चुकी थी। साथ ही यह भी ज्ञात है कि मथुरा प्रारंभिक कुषाण काल से ही देव प्रतिमाओं का आंकलन तथा पाषाण मूर्तन का प्रसिद्ध केंद्र बन चुका था।

सारनाथ तीर्थ के महात्म्य ने प्रतिमाओं व वास्तु अंगों के चढ़ावे की प्रथा को प्रेरित किया, जिसमें कुछ चढ़ावे तो मथुरा केंद्र से आयात किए गए लेकिन स्थानीय माँग की बढ़त ने वाराणसी में मूर्तन को आवश्यक बना दिया। वाराणसी के आधुनिक मूर्ति केंद्रों की सूचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि मध्य युग में सारनाथ के उजड़ने के बाद प्रतिमा निर्माण का प्रचलन भी काशी से विलुप्त हो गया था। देव प्रतिमाओं की माँग की बढ़त के साथ पूर्न् स्थापित हुई काशी के आज के जीवंत मूर्ति केंद्र समकालीन प्रसिद्ध शैली जयपुर से प्रेरित है। इन केंद्रों के निर्माण में जयपुर शैली की प्रतिमाओं का प्रारूप स्पष्ट है, ऐसे भी उदाहरण हैं, जिसमें राजस्थान के कलाकारों को वाराणसी लाया गया। लल्लापुरा मोहल्ले का जयपुर मूर्ति केंद्र इसका सजीव उदाहरण है। इसकी परंपरा प्राचीन काल में भी संभावित है, जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि काशी में मूर्तन परंपरा का प्रारंभिक स्रोत मथुरा शैली थी। गुप्त काल तक यह सिर्फ स्वतः परिपक्व और वैभवशाली वाराणसी शैली/सारनाथ शैली के रूप में विकसित हो गया। परिणामस्वरूप कई प्रसिद्ध प्रतिमाओं यथा धर्मचक्रप्रबर्तन मुद्रा में बुद्ध, अभय मुद्रा में बुद्ध इत्यादि का शिल्पन संभव हुआ। कोटवा स्थल के उत्खनन से भी यह पुष्ट होता है कि कुषाण काल में सीमित रूप में मूर्ति निर्माण का कार्य इस कार्यशाला में किया गया। परंतु परवर्ती कालों, गुप्त व गुप्तोत्तर कालों में बड़े पैमाने पर प्रतिमाओं का निर्माण कोटवा, आशापुर, राजापुर आदि शिल्पी ग्रामों में किया जा रहा था।

8.3.7 धमेख स्तूप

यह स्तूप गुप्तकाल की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसका आधार गुप्तकाल के अन्य स्तूपों की भाँति वर्गाकार न होकर गोलाकार है। स्तूप की आकृति आधार से ऊपर की ओर बॉल के समान प्रतीत होती है। इसे स्तूप का मध्य भाग माना जाता है। इसके ऊपर छत्रावली थी, जो संप्रति नष्ट हो गयी है। इस स्तूप की ऊँचाई लगभग 39 मीटर है। इस स्तूप को ईंटों से बनाया गया है। इन ईंटों पर लताओं व पुष्पों का कलापूर्ण कटाव है। कुछ प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं। चारों कोनों पर चार ताख है। अनुमान है कि इन चारों ताखों में उस समय भगवान बुद्ध की प्रतिमाएँ रखी गयी होंगी। सारनाथ में किये गये उत्खनन कार्य में गुप्तयुग के एक बौद्ध मन्दिर तथा अनेकों विहारों के अवशेष मिले हैं।

चित्र –8.2 सारनाथः धमेख स्तुप

8.3.8 सारनाथ शैली की मूर्तियाँ

सारनाथ में गुप्तकालीन मूर्तिकला अत्यधिक विकसित हुई। इसका कारण यह था कि उस समय सारनाथ बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। गुप्तकाल में सारनाथ की बौद्ध प्रतिमा हल्के बादामी रंग के चुनार के रेतीले पत्थर से निर्मित है। बुद्ध की स्थानक तथा आसन दोनों प्रतिमाएँ निर्मित की गयी हैं। इन प्रतिमाओं के शरीर पर वस्त्र इतने महीन तथा श्रेष्ठ बनाये गये हैं कि उनमें से अंग प्रत्यंग झलकते हैं। शरीर पर वस्त्र है। नीचे का अन्तरवासक नामक वस्त्र पतली सादी कटि मेखला से बंधा रहता है। ऊपर के वस्त्र से एक अथवा दोनों कंधे ढके रहते थे।

बुद्ध की स्थानक प्रतिमाओं में बुद्ध का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा रहता है। कहीं–कहीं अन्य प्रतिमा में इस हाथ की वरद मुद्रा रहती है। बायें हाथ में कभी–कभी बुद्ध वस्त्र का एक छोर पकड़े हुए दिखाये गये हैं। मुख कुछ गोल हैं। कानों में कन्धों को स्पर्श करते हुए लम्बे कुण्डल हैं। मूर्ति के सिर पर छोटे मुंडे केश हैं। मस्तक पर गोलाई लिये ऊष्णीश हैं। कहीं–कहीं नुकीला ऊष्णीश भी है।

इस काल में प्रतिमाओं का आकार बड़ा है। प्रतिमा के नीचे का भाग आसन पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्यों को छोटे आकार में अर्द्ध चित्रों में उत्कीर्ण किया गया है। धर्मचक्र है, उसके दोनों ओर हिरण तथा 5 भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं। प्रतिमा का आसन अलंकारयुक्त है। नीचे दो शार्दूल हैं। उनके ऊपर मकरों की मुखाकृतियों अंकित हैं। प्रभामण्डल कमलों से सुसज्जित है। प्रभामण्डल के दोनों ओर दो गन्धर्व खड़े हुए हैं। एक गन्धर्व के हाथ में पुष्पमाला तथा दूसरे के हाथ में चंवर है। यह प्रतिमा 1.56 मीटर ऊंची है। एक अन्य भूमि स्पर्श–मुद्रा की प्रतिमा मिली है। इस प्रतिमा में बुद्ध आसन पर विराजमान हैं। उनका एक हाथ गोद में है। दूसरे हाथ से वे आसन को स्पर्श कर रहे हैं। उनका एक स्कन्ध संघाती से ढका है। उसकी किनारी यज्ञोपवीत के समान है। वक्ष स्थल चौड़ा तथा कटि क्षीण है। उनका मुख, भुजाएँ तथा प्रभामण्डल के अंश विध्वंसकों ने भग्न कर दिये हैं। आसन के नीचे मार पराजय का दृश्य है। इसमें पृथ्वी करबद्ध खड़ी है तथा मार की अप्सरा भागती हुई द्रष्टव्य है। मार–विजय की एक अन्य प्रतिमा में बुद्ध 'बौधि–मण्ड' पर आसीन हैं। वे भूमि स्पर्श की मुद्रा में बैठे हैं, पीछे प्रभामण्डल है उसके ऊपर बोधिवृक्ष है। आसन के नीचे एक मार अपने करों में धनुष–बाण लिए खड़ा है।

8.3.9 कला व स्थापत्य केन्द्र एवं समीपवर्ती स्थल

धार्मिक मान्यताओं के साथ ही बौद्ध तीर्थ सारनाथ में मौर्य काल से ही कला व स्थापत्य की सर्वश्रेष्ठ कृत्तियों का जमावड़ा निर्मित होने लगा। कुषाण से मध्ययुग में इस तीर्थ स्थल का निरंतर विस्तार हुआ, वास्तु निर्माण व प्रतिमाओं के चढ़ावे की प्रचलित परंपरा किसी भी कला केंद्र के मूल प्रेरक होते हैं। सारनाथ का प्राचीन वैभव व कला संपदा के मूल में भी इस प्रचलन का विशेष योगदान था। सारनाथ की धार्मिक व कलात्मक गतिविधि निश्चय ही काशी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। पर यह गौतम बुद्ध के आने के बाद के इतिहास से संबंधित है। बुद्ध पूर्व यह क्षेत्र संभवत निर्जन बस्ती विहीन वन ही था क्योंकि सारंगताल के तटों पर तथा सारनाथ के पुरावशेषों के आस–पास के पुरातात्विक सर्वेक्षण व उत्खनन से ऐसे कोई अवशेष प्राप्त नहीं किए जा सकें, जिसमें इस स्थल पर बुद्ध पूर्व आवास के अवशेष हो। अतः इस सारंगताल का तट ही साहित्य का मृगदाय प्रतीत होता है। ऋषिपत्तन की संभावित प्राचीनता का अस्तित्व सारनाथ के खंडहरों में विद्यमान नहीं था। दूसरी ओर अकथा पुरास्थल को उत्खनित अवशेषों में ऋषिपत्तन का संभावित स्वरूप प्राप्त किया गया है। बौद्ध साहित्य में सारनाथ के मृगदाय को, अकथा बस्ती के समीप स्थित मृग युक्त ऐसा ही वन माना जा सकता है। घास व लकड़ियों की आवासीय आवश्यकता भी ऐसी स्थिति में अकथा वासियों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे। भौगोलिक परिवेश की अनुकूल दशा को अकथा के दीर्घ आवास का मुख्य कारण माना जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सारनाथ पुरास्थल का आधार स्थल एवं पूर्व का इतिहास समीप स्थित अकथा पुरास्थल रहा होगा।

चित्र – 8.3 बुद्ध प्रतिमाः सारनाथ

8.4 राजघाट

राजघाट, उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले में स्थित है। वर्तमान समय में नमोघाट की वजह से अधिक चर्चा में है, इसकी प्राचीनता और उसका सतत् इतिहास 1940 ई. तक निश्चित नहीं था। इसकी प्राचीन स्थिति वर्तमान काशी स्टेशन के उत्तर–पूर्व में गंगा और वरुणा के मध्य थी, जिसे राजघाट टीले के नाम से जाना जाता है (मानचित्र 8.2)। इसकी आकस्मिक खोज 1939 ई. में वर्तमान काशी स्टेशन के विस्तार के समय रेलवे ठेकेदारों द्वारा खुदाई कराते समय हुई। खुदाई में इन ठेकेदारों को बहुत–सी प्राचीन वस्तुएँ मिलीं जिनमें मिट्टी की मुहरें एवं मुद्रायें भी थीं। इन वस्तुओं को अब भारत कला भवन और इलाहाबाद संग्रहालय (म्यूनिसिपल म्यूजियम) में रखा गया है। इन मुद्राओं में मुख्यतः यूनानी देवी–देवताओं की आकृतियाँ तथा कुछ यूनानी राजाओं के सिर का अंकन है। यहाँ से मिली वस्तुओं से आकृष्ट होकर श्री कृष्णदेव के नेतृत्व में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के एक दल ने यहाँ उत्खनन प्रारंभ किया। इस दल ने ऊपरी जमाव से 20 फुट नीचे तक खुदाई की।

8.4.2 राजघाट की स्थिति एवं टीले का विस्तार

1930 में मालवीय पुल के पास गंगा के बाएं तट पर काशी रेलवे स्टेशन का निर्माण प्रारंभ हुआ। इस उपक्रम में की जाने वाली खुदाईयों से बड़ी संख्या में पुरावशेष यथा मृदभांड, प्रतिमाएं, मनके, सिक्के, मुहरें इत्यादि प्राप्त हुई। ये भूमिगत अवशेष प्राचीन थे, यह स्पष्ट था। अतः इनके ऐतिहासिक महत्त्व के आकलन के लिए श्रीकृष्णदेव को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने अधिकृत किया क्योंकि वे इस संस्था के वरीष्ठ व अनुभवी पुरातत्वेता थे। पुरावशेषों की महत्ता पहचानते हुए उन्होंने काशी राजघाट के क्षेत्र के ऐतिहासिक आकलन के लिए 1940 ईस्वी **में विधिवत उत्खनन करवाया।**

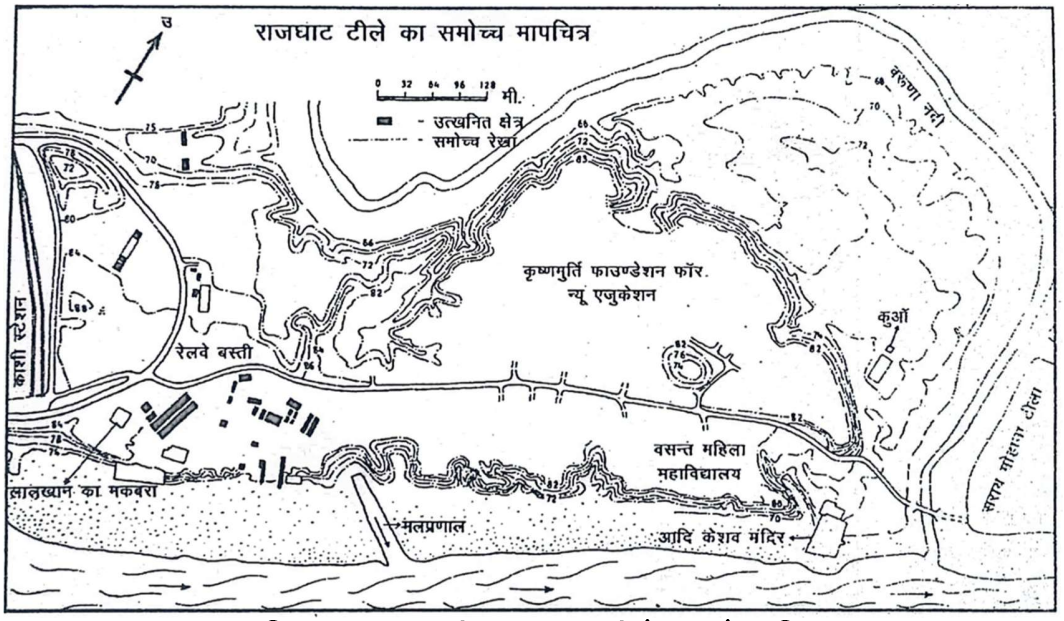

मानचित्र 8.2 : काशी राजघाट टीले का रेखाचित्र

उत्खनन से ऐसी अभिलिखित मुहरें प्राप्त हुई, जिन पर वाराणसी नगर का नाम अंकित था। प्राचीन नगरों में व्यापार–वाणिज्य क्रियाओं में ऐसी मुहरों का अस्तित्व गंगा घाटी के अन्य नगरों से भी उत्खनित है। नगरीय समृद्धि की अन्य पुरावस्तुओं व नामाँकित मुहरों के आधार पर इस क्षेत्र को प्राचीन वाराणसी नगर के रूप में पहचाना गया। यह प्राचीन नगर गंगा–वरुणा के संगम से काशी स्टेशन तक फैला था, जो आज एक विस्तृत टीले में भूमिगत है। इस स्थापना के बाद काशी राज्य की बहुत प्राचीन राजधानी का उत्खनन आवश्यक हो गया। बींसवीं सदी के छठवें दशक में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पुराविदों के दल ने अवध किशोर नारायण के नेतृत्व में राजघाट कोट का उत्खनन प्रारम्भ किया। लगभग 10 वर्षों तक प्रतिवर्ष कई माह तक खुदाई का काम चलता रहा, जिसके परिणाम स्वरुप काशी की राजधानी की स्थापना, विकास एवं विस्तार के लगभग सभी महत्वपूर्ण चरण प्रकाशित हुए।

काशी राजघाट का टीला गंगा–वरुणा के संगम आदि केशव से काशी रेलवे स्टेशन के कुछ पश्चिम तक फैला है। यह ऊँचा त्रिकोण भूखण्ड टीला संख्या एक के रूप में चिन्हित है। काशी स्टेशन, लाल खान का मकबरा, सर्योदय शंकुल व कृष्णमूर्ति फाउंडेशन का राजघाट विंसेंट स्कूल व बसंत महिला महाविद्यालय इसी टीले पर स्थित है। गंगा के बाएं तट का यह भाग कई भौगोलिक विशिष्टताओं के कारण सुरक्षित व समृद्ध आवास के लिए उपयुक्त है उदाहरण के लिए यह ऊंचा नदी तट वार्षिक बाढ़ के पानी की पहुँच से ऊपर स्थित है। गंगा–वरुणा नदियों द्वारा पूर्व–उत्तर व दक्षिण दिशा में जल के भराव द्वारा, इस भूखंड को प्राकृतिक सुरक्षा घेरा उपलब्ध है तथा आस–पास की उर्वर भूमि का विस्तृत फैलाव कृषि उपयोगी है। इन सब के साथ जल की काफी मात्रा व जलमार्ग का अस्तित्व भी इस स्थल के लिए अत्यधिक उपयोगी था। वर्ष भर गंगा व वरुणा नदियों का जल, जहाँ कृषि व दैनिक क्रियाकलापों के लिए उपयोगी स्रोत है। वही ये नदियाँ

वाराणसी नगर को उत्तर भारत के कई समकालीन नगरों व खनिज क्षेत्रों से जोड़ती है। व्यापार और वाणिज्य के आगमन की दृष्टि से भी ये भौगोलिक विशेषता, किसी भी प्राचीन नगर की समृद्धि के लिए वरदान होती है। यह लाभ प्राचीन वाराणसी नगर को भी प्राप्त था। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पुराविदों ने इन काशी राजघाट का विस्तृत उत्खनन 1957–58 ईस्वी तथा 1960–69 ईस्वी के मध्य करवाया। परिणामस्वरूप काशी राजघाट के प्रमाण लगभग 2700 वर्षों, ई0पू0 800 से 16वीं सदी तक के अवशेष भूमिगत है।

8.4.2 उत्खनन से प्राप्त अवशेष

उत्खनन के परिणामस्वरूप 12 खंभों से युक्त एक मंदिर तथा ईंटों की कुछ अन्य संरचनाएँ, उत्तरी काली चमकीले मृण्भांड के टुकड़े तथा कुछ अन्य वस्तुएँ मिलीं। इसके अतिरिक्त उत्खनन में चौथे स्तर (दूसरी–तीसरी शताब्दी ई.) से अनेक यूनानी देवी–देवताओं की आकृतियों से युक्त मुद्राएँ भी मिली हैं। यहाँ बड़ी मात्रा में मुद्राओं के मिलने के कारण श्री कृष्णदेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये मुद्राएँ वाराणसी व पश्चिमी देशों (यूनान एवं रोम) के बीच व्यापारिक संबंध की द्योतक हैं। परंतु मोतीचंद्र वाराणसी और पश्चिम के देशों (यूनानी एवं रोम) के बीच व्यापारिक संबंध होने की बात को अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि उस समय पश्चिम देशों से व्यापार मुख्यतः जलमार्ग से ही होता था, जो कि अरब सागर व बंगाल की खाड़ी के बंदरगाहों तक ही सीमित था और वहाँ से भारतीय व्यापारियों द्वारा यह सामान देश के अन्य भागों में पहुँचाया जाता था, जबकि स्थलमार्ग से इन विदेशी व्यापारियों के मध्य देश तक पहुँचने के भी प्रमाण नहीं मिलते। यदि इन व्यापारियों का व्यापारिक संबंध मध्य देश से मान भी लिया जाय तो इसका प्रमाण मध्यदेश के अन्य व्यापारिक नगरों (कौशांबी, सहजाति (आधुनिक 'भीटा') और श्रीवस्ती में क्यों नहीं मिलता? यह एक विचारणीय प्रश्न है। अतः यह तो निश्चित है कि ये मुद्राएँ व्यापारिक उद्देश्य से यहाँ नहीं आईं। बल्कि यह संभावना है कि ये मुद्राएँ हिंद–यवन शासक ड्रेमेट्रियस या मिलिंद (मिनांडर) के पाटलिपुत्र विजय अभियान के दौरान बनारस में पड़ाव के समय छूट गई हों।

यह प्राचीन स्थल चारों ओर से सुरक्षित था। दक्षिण–पूर्व की ओर से गंगा, उत्तर और उत्तर–पूर्व में वरुणा नदी तथा पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम की ओर से यह एक परिखा द्वारा परिवेष्टित था। ग्रीब और शेरिंग ने भी प्राचीन वाराणसी की स्थिति नगर के उत्तर में वरुणा और गंगा के मिलन–बिंदु पर मानी है। अतः यह तो निश्चित है कि यह स्थल वाराणसी की प्राचीनतम बस्ती होने की ओर संकेत करता है। 1940 के उत्खनन में यहाँ से प्राप्त एक गुप्तकालीन मुहर पर उल्लेखित लेख 'वाराणस्याधिष्ठानिधकरणस्य' से भी इसका समर्थन होता है। इस क्षेत्र का सर्वप्रथम वैज्ञानिक उत्खनन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. अवध किशोर नारायण ने 1957 में प्रारंभ किया। इस कार्य का पुनः आरंभ 1960–61 और बाद के वर्षों में भी चलता रहा। उत्खनन से निम्नलिखित् चरणों के साक्ष्य प्रकाश में आए हैं–

8.4.3 प्रथम काल

राजघाट की खुदाई से प्राप्त अवशेषों से यह सिद्ध होता है कि मानव ने सर्वप्रथम 8वीं शती ई.पू. के आस–पास इस दलदल वाले क्षेत्र को साफ करके निवास प्रारंभ किया। उस समय यहाँ के निवासियों का मुख्य पेशा कृषि था। यहाँ के निवासी मिट्टी के मकानों एवं घास–फूस की झोपड़ियों में रहते थे। सीमित उत्खनन के कारण इस काल के आवासीय भवनों के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं मिल सकी, परंतु ऐसा आभास होता है कि इस काल में यह क्षेत्र नगरीकरण की प्रक्रिया से बिल्कुल अनभिज्ञ रहा होगा। इस काल के तीन चरण दृष्टिगत होते हैं–

प्रथम चरण के निचले स्तरों की सीमित खुदाई से आवासीय भवनों एव स्मारकों के अवशेष नहीं मिले हैं। यहाँ से प्राप्त वस्तुओं में लोहे के उपकरण, अस्थिनिर्मित औजार, बड़ी संख्या में मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी की तश्तरियाँ तथा आभूषण आदि मिले हैं। द्वितीय चरण से सरकण्डे (नरकुल) के टुकड़े तथा कमरों के फर्शों के उत्खनित अंश प्रकाश में आए हैं। इस चरण से एक ऐसा साक्ष्य मिला है, जिसे बाद के उत्खननों में तटबंध से समीकृत किया गया है। संभवतः गंगा की बाढ़ से नगर की रक्षा के लिए उक्त तटबंध का निर्माण किया गया था। नगरीकरण के प्रारंभ में तटबंध के निर्माण का यह प्रथम प्रयास था। इस चरण से किसी प्रकार की

संरचना के अवशेष नहीं मिले है। फिर भी फर्श के उत्खनित अंश के मिलने से इस काल में भवनों के होने की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त लाल एवं भूरे रंग की मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं, जिनमें हाथी और साँड़ की आकृतियाँ मुख्य है। इस चरण की समाप्ति तीसरी–चौथी शती ई.पू. के लगभग हुई। इस काल के तृतीय चरण में कच्ची मिट्टी की दीवार तथा कच्चे फर्श के अवशेष मिले हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मृण्मूर्तियाँ, ताँबे के सिक्के तथा मृतिका वलय कूप भी मिले हैं।

8.4.6 द्वितीय काल

द्वितीय काल का प्रारंभ तीसरी शती ई. पू. से प्रारंभ होता है। यह युग वाराणसी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नगरीय सभ्यता के इतिहास में विकास का यह प्रथम काल था। इस काल में कृष्ण–लेपित पात्र, कृष्ण–लोहित पात्र एवं उत्तरी काले चमकीले मृण्भाण्डों का प्रयोग बहुतायत में मिलता है, जो इस काल के आर्थिक और तकनीकी विकास के स्पष्ट प्रमाण है। इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भवनों के निर्माण में पकी ईंटों का प्रयोग था। यदा–कदा मकानों में कच्ची ईंटों का प्रयोग भी मिलता है। भवनों में पकी ईंटों के प्रयोग से जहाँ एक ओर इनकी तकनीकी प्रगति की जानकारी मिलती है, वहीं दूसरी ओर जनता की सुख–समृद्धि का भी ज्ञान होता है। भवनों की नींव में कंकड़ पत्थर एवं ईंटों के टुकड़ों को डाला जाता था। उत्खनन से एक स्थान पर कंकड़–पत्थर से युक्त कंकरीट की नींव भी मिली है।

भवनों की छत के निर्माण में खपरैल (रुफटाइल्स) का प्रयोग मिलता है। इनको लोहे के कीलों से बाँधा जाता था। दीवारों में स्तंभ–गर्त (पोस्ट–होल्स) के अवशेष भी मिले हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि छत को टिकाने के लिए लकड़ी या बाँस के खंभों का प्रयोग किया जाता था। मकान एक सीध में बनाए जाते थे और दो मकानों के मध्य कुछ स्थान छोड़ दिया जाता था। स्पष्टतः शुद्ध वायु और नगर की स्वच्छता के लिए ही ऐसा किया जाता था। इन मकानों के मध्य गोलाकार कुएँ भी मिलें हैं। कभी–कभी ये कुएँ मकानों के अंदर भी स्थित होते थे। पूर्ण खुदाई के अभाव में कुछ निश्चित कहना कठिन है लेकिन कमरे के अंदर ऐसे कुओं के मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका उपयोग शौच आदि के लिए किया जाता रहा होगा। उत्खनन से पता चलता है कि प्रारम्भ में कमरों का औसत आकार 2.56 मीटर X 2.26 तथा बाद में 1.90 मीटर X 2.92 मीटर था। प्रत्येक परिवार के रहने के लिए दो कमरे थे। इन कमरों में दो दरवाजे, एक दालान (प्रकोष्ठ), एक कुआँ, स्नानार्थ चबूतरा तथा नाली सम्मिलित थी। यहाँ से सोख्ता घड़े और मृतिकावलय कूप के भी अवशेष मिले हैं। इसके अतिरिक्त पकी ईंटों से निर्मित एक नाली के अवशेष भी मिले हैं। यह नाली उत्तर से दक्षिण 2.75 मीटर लंबाई में विस्तृत थी, जो बड़े आकार की ईंटों से आवृत थी। सफाई की सुविधा के लिए नाली में लंबवत् ईंटों का प्रयोग मिलता है। इस काल में कच्ची ईंटों का प्रयोग भी मिलता है। उत्खनन से चार रद्दों वाले एक भवन का भी पता चला है। इस भवन में प्रयुक्त ईंटों 39X30X7 सेंटीमीटर आकार की है। पकी ईंटों की माप दो वर्गों में दृष्टिगत होती है। एक वर्ग में प्रयुक्त ईंटों 50X31X5 सेंटीमीटर आकार की है तथा दूसरे वर्ग में 48X28X5 सेंटीमीटर आकार की है। इस काल का अंत ईसवी सन् के प्रारंभ में हुआ होगा।

8.4.5 तृतीय काल

इस काल का प्रारंभ ईसवी शती से लेकर तीसरी शताब्दी ई. के मध्य माना जाता है। आवासीय संरचना की दृष्टि से यह काल सर्वाधिक समृद्ध था। इस काल के सभी भवन पकी ईंटों से निर्मित हैं। इनमें प्रयुक्त ईंटें मुख्यतः दो आकार की हैं– इस प्रकार की ईंटें जिनकी माप 40X25X5 सेंटीमीटर है तथा दूसरे प्रकार की ईंटें 39X29X5 सेंटीमीटर माप की है। इस काल की उत्खनित संरचना को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उत्खननकर्ताओं ने तीन संरचनात्मक अवस्थाओं में विभक्त किया है।

संरचनात्मक अवस्था एक में ऐसे भवनों की नींव मिलती है, जिनमें कमरे का आकार 4X4.21 मीटर लंबा है और एक–दूसरे को पूर्व के छोर पर काटते हैं। इसकी नींव की मोटाई 20 सेंटीमीटर चौड़ी थी। इसके साथ दो मुड़ी हुई दीवारें भी थीं। इस संरचना से बड़े आकार के कमरे का पता चलता है, जिसका एक पार्श्व

6.06 मीटर लंबा था। यहीं से ईंटों के प्लेटफार्मयुक्त एक कुआँ भी मिला था। फर्श के कोने में वृत्ताकार धँसा हुआ एक स्थान था। संभवतः यहाँ सोख्ता घड़े (सोकेज जार्स) या कोई उपकरण रखा गया होगा।संरचनात्मक अवस्था 3 में कंकरीट की एक 24 सेंटीमीटर मोटी फर्श और कुछ दीवारों के अवशेष मिलें हैं इसमें एक दीवार 2.27 मीटर थी, जिसमें प्रयुक्त ईटों की 11 परतें हैं। इसके अतिरुक्त कई अन्य दीवारों के अवशेषों का भी पता चला है, लेकिन भग्नावस्था में होने के कारण इनसे किसी निश्चित योजना की जानकारी नहीं हो पाती। भवनों की निर्माण योजना से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उनकी रचना दिशाओं को ध्यान में रखकर की जाती थी।

इस काल के उत्खनन से प्राप्त सभी मृदभांड लाल रंग के हैं। जबकि द्वितीय काल में इस प्रकार के मृदभांडों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है, जबकि इस काल में इनका प्रयोग आकार और पकाने की नई प्रक्रिया के रूप में दृष्टिगत होता है। अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं में सिक्कों एवं मुहरों का प्रयोग मुख्य है। यहाँ से 400 मुहरें एवं राजमुद्रांक (सीलिंग्स) परिष्कृत एवं अपरिष्कृत रूप में मिली हैं। उल्लेख्य है कि इसी प्रकार के राज्यमुद्रांक (सीलिंग्स) अगियाबीर से भी मिली हैं। पुरालिपि संबंधी चिह्नों से ये मुहरें पहली शताब्दी और तीसरी शताब्दी के मध्य की प्रतीत होती हैं। इस काल में पहली बार डाईस्ट्रक सिक्कों का प्रयोग मिलता है। यहाँ से कौशांबी और अयोध्या के दो सिक्के भी मिले हैं, जिन पर लेख क्रमशः 'नवस्' और 'शिवदत्तस' अंकित हैं। इस काल से बड़ी संख्या में मुहरों एवं राजमुद्रांकों का मिलना तथा समर्थनस्वरूप सिक्कों का प्राप्त होना, इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण् है कि इस काल में व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

8.4.6 चतुर्थ काल

यह काल 300 से 700 ई. के बीच विकसित था। इस काल के निर्मित भवन पूर्व–युग के भवनों से भिन्न थे। इस काल के सभी अवशेष गुप्तयुगीन हैं। इस काल के मकान सभी सुविधाओं से युक्त थे। इन मकानों में स्नानगृह, पाकशाला एवं भंडारकक्ष इत्यादि मिलते हैं। इस काल की प्राप्त वस्तुओं में दो कुंड, बर्तन रखने के मर्तबान, एक कंकरीट की जाली मुख्य हैं। कमरों में प्रयुक्त इटें 41.5X26.5X5 सेंटीमीटर आकार की हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि विभिन्न युगों में भवन–निर्माण की प्रक्रिया में पर्याप्त अंतर मिलता है। निर्माण की प्रथम प्रक्रिया के पश्चात् उत्तरोत्तर परिवर्द्धन का क्रम परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम 8वीं शती ईसवी पूर्व में मानव मुख्यतः कच्ची मिट्टी के मकानों एवं झोपड़ियों में निवास करता था। परंतु नगरीकरण की प्रक्रिया के प्रारंभ के फलस्वरूप दूसरी–तीसरी सदी ई.पू. में भवनों के निर्माण में पकी ईंटों का प्रयोग होने लगा। इस काल में कच्ची ईंटों का प्रयोग भी मिलता है। लोगों को लोहे का ज्ञान हो चुका था, इसलिए भवनों में लोहे की कीलों का उपयोग आवश्यकतानुसार होने लगा। ईसवी सन् के प्रारंभ से तीसरी शताब्दी तक इन भवनों में पकी ईंटों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। इस काल के कमरे पूर्ववर्ती कमरों से बड़ें होते थे। भवनों की नींव कंकरीट एवं ईंटों के टुकड़ों से भरी जाती थी। तीसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी के भवनों में भी पकी ईंटों का प्रयोग मिलता है।

8.5 रामनगर (25° 16′ 48″ पूर्व, 83° 1′ 48″ उत्तरी)

रामनगर गंगा नदी के दाएं तट पर स्थित है। रामनगर का कुछ भाग वर्तमान समय में वाराणसी जिले में, जिसमें राम नगर का किला क्षेत्र शामिल है और कुछ भाग वाराणसी से अलग होकर बने चंदौली जिले में पड़ता है। रामनगर वर्तमान समय में राम नगर की रामलीला से आस–पास के क्षेत्रों में विख्यात है। रामनगर की रामलीला को आधार बनाकर बहुत से शोध–कार्य राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे है, जो रामनगर की रामलीला के महत्त्व को बढ़ाने के साथ ही साथ रामायण में परिलक्षित आदर्श और नैतिक जीवन को भी स्थापित करने का कार्य करेंगे। रामनगर का क्षेत्र प्राचीनकाल से ही मानव जीवन को आकर्षित करता रहा है। केवल मानव ही नहीं बल्कि पशु–पक्षियों का जमावड़ा भी नदी किनारे स्थित वन क्षेत्र में था। इस महत्वपूर्ण पुरास्थल के बारे जानना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह क्षेत्र आज भी उद्योग–धंधों एवं

व्यापार–वाणिज्य के दृष्टिकोण से अत्यंत सुलभ है।

8.5.1 खोज एवं पुरास्थल की संरचना

रामनगर पुरास्थल का सर्वेक्षण काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा ज्ञान प्रवाह के संयुक्त तत्वाधान में प्रो0 बिदुला जायसवाल के निर्देशन में वर्ष 2005 तथा 2006 में किया गया। इसके परिणामस्वरूप या निर्धारित किया जा सका कि लगभग तीन किलोमीटर का गंगा तट, जो रामनगर के किले व शास्त्री पुल के मध्य स्थित हैं – प्राचीन भूमिगत आवासीय अवशेषों से युक्त है। राजा बनारस का आवास रामनगर कोट प्राचीन किले के पूर्वी भाग पर स्थित है। बचे हुए लम्बे प्राचीन अवशेषों के पश्चिमी फैलाव पर भी कई बस्तियों व घरों का निर्माण कर लिया गया है। साथ ही ये पुरा जमाव कई स्थानों पर प्राकृतिक कारणों से भी कटे हुए हैं। गंगा नदी के दायें तट पर इन्हीं के कारण रामनगर का तट लंबे समय तक नदी द्वारा कटता रहा, जिले का लगभग आधा या उससे अधिक भाग गंगा के कटाव के कारण गिर चुका है क्योंकि इस स्थान पर नदी का कटाव और रामनगर तट की ओर है तथा सामने घाट का तट गंगा की बाढ़ से फैलावी क्षेत्र है। फलस्वरूप आज यह पुरास्थल लंबे व सक्रिय फैलाव के रूप में उपलब्ध है। गंगा के अतिरिक्त भी रामनगर के पुरातात्विक जमावों का कटाव पूरा जल स्रोतों द्वारा हुआ है। अगर भूगर्भीय कारणों की वजह से भी रामनगर के तट का कटाव हुआ, जिसकी वजह से रामनगर कई खंडों में विभाजित हो गया। यह विभाजित खंड कई स्थानीय नामों से जाने जाते हैं जैसे कुत्ता घाट, गोलाघाट, ओरिया घाट इत्यादि कच्चे घाट है। वर्तमान समय में कुछ घाटों पर पक्की सँकरी सीढ़ियाँ बनाई गई है। सभी घाट रामनगर वासियों के गंगा के जल तक पहुंचने का एवं उपयोग करने साधन है। इनमें से दो घाट ओरिया व गोलाघाट पुरातात्त्विक एवं भूगर्भशास्त्रीय अन्वेषण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

8.5.2 सांस्कृतिक अनुक्रम

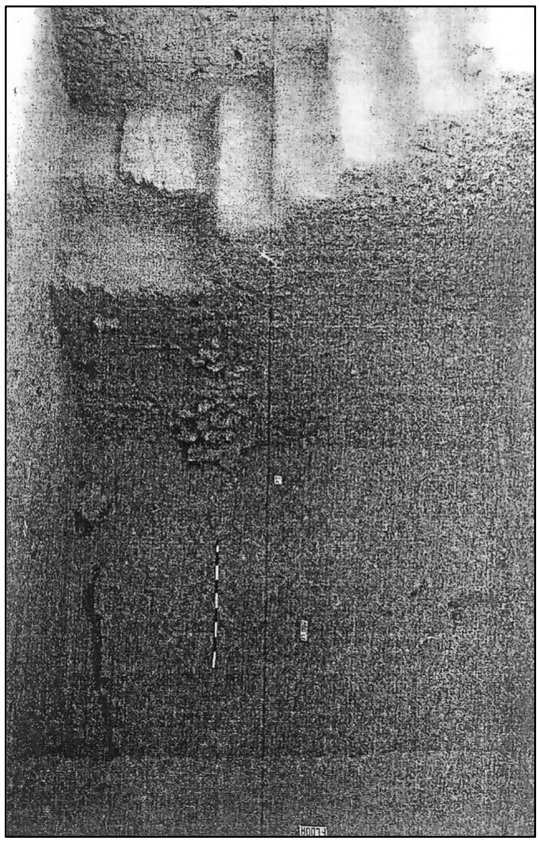

चित्र – 8.4 ओंरिया घाट स्थित, रामनगर का आवासीय जमाव

यहाँ के कटे हुए अनुभाग से प्राप्त पुरावशेषों में प्रारंभिक सांस्कृतिक चरण की पहचान की गई है, जो काशी राजघाट के उत्खनन से प्रकाश में आए हैं क्योंकि इस क्षेत्र के अधिवास का भी प्रथम चरण आज से लगभग 800 ई0पू0 का हैं। परवर्ती चरण अथवा द्वितीय सांस्कृतिक चरण का संबंध जनपद और महाजनपद काल से, तृतीय सांस्कृतिक काल का संबंध मौर्य–शुंग वंश से एवं चतुर्थ सांस्कृतिक काल का संबंध कुषाण काल से है (चित्र 8.4)। यह स्थल भी परवर्ती कुषाण काल में उजड़ने लगा।

रामनगर संभवतः कभी भी काशी राजघाट की तरह वृहद एवं वैभवशाली नगर के रूप में विकसित नहीं हो पाया। फिर भी यह एक ऐसा सन्निवेश था, जो उद्योग शिल्प व व्यापारिक आदान–प्रदान का केंद्र था (चित्र–8.5)। ओरिया घाट स्थल के उत्खनन से प्रमाणित है कि जनपद कालीन विशिष्ट मृदापात्र, जिनका व्यापार किया जाता था, का निर्माण यहाँ काफी मात्रा में किया जाता था। ये पात्र उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड परंपरा के नाम से जाने जाते हैं, जिनका संबंध नगरीय जीवन एवं महाजनपद काल से था। महाजनपद कालीन समृद्ध लोगों के द्वारा यह पात्र परंपरा संरचना व चमकीली सतह के कारण पुरावशेषों की श्रेणी में श्रेष्ठ स्थान रखती है। रामनगर के आवासीय क्षेत्रों में तो उनका उपयोग नगण्य था परन्तु उनका निर्यात आस–पास के नगरों में संभावित है। काशी राजघाट में इनकी माँग व उपयोगिता काफी रही होगी क्योंकि वहाँ इन पात्रों की अच्छी मात्रा महाजनपद कालीन जमाव से प्राप्त हुई है।

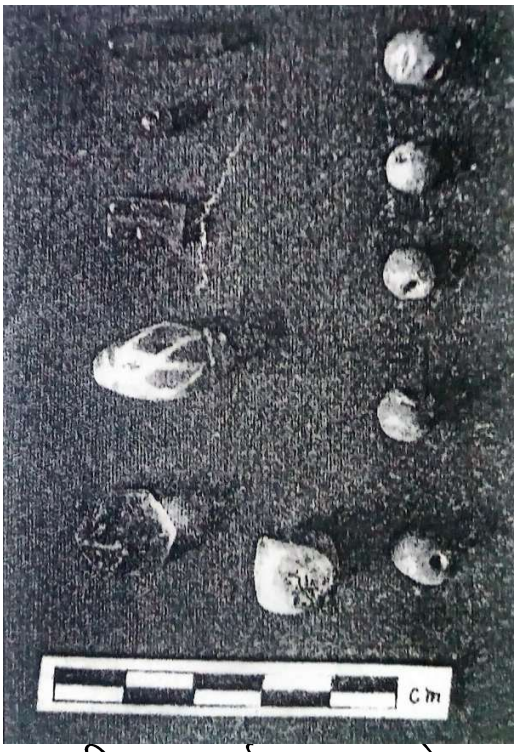

चित्र–8.5 अर्धमूल्यवान मनके

8.5.3 भौगोलिक दृष्टिकोण एवं प्राचीन मार्ग

रामनगर का टीला भौगोलिक दृष्टिकोण से इतना समृद्ध है कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जलमार्ग के द्वारा किसी वस्तु का व्यापार एक स्थान से दूसरे स्थान तक किया जा सकता है। वर्तमान समय में राम नगर पुरास्थल के शास्त्री ब्रिज के बाईं तरफ एक बंदरगाह का निर्माण किया गया है यह इस बात की पुष्टि करता है प्राचीन समय में भी राम नगर का यह क्षेत्र व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा होगा। रामनगर की भौगोलिक स्थिति भी आयात–निर्यात की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण थी। क्योंकि यह आवासीय क्षेत्र

गंगा के तट पर बसा होने के कारण जलमार्ग से दूर के क्षेत्रों व अन्य राज्यों से भी जुड़ा था। यह महत्वपूर्ण पुरास्थल, स्थल मार्ग पर भी स्थित था। आज का राष्ट्रीय राजमार्ग जो शास्त्री पुल से होकर स्थल के बगल से होकर जाता है, वह एक ओर उत्तर प्रदेश व बिहार के दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र से गुजरता है और दूसरी तरफ मिर्जापुर से होता हुआ दक्षिण भारत की ओर निकल जाता है। पूर्व में दक्षिण–पश्चिम बिहार व छोटानागपुर के पठारी भाग के कई प्राचीन आवासीय स्थल जैसे गया, राजगृह, नालंदा इत्यादि भी इससे जुड़े थे। प्राचीन रामनगर अर्धमूल्यवान पाषाण मनकों के उत्पादन का भी महत्वपूर्ण केंद्र था। ऐसा माना जाता है कि सोनघाटी तथा विंध्य–कैमूर क्षेत्र से प्राप्त किए गए बारीक कणों वाले पाषाण खंडों का आयात कर उन पर कई आकार–प्रकार के मनके बनाए जाते थे और अन्य नगरों को निर्यात किए जाते रहे होंगे।

8.5.4 रामनगर का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

रामनगर का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की चर्चा साहित्यिक साक्ष्यों से प्राप्त होती है। जिसमें जातकों का महत्वपूर्ण स्थान है। रामनगर के ओरिया घाट के उत्खनन से मृदापात्र निर्माण के स्थायी प्रमाण प्राप्त हुए है। इस पुरास्थल व कच्छप जातक की कथा में कई समानताएं मिलती है। उदाहरण के लिए कच्छप जातक का भौगोलिक परिवेश– वाराणसी के पास की बड़ी नदी का तट था, जो गंगा नदी का तट माना जा सकता है। रामनगर का ओरिया घाट पुरास्थल गंगा के दाहिने तट पर वाराणसी के समीप स्थित है। कच्छप जातक के बोधिसत्व का गाँव नदी व झील दोनों के समीप स्थित था। ओरिया घाट के उत्खनन में झील का स्पष्ट अस्तित्व प्राप्त किया गया है। एक झील के सूखने के पश्चात उसकी तलहटी पर रामनगर का प्रारंभिक आवासीय चरण स्थित था। रामनगर के ई0पू0 तृतीय शताब्दी का आवासीय स्तर का साक्ष्य झील की सूखी तलहटी पर स्थित था, जबकि इसके दक्षिणी किनारे पर उत्तरी चमकीली कृष्ण मृदभांड के निर्माण की कार्यशाला का साक्ष्य प्राप्त हुआ है, जो ई0पू0 की छठी शताब्दी से चौथी शताब्दी ई0पू0 के मध्य का माना जा सकता है। इस जातक के अनुसार जनपथ कालीन प्रथम बस्ती झील के तट पर स्थित थी। इस समय निश्चित ही जल की मात्रा झील में कम रहती थी। क्योंकि लगभग एक से दो शताब्दियों में यह जलाशय पूर्ण रूप से सूख गया होगा। जनपद कालीन विशिष्ट पात्रों की कार्यशालाएं भी ओरिया घाट में अत्यंत सक्रिय थी, जिनके उत्पाद के निर्यात की संभावना भी प्रबल है। इस सांस्कृतिक चरण के समकालीन काशी–राजघाट तथा आगियावीर जो क्रम से रामनगर से गंगा के निचले तथा ऊपरी प्रवाह पर स्थित थे, को इन पत्रों का आयात किया जाता था क्योंकि इन दोनों स्थलों से ऐसे उत्तर भारतीय कृष्ण चमकीले मृदभांड के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनसे रामनगर के पात्रों के आकार व स्वरूप की समानता तो है ही, साथ ही उन पर खुरच कर किया गया चिन्ह व अक्षरों का अंकन भी रामनगर के पात्रों से मेल खाता है। कच्छप जातक की कथा ओरिया घाट जैसे या ओरिया घाट के ही प्रारंभिक भौगोलिक व सामाजिक परिवेश पर आधारित लगती है तथा कच्छप जातक का नायक बोधिसत्त्व एक ऐसी ही मृदापात्र कार्यशाला का स्वामी तथा व्यापारी माना जा सकता है, जो ई0पू0 चौथी से छठी शताब्दी के सांस्कृतिक परिवेश में अवस्थित था (प्रो विदुला जायसवाल, 2011. आदिकाशी से वाराणसी तक, आर्यन बुक इंटरनेशनल, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 68–69)।

8.5.5 पात्र प्रकार एवं तकनीक

काशी के जनपद व महाजनपद काल के पुरातात्विक अवशेषों को दो सांस्कृतिक चरणों में विभाजित किया गया है। प्रथम जनपद चरण, जिसकी तिथि 800 से 600 ई0पू0 के मध्य मानी गई है, जबकि परवर्ती चरण को षोणस महाजनपद कालीन माना जाता है, जिसकी तिथि 600 से 200 ई0पू0 के मध्य की है। इन दोनों उपकरणों के भौतिक अवशेषों का स्वरूप अलग–अलग दिखता है। मध्य गंगा घाटी जहाँ वाराणसी स्थित है, वहाँ की पुरातात्त्विक सांस्कृतिक संज्ञा में इनको कृष्ण ओपदार मृद्भांडीय संस्कृति तथा उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति के नाम से संबोधित किया जाता है। रामनगर के ओरिया घाट के प्रथम और द्वितीय सांस्कृतिक चरण से इस तरह के मृदभांडों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के पात्रों के प्रमुख प्रकारों में कटोरे तथा थालियाँ ज्यादा मिलती है। कभी–कभी आधारयुक्त कटोरे तथा छोटे घड़े भी बनाए जाते थे (चित्र 8.6)। इस प्रकार के पात्रों को अच्छी प्रकार से तैयार की गई मृदा से बनाया जाता था तथा पात्रों पर मृदा का ही विशेष लेप चढ़ा दिया जाता था।

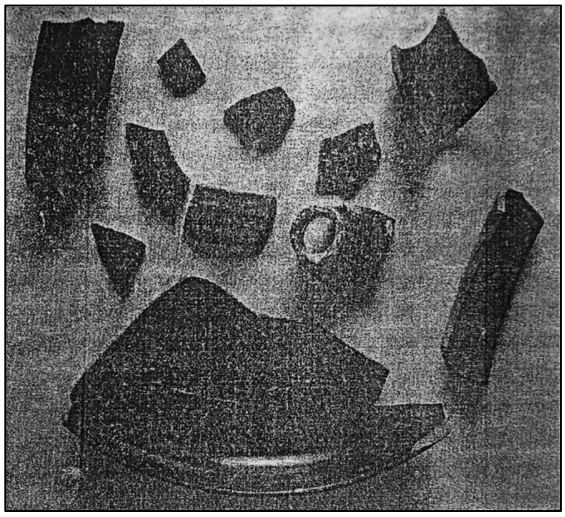

चित्र –8.6 जनपद कालीन कृष्ण ओपदार मृदभांड (ओरिया घाट, रामनगर)

अच्छी तरह सुखाने के बाद इसको ऐसी आंच में पकाया जाता था कि पकने के बाद पात्रों का रंग काला हो जाए। सामान्यतः मृदा पात्रों को जब आज भी कुम्हार आवां में पकाते हैं तो पके हुए पात्रों का रंग लाल होता है, पर कृष्ण ओपदार पात्रों की सतह काली व उसके अंदर का भाग स्लेटी होता है (चित्र–)। पुराविद इन लक्षणों का श्रेय मिट्टी पकाने की एक विशिष्ट विधा को देते हैं। इस तकनीक में पकाते समय आवॉ में सीधी आंच के स्थान पर धुएं की आंच का प्रयोग किया जाता है। अधिक तापमान व धुएं की दशा में यह पात्र देर तक पकाए जाते हैं। कुम्हारों की आधुनिक कार्यशाला आजमगढ़ में आज भी ऐसे पात्रों का निर्माण किया जाता है। एक ही मिट्टी से गड्ढे व लेपित पात्रों के आवां में पकाने की दो अलग विधियों के कारण पात्रों का रंग लाल व काला हो जाता है। महत्वपूर्ण यह है कि दोनों प्रकार कृष्ण व लोहित ओप दार सतही पात्र उत्खनित अवशेषों में साथ–साथ प्राप्त होते हैं। कृष्ण चमकीले पात्रों का अनुपात मध्य गंगा घाटी के जनपद कालीन जमावों में बहुत अधिक तो नहीं है पर कुशल बनावट व अन्य सांस्कृतिक लक्षणों के कारण इनका विशेष स्थान है क्योंकि पुराविद् इनकी पकाने की तकनीकों को परवर्ती विशिष्ट मृदभांड परंपरा उत्तरी काली चमकीली मृदभांड के विकास के लिए उत्तरदायी मानते हैं। इस चरण की दूसरी विशिष्ट पात्र परंपरा के रूप में कृष्ण ओपदार पात्रों को वर्गीकृत किया जा सकता है। इस चरण के पात्रों को पकाने से पूर्व इनकी सतह पर लेप लगा दिया जाता था।

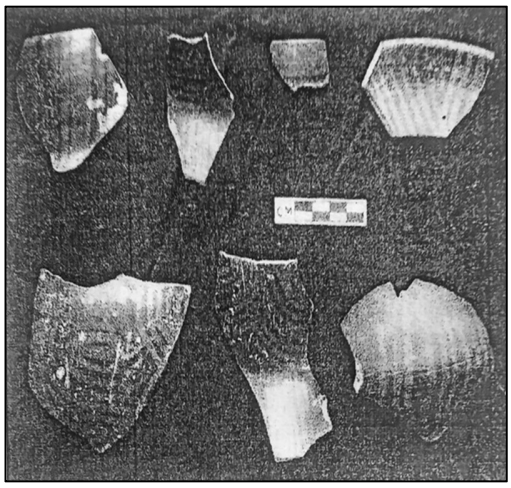

चित्र –8.6 जनपद कालीन चित्रित मृदभांड (ओरिया घाट, रामनगर)

कृष्ण लोहित पात्रों के समान ही इस काल विशेष में उपयोगी कृष्ण ओपदार पात्रों में मुख्य रूप से कटोरी एवं थालियों का निर्माण किया जाता था। जब की कृष्ण लोहित पात्र परंपरा में छोटे व बड़े कटोरे ही मुख्य प्रयुक्त आकार थे। दोनों ही प्रकारों में चित्रण का प्रचलन था, जो सफेद रंग से सामान्यतया ज्यामितीय चित्रण यथा बिंदु, छोटी रेखाओं के रूप में किए जाते थे (चित्र–8.6)। संग्रह तथा खाद्यान की सामान्य व विविध आवश्यकताओं की आपूर्ति लाल पात्रों से की जाती थी। इसमें विविध आकारों के कटोरे, थाली, घड़ा इत्यादि प्रकार के बर्तन थे (चित्र–8.7)। साथ ही मोटे–पतले, कम पके व अच्छे पके पात्र, जिनकी सतह सादी या चमकीली थी, इत्यादि बनाए जाते थे। लगभग एक मीटर मोटा रामनगर के प्रथम सांस्कृतिक जमाव से भी कृष्ण ओपदार पात्र प्राप्त हुए है। इनके साथ लाल लेपित पात्र की उपस्थिति भी उल्लेखनीय हैं। काले रंग से चित्रित काले लाल सतही कटोरे पात्र संग्रह में सबसे अलग दिखते हैं। दोनों ही विशिष्ट मृदापात्र वर्गों में कटोरों के कई प्रकार प्रचलित थे। पाषाण के बट्टे (चित्र–8.8) , मृदा गोले तथा ठीकरों से निर्मित ज्यामितीय आकारों के पुरावशेष भी प्राप्त हुए है । धातु के तेज धार से काटे गए पशु अस्थियों की अच्छी मात्रा समकालीन जमावों से प्राप्त हुई है। संभवतः ये अस्थि के टुकड़े, मछली मारने के जाल में बांधे जाते थे।

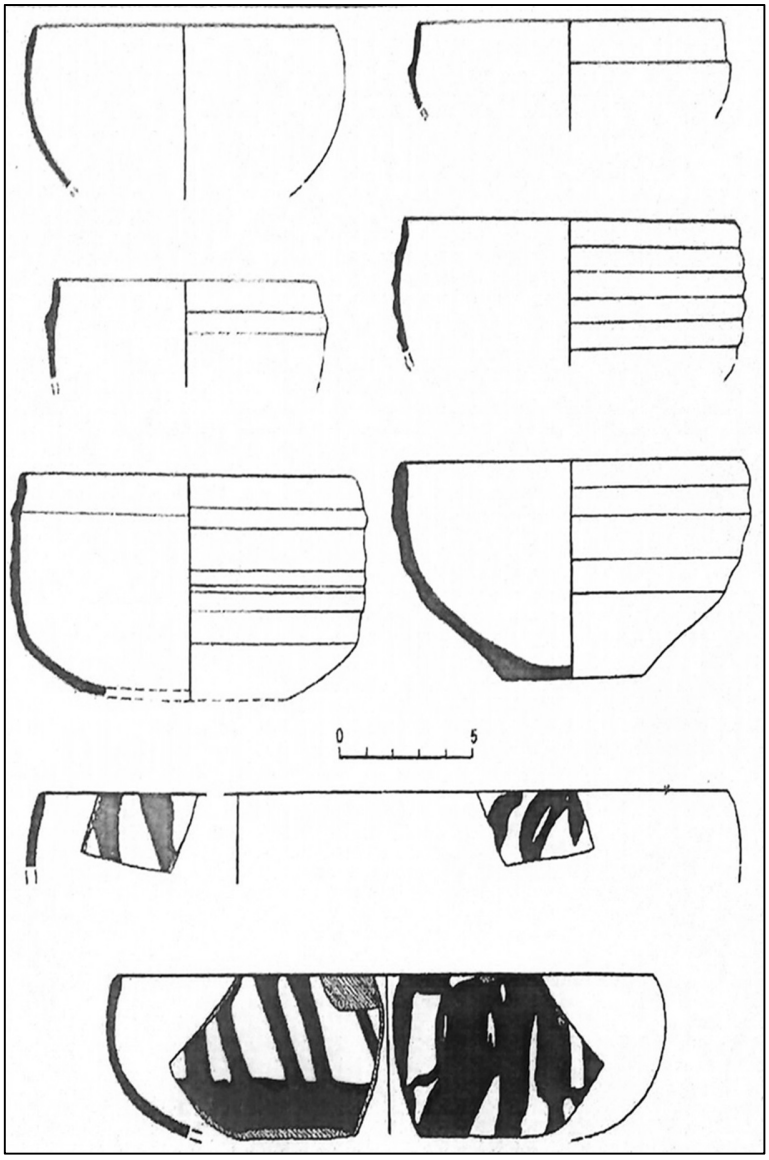

चित्र–8.7 महाजनपद कालीन मृदभाण्डों के प्रकार

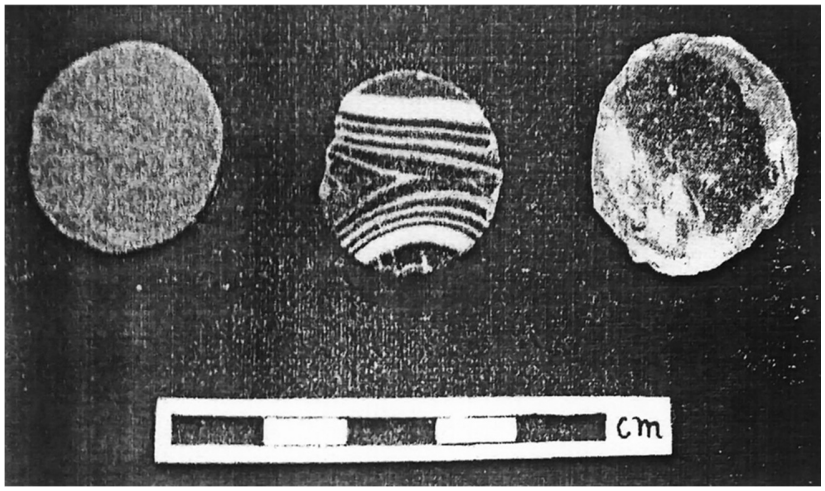

चित्र–8.8 पाषण निर्मित जनपद कालीन बॉट (ओरिया घाट, रामनगर)

8.5.6 धातु के उपकरण

रामनगर के महाजनपद कालीन स्तर से बहुत सारे धातु के उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिसमें लौह उपकरणों की अधिकता है। प्राप्त उपकरणों में वाणाग्र, गंडासा, कुल्हाड़ी, छेनी, तलवार, हल की फाल, काटी इत्यादि उल्लेखनीय प्रकार है। तांबे का प्रयोग भी इस काल में दिखाई पड़ता है। मध्य गांगेय क्षेत्र में सामान्य तौर पर तथा काशी क्षेत्र में मुख्य तौर पर इस धातु का प्रयोग सीमित था। दैनिक उपयोग के केवल विशिष्ट प्रकार ही इससे निर्मित किए जाते थे। छोटे आकार की वस्तुएँ जैसे दांत खोदने की पिन, अंजनशलाका, मत्स्य काटे, तथा कभी–कभी पात्रों का गढन भी तांबे से किया जाता था (चित्र–8.9)। उदाहरण के लिए ओरिया घाट से प्राप्त ताम्र कटोरा विशेष उल्लेखनीय हैं (चित्र–)। तांबे का सीमित उपयोग इस धातु के प्राप्ति स्रोत से संबंधित है। गागेय क्षेत्र ताम्र खनिज विहीन है तथा इसकी खदाने भी यहाँ दूर स्थित है। पुराविदों का ये मानना है कि उत्तर भारत की प्रारंभिक संस्कृतियों का ताँबा राजस्थान स्थित खेतड़ी की खदानों से प्राप्त किया जाता था। यह निर्विवाद है कि तांबा काशी राज्य में उत्तर–पश्चिम से आयातित था तथा व्यापार इसका मुख्य आधार था। तांबे का आदान–प्रदान धातु पिंडों के रूप में किया जाता और यहाँ पर उपयोगी वस्तुएं गढ़ी जाती थी या बाहर से ही मंगाई जाती थी इसका निर्धारण अस्पष्ट है।

चित्र–8.9 महाजनपद कालीन धातु के उपकरण (ओरिया घाट, रामनगर)

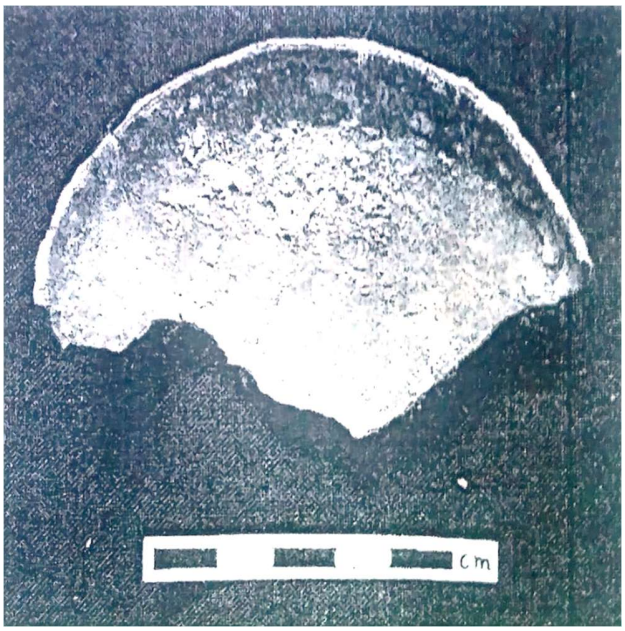

चित्र–8.10 ताम्र कटोरा (ओरिया घाट, रामनगर)

8.5.7 शिल्प व उद्योग

पुरातात्त्विक अवशेषों के अलावा रामनगर से कुछ निजी शिल्प व उद्योग उत्पाद भी व्यापार विनिमय के साधन थे, जिसके साक्ष्य यहाँ से प्राप्त हुए हैं तथा साहित्यिक उद्धरणों में भी इनका विवरण प्राप्त होता है। ओरिया घाट से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्डों की कार्यशाला (चित्र–8.12) प्रकाश में आयी है। आवॉ के राख की ढेरियाँ, कच्चा कुंभकारी, धरातल पर बालू, राख व जली मिट्टी की वृत्ताकार संरचनाएँ, इनके साथ कई प्रकार के बर्तन के टुकड़ों का संग्रह, जिनमें बिना पके तथा अधपके बर्तन के टुकड़े अच्छी तरह पकाए पात्र के टुकड़ों के साथ गढन धरातल पर बिछे थे।

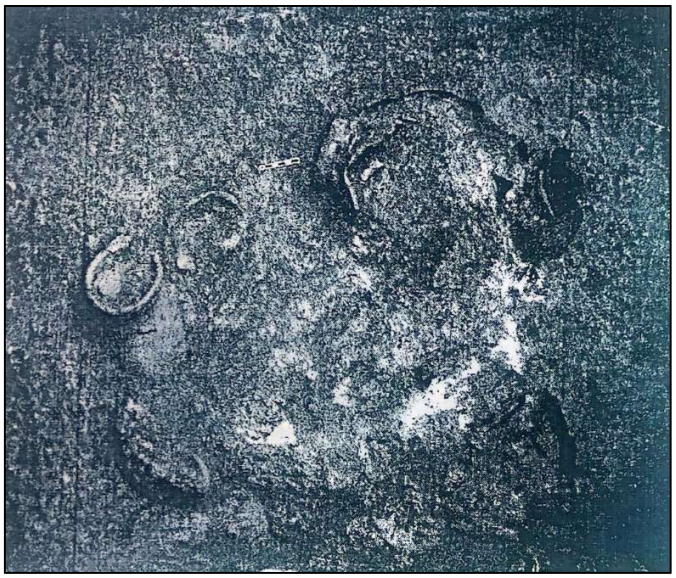

चित्र 8.11– उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्डों की कार्यशाला

प्रत्येक आवां को प्रायः एक या दों प्रयोग के बाद त्याग दिया जाता है। ओरिया घाट के उत्खनित अवशेष आज भी कुंभकारी कार्यशालाओं के स्वरूप समान थे, परन्तु प्राचीन राख की ढेर का रंग आज की राख से सर्वथा भिन्न था। राख के सामान्य स्लेटी रंग की अपेक्षा यह बिल्कुल सफेद था। कुछ अंश में स्लेटी व छोटे काले जलावन के भाग भी प्राचीन आवे के मलबे में मिश्रित थे। वैज्ञानिक अनुभव में इस प्रकार की राख जलावन में कुछ विशिष्ट रासायनिक तत्वों के अस्तित्व के कारण ही निर्मित होती है। सिलिकान जैसे तत्वों का प्रयोग संभवतः पात्रों के तपाने की प्रक्रिया में प्रयुक्त होता था। ओरिया घाट में इस मृदा पात्र के उत्पादन के बावजूद इस पात्र का प्रयोग यहाँ पर बहुत कम मात्रा में होता था क्योंकि उत्खनन में यहाँ के आवासीय क्षेत्र से इसके साक्ष्य बहुत कम मात्रा में प्राप्त हुए हैं, जबकी कार्यशाला क्षेत्र में इसके अवशेष ज्यादा प्राप्त हुए हैं अर्थात इससे प्रतीत होता है कि मृदा पात्रों को यहाँ पर बनाया जाता था और फिर इसका व्यापार कर दिया जाता रहा हो क्योंकि जातक कथाओं में मृदापात्र व्यापारियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

8.5.8 विशिष्ट अवशेष

कुछ विशिष्ट अवशेषों में रामनगर के उत्खनन से ईटों के एक चबूतरे पर देवी प्रतिमा के भग्नावशेष स्थित प्राप्त हुए हैं। प्रतिमा की आकृति बड़ी व निर्माण मध्य गंगा घाटी में प्रचलित कुषाणकालीन विशिष्ट मृदा मुर्तन विधा से की गयी थी। धड़ का भाग नख द्वारा नली की आकृति में गड्ढा खोदा गया था। शीर्ष को सांचे से गड़कर खोखले शरीर में बिठाया गया था। खैराडीह पुरास्थल से भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ कुषाणकालीन आवासीय जमावों से प्राप्त विभिन्न क्षेत्रों में पूजन स्थलों पर केंद्रित मिली हैं। इनके अध्ययन से न केवल लोक पूजन प्रथा के अस्तित्व को स्थापित किया जा सका है अपितु साँचो से गड्ढे देवशीर्ष का गंगा घाटी में वितरण व्यापारिक प्रक्रिया से अनुमानित है। मृदा मूर्तन में स्थानीय व विशिष्ट शिल्प गढन केंद्रों का आभास इस काल में स्पष्ट है। आज भी वाराणसी नगर में मृदा मुर्तन की दो अलग परंपराओं के रूप प्रचलित है। हस्तनिर्मित छोटी पशु व मानव आकृतियाँ, जिसे साधक स्वयं बनाकर अनुष्ठान संपन्न कराते हैं । वाराणसी के आसपास के क्षेत्रों में आज भी रुद्राभिषेक का संपादन मिट्टी का शिवलिंग व अन्य दैवीय प्रतीकों को बनाकर किया जाता है। दूसरा सार्वजनिक पूजन की प्रतिमाओं को कार्यशालाओं में शिल्पी तैयार करते हैं या फिर यह दूसरे क्षेत्रों से आयात कर ली जाती है।

चित्र –8.11 अनुष्ठानिक सन्दर्भ

8.5.9 आवासीय सन्दर्भ

रामनगर के ओरिया घाट के उत्खनन से यहाँ के आवासीय संरचना पर प्रकाश पड़ता है। आवास बनाने के लिए प्रायः बांस–बल्ली, घास–फूस और मिट्टी के प्रयोग के साथ–साथ मिट्टी की बनी कच्ची और पक्की ईंटों का प्रयोग भी दिखता है। मिट्टी की बनी खपरैल का प्रयोग यहाँ पर छाजन के लिए किया जाता था। इसके अलावा मिट्टी को कूटकर बने आवासीय धरातल व चबूतरों के भग्नावशेष भी उत्खनन से प्राप्त हुए हैं, जिनका स्वरूप स्पष्ट नहीं है (चित्र–8.11)। जनपद काल में काशी में रामनगर के अतिरिक्त और भी बस्तियों का उदय हुआ। इसमें अकथा, कोटवा, अगियाबीर इत्यादि हैं। आवास प्रायः आयताकार होते थे कुछ वर्गाकार मकानों के साक्ष्य काशी क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। गोलाकार और आयातकार झोपड़ीनुमा आवास बनाने का संदर्भ भी प्राप्त हुआ है, वहीं काशी राजघाट से सुरक्षा प्राचीर युक्त भवन बनाने का साक्ष्य प्राप्त हुआ है, जिसमें चौड़ी–चौड़ी दीवारों को पकी हुई ईंटों से बनाया गया था।

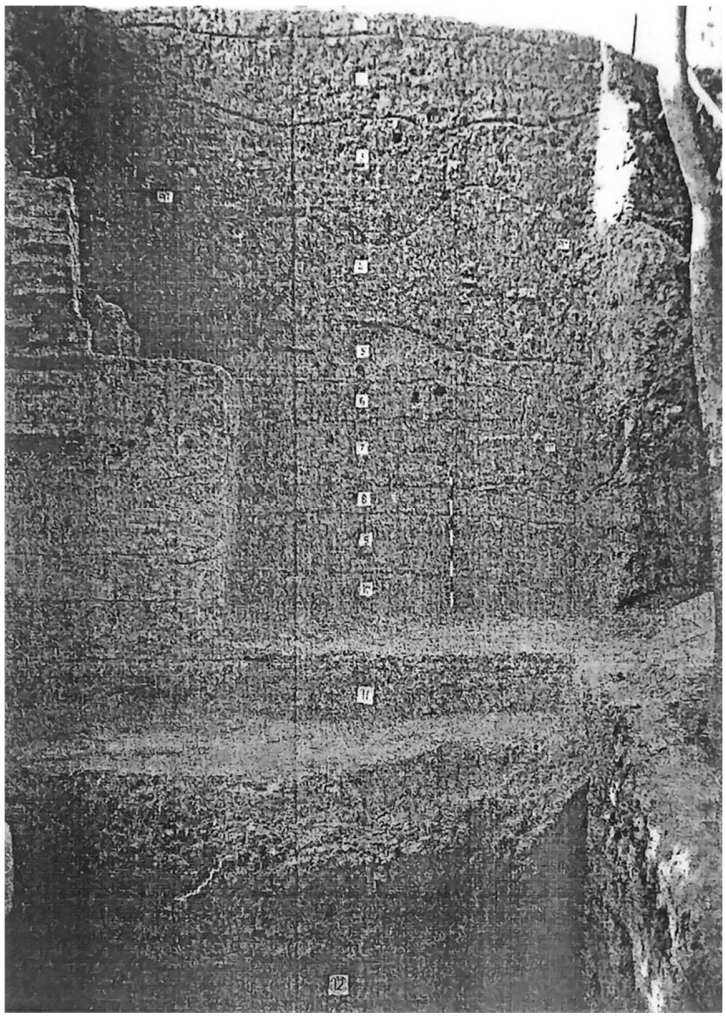

चित्र – महाजनपद कालीन बंधा

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनपद कालीन रामनगर निगम का आदि स्वरूप रहा होगा क्योकि साहित्य में निगम को हॉट या मंडी के रूप में उद्धृत किया गया है, जो व्यापारिक मार्ग पर स्थित होते थे तथा गाँव व नगर के मध्य श्रेणी माने जाते थे। ओरिया घाट स्थित जनपद कालीन बस्ती दो भौगोलिक विशेषताओं द्वारा लाभान्वित थी, एक जलमार्ग तथा स्थल मार्ग से इसका दूर क्षेत्रों से जुड़ाव था। दूसरा काशी राजघाट से कुछ ही दूरी पर स्थित होना भी इसके महत्त्व को बढ़ाता है। इसी कारण रामनगर शिल्प तथा उद्योगों से

संपन्न व्यापारिक केंद्र विकसित हो पाया। अकथा को भी रामनगर के समान निगम श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि यह उत्तर भारत को जोड़ने वाले कई स्थल मार्गों से जुड़ा था। यह दोनों बस्तियाँ परवर्ती काल में भी पड़ाव स्थल व मंडी स्वरूप बनी रही। प्राचीन काल से लेकर आज तक रामनगर, काशी की समृद्धि के साथ–साथ उद्योग–धंधों और व्यापार–वाणिज्य का महत्वपूर्ण केंद्र था। आज के समय में भी रामनगर को औद्योगिक क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, रामनगर, कटारिया से लेकर मुगलसराय के बीच बहुत से औद्योगिक कार्यशालाएं लगाई गई है, जो आज भी अर्थव्यवस्था एवं रोजगार का महत्वपूर्ण आधार बनी हुई है।

सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ये तीनों पुरास्थल सारनाथ राजघाट और राम नगर उत्तर प्रदेश की मैदानी क्षेत्र कि वाराणसी जिले में स्थित नगरी जीवन के साक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं। सारनाथ बौद्ध धर्म के स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। महात्मा बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम उपदेश के लिए सारनाथ को ही चुना था क्योंकि यह स्थल प्राचीन काल में अरण्य क्षेत्र में स्थित था और इस स्थल पर ऋषिमुनियों का जमावड़ा लगा रहता था इसलिए सारनाथ को ऋषिपत्तनम के नाम से भी जाना जाता है। सारनाथ का महत्त्व मौर्य काल कुषाण काल शुंग काल और गुप्तकाल में ज्यादा बढ़ा क्योंकि गुप्त–काल तक आते–आते सारनाथ एक कला–केंद्र के रूप में विकसित हो चुका था और यहाँ से बहुत सी मूर्तियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। राजघाट पुरास्थल नगरीय जीवन इस संदर्भ को प्रस्तुत करता है यहाँ पर खुदाई के बाद पक्की ईंटों से निर्मित चौड़ी चौड़ी दीवारों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। राजघाट से प्राप्त साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन काल में काशी एक नगरीय स्थल था। गंगा के दूसरी ओर स्थित राम नगर एक व्यापारिक केंद्र के रूप में रहा होगा जो इस शहर को आधार प्रदान करता था क्योंकि यहाँ से मिट्टी के बर्तन के बनवाने के ऐसे उद्योगों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। ऐसा माना जाता है कि इनका व्यापार किया जाता था, इसलिए राम नगर को एक निगम स्थल के रूप में भी पहचाना जाता है। अंततः यह कह सकते हैं कि ये तीनों पुरास्थल काशी की ऐतिहासिकता एवं प्राचीनता को प्रस्तुत करते हैं साथ ही उत्तर प्रदेश के अर्थव्यवस्था एवं पर्यटन के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में भी प्रासंगिक है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड

एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*

13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।

14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।

15. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0ः वाराणसी

16. जायसवाल, वी0 एवं एम0कुमार .2006. ''एक्सक्वेशन्स एट रामनगर : डिसकवरी ऑफ द सर्पोटिंग सेटलमेन्ट ऑफ एशियंट वाराणसी''. *पुरातत्त्व* नं0 36।

17. जायसवाल, विदुला, आदि काशी से वाराणसी

18. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सक्वेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32ः* नई दिल्ली।

19. नारायण, ए0 के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सक्वेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

20. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

21. सिंह, पी0 1994. *एक्सक्वेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

22. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन, कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

23. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।

24. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998, लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

25. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ संख्या 43–44

बोध प्रश्न

- सारनाथ का बौद्ध धर्म के विकास में योगदान पर प्रकाश डालिये।
- सारनाथ की कला और स्थापत्य पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।
- राजघाट पुरास्थल के सांस्कृतिक अनुक्रम प्रकाश डालिये।
- रामनगर पुरास्थल व्यापार और वाणिज्य के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, स्पष्ट कीजिए।

इकाई–9 : राजा नल का टीला, मल्हार, अगियाबीर

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 राजा नल का टीला

9.3.1 प्रथम सांस्कृतिक काल

9.3.2 द्वितीय सांस्कृतिक काल

9.4 मल्हार

9.4.2 प्रथम काल – प्राक् लौह युग या प्रारंभिक खेती का चरण

9.4.2 द्वितीय काल – प्रारंभिक लौह चरण (1800–800 ई0पू0)

9.4.3 तिथि निर्धारण

9.5 अगियाबीर

9.6 सारांश

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.8 बोध प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में राजा नल का टीला मल्हार और अगियाबीर पुरास्थल का उल्लेख किया गया है इसमें प्रथम दो पुरास्थल राजानल का टीला और मल्हार पहाड़ी क्षेत्र में और अगियाबीर गंगा के किनारे स्थित पूजा स्थल है इन तीनों पुरास्थलों का अपना अलग अलग महत्त्व है। राजानल का टीला सोनभद्र जिले में स्थित है इसे लौह युगीन संस्कृति से संबंधित पुरास्थलों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है यहाँ से लगभग 1700 ई0पू0 के आसपास लोहे की वस्तुओं का प्रयोग किए जाने का साक्ष्य है, पुरास्थल उत्तर प्रदेश के चंदौली जिले की चकिया तहसील में स्थित है। इस पुरास्थल से लोहे की वस्तुएं प्रयोग करने वाले प्रारंभिक कृषक समाज के साक्ष्य प्राप्त हुए है। उत्तर प्रदेश में स्थित यह पुरास्थल लोहे के प्राचीनतम प्रयोग के साक्ष्य को प्रस्तुत करता है लगभग 1800 ई0पू0 के आसपास इस पुरास्थल पर लोहे के प्रयोग करने के साथ प्राप्त हुए हैं। अगियाबीर पुरास्थल गंगा नदी के बाएं तट पर वाराणसी से प्रयागराज जाने वाले प्राचीन मार्ग पर स्थित है। इस पुरास्थल से नवपाषाण कालीन संस्कृति ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से ऐतिहासिक काल तक के साक्ष्य की प्राप्ति होती है, जो गंगा मैदान के इतिहास को प्रागैतिहासिक काल के अंतिम चरण से लेकर ऐतिहासिक काल तक क्रमवार स्थापित करता है। यह पुरास्थल मृदभांड परंपराओं में सर्वोपरि उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति काफी महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इन तीनों पुरास्थलों का क्रमवार विवेचन निम्नवत हैं–

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- राजा नल के टीला के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे

- मल्हार के इतिहास को जान सकेंगे।
- अगियाबीर के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- अगियाबीर पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

9.3 राजा नल का टीला

यह स्थल सोनभद्र जिले में रॉबर्ट्सगंज से लगभग 29 किमी पूर्व में पन्नुगंज के पास स्थित है, इस स्थल पर उत्खनन कार्य दो सत्रों (1996, 1997 ईस्वी) में किया गया, उत्खनन के परिणामस्वरूप नीचे से उपर की ओर चार सांस्कृतिक अनुक्रम प्रकाश में आये है, जिसका विवरण निम्नवत् है–

प्रथम काल – प्राक् लौह युग (लगभग 1700–1300 ई0पू0)

द्वितीय काल – प्रारंभिक लौह,

तृतीय काल – एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू संस्कृति

चतुर्थ काल – गुप्त और उत्तर–गुप्त

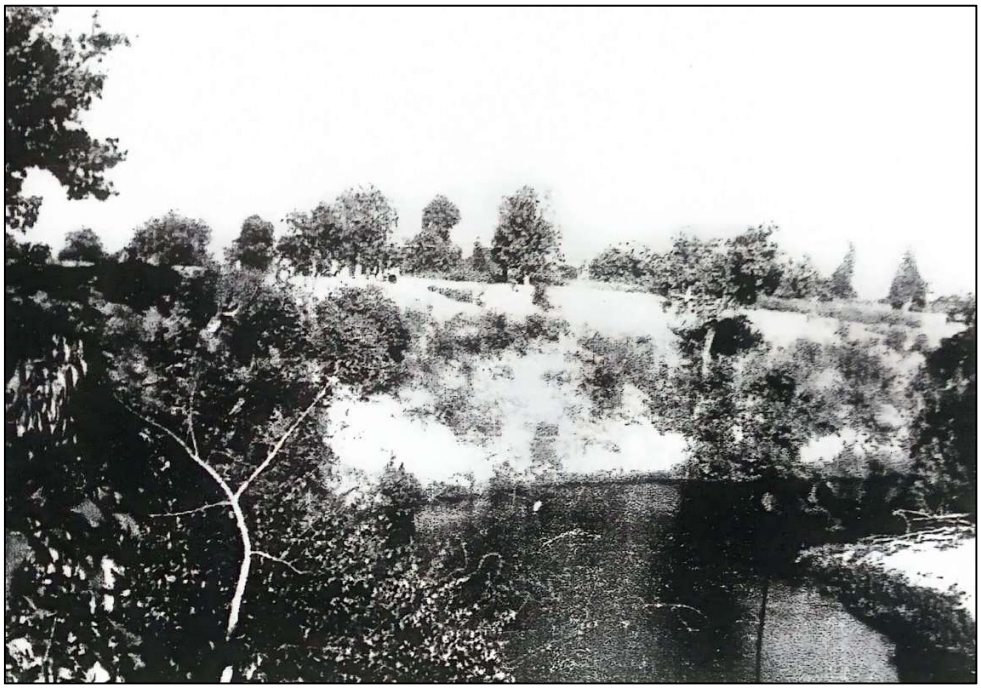

चित्र–9.2 राजा नल का टीलाका दृश्य

राजा नल का टीला कर्मनाशा नदी के तट पर स्थित है। यह प्राचीन स्थल तीन तरफ से नदी से घिरा है, जबकि पश्चिमी भाग एक प्राचीन नाले द्वारा अवरुद्ध है। प्राचीन बस्ती लगभग 50 एकड़ के क्षेत्र में फैली हुई है और ज्यादातर खेती के लिए प्रयोग किया जाता है। इस स्थल की खोज वर्ष 1994 ईस्वी में की गई थी और खुदाई का पहला चरण मार्च से मई 1996 ईस्वी तक चलाया गया था। दूसरे सत्र की खुदाई वर्ष 1996–97 ईस्वी में की गई थी (तिवारी और श्रीवास्तव, 1996–97:77–96, तिवारी और श्रीवास्तव, 1997–98:

99–106)।

9.3.1 प्रथम सांस्कृतिक काल

प्रथम काल का जमाव लगभग एक मीटर का है और यह किसी भी धातु के अवशेष से रहित पाया जाता है। पहले सत्र की खुदाई में मिट्टी से तैयार कुछ फर्श, गड्ढे के चूल्हे और मवेशी–और–मिट्टी की संरचनाओं के अवशेष पाए गए थे। दूसरे सत्र में अंडाकार या गोलाकार योजना बनाने वाले कुछ पोस्ट–होल के साक्ष्य प्राप्त हुए है (तिवारी और श्रीवास्तव, 1997–98:101)। फर्श मिट्टी से तैयार किए गए थे, जिसमें छोटे बर्तन के टुकड़े मिले थे। फर्श पर कुछ हड्डी के उपकरण – मुख्य रूप से तीर के सिरे – पाए गए (चित्र–9.1, 9.2)। टेराकोटा और पत्थर के मोती, चिप्स और ब्लेडलेट, पत्थर के मूसल और गेंदें। इस अवधि के अन्य उल्लेखनीय अवशेष हैं।

दोनों मौसमों में काम के उपरान्त बहुत से पुरावनस्पति अवशेष एकत्र किए गए थे। के.एस. सारस्वत द्वारा इन नमूनों की प्रारंभिक जांच से पता चला कि प्रथम काल के शुरुआती निवासियों को कृषि का पर्याप्त अनुभव था और इनके द्वारा चावल, जौ, मसूर, मटर, रागी बाजरा और पूंछ वाले बाजरा के अलावा खेसारी और मूंग की खेती की जाती थी। संग्रह में रागी और बाजरा की उपस्थिति से संकेत मिलता है कि राजा नल का टीला के निवासियों ने अपने पारिस्थितिक परिवेश पर उचित ध्यान दिया था। बाजरा को कम पानी की आवश्यकता होती है और यह अन्य अनाजों की अपेक्षा बहुत खराब मिट्टी पर भी पनप सकता है।

चित्र– 9.2 अलंकृत पात्र

कर्मनाशा नदी के जलमग्न क्षेत्र में दोहरी फसल, यानी बरसात के मौसम में चावल और सर्दियों में मसूर, मटर आदि की खेती की जाती थी।

यहाँ से प्राप्त कार्बन–14 तिथि निम्नवत् है–

प्रथम काल	पी आर एल 2046– 3200±90 बी पी पी आर एल 2045–3360±90 बी पी	1500–1490, 1448–1256, 1240–1212, 1622–1613, 1742–1378, 1613–1348

9.3.2 द्वितीय सांस्कृतिक काल

इस स्थल पर द्वितीय काल का सांस्कृतिक जमाव 1.50 से 2 मीटर (1300–700 ई.पू.) का प्राप्त किया

गया है। इस अवधि में निचले से ऊपरी स्तरों तक काफी मात्रा में लोहे की उपस्थिति देखी गई। लौह कलाकृतियों में चाकू, तीर के सिरे, छेनी, भाले के सिरे इत्यादि औजारों के अलावा आयरन स्लैग भी प्राप्त हुआ हैं। सिरेमिक उद्योग लगभग पूर्ववर्ती काल के समान ही हैं। गेरू और काले रंग की पेंटिंग वाले काले और लाल बर्तन इस काल के विशिष्ट अवशेष हैं। संरचनात्मक अवशेषों में प्राथमिक और द्वितीयक पोस्ट–होल शामिल हैं, जो पहले की अवधि के समान ही प्राप्त हुए हैं। मिट्टी से तैयार चार क्रमिक फर्श के साक्ष्य भी मिले है। कोठिलों की उपस्थिति अनाज के भंडारण की ओर संकेत करती है। बड़ी संख्या में जली हुई हड्डियाँ, जिनमें से कुछ पर कटे हुए निशान हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि जानवरों का माँस आहार का एक बड़ा हिस्सा था और माँस को पकाकर खाया जाता था।

9.4 मल्हार

मल्हार पुरास्थल उत्तर प्रदेश की लौह संस्कृति का प्रसिद्ध स्थल है, जो हाल के वर्षों में उत्खनित ताम्रपाषाण काल के सबसे महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है। यह पुरास्थल चंदौली जिले में चकिया से लगभग 10 किमी की दूरी पर कर्मनाशा के बाएं तट पर स्थित है (चित्र – 9.3)। मल्हार पुरास्थल के अधिकांश भाग में खेती की जा रही है लेकिन एक छोटा सा हिस्सा काफी हद तक संरक्षित है (तिवारी, 1997–98: 59, तिवारी एवं अन्य., 2004: 1–112)। 1997–98 ईस्वी के उत्खनन के दौरान लाल मृदभाण्ड, काले लेपित मृदभाण्ड, काले और लाल मृदभाण्ड और अन्य सम्बद्ध मिट्टी के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए थे। इस स्थल पर जनवरी–मार्च 1999 ईस्वी के दौरान उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरातात्त्विक खुदाई का कार्य किया गया था। राज्य पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा उत्खनन के उपरान्त 1.34 मीटर से 1.50 मीटर मोटाई का अधिकतम सांस्कृतिक जमाव प्राप्त हुआ है, जिसे निम्नलिखित चार सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया था (तिवारी एवं अन्य., 2004:23)–

प्रथम काल – प्राक् लौह युग या प्रारंभिक खेती का चरण (2200–1800 ई0पू0)

द्वितीय काल – प्रारंभिक लौह चरण (1800–800 ई0पू0)

तृतीय काल – एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू संस्कृति (700–300 ई0पू0)

चतुर्थ काल – प्रारंभिक ऐतिहासिक चरण (200ई0पू0 – 300 ईस्वी)

चित्र –9.3 मल्हार पुरास्थल के उत्खनन का दृश्य

9.4.1 प्रथम काल – प्राक् लौह युग या प्रारंभिक खेती का चरण

प्रारंभिक अवधि ताम्रपाषाण काल की है और इस जमाव की अधिकतम मोटाई लगभग 50 सेमी है।

प्रमुख मृदभाण्डिय उद्योगों में लाल पात्र (सादे और डोरीदार), काले और लाल पात्र (सादे और डोरीदार) और काले पात्र हैं। यहाँ काले और लाल पात्र मुख्य मृदभाण्डिय उद्योग हैं, जो 42–60 प्रतिशत तक प्राप्त हुए हैं (तिवारी एवं अन्य., 1999–2000: 70, 2004: 23)। पुरातात्त्विक वनस्पति नमूनों की जांच से पता चलता है कि मल्हार में चावल मुख्य अनाज था, लेकिन जौ, मूंग, मटर, बौना गेहूँ, बड़ा गेहूँ, चार प्रकार के बाजरा, मसूर और खेसारी जैसे अन्य अनाज भी उगाए जाते थे (सारस्वत, 2004:137–72)। हड्डियों के अवशेष संकेत देते हैं कि जानवरों का माँस भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता था, जो यहाँ बसने वाले मानव के लिए प्रोटीन युक्त आहार प्रदान करने में काफी भूमिका निभाई।

तिल (सेसमे इंडिकम) का एक बीज अत्यधिक भंगुर अवस्था में प्राप्त हुआ है, जो प्राप्ति के दौरान टूट गया। ईख के निशानों के साथ जली हुई मिट्टी की गांठों की उपस्थिति से पता चलता है कि शुरुआती निवासी झोपड़ियों में रहते थे, जिनमें ईख से बने परदे होते थे और मिट्टी से प्लास्टर किया जाता था। खुदाई में पोस्ट–होल पर फर्श जैसे कोई अन्य संरचनात्मक अवशेष नहीं पाए जा सके।

मल्हार से प्राप्त फसलों का विवरण

क्र0 सं0	वनस्पतियों का नाम	प्रथम काल	द्वितीय काल
1.	चावल (ओरिजा सटाइवा)	+	+
2.	बार्ली (हॉडियम वुलगारे)	+	+
3.	बौना गेहूँ (ट्रिटिकम स्फेरोकोकम)	+	+
4.	ब्रेड गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम)	+	+
5.	इटालियन मिलेट (सेटारिया इटालिका)	+	–
6.	जोवार मिलेट (सोरगुम वाइकोलार)	–	+
7.	रागी मिलेट (इलुसाइन कोराकाना)	–	+
8.	कोडोन मिलेट (पसपलुम स्कारबीकुलेटम)	–	+
9.	फिल्ड पी (पीसुम अरवेन्से)	+	+
10.	लेन्थिल (लेन्स कुलानारिज)	+	+
11.	ग्रास पी (लैथिरूस स्टावइस)	+	+
12.	ग्रीन ग्राम (विगना रैडियटा)	+	+
13.	ह्वार्स ग्राम (मैकरोथिलेमा यूनिफलोरम)	–	+

प्रारंभिक जमावों से छोटी खोजों की संख्या सीमित है। सरल और दोहरे विकसित तीर के सिरे और बिंदु हड्डी की वस्तुओं से मिलकर बने हैं। कुछ ब्लेडलेट के आकार की वस्तुएं पत्थर की वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं (तिवारी एवं अन्य, 1999–2000: 76)। टेराकोटा की वस्तुओं में मुख्य रूप से मोतियों के आकार फूलदान के नमूने शामिल हैं। उत्खनन की गई खाइयों में से एक में पाए गए एक बड़े गड्ढे को मिट्टी के डिब्बे के रूप में व्याख्या किया गया है। इसकी खुदाई नई मिट्टी में की गई थी। इसी तरह के डिब्बे इमलीडीह खुर्द, चेचर–कुतुबपुर और लहुरादेवा में पाए गए हैं (तिवारी, 2004: 24)।

9.4.2 द्वितीय काल – प्रारंभिक लौह चरण (1800–800 ई0पू0)

प्रथम काल और द्वितीय काल के जमावों के बीच कोई अंतराल नहीं है। द्वितीय काल का जमाव 60–80 सेमी का है। इस काल की विशिष्ट विशेषताएं लोहे की कलाकृतियाँ, लोहे का लावा, एक विशेष प्रकार

की अंडाकार संरचनाएँ (भट्ठियाँ), कृष्ण लेपित पात्र और महीन भूरे रंग के मृदभाण्ड की प्राप्ति हैं। अंडाकार संरचनाओं की लंबाई 0.60 मीटर से 2.56 मीटर तक है और उनकी अधिकतम और न्यूनतम चौड़ाई लगभग 70 और 46 सेमी है। अंडाकार संरचनाओं के भीतर पाई जाने वाली सामग्री में बर्तन के टुकड़े, टूटे हुए पत्थर, जली हुई मिट्टी की गांठें और लोहे के कुछ टुकड़े शामिल हैं। इसके अलावा, विभिन्न खाइयों में काफी संख्या में टेराकोटा पाइप (ट्यूयर) पाए गए। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर, अंडाकार संरचनाओं में राख के बारीक–बारीक टुकड़े की पाप्ति से माना जाता था कि इसमें जलने की गतिविधियाँ की जाती थीं, और संरचना की सफाई के बाद राख की मात्रा को नियमित रूप से बाहर निकाला जाता था (तिवारी एवं अन्य, 1999–2000: 78)। लोहसनवा के नजदीकी स्थल पर भी ऐसी ही भट्टियाँ पाई गईं (तिवारी एवं अन्य, 1999–2000: 78)। विभिन्न खाइयों से बड़ी संख्या में 71 लोहे की कलाकृतियाँ मिली हैं, जो बताती हैं कि द्वितीय काल की शुरुआत से ही लोहे की तकनीक का इस्तेमाल किया जा रहा था। लोहे का प्रचलन मल्हार में विकसित रूप में था। यह तर्क दिया गया है कि द्वितीय काल में कुछ नए लोग, जिन्हें लौह प्रौद्योगिकी का काफी अनुभव था, मल्हार में आकर बस गए। वे भारत के इस क्षेत्र में लौह–धातुकर्म परंपरा के वाहक थे, न कि इसके निर्माता। अप्रवासी निस्संदेह कहीं और स्थापित कुशल लौह–कारीगरों के किसी समुदाय से थे (तिवारी एवं अन्य, 1999–2000: 80)।

9.4.3 तिथि निर्धारण

मल्हार में प्रथम काल और द्वितीय काल के नमूनों के लिए चार रेडियोकार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं। उनके अन–कैलिब्रेटेड और कैलिब्रेटेड मान निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं–

मल्हार से प्राप्त कार्बन–14 तिथि

S. No.	Laboratory Number	Radiocarbon Ages in BP/BC on the Basis of Half Life		Cal. BC Stulver *et al.* One Sigma
		5568 ± 30 years	5730 ± 40 years	
1.	BS-1623, MLR II Trench No. XA 1, Layer No. (3) Depth 0.55 cm	3450 ± 90 BP 1500 ± 90 BC	3550 ± 90 BP 1600 ± 90 BC	1882 (1743) 1639 BC
2.	BS-1614, MLR II Trench No. A 1, Pit sealed by Layer No. (3) Depth 61-63 cm	6380 ± 110 BP 4430 ± 110 BC	6570 ± 110 BP 4620 ± 110 BC	5475 (5358, 5351, 5340, 5329, 5323) 5262 BC
3.	BS-1593, MLR II Trench No. A 1, Pit sealed by Layer No. (3) Depth 90-100 cm	3540 ± 90 BP 1590 ± 90 BC	3650 ± 90 BP 1700 ± 90 BC	2012 (1882, 1836, 1834) 1742 BC
4.	BS-1590, MLR II Trench No. XA 1, Layer No. (4) Depth 80 cm	3740 ± 90 BP 1790 ± 90 BC	3850 ± 80 BP 1900 ± 80 BC	2283 (2141) 1984 BC

9.5 अगियाबीर–(25°13′ 52′′ उत्तरी अक्षांश, 82° 38′ 41′′ पूर्वी देशान्तर)

अगियाबीर पुरास्थल गंगा नदी के बायें किनारे पर उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर और सन्तरविदास नगर की

सीमा रेखा पर वाराणसी से इलाहाबाद को जाने वाले मार्ग पर स्थित कटका रेलवे स्टेशन से दो किलोमीटर दक्षिण–पूर्ण दिशा में स्थित है। कटका वाराणसी से इलाहाबाद को जाने वाली जीटी रोड पर वाराणसी से 38 किलोमीटर पश्चिम की ओर अवस्थित है (मानचित्रः 9.1)। पुरास्थल का विस्तार लगभग एक किलोमीटर के क्षेत्रफल में तथा 40 एकड़ के क्षेत्र में है। पुरास्थल का कुछ भाग गंगा नदी द्वारा काट दिया गया है लेकिन टीले का मुख्य भाग (500 x 500) मीटर सुरक्षित है। इस पुरास्थल को सर्वप्रथम 1998 ई0 में पुरूषोत्तम सिंह एवं अशोक कुमार सिंह द्वारा खोजा गया (सिंह. 1999 : 117–119)। तत्पश्चात 1999 ई0 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुरूषोत्तम सिंह एवं अशोक कुमार सिंह द्वारा उत्खनन करवाया गया (सिंह एवं सिंह. 2000 : 141–149)।

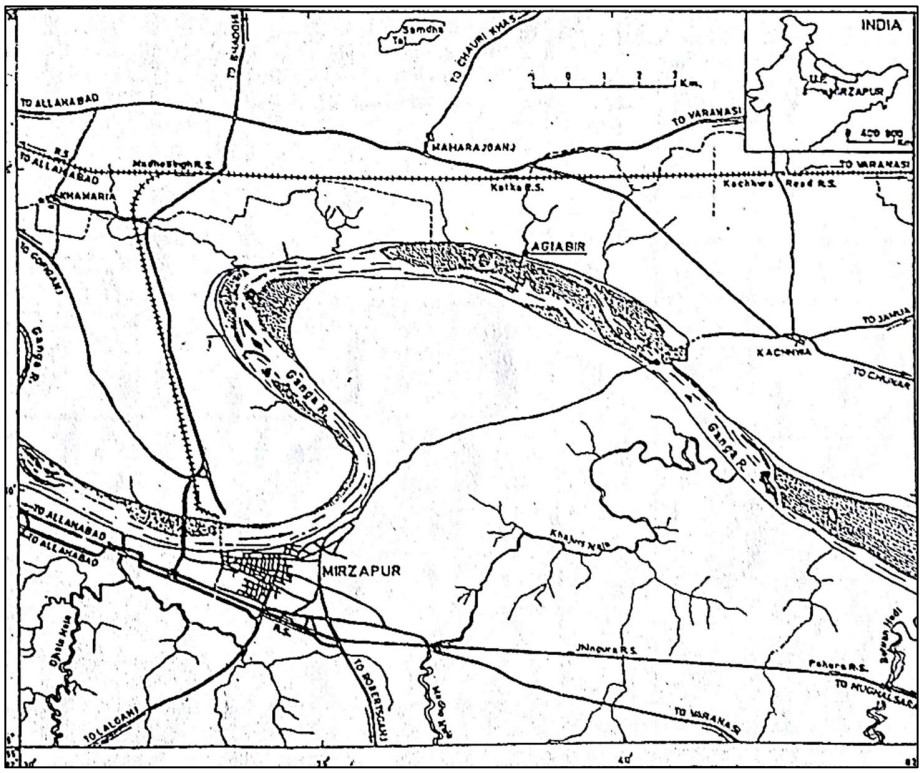

मानचित्र 9.1 : अगियाबीर पुरास्थल की मानचित्र में स्थिति

सर्वप्रथम उत्खनन का कार्य टीले के पाश्चिमी भाग में (ABR-1), फिर टीले पूर्वी मुख्य भाग में 1998–1999 ई0 में करवाया गया। उत्खनन के परिणाम स्वरूप पाँच सांस्कृतिक कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ (सिंह. 2004 : 23) जो निम्नवत् हैं–

प्रथम काल– नरहन संस्कृति

द्वितीय काल– प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

तृतीय काल– उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

चतुर्थ काल– शुंग–कुषाण कालीन संस्कृति

पंचम काल– गुप्त एवं परवर्ती गुप्त कालीन संस्कृति।

इस पुरास्थल पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग की ही विभा त्रिपाठी द्वारा भी 2005 ई0 में उत्खनन एवं सर्वेक्षण का कार्य करवाया गया और पुरास्थल को ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित बताया गया (त्रिपाठी एवं अन्य. 2005–06 : 1–38)। अभी वर्तमान समय

में भी विगत दो वर्षों से लगातार अशोक कुमार सिंह द्वारा उत्खनन कार्य करवाया जा रहा है और उनके द्वारा अभी हाल में ही आयोजित ''राष्ट्रीय पुरातात्विक अधिवेशन (6–8 जनवरी 2017 को) राँची में अगियाबीर से प्राप्त पुरासामग्रियों के आधार पर पुरास्थल को नवपाषाण कालीन होने की बात की गयी है। यद्यपि रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं है, अतः अभी तक यह कहा जा सकता हैं कि पुरास्थल का जो प्रथम काल है वह ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति का है। यहाँ के प्रथम काल का जमाव 60 सेमी0 का है। इस जमाव से ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित मृदभाण्ड, आवासीय साक्ष्य तथा अन्य अवशेष प्राप्त होते है।

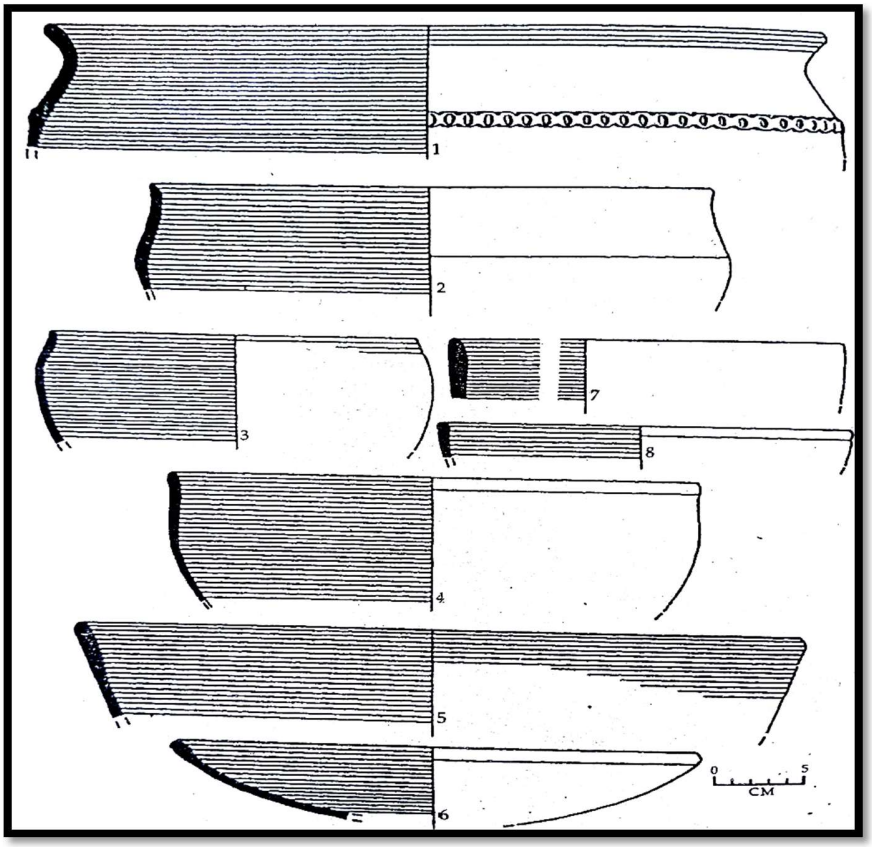

चित्र संख्या 9.4: कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा (सिंह एवं सिंह. 2004 : 25)

इस काल की जो मुख्य मृदभाण्ड परम्परा है वह कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड परम्परा (चित्र संख्याः 9.4) (अधिकाशतः मध्यम और खुरदुरी गढ़न वाले पात्र) और कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड परम्परा (बहुत कम मात्रा में लेकिन अच्छी गठन वाली) है। इन परम्पराओं से सम्बन्धित प्रमुख मृदभाण्ड प्रकार में कटोरे, भण्डारण करने वाले पात्र, होठ युक्त तसले और स्टैण्ड युक्त तश्तरियाँ है। कुछ कृष्ण–लोहित पात्र के टुकडे ऐसे भी मिले हैं जिनके बाहरी भाग पर रस्सी की छाप है तथा कुछ पर सफेद रंग से रेखीय चित्रण नरहन पुरास्थल से प्राप्त पात्रो की तरह किया गया है। कृष्ण मार्जित मृदभाण्डो में महत्वपूर्ण प्रकार गहरे कटोरे, लोटा के आकार का बर्तन और पेंदीयुक्त कटोरे हैं (चित्र संख्याः 9.5) लाल पात्रों में रसोई से सम्बन्धित पात्रों का अभाव है लेकिन कुछ छिद्रयुक्त कटोरे मिले हैं जिनके आधार भाग में कई छिद्र बने है। घड़े और भण्डारण से सम्बन्धित पात्रों के बाहरी भाग पर उभारयुक्त अलंकरण चिपका कर किया गया है (चित्र–9.6)। इनका प्रयोग अनाज या अन्य वस्तुओं के संग्रहण के लिये किया जाता था (सिंह. 2010 : 146–147)।

चित्र संख्या 9.5 साइलो (Silo)

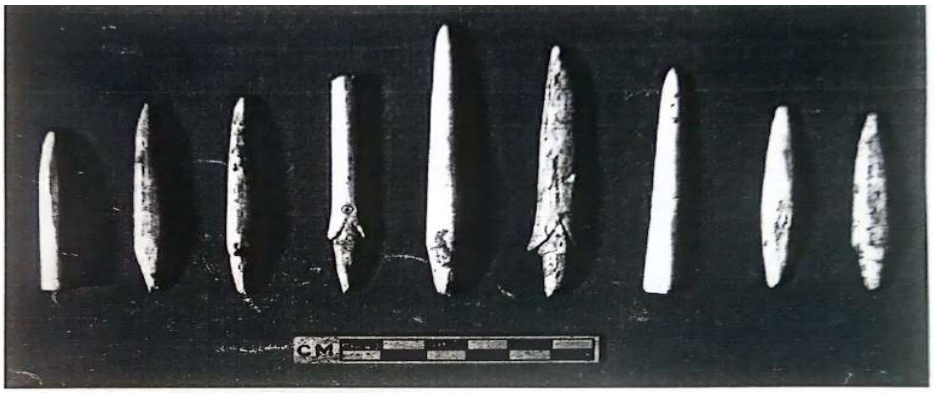

Pl. XIXA. Agiabir: Bone points, Period I

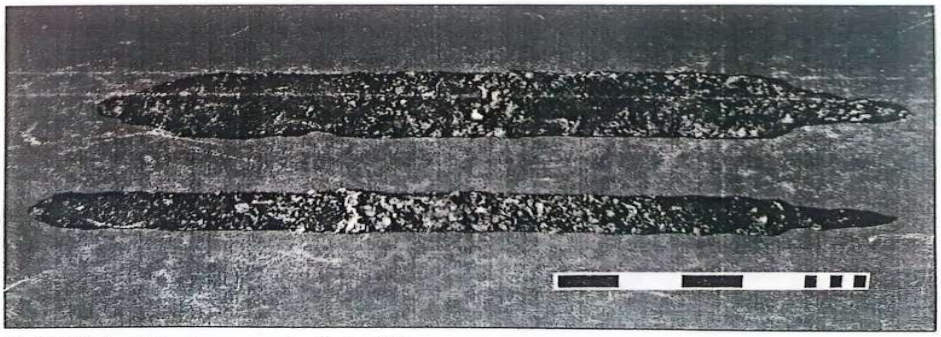

Pl. XIXB. Agiabir: Iron swords, Period III

चित्र–9.6 हड्डी का उपकरण एवं लौह तलवार

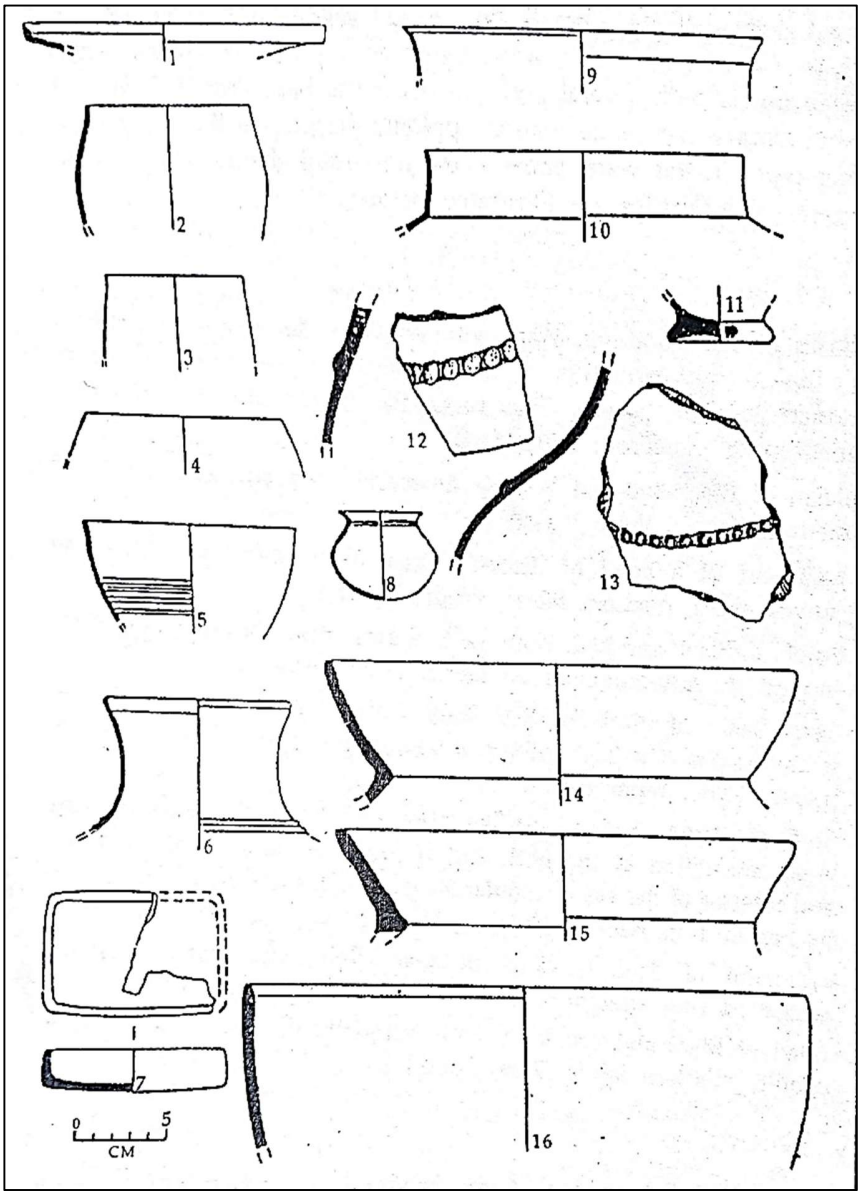

चित्र संख्या : 9.6 कृष्ण–मार्जित मृदभाण्ड परम्परा के परम्परा के पात्र

इस काल का मानव बॉस–बल्ली और मिट्टी की सहायता से बनी झोपडियों में निवास करता था। बॉस और बल्ली के निशान युक्त जली मिट्टी के टुकड़े, फर्श को पीट–2 कर बनाने के अवशेष, चूल्हे तथा स्तम्भ–गर्तो के प्रमाण इस पुरास्थल से प्राप्त हुए हैं। दो खन्तियों में साइलो– silo की भी प्राप्ति हुई है (चित्र संख्याः 9. 5) जिसका प्रयोग निश्चित रूप से अनाज का संग्रह करने के लिए किया जाता था (सिंह, 2010 : 147)। इस काल की एक महत्वपूर्ण खोज मनका निर्माण उद्योग है। यहाँ से 26 पाषाण के बने मनके (18 पूर्ण तथा 8 अर्धनिर्मित) पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़ों के साथ मिले हैं (चित्र संख्याः 9.6,9.7)।

इन मनकों में कुछ मनके अर्ध–बहुमुल्य पत्थरों से बने हैं जिनमें अगेट और फियाँस महत्वूपर्ण है। मनकों के साथ अर्द्धनिर्मित मनकों एवं पत्थर के चिप्स का मिलना इस बात कि ओर संकेत करता है कि इनका निर्माण स्थानीय स्तर पर हो रहा था (सिंह एवं सिंह. 2000 : 141–149)।

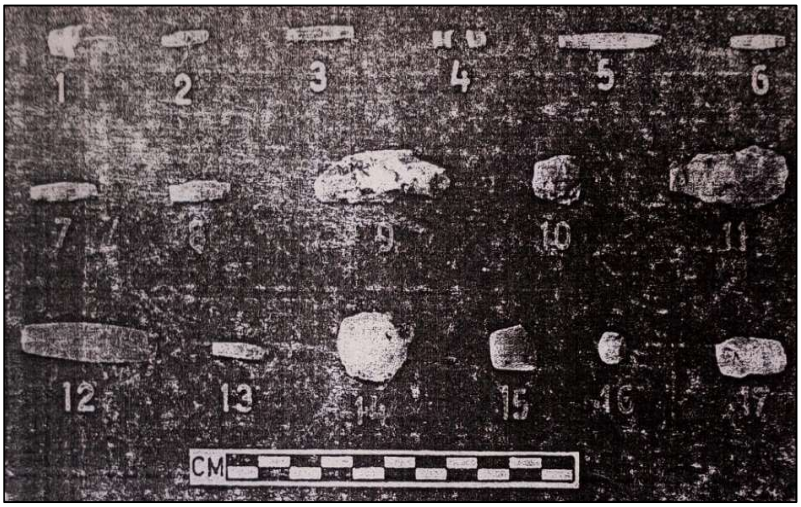

चित्र संख्या 9.7: मनके

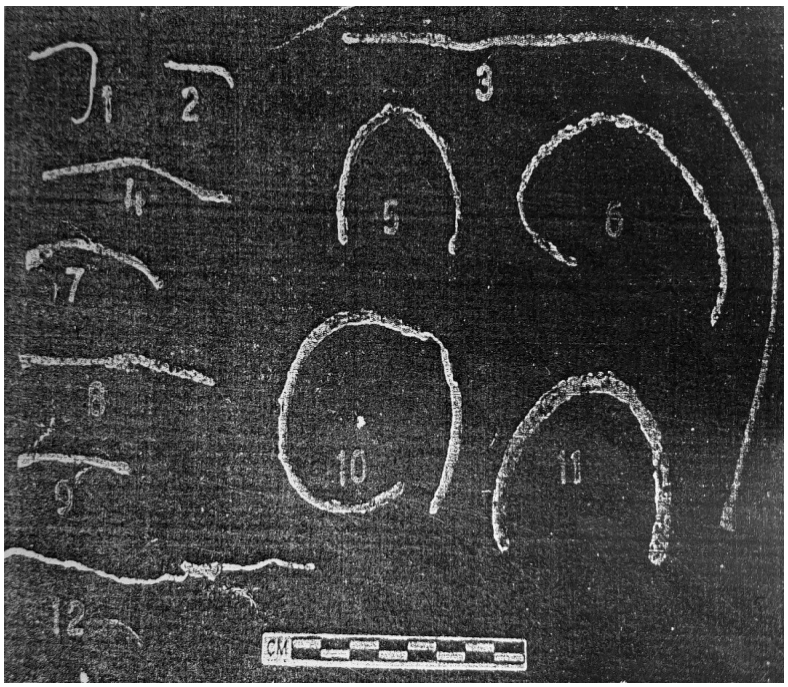

चित्र संख्या 9.8: मछली मारने की कटिया

कुछ अन्य उल्लेखनीय अवशेषों में लघु पाषण उपकरण हैं। इनमें ब्लेड, कोर, ब्लेडलेट्स और फ्लैक आदि हैं। इसके अतिरिक्त पाषाण के कुछ टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं जो मुख्यतः अगेट, चर्ट, जैस्पर, क्वार्टज ओर केल्सीडोनी के हैं (सिंह. 2000 : 57–63)। 17 टेराकोटा के बने मनके, 34 मिट्टी के बने खिलौने, नौ हड्डी के बने प्वांइट (चित्र संख्याः 9.9) तथा 63 पकी मिट्टी की पॉटरी डिस्क एवं चक्का भी (चित्र संख्याः 9.10) प्राप्त हुए हैं। यहाँ से लैम्प का एक बर्नर (पकी मिट्टी से बना हुआ) मिला है तथा ताँबा का बना हुआ एक मात्र अवशेष मछली मारने की कटियाँ प्राप्त हुई है (चित्र संख्याः 9.8) (सिंह एवं अन्य. 2004 : 34)।

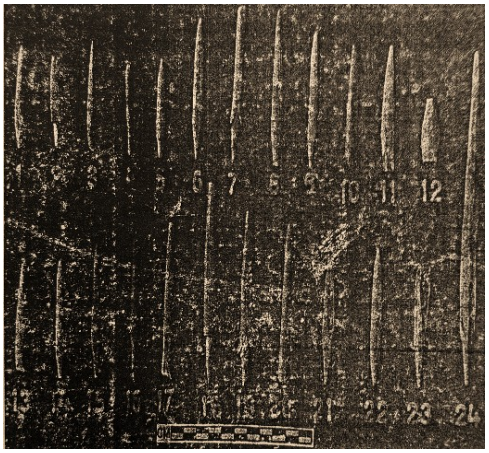

चित्र संख्या 9.9: हड्डी के उपकरण

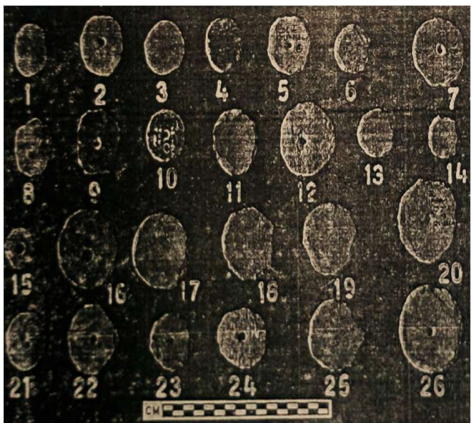

चित्र संख्या 9.10: पॉटरी डिस्क एवं मृण–चक्राभ

अगियाबीर पुरास्थल पर निवास करने वाला ताम्रपाषाणिक मानव केवल शाकाहारी ही नहीं था बल्कि माँस का भी अपने भोजन के रूप प्रयोग करता था क्योंकि उत्खनन से बहुत अधिक संख्या में पशुओं की हडिड्याँ प्राप्त हुई हैं जिन पर काटने और जलने का निशान है। यहाँ से प्राप्त चारकोल के अवशेषों को अध्ययन के लिए दिया गया है ताकि इस काल की वनस्पति और तिथि की निश्चित जानकारी प्राप्त हो सके।

इस काल की तिथि अन्य पुरास्थलों से प्राप्त अवशेषों से समानता के आधार पर 1300 से 900 ई0पू0 के बीच निर्धारित की गयी है।

सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कह सकते हैं कि ये पुरास्थल चंदौली, सोनभद्र और संत रविदास नगर के इतिहास को उत्तर प्रदेश और भारत में चमत्कृत करते हैं। क्योंकि लोहे के संदर्भ को अगर देखा जाए तो सबसे प्राचीनतम साक्ष्य नवीन खोजों के अनुसार 4000 ई0पू0 के आसपास का प्राप्त हुआ है हालांकि अभी पुष्टि नहीं हुई है लेकिन मल्हार और राजा नल के टीला से प्राप्त लोहे के साक्ष्य उत्तर प्रदेश में प्राचीनतम साक्ष्य के रूप मे हैं। इन पुरास्थलों के इतिहास का प्रारंभ ही लौह युग इन संस्कृतियों से प्रारंभ होता है अर्थात कह सकते हैं की यहाँ के लोगों का जीवन यापन लोहे की वस्तुओं इसके माध्यम से संपादित होता था। अगियाबीर से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यहाँ के लोग कृषि और पशुपालन पर निर्भर थे। खाद्यान्न में शाकाहार और माँसाहारी दोनों का प्रयोग करते थे। निवास करने के लिए प्रारंभिक चरण में घास फूस और मिट्टी से बनी हुई झोपड़ी का निर्माण करते थे। अंततः कहा जा सकता है कि इन तीनों पुरास्थलों का उत्तर प्रदेश के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है, जो इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति को उद्घाटित करते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।

6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*
13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
15. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0ः वाराणसी
16. जायसवाल, वी0 एवं एम0कुमार .2006. ''एक्सक्वेशन्स एट रामनगर : डिसकवरी ऑफ द सर्पोटिंग सेटलमेन्ट ऑफ एशियंट वाराणसी''. *पुरातत्त्व* नं0 36।
17. जायसवाल, विदुला, आदि काशी से वाराणसी
18. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32:* नई दिल्ली।
19. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
20. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
21. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
22. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।
23. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।
24. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।
25. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थं संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44

बोध प्रश्न

- राजा नल का टीला पुरास्थल से प्राप्त अवशेषों की विवेचना कीजिए।
- मल्हार पुरास्थल के धात्विक अवशेषों पर प्रकाश डालिए।
- अगियाबीर पुरास्थल के सांस्कृतिक अनुक्रम पर प्रकाश डालें।
- अगियावीर से प्राप्त अवशेषों के आधार पर मध्य गंगा मैदान की आवासीय व्यवस्था पर एक निबंध लिखें।

इकाई–10 : खैराडीह, प्रहलादपुर, पक्काकोट

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 खैराडीह,

10.4 प्रहलादपुर

10.4.1 प्रथम उपकाल 'अ' या प्रारम्भिक चरण

10.4.2 प्रथम उपकाल 'ब' (मध्य चरण)

10.4.3 प्रथम उपकाल 'स' (अन्तिम चरण)

10.5 पक्काकोट

10.5.1 सांस्कृतिक अनुक्रम

10.5.2 आवासीय व्यवस्था

10.5.3 खाद्यान्न और जीव–जन्तु

10.6 सारांश

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में खैराडीह पुरास्थल (उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में घाघरा नदी के दाहिने किनारे पर एक छोटे से गाँव के रूप में स्थित है), प्रह्लादपुर पुरास्थल (उत्तर प्रदेश के चन्दौली जिले के चन्दौली तहसील मे वाराणसी से 60 कि0मी0, चन्दौली जिला मुख्यालय से 30 किमी0 तथा धानापुर थाना से 12 कि0मी0 की दूरी पर स्थिति है। यह पुरास्थल गंगा नदी के दाये किनारे पर स्थित है) और पक्काकोट (यह पुरास्थल छोटी सरयू नदी के तट पर उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में स्थित है। यह जिला उत्तर प्रदेश का सबसे पूर्वी जिला है) इस इकाई में इन तीनों पुरास्थलों के पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ को प्रस्तुत किया गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- खैराडीह पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपराओं के बारे में जान सकेंगे
- प्रहलादपुर के इतिहास को जान सकेंगे।
- पक्काकोट के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।

- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- पक्काकोट पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

10.3 खैराडीह–(अक्षांश 26^0 10′ उत्तरी, देशान्तर $83^0$51′ 30′′ पूर्वी)

खैराडीह पुरास्थल उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में घाघरा नदी के दाहिने किनारे पर एक छोटे से गाँव के रूप में स्थित है (चित्र संख्याः 1)। पुरास्थल का विस्तार पूर्व से पश्चिम की तरफ लगभग एक किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ 700 मीटर है। टीले की अधिकतम ऊँचाई नदी के जमाव से 9 मीटर है। टीले की दाहिनी तरफ से प्रवाहित होने वाली घाघरा नदी में आने वाली बाढ़ से पुरास्थल का कुछ भाग कट चुका है। पुरास्थल का उत्खनन कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के0 के0 सिन्हा और बी0पी0 सिंह के संयुक्त निर्देशन में कुल पाँच सत्रों 1980–81, 1981–82, 1982–83, 1983–84 एवं 1985–86 ई0 में सांस्कृतिक अनुक्रम और प्राचीन आवासीय व्यवस्था को समझने के लिए करवाया गया (आई0ए0आर0 1980–81 : 69–70, 1981–82 :67–70, 1982–83 : 92–94, 1983–84 : 68–87, 1985–86 : 77–78)। परिणामस्वरूप तीन सांस्कृतिक कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ (सिंह. बी0पी0, 2013 : 1–2) जो निम्नवत् है–

1. **प्रथम काल**– ताम्रपाषाणिक संस्कृति (1100–600 ई0पू0)
2. **द्वितीय काल**– एन0बी0पी0डब्लू0 कालीन संस्कृति
   - **(अ) प्रारम्भिक अवस्था** (600–300 ई0पू0)
   - **(ब) विकसित अवस्था** (300–100 ई0पू0)
3. **तृतीय काल**– कुषाण कालीन संस्कृति (100 ई0पू0 से 300 ई0 तक)

खैराडीह पुरास्थल का प्रथम जमाव ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित है। इस स्तर का जमाव 2.40 मीटर से 0.80 मीटर तक है। इस पुरास्थल पर सबसे पहली बार ताम्रपाषाणिक मानव द्वारा क्रियाकलाप प्रारम्भ किया गया और अपना आवास बाँस –बल्लियों की सहायता से बनी झोपड़ियों को बनाया। उत्खनन से स्तम्भगर्त, बाँस–बल्ली के निशान जली हुई मिट्टी के साथ तथा मिट्टी की दीवार जो 1.06 मीटर से 0.62 मीटर तक चौड़ी बनी थी, प्रकाश में आयी है (सिंह. 1987–88 : 8, 2013 : 1) हालाँकि इनके द्वारा बनायी गयी झोपड़ियो की कोई निश्चित योजना का पता नहीं चलता है। इस काल के मृदभाण्ड उद्योग में निम्नवत् पात्र परम्परायें प्रचलित थीं–

1. कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा (Black and Red ware) इसमें सादे तथा चित्रित दोनों प्रकार के पात्र प्रचलित थे (चित्र संख्याः 10.1)। ये पात्र चिराँद, ताराडीह, सेनुवार तथा नरहन आदि के समान हैं।
2. काली लेपित सादी तथा चित्रित पात्र परम्परा (चित्र संख्याः 10.2)
3. लाल लेपित तथा सादी पात्र परम्परा (कुछ पात्रों में चित्रण अभिप्राय भी मिलता है)(चित्र संख्याः 10. 3)।

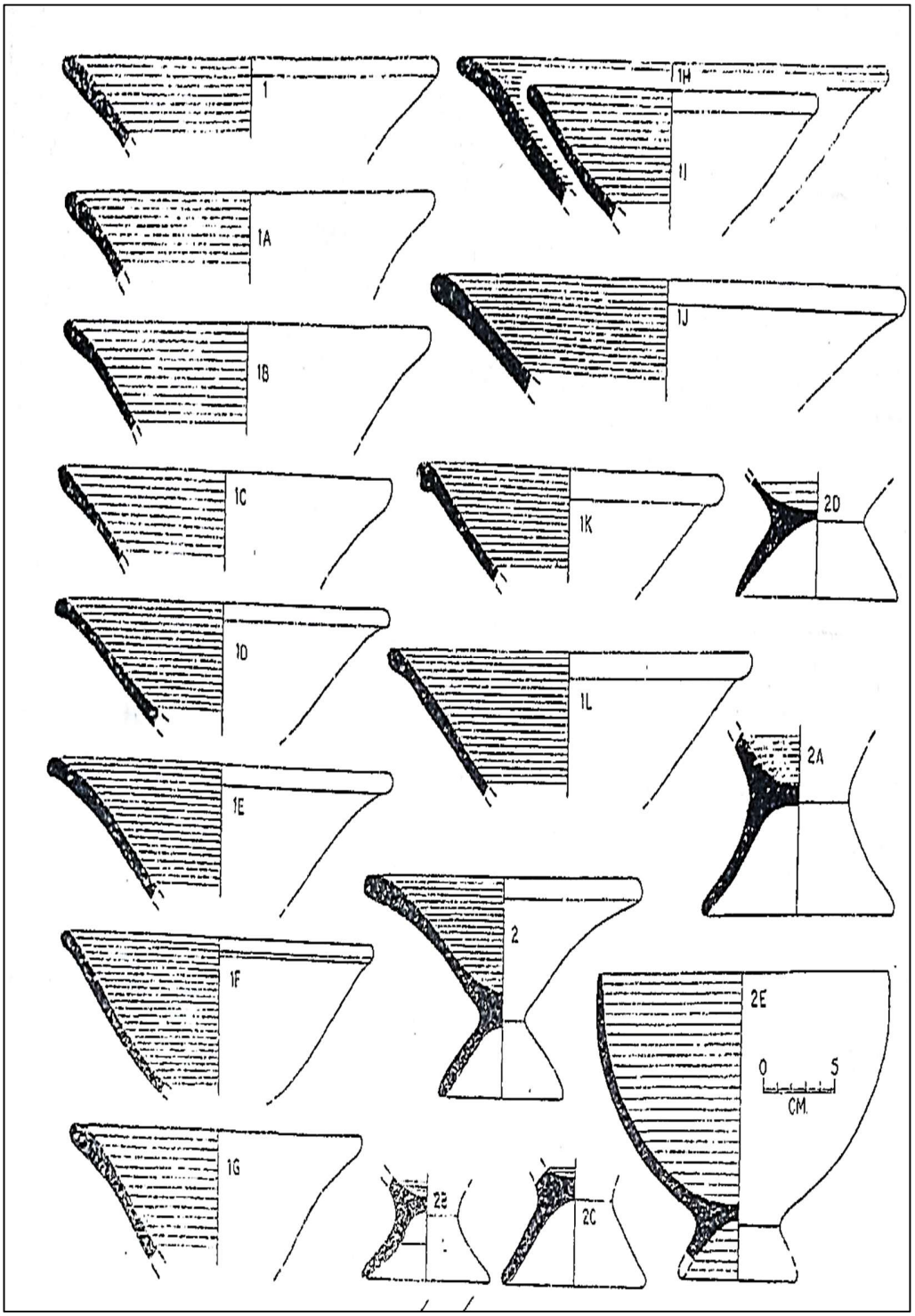

चित्र संख्या 10.1: कृष्ण–लोहित पात्र (सिंह एवं राय, 2013)

4. काली पात्र परम्परा–यह काली लेपित पात्र परम्परा से गठन तथा सतह के आधार पर भिन्न मानी गयी है। इसके पात्रों की बाहरी सतह बहुत चिकनी है जिससे अनुमान किया जाता है कि उसे घिसकर चमकदार बनाया गया होगा।

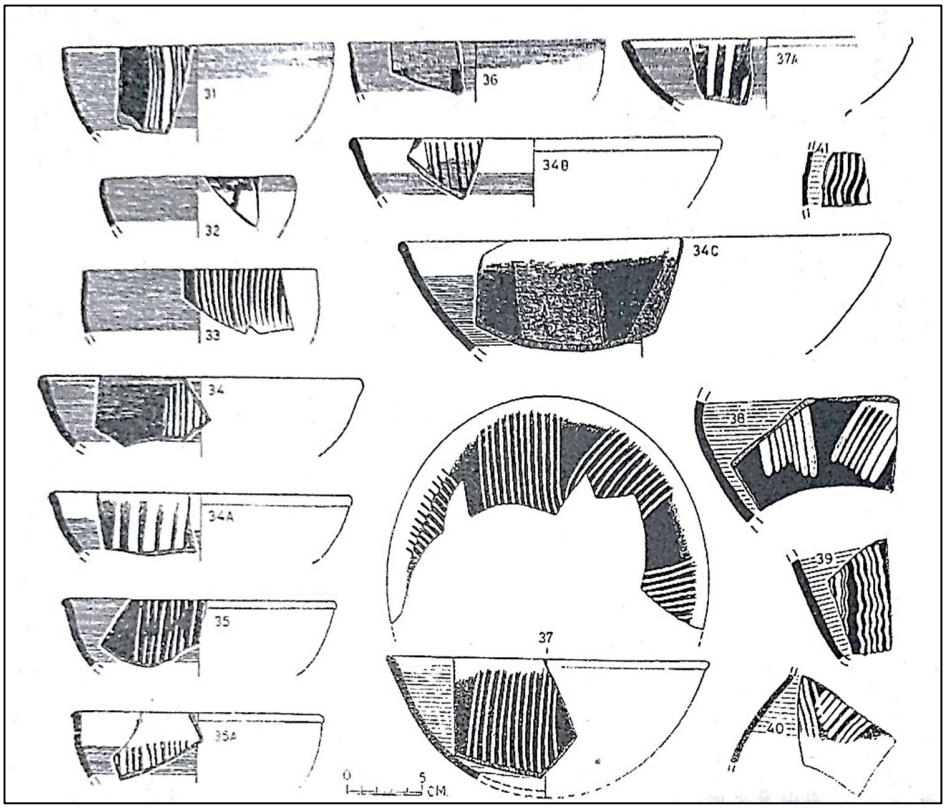

चित्र संख्या 10.2 : चित्रित काली–लेपित पात्र (सिंह एवं राय. 2013)

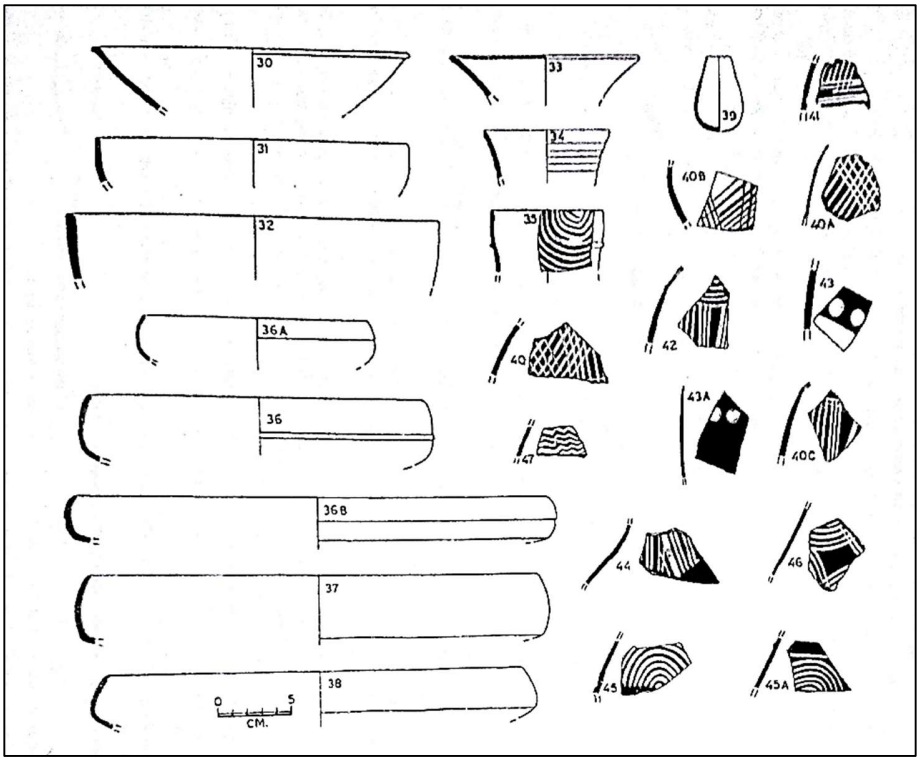

चित्र संख्या 10.3 : लाल लेपित पात्र (सादा एवं अलंकृत) (सिंह एवं राय. 2013)

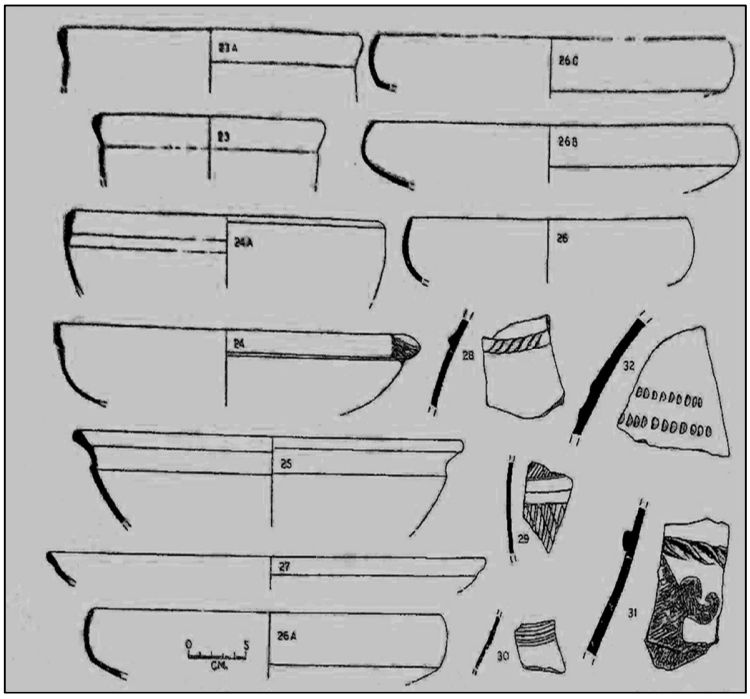

चित्र संख्या 10.4 : कटोरे एवं तश्तरी के प्रकार (सिंह एवं राय. 2013)

5. रस्सी छाप मृदभाण्ड और रस्टिकेटेड पात्र (चित्र संख्याः 10.9) आदि का प्रचलन इस काल में था। प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरे तथा घड़े हैं। इसके अलावा तसले, छिद्रयुक्त पैरदार कटोरे, साधार कटोरे (चित्र संख्याः 10.5), होठदार तथा टोटीदार कटोरे, तश्तरियाँ, वलय आधार युक्त कटोरे, गोलाकार कटोरे, छिछले (चित्र संख्याः 10.4) एवं गहरे बेसिन तथा बड़े आकार के कुण्डे आदि मिलते हैं। मृदभाण्डों के ऊपर चित्रण अभिप्राय मटमैले सफेद रंगो से किया गया था। चित्रण अभिप्रायों में लैटिस, आड़ी रेखा समूह, सकेन्द्रित अर्द्धवृत्त, बिन्दु आदि उल्लेखनीय है (वर्मा. 2003 : 98–97)। यदि चौथे वर्ग के पात्र प्रकार को छोड़ दिया जाय तो अन्य सभी प्रकार के पात्र समीपवर्ती पुरास्थल नरहन से भी मिलते हैं (सिंह. 2010 : 134)।

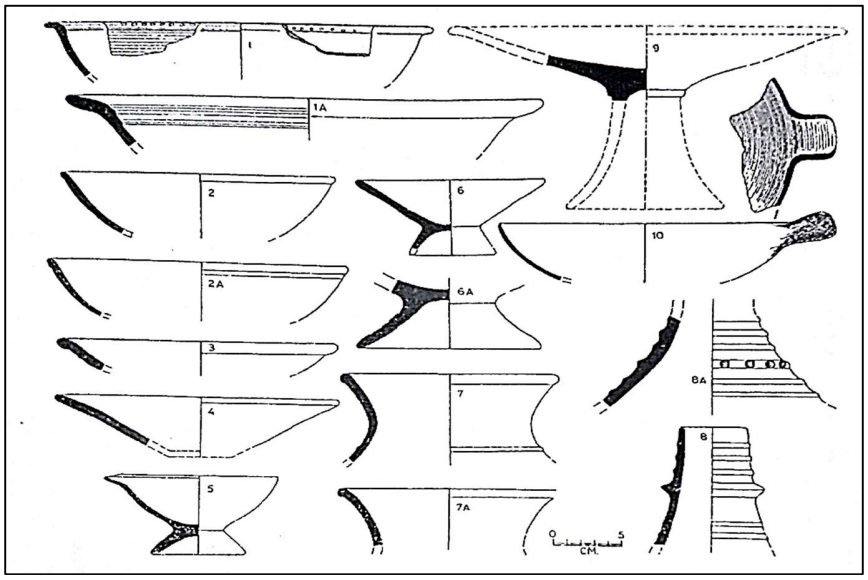

चित्र संख्या 10.5: कटोरे एवं डिश ऑन स्टैण्ड (सिंह एवं राय. 2013)

इस काल से प्राप्त अन्य वस्तुओं में डिस्क के आकार के स्टेटाइट (सेलखड़ी) के मनके, कार्नेलियन, अंगेट, चर्ट, केल्सीडोनी और टेराकोटा के मनके और लटकन मिले हैं (चित्र संख्याः 10.8)। अन्य टेराकोटा की वस्तुओं में हॉप–स्कॉच, चकरी, चुड़ियाँ पहिया, डिस्क, गेंद, जानवरों और पक्षियों की लघुमूर्तियाँ (चित्र संख्याः 10.7) तथा एक लम्बी हाथ की चक्की आदि है। हड्डी के बने उपकरणों में खॉचा कटा तथा सॉकेट बना हुआ वाणाग्र, छिद्रक, सॉकेट–युक्त व काँटेदार वाणाग्र आदि हैं। यहाँ के लोग ग्लास से भी परिचित थे। उत्खनन से एक मात्र ग्लास से बना सूक्ष्म मनका का साक्ष्य मिला है (चित्र संख्याः 10.6) (सिंह. 2013 : 5)। यहाँ से ताँबे का सॉकेट युक्त वाणाग्र भी मिला है जिसमें सॉकेट के ऊपर दो छिद्र है। इस काल का मानव प्रारम्भ से ही इस घातु से अच्छी तरह परिचित था लेकिन लोहा के किसी प्रकार से परिचित नहीं था।

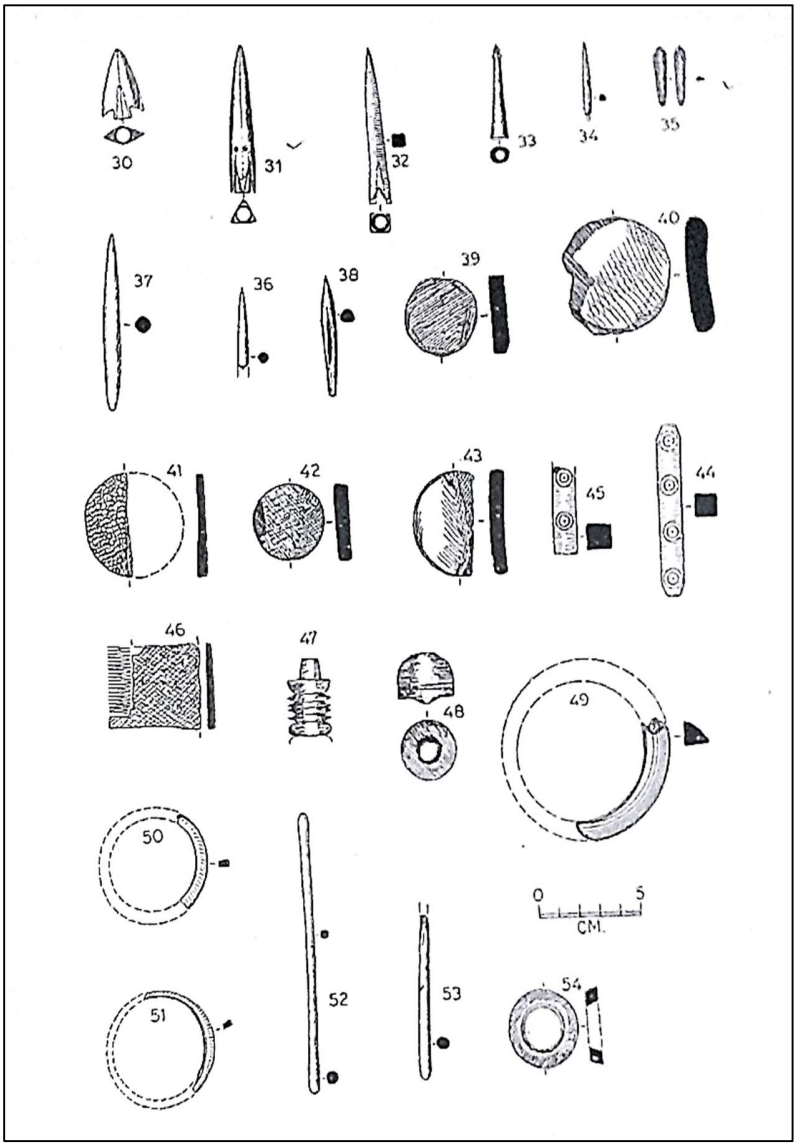

चित्र संख्या 10.6: अस्थि अवशेष एवं अन्य

ये लोग खेती से भी परिचित थे। धान की भूँसी का प्रयोग सालन के रूप में किया जाता था। इसके अतिरिक्त पशुपालन इनका दूसरा व्यवसाय था। उत्खनन से पशुओं की बहुत सी हड्डियाँ मिली है जिन पर काटने के चिन्ह है जिससे अनुमान किया जाता है कि इनका उपयोग भोजन के रूप किया गया होगा।

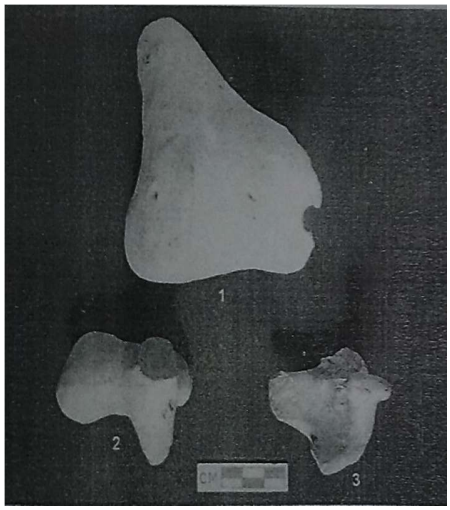

चित्र संख्या 10.7: टेराकोटा की बनी पशु आकृतियाँ

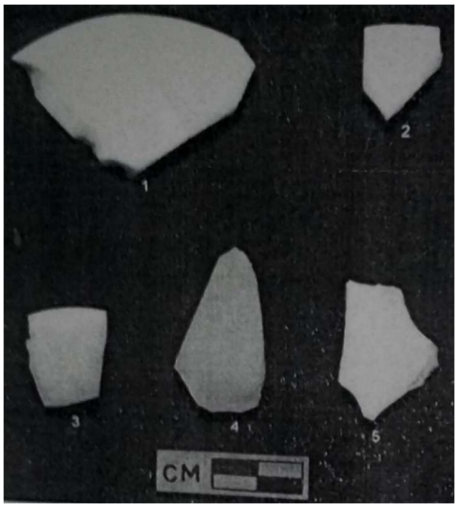

चित्र संख्या 10.8: चर्ट की चक्रिका के अवशेष

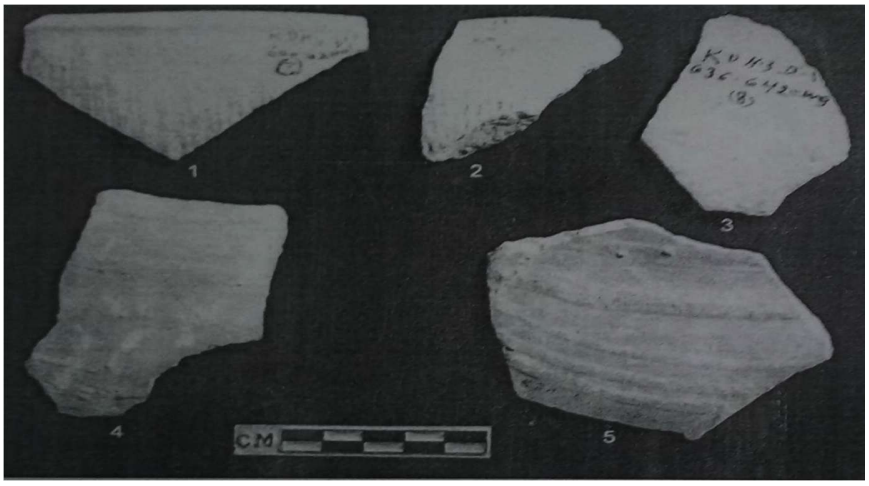

चित्र संख्या 10.9: रस्सी छाप एवं रस्टिकेटेड मृद्भाण्ड

खैराडीह के ताम्रपाषाणिक संस्कृति के विभिन्न महत्वपूर्ण पक्षों पर उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर प्रकाश पड़ता है। मृदभाण्ड़ों में पायी जाने वाली सामान्य एकरूपता, भौतिक अवशेष, आवासीय व्यवस्था और ताँबे के सीमित रूप से मध्य गंगा मैदान और निम्न गंगा मैदान में प्रयोग के आधार पर यहाँ की प्रारम्भिक संस्कृति चिन्हित की गयी है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृति सजातीय या समरूप थी (सिंह. 1987–88: 28–34; सिंह. 1989–90: 83–92; सिंह. 1990 : 77; सिंह. 2004 : 156–157)। नरहन पुरास्थल की भाँति इस पुरास्थल से भी पाषाण उपकरणों की प्राप्ति नहीं हुई है फिर भी इस क्षेत्र के अन्य पुरास्थलों से प्राप्त प्रमाणों की यहाँ से प्राप्त अन्य प्रमाणों की समानता के कारण प्रथम काल के लिए 'ताम्रपाषाणिक नाम का प्रयोग किया गया है (सिंह. 2010 : 134; सिंह. 2013 : 5)।

खैराडीह के ताम्रपाषाणिक काल की तिथि 1100 ई0पू0 कार्बन 14 तिथि विधि के आधार पर तथा मध्य गंगा मैदान के अन्य पुरास्थलों चिरॉंद, सेनुवार आदि से प्राप्त सांस्कृतिक अवशेषों का तुलनात्मक अध्ययन कर निर्धारित की गयी है। यहाँ से प्राप्त कार्बन 14 तिथियाँ निम्नवत है–

BSL-1 3070±90 वर्ष पूर्व

PRL – 1049±1030±160 ई0 पू0

940±150 ई0 पू0

हाल ही में इस स्तर से प्राप्त अवशेषों का एसीलेरेटेड मास स्पेक्ट्रोमेट्री (A.M.S.) विधि से 3990±100 वर्ष पूर्व की तिथि ज्ञात की गयी है (वेलवूड व अन्य. 1992 : 161–70)। इसकी कैलिब्रेटेड तिथि 2544 ई0पू0 प्राप्त हुई है।

10.4 प्रह्लादपुर–(25⁰ 26′ 24′′ उत्तरी अक्षांश, 83⁰ 27′ 17′′ पूर्वी देशान्तर)

प्रह्लादपुर पुरास्थल उत्तरप्रदेश के चन्दौली जिले के चन्दौली तहसील मे वाराणसी से 60 कि0मी0, चन्दौली जिला मुख्यालय से 30 किमी0 तथा धानापुर थाना से 12 कि0मी0 की दूरी पर स्थिति है (मानचित्र 10.1)। यह पुरास्थल गंगा नदी के दाये किनारे पर स्थित है (चित्र संख्या 10.10)। इस पुरास्थल का सर्वेक्षण एवं उत्खनन कार्य प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ए0के0 नरायण के निर्देशन में टी0एन0 राय एवं बी0पी0. सिंह द्वारा 1963 ई0 में करवाया गया।

चित्र संख्या 10.10 :– 1963 में पुरास्थल का विहंगम दृश्य

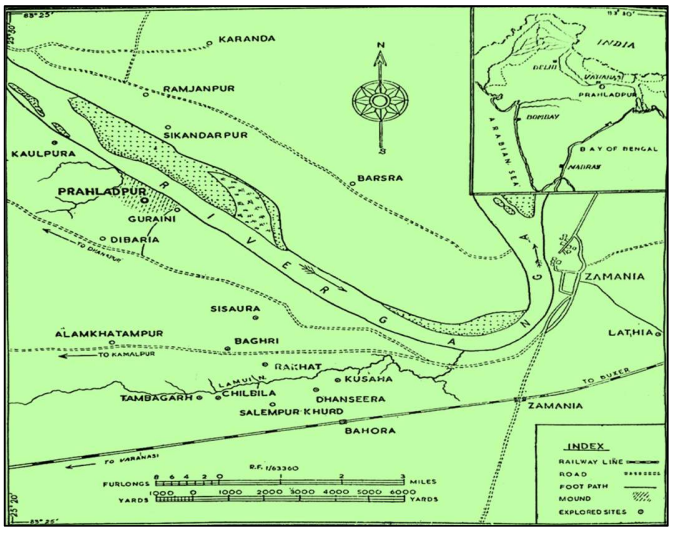

मानचित्र 10.1 प्रहलादपुर पुरास्थल का मानचित्र

प्रह्लादपुर पुरास्थल का विस्तार क्षेत्र लगभग 500 x 500 मीटर के वृहद क्षेत्र में है। प्रहलादपुर के मुख्य अधिवास को 30 मीटर चौड़ा नाला दो भागों में विभक्त करता हुआ गंगा नदी में गिरता है। टीले के उत्तर पश्चिम भाग को टीला संख्या–1 (चित्र संख्या 10.11) तथा टीले के दक्षिण–पश्चिम भाग को टीला संख्या–2 की संज्ञा दी गयी है। टीला संख्या–1 को प्रहलादपुर कोट के नाम से जाना जाता है तथा टीला संख्या–2 के पूर्व की तरफ नदी के किनारे भगवान विष्णु और 'नरसिंह अवतार' की स्तुति में एक मन्दिर का निर्माण प्रहलाद के स्मारक के रूप में की गई है जिसे भगवान नरसिंह द्वारा उसके निर्दयी पिता हिरण्यकश्यप के शिकन्जे से बचाने के

उपलक्ष्य में निर्मित करवाया गया है (नरायण एवं राय, 1968: 5–7)। टीला संख्या–1 की ऊँचाई भूमि तल से 9 मीटर थी (चित्र संख्या 10.12) लेकिन वर्तमान समय में टीले की ऊँचाई 5 मीटर के लगभग रह गयी है।

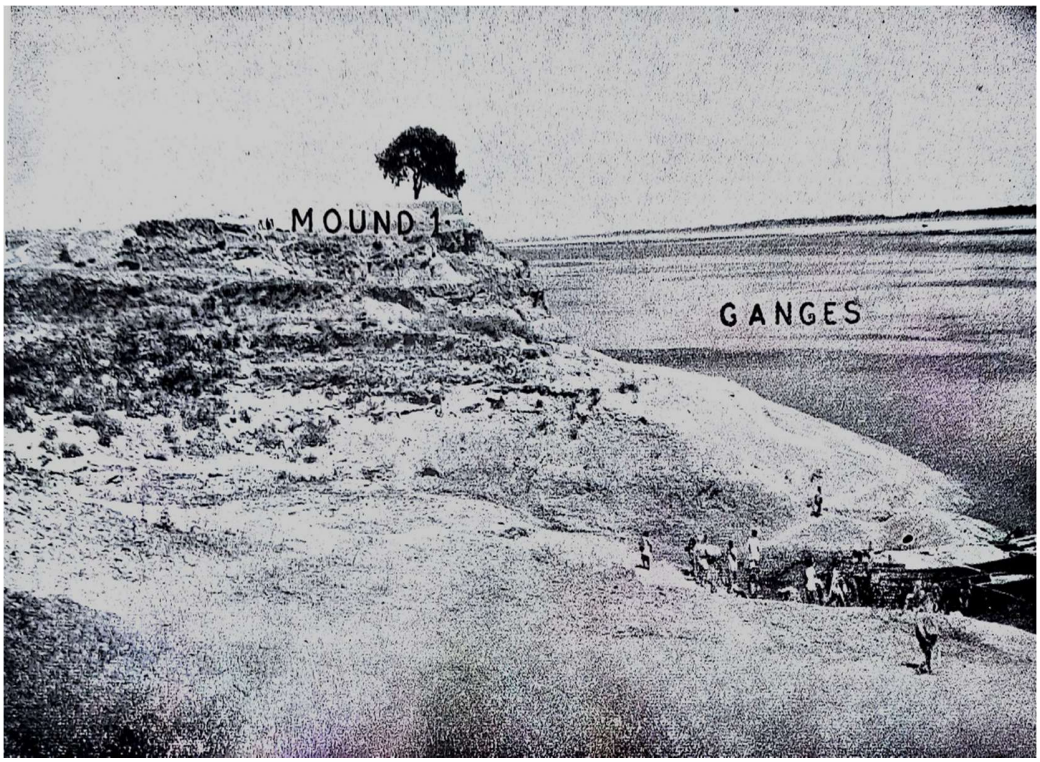

चित्र संख्या 10.11 टीला संख्या 1 (नारायण एवं राय, 1968)

इस पुरास्थल पर सर्वप्रथम सर्वेक्षण का काय्र 1891 ईस्वी में ए0 फ्यूहरर ने किया और प्रहलादपुर को पल्लातपुर (Pallatpur) के नाम से सम्बोधित किया। फ्यूहरर के अनुसार 17वीं शताब्दी में यह पुरास्थल बलुआ पत्थर के एकाश्मक स्तम्भ की खोज के साथ प्रकाश में आया था (चित्र संख्या 10.13)। यह गुप्त लिपि में अंकित शिशुपाल का अभिलेख है। इसे 1853 ई0 में जेन्स थॉमसन के निर्देश पर वाराणसी लाकर 1854 ई0 में वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में स्थापित कर दिया गया है (फ्यूहरर, 1891: 234) तत्पश्चात् 1957 ई0 में अवध किशोर नारायण और एफ0आर0 आल्चिन, एस0पी0 लाल, त्रिभुवन नाथ राय, विद्याप्रकाश, पी0सी0 पन्त (नारायण एवं राय, 1968:6; आई0ए0 आर0 1961–62: 34–52) ने सर्वेक्षण का कार्य किया। प्रहलादपुर से प्राप्त कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड को दक्षिण भारत से प्राप्त महापाषाणिक मृदभाण्ड के अत्यधिक सन्निकट बताया है।

चित्र संख्या 10.12 टीला संख्या 1 का कटा अनुभाग

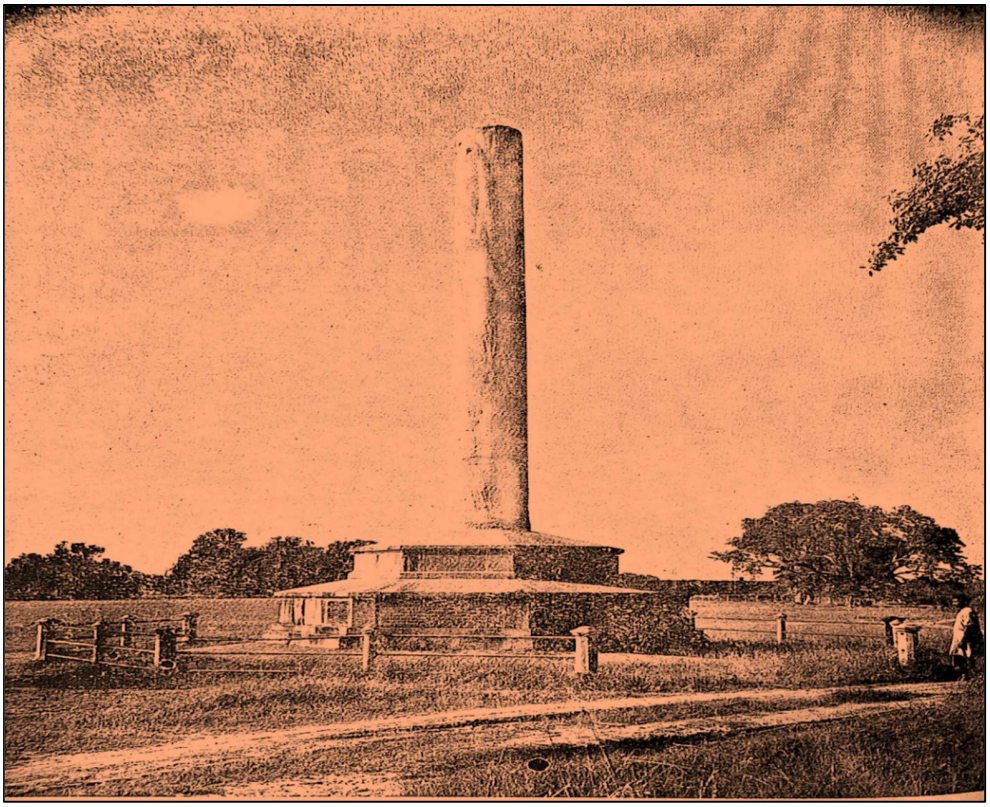

चित्र संख्या 10.13 एकाश्मक स्तम्भ

उत्खनन के परिणामस्वरूप कुल 6.20 मीटर का मोटा जमाव प्राप्त हुआ है। इस सांस्कृतिक जमाव को 7वीं शताब्दी ई0पू0 से प्रारम्भिक शताब्दी ईस्वी के मध्य के प्रारम्भिक, मध्य एवं उत्तर चरण (Early, Middle

and late phase) में विभाजित किया गया है। इनके लिए पुनः प्रथम उपकाल 'अ', प्रथम उपकाल 'ब' तथा प्रथम उपकाल 'स' की शब्दावली प्रदान की गयी है अर्थात हम कह सकते है सम्पूर्ण जमाव से प्राप्त अवशेषों में विविधता के कारण तीन भागों में विभाजित किया गया है। जो क्रमशः प्रथम उपकाल 'अ' 'ब' और 'स' है।

i. **प्रथम उपकाल** 'अ'– प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

ii. **उपकाल 'ब'** –उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

iii. **उपकाल 'स'** उत्तरवर्ती उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड काल या कुषाण काल

10.4.1 प्रथम उपकाल 'अ' या प्रारम्भिक चरण

इस चरण प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के नाम से जाना जाता है। इस चरण के सादे और अलंकृत कृष्ण–लेपित मृदभाण्ड, मोटे लाल, मृदभाण्ड और अलंकृत कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड, लाल–लेपित मृदभाण्ड प्राप्त होते है और सादे धूसर मृदभाण्ड, जो गढ़न में चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति के समान है भी प्राप्त होते है। इन मृदभाण्डों में कृष्ण–लेपित मृदभाण्डों का प्रतिशत सबसे अधिक है। इस चरण में सादे धूसर मृदभाण्ड को छोड़कर उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड परमपरा के पात्र लगभग नगण्य है। कृष्ण–लेपित परम्परा के प्रमुख पात्रों में कटोरे और थालियाँ प्रमुख हैं। कटोरों में कोखदार, अर्ध–अण्डाकार, अर्धचन्द्राकार उभरी बनावट का कटोरा, पनारीदार कटोरा, थालियों में कोखदार, अर्ध–अण्डाकार ओर मनके दार अवठ वाली आदि प्रमुख है। मोटे लाल मृदभाण्डों में बड़े आकार के भण्डारण पात्र, अन्दर घूमी गर्दन वाले पात्र तसले, कुण्डे, कटोरे आदि प्रमुख है। इनमें कुछ पात्रों पर पतला लेप लगाया गया है एवं चित्रित किया गया है। कृष्ण–लोहित मृदभाण्डों में अर्धगोलाकार, छिछली परई, थालियाँ और गोलाकार छोटे घड़े आदि प्रमुख है। इन पात्रों को आवें में बन्द दशा में (Reducing condition) पकाये जाने के कारण पात्रों के आन्तरिक भाग व अवठ (Rim) काले तथा जो भाग खुले रह गये है वे ऑक्सीकरण के परिणामस्वरूप लाल हो गये हैं। कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड प्रकारों को सफेद तथा काले रंग से अलंकृत (राय, 1983: 42) किया गया है। लाल–लेपित मृदभाण्डों में थालियाँ, कटोरा तथा छोटे घड़े प्रमुख हैं। इन मृदभाण्डों के अलावा इस काल से धूसर रंग के भी मिले हैं इस प्रकार के पात्रों में बारीदार थालीयाँ प्रमुख हैं।

इस चरण से प्राप्त अन्य सामग्रियों में हड्डी के भेदक, मृण–चक्राभ (ferracotta disc), मृण–शंकु (cone), पात्र–चक्राभ (Pottern disc) लौह मल, लौह वाणाग्र, केल्सिडोनी का क्रोड, घट प्रकार की मिट्टी, गोमेद तथा कार्नेलियन के मनके, कोयला खण्ड या जली मिट्टी के टुकड़े, मानव अस्थि शवाधन आदि प्राप्त होते हैं। इस पुरास्थल से हड्डी के बने औजरों में भेदक की प्राप्ति हुई है जो दो तरफी नोकदार और एक तरफी नोकदार दोनों प्रकार के मिले हैं। एकतरफी नोकदार भेदक में हत्थेदार (Tanged) एवं चुलदार (socketed) भेदक प्राप्त हुए है। (नारायण एवं राय 1968:39–41)। इस चरण की तिथि 673 ई0पू0 से 500 ई0पू0 के मध्य मानी गयी है। इस स्तर से प्रात कोयले से कार्वन 14 तिथि टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फण्डामेण्टल रिसर्च, मुबई द्वारा 5730 वर्ष प्राप्त की गई है। इसका अर्धजीवन 2715$\pm$500 वर्ष स्वीकार किया गया है जबकि मानव अस्थि को कार्बन 14 तिथि जॉच से अस्वीकृत कर दिया गया था जिससे इसकी तिथि ज्ञात नहीं की जा सकी है (नारायण एवं राय, 1968:14,64)।

10.4.2 प्रथम उपकाल 'ब' (मध्य चरण)

यह चरण उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति से सम्बन्धित है। इस काल के मृदभाण्ड प्रथम चरण के मृदभाण्ड से परिष्कृत तथा उत्कृष्ट तकनीकी से बनाये गये है। ये पात्र चाक पर निर्मित है। ये पात्र भूरे, रजत, सुनहला, चाकलेटी, हल्का लाल और गाड़े लाल रंग से संजोये गये है। इस चरण के मृदभाण्ड परम्पराओं में कृष्ण लेपित मृदभाण्ड, उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड, लाल व लाल लेपित मृदभाण्ड, कृष्ण लोहित मृदभाण्ड, सादा धूसर मृदभाण्ड और लोहित –कृष्ण मृदभाण्ड है। इस काल के प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरे (कोखादार एवं बारीदार) और थालियों के विभिन्न प्रकार है। इस काल से चित्रित मृदभाण्ड नगण्य हो जाते है लेकिन लोहित–कृष्ण मृदभाण्डों के उपर चिपकाकर अलंकरण किये जाने का प्रयास किया गया है।

इस चरण से प्राप्त अन्य सामग्रियों में हड्डी के बने भेदक, मृण–चक्राभ, शकु, पात्र–चक्राभ मिट्टी की गेंद, ताम्र लौह, मृतिका वलय कूप, अर्धबहुमूल्यवान पत्थर, मिट्टी तथा कांच के मनके पशु तथा मानव मृण मूर्तियाँ, पत्थर जड़ित मिट्टी का लोढ़ा, रजत ताँवे के आहत सिक्के प्राप्त हुए है (नारायण एवं राय, 1968: 38–64)। पात्र–चक्राभ छिद्रित तथा अछिद्रित दोनों प्रकार के मिलते हैं। मानव मृण मूर्तियों में सभी स्त्री–मृण मूर्तियाँ है। इस चरण की तिथि 500 ई0पू0 से 163 ई0पू0 के मध्य रखी गयी है (नारायण एवं राय 1968: 66)।

10.4. प्रथम उपकाल 'स' (अन्तिम चरण)

इस चरण को उत्तरवर्ती उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के अर्न्तगत रखा जाता है। इस उपकाल में कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड पूरी तरह समाप्त हो जाता है। शेष मृदभाण्ड परम्पराओं में भद्दापन बढ़ता जाता है। कृष्ण–लेपित मृदभाण्ड नगण्य रह जाता है तथा उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड परम्परा में उतार आता है,ये मोटे बनने लगते हैं। लाल मृदभाण्ड की उपयोगिता ज्यादा हो जाती है। इस चरण के भद्दे, धूसर कटोरे तथा थालियों के अन्दर की तरफ सकेन्द्रीय वृत्त से अलंकरण संजोये गये हैं। इस चरण का विशिष्ट लक्षण प्रकार कड़ाही तथा कोखदार हाँडी बन जाता है। इस चरण से प्राप्त अन्य अवशेषों में हड्डी के बेधक को छोड़कर अन्य सभी अवशेष पूर्ववर्ती चरणों की तरह ही मिले हैं। इस चरण की तिथि 163 ई0पू0 से 21 ई0पू0 अर्थात ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है (नारायण एवं राय, 1968: 65–68)।

इस प्रकार यह पुरास्थल 800 ई0पू0 से लेकर प्रथम शताब्दी ईस्वी तक गुलजार रहने के बाद अचानक विरान हो जाता है क्योकि? इस प्रश्न पर अगर विचार करें तो पुरास्थल के विस्तार, प्राप्त अवशेषों एवं जमाव को देखना पड़ेगा क्योंकि उत्खनन कर्ता द्वारा रिपोर्ट के प्रारम्भ में ही बताया गया है कि पुरास्थल के उत्खनन के परिणामस्वरूप 6.20 मीटर मोटा जमाव प्राप्त हुआ है, इसमें 2.29 मीटर मोटा उपरी जमाव के छोड़कर शेष 3.9 मीटर का सांस्कृतिक जमाव है अर्थात यह कहा जा सकता है 2.29 मीटर का जमाव केवल बालू और मिट्टी का है जो बाढ़ की ओर संकेत करता है। यह इसलिए भी सम्भव है क्योकि पुरास्थल के उत्तर की तरफ गंगा नदी से तथा पश्चिम की तरफ 30 मीटर चौड़े नाले से घिरा हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पुरास्थल का विनाश बाढ़ के कारण से हुआ या यह सम्भावना की जा सकती है बाढ़ की विभिषिका से परेशान होकर लोग यहाँ से स्थानान्तरित हो गये। अब प्रश्न यह उठता है कि लोग स्थानान्तरित होकर कहाँ गये ओर दूसरा प्रश्न यह उठता है अगर कुछ समय के लिए स्थानान्तरित हुए तो फिर वापस क्यों नहीं आये? क्या कोई और कारण इसके पीछे उत्तरदायी है?

इन्हीं प्रश्नों को लेकर मेरे द्वारा इस पुरास्थल की वर्तमान स्थिति जानने की तीव्र उत्कण्ठा हुई क्योंकि यह पुरास्थल इस क्षेत्र की प्राचीनता और महत्व को स्थापित करने का एक मात्र उत्खनित स्थल है और संयोग से यह पुरास्थल मेरे निवासस्थल से लगभग 15 कि0मी0 की दूरी पर भी स्थित है।

पुरास्थल पर जाने के बाद ज्ञात हुआ कि पुरास्थल की वर्तमान स्थिति बहुत कुछ बदल चुकी है। पुरास्थल उत्तर की ओर से गंगा नदी द्वारा लगभग आधा काट दिया गया है तथा पश्चिम की ओर से भी गंगा नदी में गिरने वाले नाले के द्वारा कटाव किया गया है। टीले के तीन तरफ स्थानीय लोगों द्वारा टीले को काट कर खेती का कार्य किया जा रहा है (चित्र संख्या 10.14)। जिससे पुरास्थल का मुख्य भाग बहुत कमक्षेत्र में सीमित होकर रह गया है हालाकि स्थानीय लोगों द्वारा बनाये गये खेतों एवं मुंडेर पर लगभग 500 X 500 मीटर के परिक्षेत्र में मृदभाण्डों के छोटे–छोटे टुकड़े बहुंत अधिक संख्या में बिखरे पड़े हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि पुरास्थल बहुत ही विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। प्राप्त मृदभाण्डों की अधिकता इस बात की ओर संकेत करती है कि प्राचीनकाल में पुरास्थल मृदभाण्ड बनाने का केन्द्र रहा होगा तथा तत्कालीन समय में तुलनात्मक रूप से अधिक जनसंख्या को धारित करने वाला पुरास्थल रहा होगा।

चित्र संख्या 10.14 पुरास्थल का वर्तमान दृश्य

पुरास्थल आजकल आये दिन विवाद का कारण भी बन गया है क्योंकि वर्तमान समय में पुरास्थल के उपर दो धर्मों को मानने वाले लोगों द्वारा अपने–अपने धर्म से सम्बन्धित प्रतीकों को स्थापित कर अपना होने का दावा करते हैं टीले पर एक तरफ बौद्ध धर्म को मानने वाले तथा दूसरी तरफ शहीद बाबा को मानने वाले अपने प्रतीक बनाये हुए हैं। जिससे टीले की प्राचीन विरासत अपने अस्तित्व को खो रही है।

पुरास्थल पर सर्वेक्षण के क्रम में मदभाण्डों के टुकड़े (चित्र संख्या 10.17), मृण–चक्राभ, मृदभाण्ड की बनी चक्की टेराकोटा की बनी गेंद का टुटा हुआ भाग, मिट्टी का खिलौना (चित्र संख्या 10.21), कुआ (चित्र संख्या 10.15), प्राचीन संरचना एवं पकी ईंटों (चित्र संख्या 10.16) को अवशेष प्राप्त हुए है। मृदभाण्डों में उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड परम्परा कृष्ण–लेपित, कृष्ण–लोहित, लाल एवं लाल –लेपित, धूसर और चटाई छाप मृदभाण्ड इत्यादि के टुकडे प्राप्त हुए हैं (चित्र संख्या 10.18, 10.20)। इन मृदभाण्डों के टुकडों में कृष्ण–लेपित मृदभाण्ड और उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड के टुकड़े पुरास्थल पर सर्वत्र विस्तृत है (चित्र संख्या 10.19)। इन पात्रों को विलासिता से सम्बन्धित पात्र के रूप में जाना जाता है क्योंकि मानव के पास इस समय तक धातु के बर्तन

चित्र संख्या 10.15 प्राचीन कुआँ

चित्र संख्या 10.16 पकी ईट

चित्र संख्या 10.17 पुरास्थल पर बिठाते मृद्भाण्ड

चित्र संख्या 10.18 मोटे पात्र के अवशेष

चित्र संख्या 10.19 काली एवं एम0बी0पी0 डब्लू0 पात्र परम्परा के अवशेष

चित्र संख्या 10.20 मृण–चक्राभ एवं अन्य

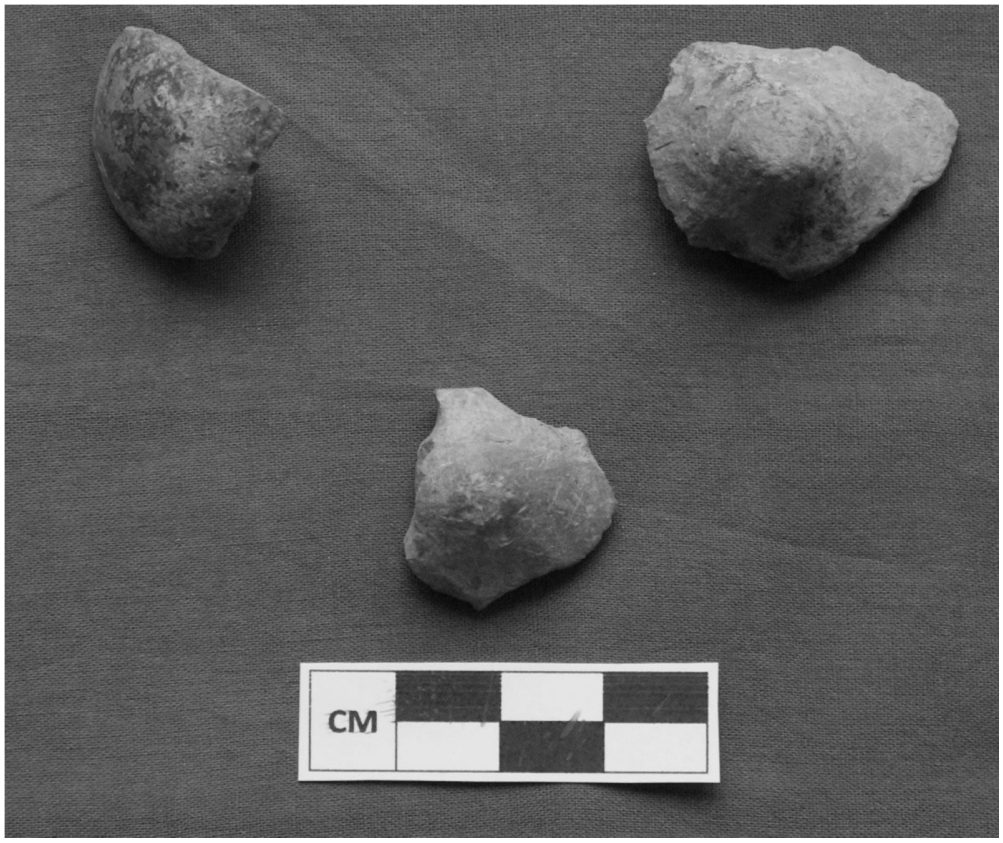

चित्र संख्या 10.21 टेराकोटा का बल खिलौना

उपलबध नहीं थें इसलिए इस तरह के पतली गढ़न और चमकने वाले पात्रों को विलासमय जीवन (luxurious) से जोड़ा जाता है तथा इन पात्रों को कीमती/शानदार पात्र (luxurious pottery) के रूप में जाना जाता है। इस तरह के पात्र मध्य गंगा मैंदान में 600 ई0पू0 से 100 ई0पू0 के मध्य अधिकता में मिलते हैं लेकिन बाद के कालों में इनका प्रचलन कम तथा नगणय हो जाता है। इसका एक सम्भावित कारण धातु के बर्तनों का प्रचलन में आना हो सकता है।

इस पुरास्थल पर इन भव्यता से सम्बन्धित पात्रों का अधिकता में मिलना बर्तनों के व्यापार और वाणिज्य की ओर संकेत करता है। इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है कि 1957 में सर्वेक्षण के समय प्रहलादपुर से प्राप्त कृष्ण–लोहित पात्रों को दक्षिण भारत से प्राप्त महापाषाणिक मृदभाण्डों के अत्याधिक सन्निकट बताया गया है (नारायण एवं पन्त 1964–65: 115–135)। एक स्थानीय बुर्जुग (लगभग 75 वर्ष) व्यक्ति जो कि प्राचीन इतिहास में स्नातक थे उनसे बात करने पर उनके द्वारा भी इसे बर्तन व्यापार केन्द्र होने की बात को ही बताया गया कि व्यापारी प्राचीन काल में यहाँ से बर्तन लेकर व्यापार करने के लिए जाते थे इसलिये ही यहाँ पर पात्रों के टुकड़े अधिकता में मिलते हैं। अगर इस तथ्य को मान लिया जाय तो ये बात और स्पष्ट हो जाती है कि यहाँ मानव तब तक निवास किया जब तक बर्तन का व्यापर होता था लेकिन बाद के कालों में जब धातु के बर्तन प्रचलन में आ गये तब इन भव्यता या विलासिता से सम्बन्धित इन बर्तनों का व्यापार कम हो गया और मानव को जीविका चलाने के लिए संकट उत्पन्न हो गया जिससे तत्कालीन मानव इस पुरास्थल को छोड़कर अन्यत्र चले गये हो जिससे यह कहाँ जा सकता है कि बाढ़ के अलावा, आर्थिक संकट भी यहाँ स्थानान्तरण का एक कारण हो सकता है।

इस पुरास्थल के पांच कि0मी0 के क्षेत्र में तीन और पुंरास्थल सर्वेक्षित किये गये जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इस पुरास्थल से था। ये पुरास्थल मनीपट्टी चट्टी, करजरा कोट एवं प्रह्लादपुर शिवाला है।

10.5 पक्काकोट (25°45′10′′ उत्तरी अक्षांश, 84°0′30′′ पूर्वी देशान्तर)

पक्काकोट पुरास्थल का भी मध्य गंगा मैदान की प्राचीनता एवं महत्ता को स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मध्य गंगा मैदान के पुरातात्विक इतिहास में यह नवीनतम् उत्खनित पुरास्थल है। इस पुरास्थल पर मानवीय क्रियाकलाप नवपाषाण काल से प्रारम्भ हो चुका था। इस बात की पुष्टि मई 2011 में किये गये उत्खनन के उपरान्त हुई। यह पुरास्थल छोटी सरयू नदी के तट पर उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में स्थित है (मानचित्रः 10.2)। यह जिला उत्तर प्रदेश का सबसे पूर्वी जिला है। इसका विस्तार 25°33′ और 26°11′ उत्तरी अक्षाश तथा 83°38′ और 84°39′ पूर्वी देशान्तर तक है। इस जिले का क्षेत्रफल 2981 वर्ग किमी0 है। इस जिले के पश्चिम में आजमगढ़, उत्तर में देवरिया, उत्तर–पूर्व और दक्षिण–पूर्व में बिहार राज्य की सीमा तथा दक्षिण–पूर्व में गाजीपुर जिला स्थित है (सिंह. 1973 : 24)। इस जिले की प्रमुख नदियाँ में गंगा, घाघरा और सरयू है।

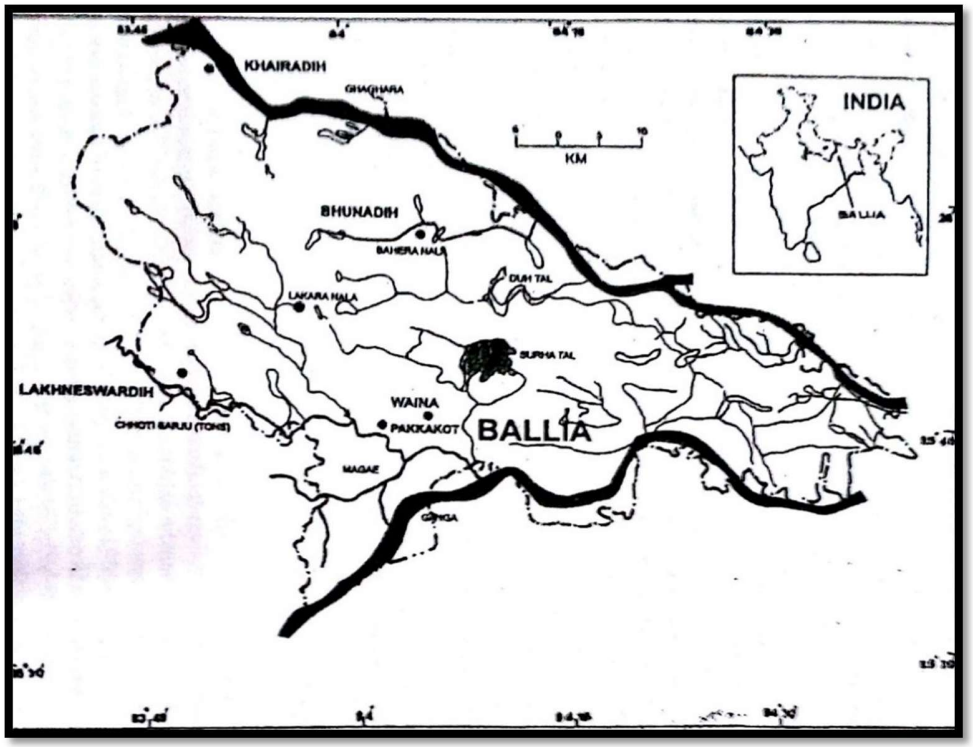

मानचित्र 10.2ः पक्काकोट पुरास्थल का मानचित्र

पक्काकोट पुरास्थल पाटलिपुत्र से लुम्बिनी जाने वाले प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर स्थित है। यह मार्ग पाटलिपुत्र से बक्सर, टिकादेवरी, खैराडीह, सोहगौरा, कोपिया, कपिलवस्तु होते हुए लुम्बिनी तक जाता है (चक्रवर्ती. 2001, दुबे. 2012 : 17)। पक्काकोट पुरास्थल का विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र में हैं (चित्र संख्याः 10. 22)।

मध्य गंगा मैदान में ऐसा कोई पुरास्थल नहीं जिसका विस्तार क्षेत्र इतना विस्तृत हो। यह पुरास्थल केवल 4 किमी0 क्षेत्र में ही विस्तृत नहीं है बल्कि पुरास्थल का थाला क्षेत्र 8 किमी0 के क्षेत्र में है जिसमें बहुत से पुरास्थल आ जाते हैं, जैसे–'मटही', जगदीशपुर, अकौनी, चितबरागाँव, वैना (सिंह और सिंह. 1985–96 : 41–61),कारो आदि। वर्तमान में छोटी सरयू नदी पुरास्थल से 1.5 किमी0 की दूरी पर बहती है लेकिन बुढ़ी नदी (लकड़ा नाला) पुरास्थल के समीप उत्तर से गुजरती है जो आगे जाकर टोंस नदी में चितबरागाँव के समीप मिल जाती है। पक्काकोट का टीला दुर्गीकृत दीवार से घिरा हुआ है तथा चार टावर टीले के ऊपर दिखाई देते हैं जो पूरी तरह अखण्डित हैं। टीले के पश्चिमी और दक्षिणी भाग पर पक्काकोट गाँव बसा हुआ

है तथा बहुत से नये मकान टीले पर बिखरी ईंटों के प्रयोग से बने हुए हैं। टीले का तेजी से क्षय भी हो रहा है। इसी कारण से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सीताराम दुबे, अशोक कुमार सिंह तथा गौतम कुमार लामा द्वारा मई 2011 में पुरास्थल का उत्खनन कराने का निर्णय किया गया। उत्खनन का उद्देश्य पुरास्थल का सांस्कृतिक अनुक्रम, दुर्गीकरण की व्यवस्था और संरचनात्मक अवशेष को प्राप्त करना तथा जानना था। प्रथम वर्ष के उत्खनन का प्रमुख उद्देश्य चारों टीलों के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानना था। इस क्रम में 16 ट्रेंचों को भिन्न–भिन्न टीलों पर खोदा गया (दुबे व अन्य. 2012 : 15–25)।

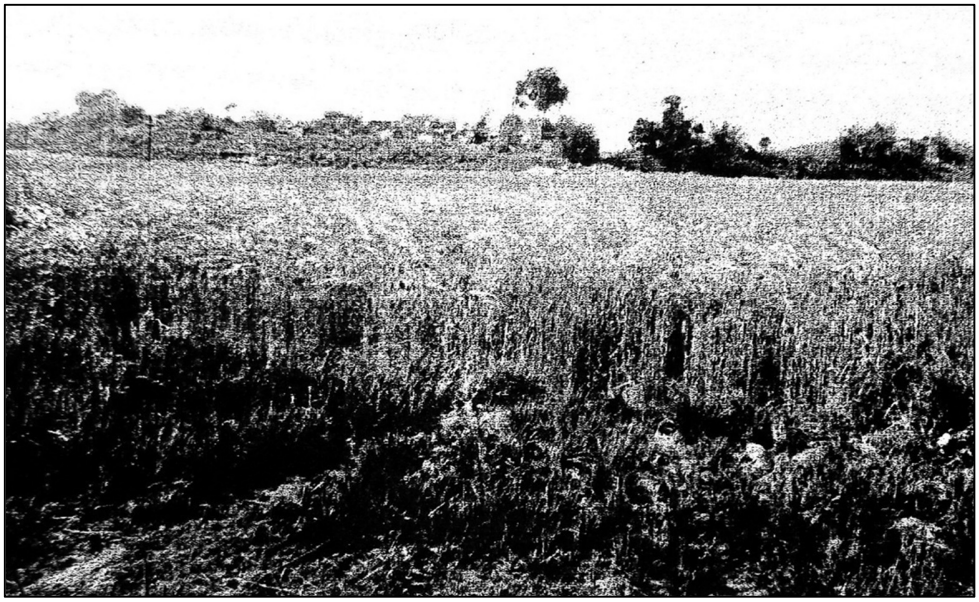

चित्र संख्या 10.22: पक्काकोट पुरास्थल का विहंगम दृश्य (दुबे व अन्य. 2012)

हालाँकि इससे पहले भी इस क्षेत्र में सर्वेक्षण कार्य ए0सी0एल0 कार्लाइल द्वारा 1874–75 में अलेक्जेण्डर कनिंघम के निर्देशन में किया गया था। इसके बाद 1891 में 'फ्यूहरर' महोदय द्वारा सर्वेक्षण किया गया (फ्यूहरर. 1891)। इसी क्रम में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा 1960 के दशक में, फिर 1994–95 में सर्वेक्षण किया गया (I.A.R. 1963-64 : 43, सिंह और सिंह. 1994–95 : 21–36)। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ही 1980–86 में खैराडीह पुरास्थल का उत्खनन भी करवाया गया। यह स्थल भी बलिया जिले में घाघरा नदी के तट पर स्थित है (सिंह. 1987–88 : 28–34, 1990–91 : 78–86, त्रिपाठी एवं अन्य. 2004 : 1–70)। उत्खनन के परिणाम स्वरूप ताम्रपाषाण काल से लेकर कुषाण काल तक अवशेष मिले। 1993–94 में गाँव से गाँव सर्वेक्षण के तहत पी0 सिंह और उनकी टीम द्वारा भी पक्काकोट पुरास्थल का सर्वेक्षण किया गया था (सिंह एवं अन्य. 1994–95 : 21–56) फिर दुबे और उनकी टीम द्वारा जुलाई 2010 में पक्काकोट पुरास्थल का सर्वेक्षण कार्य किया गया और एक नये आयाम की खोज दुर्गीकृत पुरास्थल के रूप में प्राप्त हुई।

मध्य गंगा मैदान में पक्काकोट के अलावा और भी पाँच पुरास्थलों की प्राप्ति हुई है जो दुर्गीकृत नगर हैं ये हैं – राजघाट, खैराडीह, नहुष का टीला, मसोनडीह और बैराठ (चक्रवर्ती और अन्य. 1998 : 103–118)

10.5.1 सांस्कृतिक अनुक्रम

पक्काकोट पुरास्थल का मई 2011 में प्रथम उत्खनन कार्य प्रारम्भ हुआ जो मुख्यतः सांस्कृतिक अनुक्रम को जानने के लिए ही किया गया था। इस सीमित उत्खनन के परिणाम स्वरूप यहाँ पर पाँच कालों का प्रमाण प्राप्त हुआ जिसका समय लगभग 5000 ई0पू0 से लेकर 7वीं शताबदी ई0 तक के बीच निर्धारित किया गया है (दुबे व अन्य. 2012 : 27)। इन पाँच कालों का विभाजन प्राप्त मृदभाण्डों और अन्य पुरावशेषों के

आधार पर किया गया है। ये काल निम्नवत् हैं–

1) नवपाषाण काल

2) ताम्रपाषाण काल

3) उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्ड

4) शुंग–कुषाण काल

5) गुप्त और उत्तर–गुप्त काल।

पक्काकोट पुरास्थल का प्रथम काल नवपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित है। पुरास्थल के टीला नं0 1 से 45 से. मी. का सांस्कृतिक जमाव प्राप्त हुआ जो नव पाषाण काल/प्रारम्भिक आवास से सम्बद्ध है। इस काल का निर्धारण यहाँ प्राप्त डोरी छापित, लाल मृदभाण्ड तथा सादे लाल पात्रों के आधार पर किया गया है (चित्र संख्याः 10.23) इस काल का मुख्य पात्र प्रकार कलश/घट और लोटा है। यहाँ कुछ ऐसे पात्र के टुकड़े मिले हैं जिस पर पकाने के बाद अलंकरण किया गया है जिसमें अधिकांशतः घड़े हैं । कुछ पात्र खण्ड ऐसे हैं जिनके ऊपर पकाने के बाद खुरेच कर अलंकरण किया गया है और ये पात्र तुलनात्मक रूप से

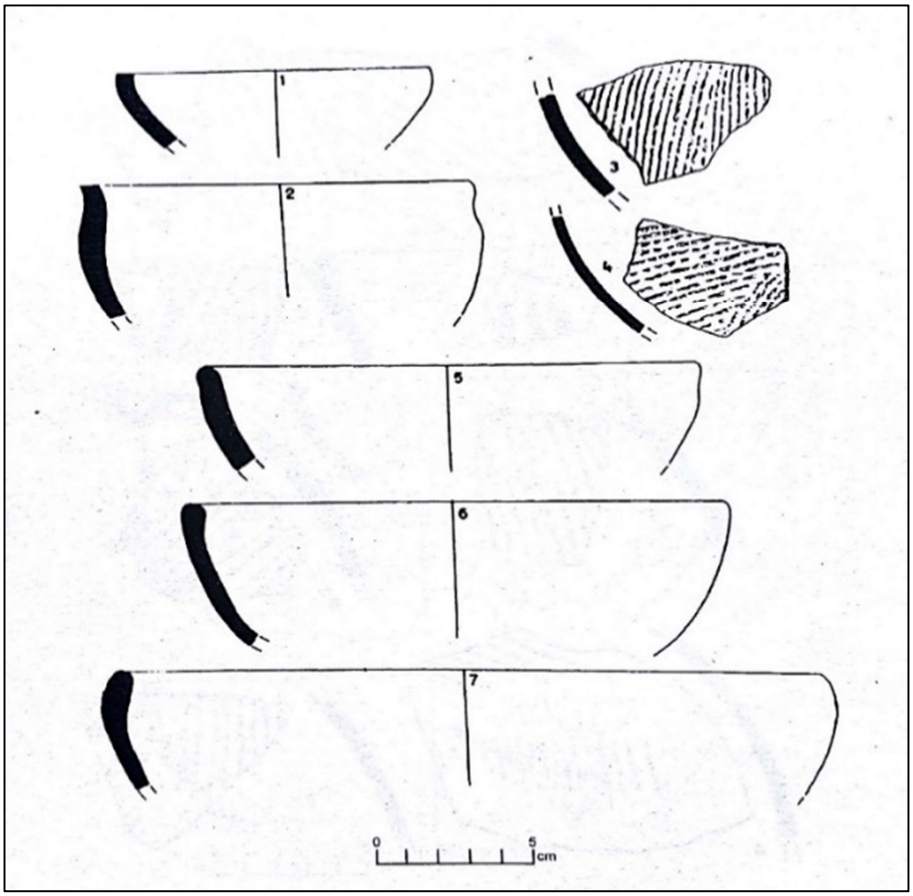

चित्र संख्या 10.23 : पक्काकोट से प्राप्त लाल पात्र (दुबे व अन्य. 2012: 44)

इमलीडीह खुर्द (सिंह. 1993 : 21–36) एवं लहुरादेवा के प्रथम काल के पात्रों से समानता रखते हैं (तिवारी एवं अन्य. 2002 : 54–62)। इन पात्रों के अलावा यहाँ से विभिन्न प्रकार के टोंटी वाले लोटा के आकार के पात्र तथा चिपकाऊ अलंकरण वाले पात्रों के टुकड़े भी मिले हैं ।

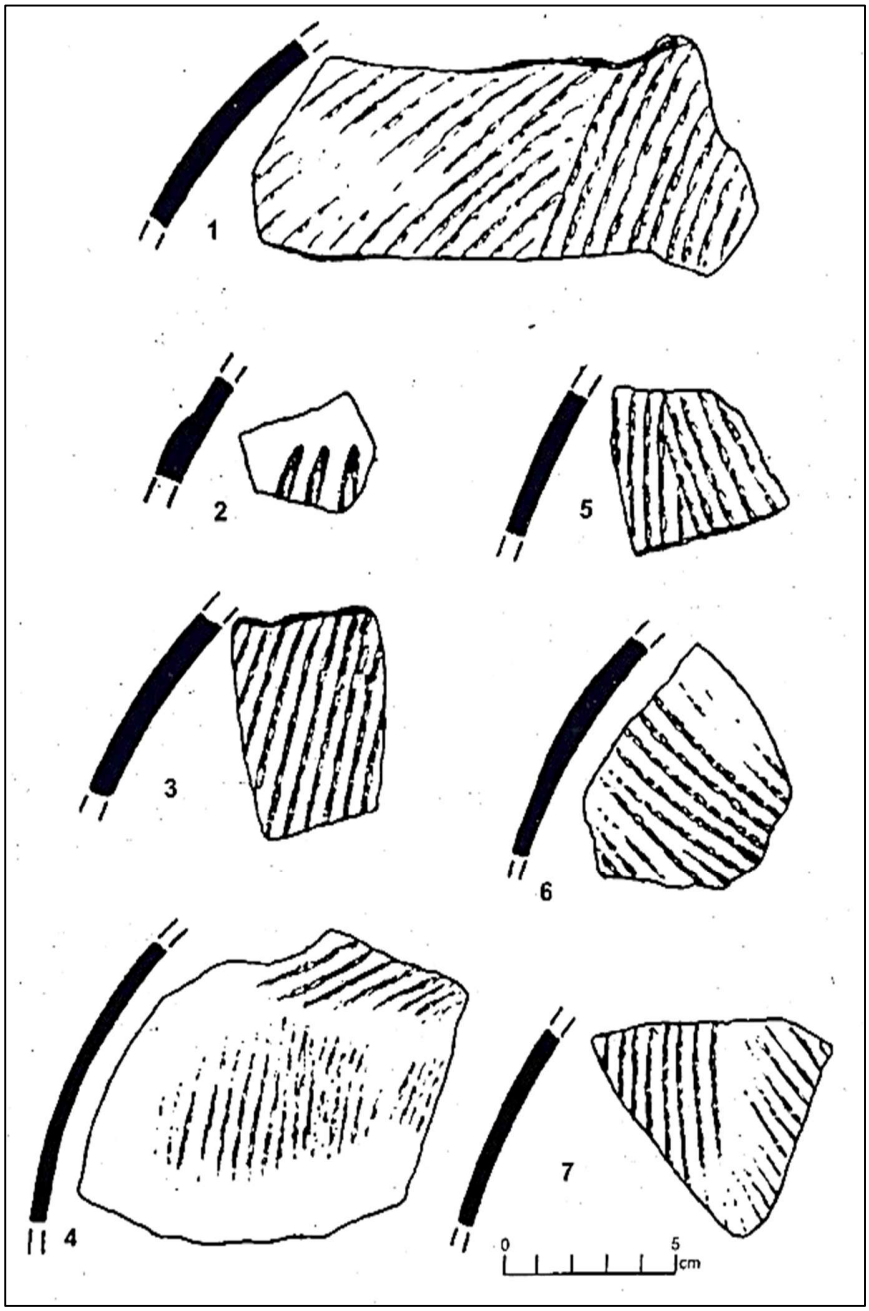

चित्र संख्या 10.24: लाल रंग के डोरी छाप मृद्भाण्ड (दुबे व अन्य 2012 :47)

इस काल के मृदभाण्डों में मुख्यतया रस्सी की छाप वाले पात्र (चित्र संख्या : 10.24), लाल पात्र तथा रस्टिकेटेड पात्र हैं रस्टिकेटेड पात्रों की संख्या पक्काकोट के इस चरण में बहुतायत संख्या में मिले हैं। यह रस्टिकेशन पात्रों के आधार भाग में मिलता है। इस तरह के पात्रों को अच्छी तरह से नहीं पकाया गया है तथा ये खराब किस्म के पात्र हैं। यहाँ से जो घड़े मिले हैं वे हल्के लाल रंग के बड़े आकार के तथा रस्टिकेटेड प्रकार के हैं (चित्र संख्या: 25)। रस्सी की छाप वाले मृदभाण्ड यहाँ से अच्छी संख्या में मिले हैं जो पात्रों के ऊपरी भाग पर मिलती है। इन पात्रों के ऊपर रस्सी की छाप लगाने के बाद पकाने से पहले गाढ़ा लेप लगाया जाता था।

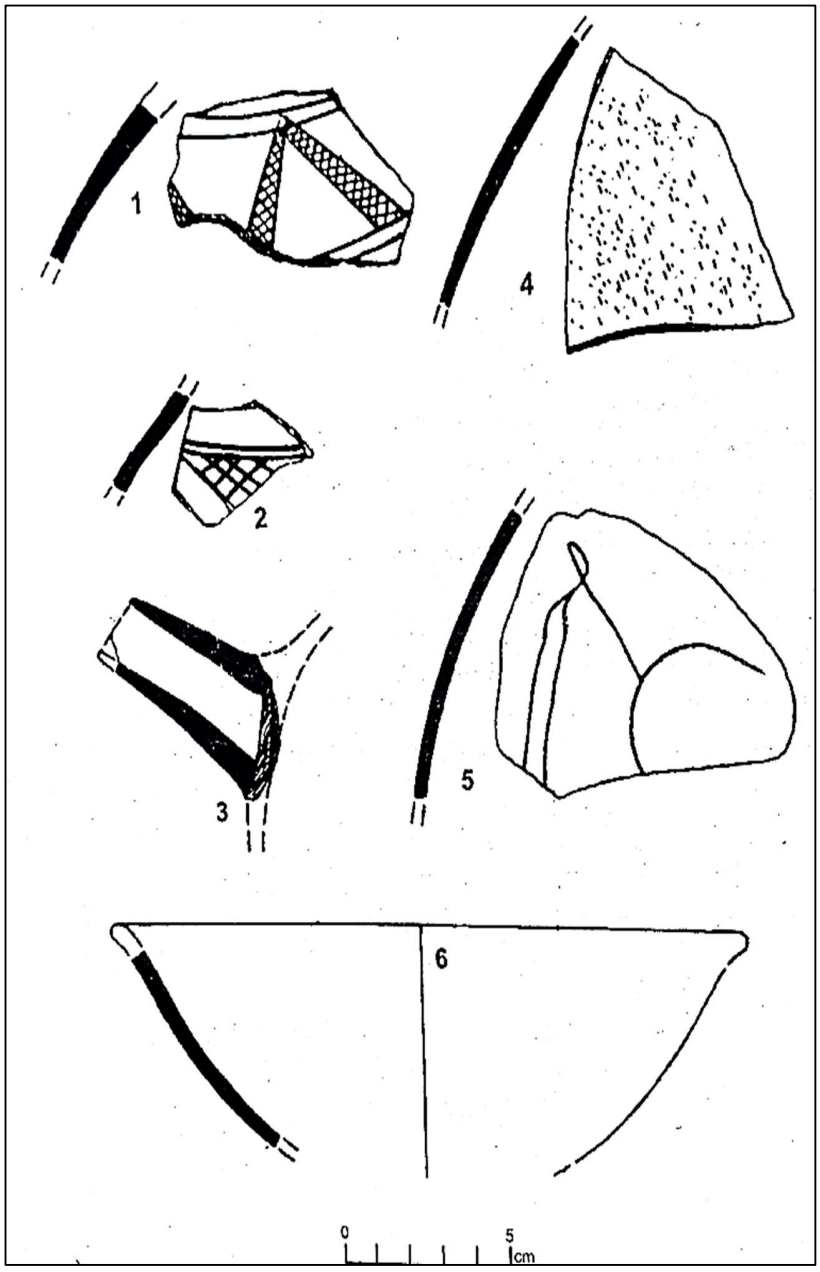

चित्र संख्या 10.25: लाल पात्र परम्परा का घड़ा (दुबे व अन्य. 2012 : 45)

इन पात्रों में कटोरे तथा कलश या घट प्रमुख हैं। कुछ कटोरों के आन्तरिक भाग में चमकीली घिसावट की गयी है। इस तरह के पात्र इमलीडीह के प्रथम काल से भी मिलते हैं (सिंह. 1992–93 : 1–17)। लाल पात्रों में कटोरे, नाद की तरह के पात्र तथा विभिन्न प्रकार के घड़े हैं (चित्र संख्याः 10.26)। कुछ छिद्रित कटोरे भी लाल पात्र के रूप में मिले हैं।

पक्काकोट के नवपाषाणिक चरण से हड्डी के उपकरण में केवल एक टैंग्ड वाणाग्र मिला है (दूबे व अन्य. 2012 : 128) (चित्र संख्याः 10.27)। धात्विक प्रमाण इस काल में अनुपस्थित है तथा पत्थर के ताबीज, मनके तथा लटकन भी इस चरण से नहीं मिलते हैं। पक्की मिट्टी से बनी मृणमय वस्तुएँ जैसे मानवाकृतियाँ, पशु आकृतियाँ आदि भी इस चरण में अनुपस्थित हैं।

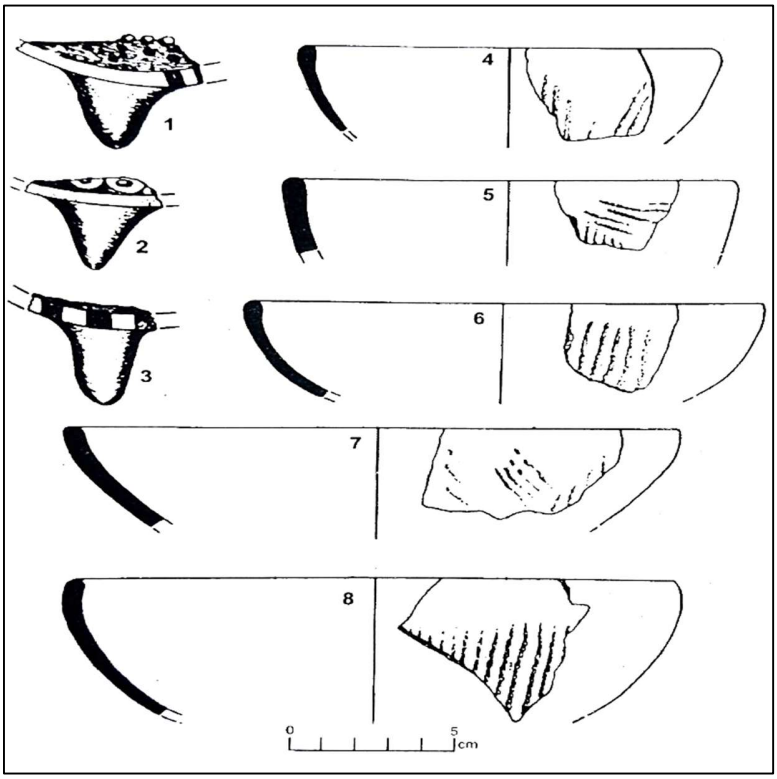

चित्र संख्या 10.26: लाल रंग का कटोरा एवं पाद युक्त घड़ा (दुबे व अन्य. 2012 : 48)

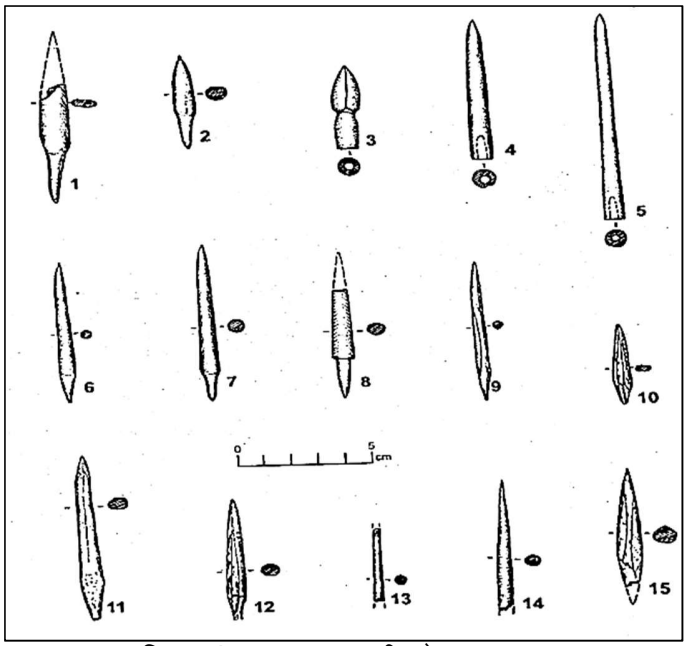

चित्र संख्या 10.27 हड्डी के उपकरण

10.5.2 आवासीय व्यवस्था

पक्काकोट के नवपाषाणिक चरण में मानव बाँस–बल्लियों और घाँस–फूस से अपने आवास का निर्माण करता था। बाँस–बल्लियों के निशान जली हुई मिट्टी के टुकड़ों के साथ मिलते हैं (दुबे व अन्य. 2012 : 27)।

पुरास्थल पर नीचले स्तर का सीमित क्षेत्र में उत्खनन होने के कारण आवासीय व्यवस्था के बारे में ज्यादा प्रमाण नहीं मिल सका है लेकिन प्राप्त प्रमाणों के आधार यह कहा जा सकता है कि मानव झोपड़ियों का निर्माण कर उसमें निवास करता था।

10.5.3 खाद्यान्न और जीव–जन्तु

पक्काकोट के उत्खनन से विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न के अवशेष भी मिले हैं (चित्र संख्याः 10.28) जिसमें गेहूँ (टिट्रकम एसटिवम), जौ (होरडियम एसपी), चावल (ओरिजा सटाइवा), जंगली पालक (चेनोपोडियम एलबुम), मूँग, मसूर (लिनस कुलीनरिस), मटर (पिसुम सटाइवम), सरसों (ब्रैसिका एसपी), सेम (डेलिथस बिफ्लोरस) आदि के साक्ष्य प्रमुख हैं। इन अनाजों के दाने जले हुए तथा टुटी–फुटी अवस्था में मिले हैं जिनको चालन विधि द्वारा अलग किया गया है जिसमें अनाज, दालें, फल के बीज तथा तने के टुकड़े प्राप्त किये गये हैं (दुबे व अन्य. 2012 : 206–209)।

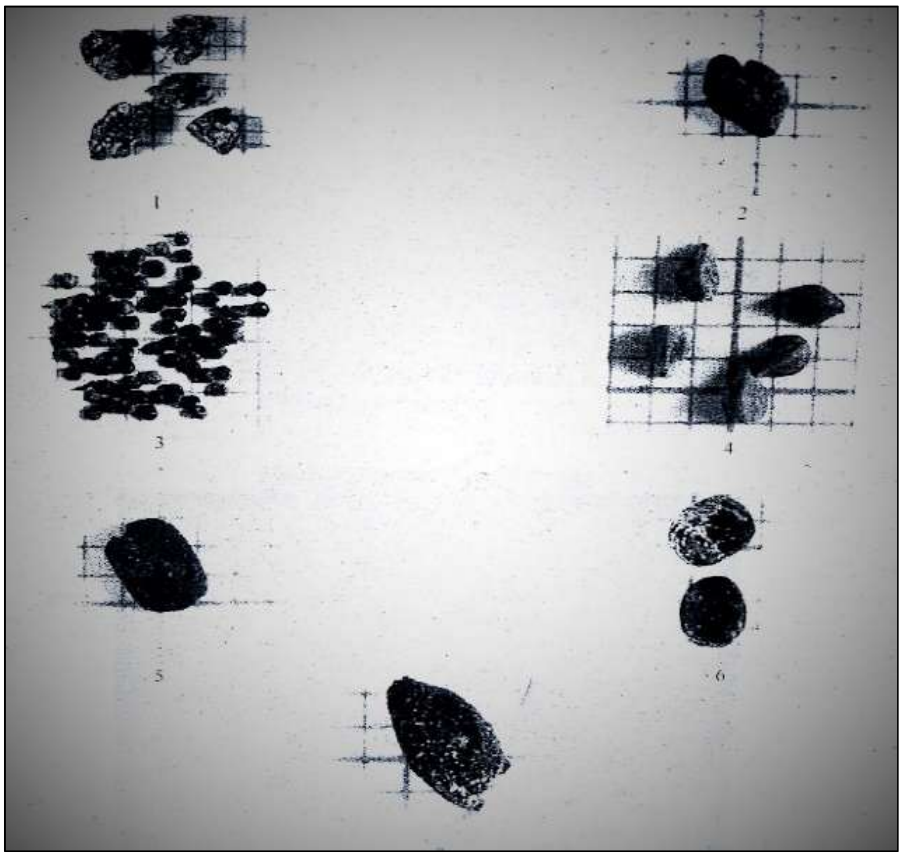

चित्र संख्या 10.28: अनाज के अवशेष (दुबे व अन्य. 2012)

पक्काकोट के उत्खनन से कुछ जीव–जन्तुओं के भी अवशेष मिले हैं जिसमें गाय, भैंस (चित्र संख्या : 10.31) , भेड़, बकरी आदि हैं जो पशुपालन की ओर संकेत करते हैं। कुत्ते के दांत के साक्ष्य भी यहाँ से मिले हैं जिससे लगता है कि कुत्ता को भी पालतू जानवर के रूप में पाला जाता था। जंगली जानवरों में हिरण (एक्सीस एक्सीस), जंगली सुअर (सुस स्क्रोफा) (चित्र संख्या : 10.30), खरगोश/खरहा (लेपस निग्रीकोलिस) तथा कछुआ (कचुगा टेवटा) (चित्र संख्या : 10.29) आदि के साक्ष्य मिले हैं (दुबे व अन्य. 2012 : 210–213)। जीव–जन्तुओं के अवशेषों की जाँच पी0पी0 जोगलेकर के द्वारा किया गया है (सारणीः 10.1)। पक्काकोट के लोग भोजन के लिए मछली, कछुआ और घोंघा का भी प्रयोग करते थे (दुबे व अन्य. 2012 : 139)।

सारणी–10.1:

पक्काकोट के नवपाषाणिक चरण से प्राप्त जन्तु अवशेष

(दूबे व अन्य. 2012 : 212–213)

क्र.सं.	**जन्तु का नाम**	**संख्या**
1.	बॉस इण्डिकस	5
2	बॉस/बुबलुस	4
3	बुर्बेलस बुबैलिस	2
4	कैपरा हिरकस	3
5	बी0 टैंगोकैमेलस	1
6	एक्सीस–एक्सीस	1
7	सुस स्कोफा	1
8	लेपस नाइग्रीकोलिस	1
9	कचुगा टीटा	1
	योग	**19**

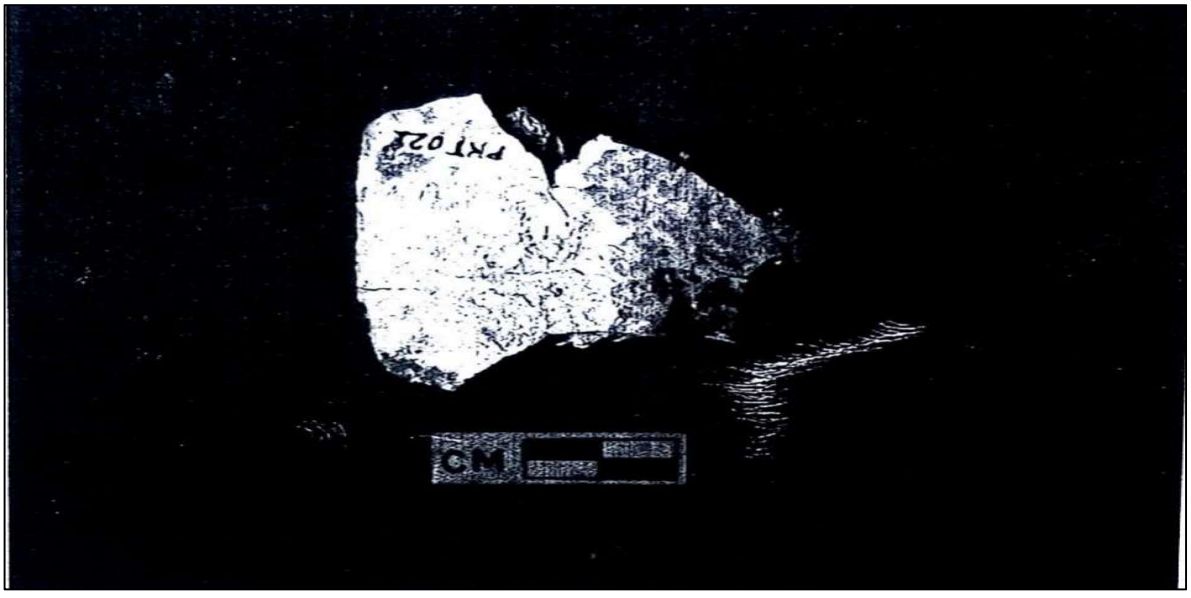

चित्र संख्या 10.29: कचुगा टीटा का अस्थि अवशेष

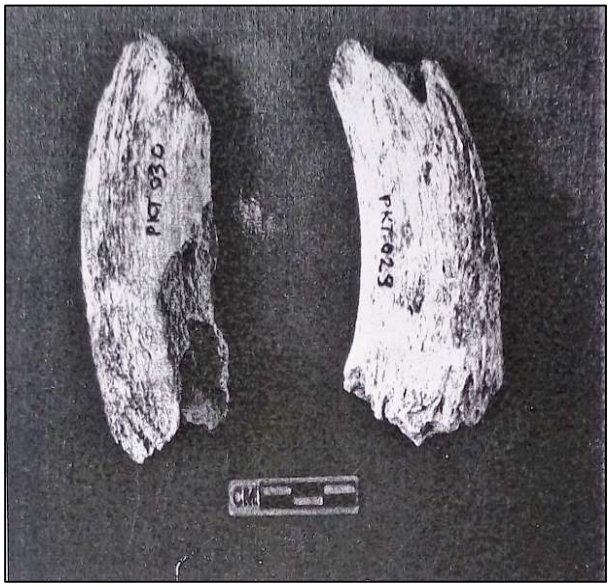

चित्र संख्या 10.30 : बुर्बेलस बुबैलिस का सींग का अवशेष

चित्र संख्या 10.31: सुस स्क्रोफा का मैन्डिबल

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल का मानव अनाज के दानों के साथ–साथ, फल–फूल तथा छोटे जानवरों के शिकार से अपना भोजन प्राप्त करता था। पशुपालन तथा कृषि पक्काकोट की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार था हालांकि बाद के कालों में व्यापार और वाणिज्य भी यहाँ की अर्थव्यवस्था के अंग बन गये।

पक्काकोट पुरास्थल की तिथि मध्यगंगा मैदान में अन्य पुरास्थलों से प्राप्त अवशेषों की समानता तथा अन्य स्थलों से ज्ञात तिथि के आधार पर लगभाग 5000 ई0पू0 से 700 ई0 के मध्य रखा गया है। मध्य गंगा के मैदान में नवपाषाणिक मानव का रहन–सहन मोटे तौर पर लगभग 6000 ई0 पू0 से 2000 ई0 पूर्व के बीच प्रत्येक क्षेत्र में प्रारम्भ हो चुका था और मानव की जीविका का प्रमुख आधार कृषि और पशुपालन था लेकिन छोटे जानवरों के शिकार और मछली, कछुआ, घोंघा, सीपी आदि का भोजन के रूप में सेवन से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

10.6 सारांश

खैराडीह के ताम्रपाषाणिक संस्कृति के विभिन्न महत्वपूर्ण पक्षों पर उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर प्रकाश पड़ता है। मृदभाण्ड़ों में पायी जाने वाली सामान्य एकरूपता, भौतिक अवशेष, आवासीय व्यवस्था और ताँबे के सीमित रूप से मध्य गंगा मैदान और निम्न गंगा मैदान में प्रयोग के आधार पर यहाँ की प्रारम्भिक संस्कृति चिन्हित की गयी है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृति सजातीय या समरूप थी।प्रहलादपुर पुरास्थल पर भव्यता से सम्बन्धित पात्रों का अधिकता में मिलना बर्तनों के व्यापार और वाणिज्य की ओर संकेत करता है। इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है कि 1957 में सर्वेक्षण के समय प्रहलादपुर से प्राप्त कृष्ण–लोहित पात्रों को दक्षिण भारत से प्राप्त महापाषाणिक मृदभाण्डों के अत्याधिक सन्निकट बताया गया है।

पक्काकोट पुरास्थल की तिथि मध्यगंगा मैदान में अन्य पुरास्थलों से प्राप्त अवशेषों की समानता तथा अन्य स्थलों से ज्ञात तिथि के आधार पर लगभाग 5000 ई0पू0 से 700 ई0 के मध्य की मानी गयी है। मध्य गंगा के मैदान में नवपाषाणिक मानव का रहन–सहन मोटे तौर पर लगभग 6000 ई0 पू0 से 2000 ई0 पूर्व के बीच प्रत्येक क्षेत्र में प्रारम्भ हो चुका था और मानव की जीविका का प्रमुख आधार कृषि और पशुपालन के साथ–साथ उद्योग–धन्धे एवं व्यापार–वाणिज्य भी था लेकिन छोटे जानवरों के शिकार एवं मछली, कछुआ,

घोंघा, सीपी आदि का भोजन के रूप में सेवन से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
6. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
7. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
8. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
10. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
11. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0ः वाराणसी
12. जायसवाल, वी0 एवं एम0कुमार .2006. ''एक्सक्वेशन्स एट रामनगर : डिसकवरी ऑफ द सर्पोटिंग सेटलमेन्ट ऑफ एशियंट वाराणसी''. *पुरातत्त्व* नं0 36।
13. जायसवाल, विदुला, आदि काशी से वाराणसी
14. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।
15. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
16. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
17. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
18. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।
19. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।
20. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।
21. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थं संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44।

10.8 बोध प्रश्न

- खैराडीह पुरास्थल पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
- प्रह्लादपुर पुरास्थल के सांस्कृतिक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए।
- पक्काकोट पुरास्थल के नवपाषाणिक सांस्कृतिक संदर्भ की विवेचना कीजिए।
- पक्काकोट पुरास्थल के पुरातत्त्व पर विस्तृत टिप्पणी लिखें।

इकाई– 11 : लहुरादेवा, सोहगौरा, पिपरहवा

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 लहुरादेवा

11.4 सोहगौरा

11.5 पिपरहवा

11.5.1 प्रथम सांस्कृतिक काल

11.5.2 द्वितीय सांस्कृतिक काल

11.5.3 तृतीय सांस्कृतिक काल

11.5.4 बुद्ध का परिनिर्वाण

11.5.5 विलियम क्लैक्सटन पेप्पे द्वारा उत्खनन

11.5.6 स्तूप का काल निर्धारण

11.5.7 प्राप्त अवशेषों का विवरण

11.5.8 कपिलवस्तु की स्थिति एवं महत्व

11.6 सारांश

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 बोध प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

लहुरादेवा पुरास्थल उत्तर प्रदेश के सन्त कबीर नगर जनपद में बस्ती–गोरखपुर मार्ग पर भुजैनी चौराहे से 5 किमी0 दक्षिण में जगदीशपुर गाँव के पास है।यह पुरास्थल प्रारम्भ में तीन तरफ से जल से घिरा हुआ था। इसके पश्चिम और दक्षिण में सरयू नदी, उत्तर दिशा में नेपाल की तराई और पूर्व में गण्डक नदी है। अब पुरास्थल के अधिकांश भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। सोहगौरा पुरास्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के बासगाँव तहसील में आमी और ताप्ती नदियोँ के संगम पर स्थित है। यह मध्य गंगा मैदान का प्रथम उत्खनित स्थल है, जिसका उत्खनन 1961–62 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के जी0सी0 पाण्डेय के मार्गदर्शन में एस0एन0 चतुर्वेदी और एस0एन0 त्रिपाठी द्वारा करवाया गया। पिपरहवा पुरास्थल, उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जिले में स्थित एक गाँव है। यह ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्थल बुद्ध की मातृभूमि के केंद्र में स्थित है और लुम्बिनी के विश्व धरोहर स्थल से 9 मील दूर है, जिसे गौतम बुद्ध का जन्म स्थान माना जाता है। पहले बस्ती जनपद में स्थित गनवरिया और पिपरहवा स्थलों का उत्खनन से 1971–72 ईसवी से 1976–77 ईसवी तक भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के के0 एम0 श्रीवास्तव के द्वारा करवाया गया था। इस इकाई में इन तीनों पुरास्थलों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- लहुरादेवा पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- सोहगौरा पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- लहुरादेवा के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- पिपरहवा पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

11.3 लहुरादेवा (26^{0}46′ उत्तरी अक्षांश, 82^{0}57′ पूर्वी देशान्तर)

भारतीय पुरातत्त्व, मध्य गंगा मैदान के पुरातत्त्व तथा कृषक परम्परा के उद्भव के सन्दर्भ में लहुरादेवा पुरास्थल का महत्वपूर्ण स्थान है। लहुरादेवा या लोहरादेवा पुरास्थल उत्तर प्रदेश के सन्त कबीर नगर जनपद में बस्ती–गोरखपुर मार्ग पर भुजैनी चौराहे से 5 किमी0 दक्षिण में जगदीशपुर गाँव के पास है (मानचित्र : 11. 1)।

यह पुरास्थल प्रारम्भ में तीन तरफ से जल से घिरा हुआ था। इसके पश्चिम और दक्षिण में सरयू नदी, उत्तर दिशा में नेपाल की तराई और पूर्व में गण्डक नदी है। अब पुरास्थल के अधिकांश भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। इस स्थल को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का कार्य गोरखपुर विश्वविद्यालय के द्वारा 1974–75 ईस्वी में सोहगौरा पुरास्थल के उत्खनन के समय बस्ती क्षेत्र में सर्वेक्षण के क्रम लाया गया (चतुर्वेदी. 1985: 59–77)। हॉलाकि इस पुरास्थल के बारे में लहुरादेवा गाँव के ही निवासी कृष्णानन्द त्रिपाठी द्वारा प्रकाश डाला गया था लेकिन इसके महत्व के बारे में सर्वप्रथम शैल नाथ चतुर्वेदी द्वारा बताया गया (चतुर्वेदी. 1980: 333–334)।

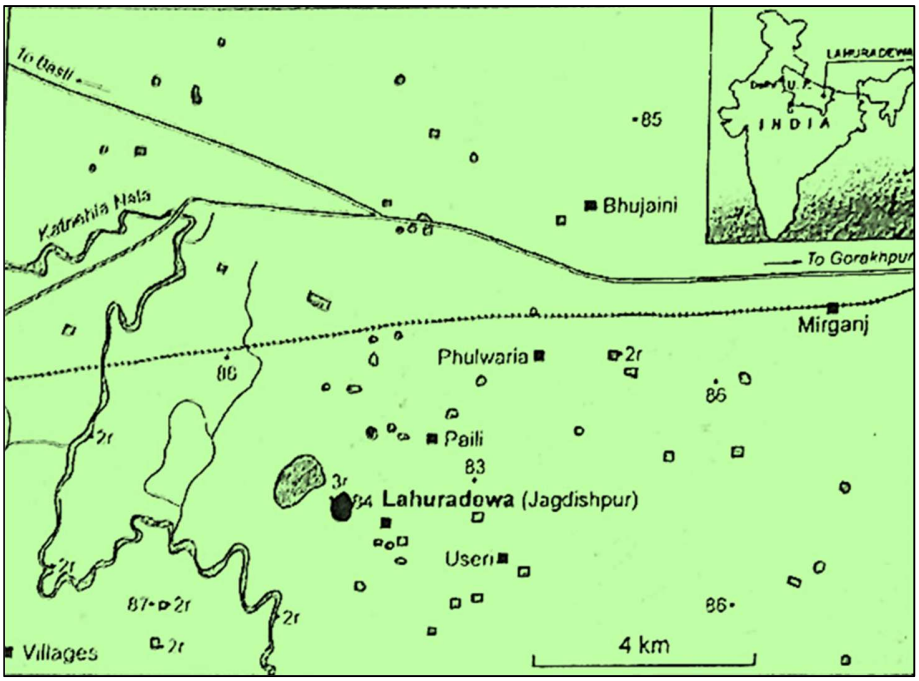

मानचित्र 11.1: लहुरादेवा पुरास्थल का मानचित्र

चित्र संख्या 11.1: लहुरादेवा पुरास्थल का विहंगम दृश्य

वर्तमान में पुरास्थल के ऊपर एक समयामाई का मन्दिर टीले के पश्चिमी भाग में स्थित है। टीले का विस्तार 200 x 140 मीटर के क्षेत्रफल में तथा ऊँचाई 4 मीटर की है (चित्र संख्या: 11.1) (तिवारी एवं अन्य. 2001–02: 54)। इसके बाद पुरास्थल का बहुत से पुरात्तत्वविदों द्वारा समय–समय दौरा किया गया तथा इसके पुरातात्विक महत्व का आकलन किया गया (सिंह एवं अन्य. 1990: 69–82; तिवारी एवं मणि. 1996: 149–168)। अन्ततः इस पुरास्थल का उत्खनन कार्य उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग की ओर से राकेश तिवारी के निर्देशन में 2001–2002 ईस्वी में करवाया गया (तिवारी एवं अन्य. 2001–2002: 54–62)। उत्खनन के परिणामस्वरूप पाँच सांस्कृतिक कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ जो निम्न हैं –

1. **नवपाषाण काल (प्रारम्भिक कृषक अवस्था)**
2. **ताम्रपाषाण काल (विकसित कृषक अवस्था)**
3. **प्रारम्भिक लौहकाल (अत्यधिक विकसित कृषक अवस्था)**
4. **उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड**
5. **प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल**

प्रथम काल नवपाषाणकालीन संस्कृति से सम्बन्धित है जिसका 40 से 45 सेमी0 का मोटा जमाव मिला है। इस प्रथम काल के जमाव को जमाव की प्रकृति, रेडियो कार्बन तिथि और सांस्कृतिक–भौतिक अवशेषों के आधार पर दो उपकालों में बाटा गया है। प्रथम उपकाल 'अ' और प्रथम उपकाल 'ब'। प्रथम उपकाल का जमाव सबसे निचला जमाव है जो कंकड़ और बलुई मिट्टी का मिश्रण है। इस जमाव से मृदभाण्डों के टुकड़े, कुछ जली–अधजली और बिना जली हड्डियाँ, चारकोल के छोटे–छोटे टुकडे, जली मिट्टी के छोटे ढ़ोके, पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़े तथा कछुआ का कवच प्राप्त हुआ है (तिवारी व अन्य. 2001–001:55)। इस काल को 7000–2000 ई0 पू0 के बीच का माना गया है (तिवारी. 2016: 22)।

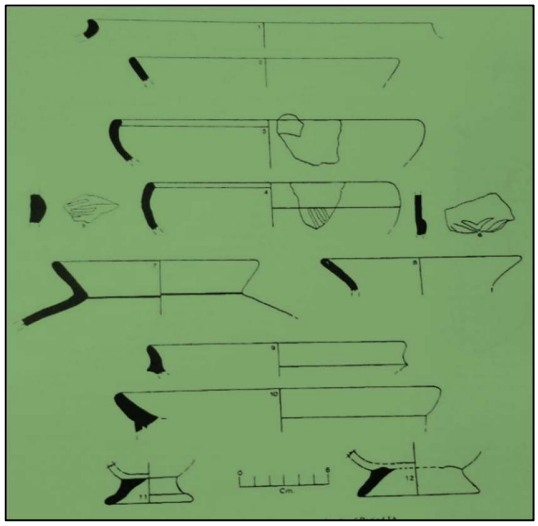

चित्र संख्या 11.2: लहुरादेवा से प्राप्त मृद्भाण्डों का रेखाचित्र (तिवारी व अन्य. 2006)

प्रथम काल 'अ' से प्राप्त मृदभाण्डों में लाल पात्र और लाल व काले पात्र हस्तनिर्मित अपरिष्कृत अवस्था में मिलते हैं (चित्र संख्या :11.2)। इसमें काले व लाल पात्र 50%के लगभग मिलते है। इन पात्रों की बाहरी सतह पर रस्सी छाप का अलंकरण किया गया है (चित्र संख्याः 11.6) जो प्रथम उपकाल 'अ' की मुख्य विशेषता है (तिवारी व अन्य. 2006: 36)। कुछ पात्रों के टुकड़ों पर उकेरे हुए अलंकरण मिले हैं तथा कुछ पर लाल रंग का महीन लेप मिलता है। इस काल के प्रमुख पात्रों में बाउल–ऑन–स्टैंड, जलपात्र, डिश–ऑन–स्टैंड और घुंडीदार कटोरे हैं।

प्रथम उपकाल 'ब' में कुछ अलग आकार के पात्र का समावेश होता है जैसे बीकर, छिद्रित पात्र (चित्र संख्याः 11.7) और टोंटीदार हॉडियाँ तथा पहले काल में मिलने वाले पात्र भी अच्छी गुणवत्ता के साथ मिलने लगते हैं (तिवारी, 2016: 24) (चित्र संख्याः 11.3)। हस्तनिर्मित मृदभाण्ड के साथ–साथ बाद में धीमी चाक पर भी उद्देश्य के अनुसार पात्र को बनाया जाने लगा है (सिंह. 2014:192)। विभिन्न प्रकार के काले व लाल और लाल मृदभाण्डों में एकरूपता देखी जाती है और कुछ मृदभाण्डों के टुकड़ों पर एक ओर से कहीं–कहीं लाल और काले चिकने लेपन तथा एक ओर से मार्जन (Burnishing) करने का प्रमाण मिलता है। कुछ अधपके बर्तन भी मिलते हैं। कुछ पर चित्रण और कुछ पर उकेर कर अलंकरण किया गया है (सिंह 2010:87)।

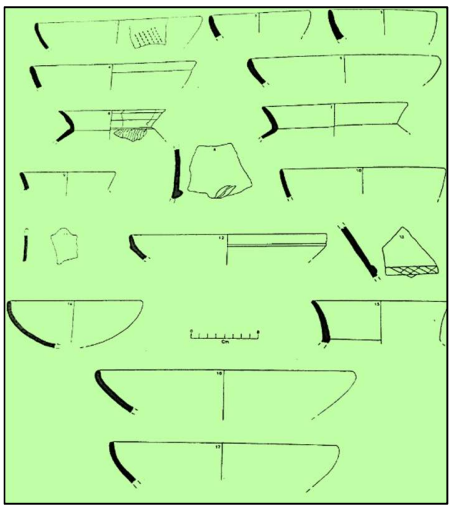

चित्र संख्या 11.3: लहुरादेवा से प्राप्त प्रमुख पात्रों के आकार (तिवारी, 2001, 2002 : 62)

चित्र संख्या 11.4: सिंग

चित्र संख्या 11.5: कछुआ की खोपड़ी

चित्र संख्या 11.6: रस्सी छाप मृद्भाण्ड

चित्र संख्या 11.7: छिद्रित पात्र

सांस्कृतिक सामग्रियों में सूक्ष्म से मध्यम आकार के सेलखड़ी, पाषाण, जली हुई तथा बिना जली हुई अस्थियों के बने हुए मनके प्राप्त होते हैं। अन्य पुरावशेषों में मिट्टी के हथगोले तथा हड्डी के वाणाग्र मिलते हैं। उपकाल प्रथम 'अ' के सांस्कृतिक अवशेषों में कुछ पाषाणिक कलाकृतियाँ शामिल हैं। उनमें एक पाषाणिक अवयव बलुए पत्थर का टुकड़ा है जो हिमालय की तलहटी में स्थित पहाड़ियों का प्रतीत होता है। एक अन्य छोटा सा अवयव है जो विन्ध्य पहाड़ियों का लगता है। दोनों ही सुदूर उत्तर एवं दक्षिण से उनके सम्बन्ध को दर्शाने के लिए महत्वपूर्ण प्रमाण हैं (तिवारी. 2016:23)।

आवासीय प्रमाण के रूप में यहाँ से मिट्टी के टुकड़े के साथ बाँस बल्लियों के निशान मिले हैं तथा

स्तम्भ–गर्तो में भी बाँस के निशान मिले है जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग बाँस–बल्लियों से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे जिसके टट्रों पर मिट्टी की लीपा–पोती की जाती थी। झोपड़ियों के आवासीय फर्श से पशुओं की हड्डियाँ, सिंग (चित्र संख्याः 11.4) एवं कछुआ की खोपड़ी (चित्र संख्याः 11.5) आदि की भी प्राप्ति हुई है (तिवारी व अन्य. 2002–03 : प्लेट 4,6)।

प्रथमकाल के उपकाल 'अ' से कुछ कार्बनीकृत पदार्थ मिले हैं जिसे छलनी विधि से अलग किया गया था जिसका अध्ययन बीरबल साहनी संस्थान के के0एस0 सारस्वत द्वारा किया गया। इसमें वन्य कृषि विधि द्वारा उत्पन्न चावल (ओराइजा सटाइवा और ओराइजा रूफिपोगन) के दानों की प्राप्ति हुई। इन कार्बनीकृत दानों की भूसी के एक पिंड का ए0एम0एस0 (एक्सीलेरेटेड माँस स्पेक्ट्रोमेट्री) तिथि विधि से 6,409 ई0 पू0 तिथि निर्धारण किया गया (तिवारी. 2016: 23) जो सम्भवतः भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे प्राचीन चावल की खेती का साक्ष्य है। इसके अलावा कंगनी, बथुआ, सक्रू, आर्टिमिस, फ्लैटसेज तथा कैथफ्लाई के अवशेष प्राप्त हुए हैं (तिवारी. 2016: 23)। यहॉ से दो कार्बन चौदह तिथियाँ भी प्राप्त हुई हैं–

1. BS-1951: BP 5320±90 (CAL bc 4220, 4196, 4161)
2. BS-1966: BP 6290±160 (CAL bc 5298, 4196, 4161)

इस काल के दूसरे उपकाल 'ब' से प्राप्त कार्बनीकृत चारकोल से भी कार्बन चौदह तिथि ज्ञात हैं (तिवारी. 2001: 55–56)।

BS-1950: BP 3750±90 yr (Cal bc 2135, 2079, 2056 वर्ष)

उपर्युक्त तिथियों के आधार पर इस स्थल पर मानवीय क्रियाकलाप और कृषि करने का प्रयास प्रारम्भिक नूतन काल से लगभग छठवीं और 5वीं शताब्दी के बीच ही प्रारम्भ हो चुका था (सिंह. 2010: 87)। इस प्रकार हम मोटे तौर पर कह सकते है कि लहुरादेवा पुरास्थल पर मानव 7000 BC में रहना प्रारम्भ कर चुका था। रस्सी छाप मृदभाण्ड के साथ चावल की खेती एक दूसरे से सम्बन्धित है क्योंकि शीतला प्रसाद का मानना है कि लहुरादेवा के साथ इस क्षेत्र के अन्य पुरास्थलों से भी चावल और रज्जु छाप मृदभाण्ड साथ–साथ मिले हैं। यह केवल भारत में नहीं बल्कि कोस्टल चाइना, जापान आदि देशों में भी मिलते हैं (सिंह, 2014: 192)।

सोहगौरा– (26⁰ 30′ 30′′उत्तरी अक्षांश, 83⁰ 15′ 25′′पूर्वी देशान्तर)

सोहगौरा पुरास्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के बासगाँव तहसील में आमी और ताप्ती नदियों के संगम पर स्थित है। यह मध्य गंगा मैदान का प्रथम उत्खनित स्थल है जिसका उत्खनन 1961–62 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के जी0सी0 पाण्डेय के मार्गदर्शन में एस0एन0 चतुर्वेदी और एस0एन0 त्रिपाठी द्वारा करवाया गया (आई.ए.आर.1961: 62–56) (चित्र संख्याः 11.8)। इस उत्खनन के द्वारा यहाँ ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति तक के साक्ष्यों पर प्रकाश डाला जा सका, इसकी पहचान यहाँ से प्राप्त सफेद लेपित काले व लाल मृदभाण्डों से की गयी है इसके साथ और भी पात्र प्राप्त किये गये हैं जिसमें काले स्लीप लगे पात्र, धूसर रंग का पात्र, बिना रंगे हुए और सादे काले व लाल पात्र, सादा लाल पात्र आदि की प्राप्ति हुई है। प्रथम उत्खनन से सोहगौरा से चार कालों की प्राप्ति हुई है (आई.ए0आर0 1961–62:56) जो निम्नवत् है–

1. ताम्रपाषाण काल
2. एन0बी0पी0डब्लू काल
3. कुषाण काल
4. मध्यकाल

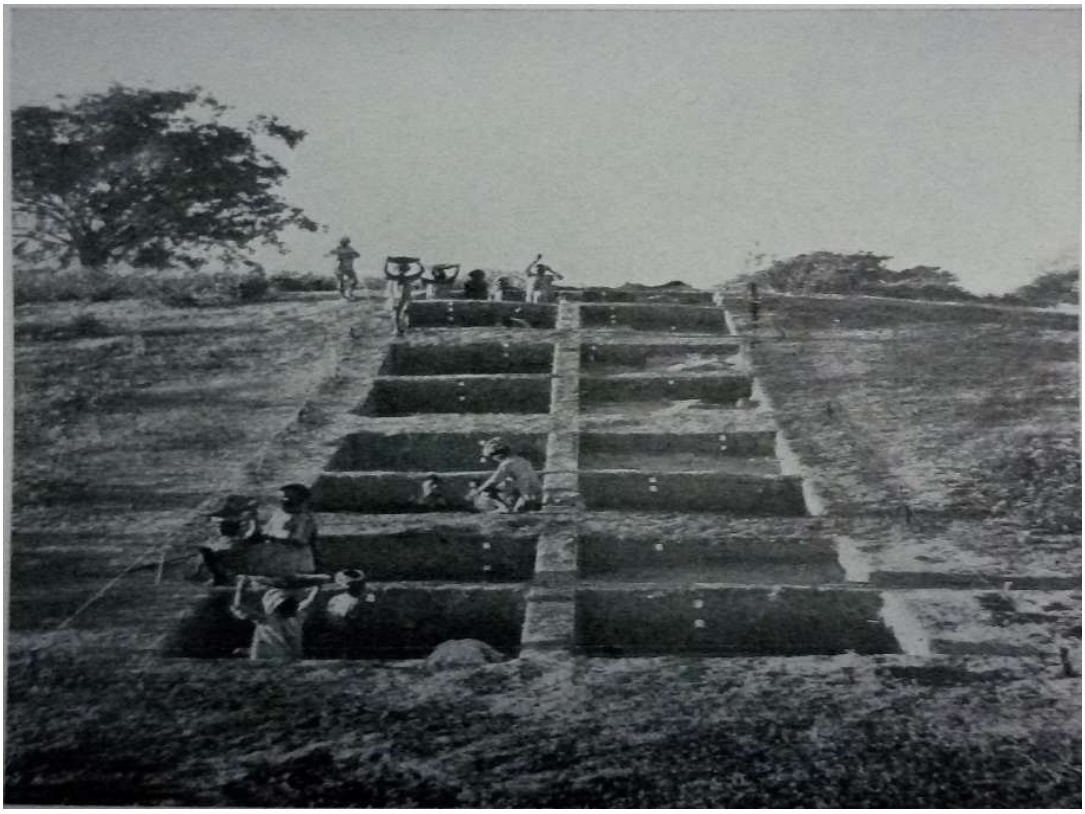

चित्र संख्या 11.8: पुरास्थल का दृश्य

पुनः इस पुरास्थल का उत्खनन लगभग 23 सालों बाद 1974–75 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व और संस्कृति विभाग के एस0एन0 चतर्वेदी, सर्वश्री प्रेमसागर और कृष्ण के द्वारा वी0एम0 पाठक के कुशल निर्देशन में किया गया तो एक नये सांस्कृतिक चरण पर प्रकाश पड़ा (आई0ए0आर0 1974–75:46; चतुर्वेदी. 1985: 101–108)। जब टीले के उत्तरी–पश्चिमी कोने पर 5 मीटर वर्ग के ट्रेंच का उत्खनन किया गया तो सौहगौरा पुरास्थल का पुरा सांस्कृतिक क्रम प्रकाश में आया। ट्रेंच के छोटे भाग में ही सबसे निचले चरण तक खुदाई हुई है जिससे प्रारम्भिक भौतिक संस्कृति के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं उपलब्ध हो पायी। यहाँ का सम्पूर्ण सांस्कृतिक जमाव 4.40 मीटर है जिसे छः कालों में विभाजित किया गया है (सिंह. 2010: 83) जो निम्नवत है–

प्रथम काल– नवपाषाण काल

द्वितीय काल– ताम्रप्राषाण काल–I

तृतीय काल– ताम्रपाषाण काल–II

चतुर्थ काल– उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड

पंचम काल– कुषाण–गुप्त काल

षष्ट काल–मध्यकालीन

इसी 4.40 मीटर के सांस्कृतिक जमाव को शीतला प्रसाद सिंह ने तथा आई0ए0आर0 के 1974–75 वाले अंक में पाँच कालों में विभाजन किया गया है। इसमें ताम्रपाषाण काल को दो चरणों में नहीं बल्कि एक ही चरण में रखा गया है (सिंह. 2014: 191; आई0ए0आर0 1974–75:46–47)। ये पाँच काल निम्नवत् है –

प्रथम काल– हाथ से निर्मित चटाई छाप मृदभाण्ड (नवपाषाण काल)

द्वितीय काल–सादे एवं लेपित काली स्लीप वाले मृदभाण्ड, सादे और लेपित काले व लाल मृदभाण्ड, भूरा एवं लाल पात्र (ताम्रपाषाण काल)

तृतीय काल– उत्तरी चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

चतुर्थ काल– कुषाण काल

पंचम काल– मध्यकालीन

यहाँ के प्रथम काल का जमाव 17 से0मी0 है जो बहुत छोटे क्षेत्र में उत्खनन से प्राप्त हुआ है जिससे इस प्रारम्भिक काल/नवपाषाण काल का कुछ ही साक्ष्य मिला है। जिनमें हस्त–निर्मित मृदभाण्ड प्रमुख है। इस मृदभाण्ड उद्योंगों में रस्सी छाप मृदभाण्ड/अपरिष्कृत किस्म के पात्र मुख्य हैं। मृदभाण्ड अधपके, मध्यम गढ़न तथा अपरिष्कृत प्रकार के मिलते हैं। यहाँ बहुत अधिक संख्या में लम्बे आकार के जले हुए मिट्टी के ढ़ोकों की प्राप्ति हुई हैं (चतुर्वेदी. 1985:103)।

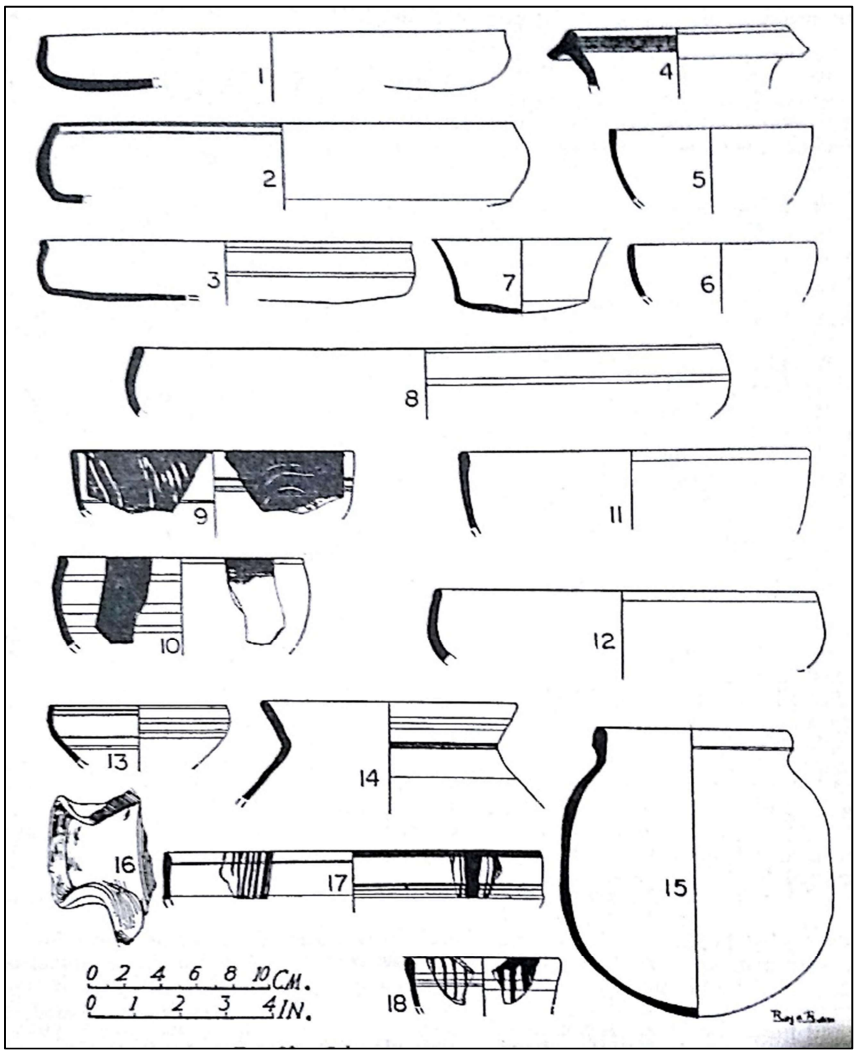

चित्र संख्या 11.9: सोहगौरा से प्राप्त मृदभाण्डों का रेखाचित्र

यहाँ का रस्सी छाप मृदभाण्ड मुख्य ध्यान देनेवाला मृदभाण्ड है। ये मृदभाण्ड दृढ़ मिट्टी में चावल की

भूसी मिलाकर बनाये गये। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि कछुए के खोपड़ी की छाप से रस्सी के छाप की तरह का अलंकरण किया जाता था (मिश्रा. 1977:108) जिससे अलंकरण पट्टी की तरह का दिखाई पड़ने लगता है। इस पट्टीदार मृदभाण्ड को नवपाषाण काल से जोड़ा जाता है (भट्टाचार्य. 2007:146)। सोहगौरा के उत्खनन से सरयूपार क्षेत्र की प्रागैतिहासिक संस्कृति प्रथम बार प्रकाश में आयी है जिसे नवपाषाण काल के रूप में चिन्हित किया गया है। इस नवपाषाणिक स्तर से कोई कार्बन–14 तिथि नहीं निकाली गयी है। यद्यपि सोहगौरा के प्रथमकाल का अन्त 1900 ई0पू0 के लगभग माना जाता है तथापि इस संस्कृति का प्रारम्भिक काल 2500 ई0पू0 के लगभग माना जा सकता है (चतुर्वेदी. 1985:107; नसीम. 2010:152)।

यहाँ के द्वितीय एवं तृतीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से है। द्वितीय काल को ''ताम्रपाषाण काल प्रथम'' तथा तृतीय काल को ''ताम्र पाषाण काल द्वितीय'' के नाम से जाना जाता है। यह विभाजन मुख्यतया मृदभाण्डों के आकार–प्रकार और बनावट को लेकर किया गया है (चतुर्वेदी. 1985:103)। ताम्रपाषाणिक प्रथम काल का जमाव 55 से0मी0 का है। इस काल में मृदभाण्डों का प्रारम्भिक प्रकार रस्सी छाप मृदभाण्ड और रस्टिकेटेड पात्रों के रूप में मिलता है। कुछ नयी पात्र परम्पराओं का प्रचलन भी इस काल में दिखाई देता है जिसमें कृष्ण–लेपित पात्र परम्परा, कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा, मार्जित धूसर पात्र परम्परा तथा लाल पात्र परम्परा है (सिंह. 2010: 116)। कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा के प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरा, जार, और डिश–ऑन–स्टैण्ड हैं (चित्र संख्याः 11.9) । कृष्ण–लेपित पात्रों में सफेद रंग से लम्बवत रेखाओं द्वारा चित्रित कटोरा और जार प्रमुखता से मिले हैं। लाल पात्रों में कटोरा, जार, तसला और छिद्रित पात्रों का प्रचलन था।

इस काल का मानव अपने आवास का निर्माण बाँस –बल्लियों के द्वारा झोपड़ियों के रूप में करता था। मिट्टी को पीट–पीट कर फर्श बनाने तथा जमीन को खोदकर चुल्हे को बनाने का प्रमाण आवासीय क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। इस काल से प्राप्त अन्य अवशेषों में हड्डी पर बने हुए वाणाग्र, तांबे का बना हुआ गोलाकार रॉड, टेराकोटा, अगेट, जैस्पर और कार्नेलियन से बने मनके आदि उल्लेखनीय हैं।

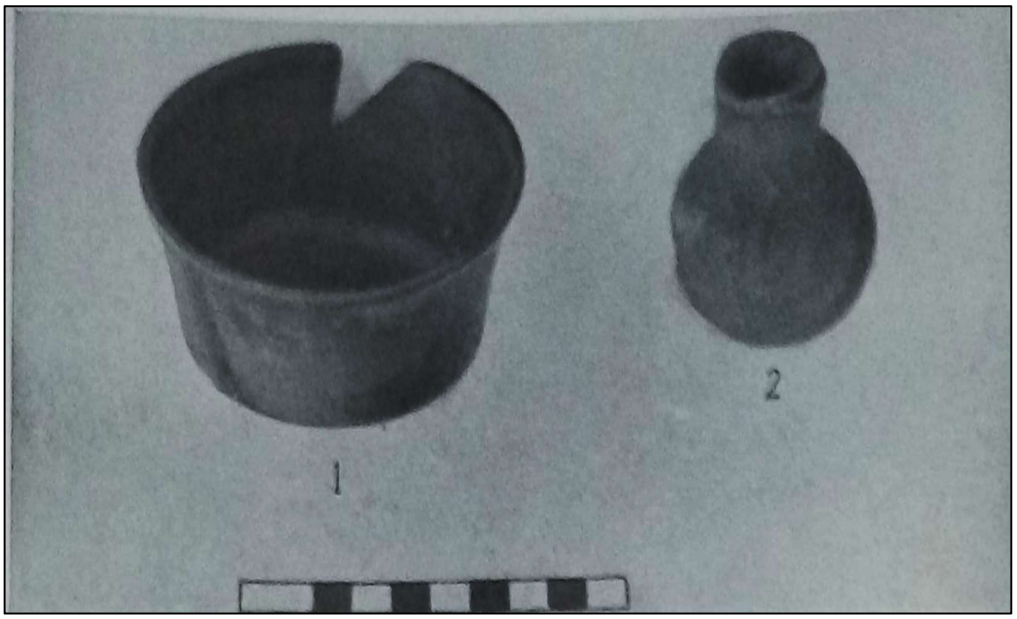

चित्र संख्या 11.9 : सोहगौरा से प्राप्त ताम्रपाषाणिक मृद्भाण्ड

इस सांस्कृतिक काल की तिथि लगभग 1900 से 1200 ई0 पू0 के मध्य निर्धारित की गयी है। यहाँ से प्राप्त दो रेडियो कार्बन तिथियाँ (PRL No 178)इस प्रकार हैं– द्वितीयकाल एवं तृतीय काल के संधि स्थल की तिथि 1330 ±110 ई0पू0 है तथा दूसरी तृतीय काल के नीचले स्तर की (PRL No 179) 1230 ±130

ई0पू0 है। इस आधार पर अगर तीसरे काल का प्रारम्भ मोटे तौर पर 1500 ई0 पू0 माना जाय और 55 से0मी0 के द्वितीय काल के प्रारम्भ को 400 वर्ष पुराना माना जाय तो इस काल का प्रारम्भ 1900 ई0पू0 के लगभग माना जा सकता है। यदि द्वितीय काल और तृतीय काल तीनों की संयुक्त तिथि निकाली जाय तो वह 1900 से 800 ई0 पू0 के मध्य निर्धारित की जा सकती है (चतुर्वेदी. 1985: 107)।

11.5 पिपरहवा

पिपरहवा उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जिले में, सिद्धार्थनगर शहर के पास स्थित एक गाँव है। यह ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्थल बुद्ध की मातृभूमि के केंद्र में स्थित है और लुम्बिनी के विश्व धरोहर स्थल से 9 मील दूर है, जिसे गौतम बुद्ध का जन्म स्थान माना जाता है। पहले बस्ती जनपद में स्थित गनवरिया और पिपरहवा स्थलों का उत्खनन से 1971–72 ईसवी से 1976–77 ईसवी तक भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के के0 एम0 श्रीवास्तव के द्वारा करवाया गया था। पिपरहवा जहाँ एक बड़ा बौद्ध तीर्थ स्थल है के उत्खनन से कपिलवस्तु से अंकित मुहरें उपलब्ध हुई है, जिसके आधार पर इसकी पहचान शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के रूप में की गई है। लगभग सात मीटर मोटे यहाँ के आवासीय जमाओं को चार सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है –

11.5.1 प्रथम सांस्कृतिक काल

इस काल को आठवीं शताब्दी ईसा पुर्व से छठी शताब्दी ई0पू0 के बीच रखा गया है। इस कालखंड से धूसर पात्र परंपरा, कृष्ण लेपित पात्र परंपरा और लाल पात्र परंपरा के पात्र खंड प्राप्त हुए हैं। इस काल के आवासों का निर्माण घास–फूस, बांस–बल्ली और मिट्टी से किया गया है। उत्खनन में मिट्टी, शीशे और अर्धरत्नों के मनके तथा कुछ शीशे की चूड़ियाँ भी प्राप्त हुई थी। कोई अन्य पाषाण उपकरण नहीं मिला था। लेकिन लोहे और तांबे की सामग्रियाँ प्राप्त हुई थी। पहली बार यहाँ से लोहे का फाल प्राप्त हुआ।

11.5.2 द्वितीय सांस्कृतिक काल

यहाँ का द्वितीय सांस्कृतिक काल छठी शताब्दी ईसा पुर्व से द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के मध्य माना गया है। इस कालखंड से उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। बड़े पैमाने पर रचनात्मक क्रिया कलापों के प्रमाण इस कालखंड से प्राप्त हुए हैं। इस काल के परवर्ती चरणों से कई बड़े कमरों और बरामदों से युक्त बड़े और छोटे घर प्राप्त हुए हैं। पशु और मानव मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी के मनके, चूड़ियाँ, थपुआ, गाड़ी का पहिया और खिलौना–गाड़ी आदि प्राप्त हुए हैं। अर्धरत्नों और शीशे के मनके इस चरण से भी प्राप्त होते हैं। इसके परवर्ती चरण से सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं।

11.5.3 तृतीय सांस्कृतिक काल

तृतीय सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध शुंग कालीन संस्कृति से है इस काल से मृदभाण्ड पशु और मानव मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी के मनके, चूड़ियाँ, थपुआ, गाड़ी का पहिया और खिलौना गाड़ी आदि प्राप्त हुए हैं।

चतुर्थ सांस्कृतिक काल से कुषाण कालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं।

अतः कह सकते हैं कि स्थल से 800 ई0पू0 से लेकर कुषाण कालीन संस्कृति तक के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। पिपरहवा अपने पुरातात्त्विक अवशेषों और उत्खनन से प्राप्त बुद्ध की राख एक बड़ा स्तूप के लिए ज्यादा प्रसिद्ध है। इस स्थल पर एक बड़ा स्तूप और कई मठों के खंडहर और एक संग्रहालय भी स्थित है। गनवरिया के निकटवर्ती टीले पर प्राचीन आवासीय परिसर और मंदिर पाए गए।

11.5.4 बुद्ध का परिनिर्वाण

पिपरहवा स्तूप का इतिहास बुद्ध के निधन से शुरू होता है। महापरिनिब्बान सुत्त में कहा गया है कि 480 ई0पू0 के आसपास उनके दाह संस्कार के बाद एक विवाद खड़ा हो गया था। कपिलवत्थु के शाक्य

लोगों को पता चला कि कुशीनगर में भगवान बुद्ध का निधन हो गया है और उन्होंने कुशीनगर के मल्लों को संदेश भेजा, जिसमें कहा गया कि भगवान बुद्ध हमारे कुल में सबसे महान थे। हम अवशेषों का एक हिस्सा पाने के हकदार हैं। हम उनके ऊपर एक स्तूप बनवाएंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे। मल्लों ने उत्तर दिया भगवान बुद्ध का निधन हमारे शहर में हुआ है। हम अवशेषों का कोई भी हिस्सा नहीं देंगे। तब ब्राह्मण डोना ने उन्हें बुद्ध की शिक्षाओं के बारे में याद दिलाने के लिए हस्तक्षेप किया और सुझाव दिया कि वे संघर्ष, युद्ध और रक्तपात से बचें और अवशेषों को आठ राज्यों के बीच बांट दें और एक हिस्सा माँगें ताकि दूर–दूर तक स्तूप बन सकें। बुद्ध के अपने शाक्य वंश को भी सात अन्य राज्यों की तरह हिस्सा मिला। उन्होंने उन्हें आठ स्तूपों में जमा किया, जिनमें से दो और स्तूप दाह संस्कार की चिता की राख और उस बर्तन के ऊपर बनाए गए, जिसमें अस्थियाँ और राख इकट्ठी की गई थी। शाक्यों द्वारा स्तूप बनवाए जाने के बाद धीरे–धीरे शताब्दियों में बुद्ध की मातृभूमि से बौद्ध धर्म के सभी चिह्न गायब हो गए। ब्राह्मण–हिंदू पुनरुत्थान ने बौद्ध धर्म के पतन को देखा, जो थाईलैंड, श्रीलंका, चीन, कंबोडिया आदि में चला गया। फारसियों, अरबों, मंगोलों, मुगलों और विभिन्न हूणों के आक्रमणों के दौरान मूर्तियों को नष्ट कर दिया गया या उनके सिर काट दिए गए।

11.5.5 विलियम क्लैक्सटन पेप्पे द्वारा उत्खनन

2000 से अधिक वर्षों तक शाक्यों द्वारा निर्मित स्तूप बरकरार रहा और नेपाल की सीमा के भारतीय हिस्से में पिपराहवा गाँव के बाहर वनस्पति से ढका रहा। 1897 में एक बड़े कोट या मिट्टी के टीले ने विलियम क्लैक्सटन पेप्पे का ध्यान आकर्षित किया, जो एक ब्रिटिश औपनिवेशिक इंजीनियर और जमींदार थे, जो बुद्ध के जन्मस्थान को चिह्नित करने वाले लुम्बिनी स्तंभ की हाल ही में खोज से प्रेरित हुए थे। 1896–97 के भारतीय अकाल ने इस क्षेत्र को तबाह कर दिया था, जिससे उनकी संपत्ति पर किरायेदार किसानों को काम की जरूरत थी। पेप्पे ने एक टीम का नेतृत्व किया।झाड़ियों और जंगल को साफ करने के बाद, उन्होंने टीले के बीच से एक गहरी खाई बनाने का काम शुरू किया। 18 फीट की ठोस ईंटों की खुदाई करने के बाद, वे एक बड़े पत्थर के संदूक के पास पहुँचे, जिसमें पाँच छोटे फूलदान थे, जिनमें हड्डियों के टुकड़े, सोने के गहने और जटिल रूप से गढ़े गए गहने थे।इन अवशेषों में 800 रत्न और अर्ध–कीमती पत्थर (कई आकार और ड्रिल किए गए), रॉक क्रिस्टल, मोती, शंख, मूंगा, उभरा हुआ शीट सोना और चांदी, दानेदार सोना, साथ ही हड्डी और राख जिसे बहुत पवित्र माना जाता है, इत्यादि थे। यहाँ से शिलालेख की भी प्राप्ति हुई है।

इस शिलालेख के पहले के अनुवादों में सुकीर्ति शब्द को उचित नाम बुद्ध या 'अच्छी ख्याति वाले' या 'अच्छे नाम वाले' के रूप में संदर्भित करने की चर्चा की गई थी, वहीं फॉक ने निधाने शब्द पर ध्यान केंद्रित किया है। इसका मतलब सिर्फ कंटेनर या अवशेष बॉक्स नहीं है, फॉक को इसका मतलब बुद्ध के अवशेषों के लिए शाक्यों द्वारा स्थापित पूरे स्तूप निर्माण के रूप में पढ़ने के लिए सबूत मिलते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालता है कि पिपरहवा में पाए गए अवशेषों में बुद्ध की राख का एक हिस्सा था। यह शिलालेख से प्रामाणिक है।मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट के ट्री एंड सर्पेंट प्रदर्शनी के कैटलॉग में क्यूरेटर जॉन गाइ लिखते हैं कि 'यह अनुमान लगाना उचित है कि पिपरहवा अस्थि अवशेष ब्राह्मण द्रोण द्वारा मूल विभाजन में शाक्य वंश के हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं, जैसा कि अवशेष शिलालेख में निहित है, और सात जीवित अवशेष कंटेनर और उनकी कीमती सामग्री अशोक के शासनकाल के दौरान या उसके तुरंत बाद ईंट में स्तूप के पुनर्निर्माण के समय रखने का प्रतिनिधित्व करती है।'

11.5.6 स्तूप का काल निर्धारण

1997 में, पुरालेखशास्त्री और पुरातत्वविद् अहमद हसन दानी ने उन चुनौतियों का उल्लेख किया, जो अलग–अलग खोजों से पुरालेखीय अध्ययन और तिथि निर्धारण सामग्री के लिए मौजूद हैं। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि 'शिलालेख को निश्चित रूप से दूसरी शताब्दी ई0पू0 के पूर्वार्ध में दिनांकित किया जा सकता है' लेकिन ध्यान दिया कि बस्ती जिले, यूपी (उत्तर प्रदेश) में पाए गए पिपरहवा फूलदान में एक शिलालेख है जो लापरवाही से स्टीटाइट पत्थर पर खरोंचा गया है। चूंकि शिलालेख बुद्ध के अवशेषों को संदर्भित करता है, इसलिए इसे मूल रूप से मौर्य काल से पहले का माना जाता था, लेकिन अशोकन ब्राह्मी से तुलना करने पर

इसे तीसरी शताब्दी ई0पू0 तक लाया गया है।दानी द्वारा शिलालेख की तिथि निर्धारण के अनुसार बुद्ध के ऐतिहासिकता की स्वीकृत 480 ई0पू0 मृत्यु के लगभग 250 वर्ष बाद का है, जो बताता है कि स्तूप स्वयं बुद्ध के जीवनकाल के बाद बनाया गया था। समय के अंतर को सबसे अधिक संभावना सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म में धर्मांतरण द्वारा समझाया गया है। अशोक महान एवं क्रूर सम्राट था, जिसने लगभग 268–232 ई0पू0 तक शासन किया। माना जाता है कि उसने सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने भाइयों को मार डाला था, लेकिन कलिंग युद्ध हुए नरसंहार लगभग 100,000 पुरुषों और जानवरों के वध के बाद उसने सभी हिंसा को त्याग दिया और बौद्ध धर्म अपना लिया। फिर उसने स्तूप बनाने और बुद्ध के अवशेषों को अपने राज्य में फिर से वितरित करने का फरमान जारी किया।

1970 के दशक तक पिपरहवा स्तूप का विकास स्थापित नहीं हुआ था। उत्खनन कर्ता के0 एम0 श्रीवास्तव जानते थे कि ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जब एक ही व्यक्ति के अवशेष दो अलग–अलग स्तरों पर स्थापित किए गए हों।उन्होंने भारतीय पुरातत्व सोसायटी के एक अभियान का नेतृत्व किया जिसने पेप्पे से भी अधिक गहराई तक खुदाई की। उन्होंने 32 इंच वर्ग और 14 इंच गहरे दो जले हुए ईंट के कक्षों में छोटी हड्डी के टुकड़ों वाले दो सोपस्टोन के ताबूत खोजे। कुछ टूटे हुए मृदभण्ड, जो ताबूतों को ढक सकते थे, उत्तरी काले पॉलिश वाले बर्तन साबित हुए, जिससे यह पता चला कि यह खोज 400–500 ई0पू0 की है, जो बुद्ध के निधन के लिए दी गई 480 ई0पू0 की तारीख के अनुरूप है।

श्रीवास्तव ने निष्कर्ष निकाला कि स्तूप का निर्माण तीन चरणों में किया गया था। पहला चरण बुद्ध की मृत्यु के तुरंत बाद शाक्यों द्वारा शुरू किया गया होगा। यह संभवतः बुद्ध के निर्देश का पालन करता था कि इसे मिट्टी के नीचे दफनाया जाए, जिसे भिक्षापात्र में चावल की तरह ढेर किया जाता है और स्तूप को चौराहे के पास बनाया जाए ताकि राहगीर अपना सम्मान देने के लिए रुक सकें और उनकी श्रद्धा से समझ और पुण्य प्राप्त हो।परिणामस्वरूप गोलाकार मिट्टी की उल्टे कटोरे के तरह की संरचना 62 फीट व्यास और 12 फीट ऊंची थी।

पेप्पे ने दूसरे अशोकन चरण का पता लगाया, जिसकी विशेषता चावल और भूसे से बनी अच्छी तरह से पकी हुई मिट्टी की ईंटें थीं और उन्हें संकेंद्रित वृत्तों में मिट्टी के मोर्टार में रखा गया था। स्तूप और उसमें रखा संदूक उच्च गुणवत्ता वाले अशोकन शिल्प कौशल के सभी लक्षण दिखाता है, लेकिन सम्राट की मृत्यु के बाद भी इसका विस्तार कई वर्षों तक जारी रहा। आधार का व्यास 116 फीट और ऊंचाई 22 फीट हो गई थी। निर्माण के तीसरे चरण के दौरान स्तूप की ऊंचाई बढ़ाई गई और आधार को चौकोर बनाया गया। स्तूप के चारों ओर मठों की इमारतें भी बनाई गईं। यह सब किसी अज्ञात तिथि पर हुआ, हालांकि सबसे अधिक संभावना है कि कुषाण काल के दौरान, अशोक के शासनकाल के लगभग दो सौ पचास साल बाद की है।

11.5.7 प्राप्त अवशेषों का विवरण

प्रिंस प्रिसदांग, जो सियाम के पूर्व राजदूत और राजा राम वी के चचेरे भाई थे, को श्रीलंका में बौद्ध भिक्षु के रूप में नियुक्त किया गया था और खोज के तुरंत बाद पिपराहवा पहुंचे। उन्हें जल्द ही पता चला कि डब्ल्यूसी पेप्पे ने अपनी खोजों को सरकार के अधीन कर दिया है।अन्य देशों में बौद्ध समुदायों के साथ साझा करने के लिए सियाम के राजा को अस्थि अवशेष दान करने के लिए ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों को राजी करने के उनके वाकपट्टू तर्कों को निचले स्तर के ब्रिटिश अधिकारियों से समर्थन मिला और उन्होंने वायसराय तक अपना रास्ता बनाया। यह एक स्पष्ट समाधान था, जो बौद्धों को खुश कर सकता था, जो परेशान थे कि हाल ही में खोजे गए बोधगया, जिसे बुद्ध के ज्ञान का स्थान माना जाता है, हिंदू नियंत्रण में रहा था। 1899 में एक समारोह आयोजित किया गया और अस्थि अवशेषों को राजा राम वी के एक दूत को सौंप दिया गया और बैंकॉक ले जाया गया। प्रिसडांग के शामिल होने के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया। अस्थि अवशेषों को तुरंत कई स्थानों पर वितरित किया गया, जिनमें बैंकॉक, थाईलैंड में गोल्डन माउंट मंदिर,म्याँमार के रंगून में श्वेडागोन पैगोडा, म्याँमार के माँडले में अराकान पैगोडा , श्रीलंका के कोलंबो में दीपादुत्तमारमा मंदिर, श्रीलंका के कालूतारा में वास्काडुवे विहारऔर श्रीलंका के अनुराधापुरा में मरीचिवाट्टा स्तूप शामिल हैं। सोने और अन्य आभूषणों के अधिकांश अवशेष प्रसाद को भारत सरकार ने कोलकाता के भारतीय संग्रहालय में

रखने को दिया है। आज, केवल एक प्रतिकृति कलश ही प्रदर्शन पर है।अवशेष प्रसाद की तस्वीरें पिपरहवा में कपिलवस्तु संग्रहालय में देखी जा सकती हैं, जहाँ बौद्ध तीर्थयात्री आते हैं।

डब्ल्यू.सी. पेप्पे को कई डुप्लिकेट आइटम रखने की अनुमति दी गई थी,जिन्हें ज्यूरिख में रिटबर्ग संग्रहालय, न्यूयॉर्क में रुबिन संग्रहालय, सिंगापुर में एशियाई सभ्यता संग्रहालय, न्यूयॉर्क में मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट और सियोल में कोरिया के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। पेप्पे ने कुछ टुकड़े राजकुमार प्रिसदांग और प्रिसदांग के बौद्ध गुरु, श्री सुबुथी को भी दिए।

16 दिसंबर 2011 को कपिलवत्थु बुद्ध अवशेषों का एक हिस्सा रतनवन मठ के संघ को भेंट किया गया। जनवरी 2012 में इनमें से कुछ अवशेषों को थाईलैंड के रतनवन मठ के बुद्ध होमेज रिक्वेरी हॉल में स्थापित किया गया। इस शुभ समारोह में अजहन सुमेधो और अजहन विराधम्मो सहित कई वरिष्ठ भिक्षुओं ने भाग लिया। 2025 में, लंदन में सोथबी के नीलामी घर ने पेप्पे परिवार में अभी भी बचे हुए रत्न अवशेषों की योजनाबद्ध बिक्री की घोषणा की। मई में, भारत ने उनकी बिक्री को रोकने के लिए कानूनी उपाय किए नीलामी स्थगित कर दी गई है।

11.5.8 कपिलवस्तु का स्थिति एवं महत्व

श्रीवास्तव ने आसपास के क्षेत्र में खुदाई जारी रखी और वह स्थान खोजा जिसे आज पिपरहवा–गनवारिया मठ परिसर के रूप में जाना जाता है। स्तूप के बाद सबसे बड़ी संरचना पूर्वी मठ है, जिसका माप 45.11मी x 41.14 मी. है, जिसमें एक आंगन और उसके चारों ओर तीस से अधिक कक्ष हैं। परिसर में एक अतिरिक्त दक्षिणी मठ, पश्चिमी मठ और उत्तरी मठ शामिल हैं।उन्हें टेराकोटा की मुहरें और एक बर्तन भी मिला, जिस पर कुषाण लिपि में एक ही किंवदंती अंकित थी, 'महान कपिलवस्तु के भिक्षुओं के समुदाय की'। इसने कुछ विद्वानों को यह विश्वास दिलाया कि आधुनिक पिपरहवा शाक्य साम्राज्य की राजधानी कपिलवस्तु के प्राचीन शहर का स्थल था, जहाँ सिद्धार्थ गौतम ने अपने जीवन के पहले 29 वर्ष बिताए थे।अन्य लोगों का सुझाव है कि कपिलवस्तु का मूल स्थल उत्तर–पश्चिम में 16 किलोमीटर (9–9 मील) दूर तिलौराकोट में स्थित है, जो वर्तमान में नेपाल में कपिलवस्तु जिला है।यह प्रश्न बौद्ध इतिहास के विद्वानों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि कपिलवस्तु शाक्य साम्राज्य की राजधानी थी। राजा शुद्धोधन और रानी मायादेवी कपिलवस्तु में रहते थे, जैसा कि उनके बेटे राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने 29 वर्ष की आयु में महल छोड़ने तक किया था।

श्रीवास्तव की टीम द्वारा बरामद किए गए अस्थि टुकड़े वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में स्थित हैं। 1978 ईस्वी में भारत सरकार ने खोज के अपने हिस्से को श्रीलंका में प्रदर्शित करने की अनुमति दी और 10 मिलियन से अधिक लोगों ने श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्हें 1993 में मंगोलिया में, 1994 में सिंगापुर में, 1995 में दक्षिण कोरिया में, 1996 में थाईलैंड में और फिर 2012 में श्रीलंका में प्रदर्शित किया गया। फरवरी 2024 में, भगवान बुद्ध के ये कपिलवस्तु अस्थि अवशेष मध्य प्रदेश के सांची से बुद्ध के दो शिष्यों, सारिपुत्त और महा मोगलाना के अवशेषों के साथ पहली बार बैंकॉक गए। संस्कृति मंत्रालय के अनुसार, 24 फरवरी से 3 मार्च के बीच दस लाख से अधिक लोगों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। 2015 में, श्रीलंका में वास्काडुवे विहार को दान किए गए पेप्पे खोज के अवशेषों ने अनुमानित 2 मिलियन भक्तों को आकर्षित किया। अक्टूबर 2015 में, भारतीय संविधान के निर्माता डॉ अंबेडकर की 60वीं वर्षगांठ मनाने के लिए भारत के नागपुर में उन्हीं अवशेषों का प्रदर्शन किया गया, जहॉ 8 मिलियन लोग श्रद्धांजलि देने पहुंचे।

11.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लहुरादेव पुरास्थल पर मानवीय क्रियाकलाप और कृषि करने का प्रयास प्रारम्भिक नूतन काल से लगभग छठवीं और 5वीं शताब्दी के बीच ही प्रारम्भ हो चुका था (सिंह. 2010: 87)। इस प्रकार हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि लहुरादेवा पुरास्थल पर मानव 7000 BC में रहना प्रारम्भ कर चुका था। रस्सी छाप मृदभाण्ड के साथ चावल की खेती एक दूसरे से

सम्बन्धित है क्योंकि शीतला प्रसाद का मानना है कि लहुरादेवा के साथ इस क्षेत्र के अन्य पुरास्थलों से भी चावल और रज्जु छाप मृदभाण्ड साथ–साथ मिले हैं। यह केवल भारत में नहीं बल्कि कोस्टल चाइना, जापान आदि देशों में भी मिलते हैं। सोहगौरा के उत्खनन से सरयूपार क्षेत्र की प्रागैतिहासिक संस्कृति प्रथम बार प्रकाश में आयी है जिसे नवपाषाण काल के रूप में चिन्हित किया गया है। इस नवपाषाणिक स्तर से कोई कार्बन–14 तिथि नहीं निकाली गयी है। यद्यपि सोहगौरा के प्रथमकाल का अन्त 1900 ई0पू0 के लगभग माना जाता है तथापि इस संस्कृति का प्रारम्भिक काल 2500 ई0पू0 के लगभग माना जा सकता है। पिपरहवा पुरास्थल के बारे में कह सकते हैं कि इस पुरास्थल से 800 ई0पू0 से लेकर कुषाण कालीन संस्कृति तक के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। पिपरहवा अपने पुरातात्त्विक अवशेषों और उत्खनन से प्राप्त बुद्ध की राख एक बड़ा स्तूप के लिए ज्यादा प्रसिद्ध है। इस स्थल पर एक बड़ा स्तूप और कई मठों के खंडहर और एक संग्रहालय भी स्थित है। गनवरिया के निकटवर्ती टीले पर प्राचीन आवासीय परिसर और मंदिर पाए गए।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*
13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
15. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0ः वाराणसी
16. जायसवाल, वी0 एवं एम0कुमार .2006. ''एक्सक्वेशन्स एट रामनगर : डिसकवरी ऑफ द सर्पोटिंग सेटलमेन्ट ऑफ एशियंट वाराणसी''. *पुरातत्त्व* नं0 36।

17. जायसवाल, विदुला, आदि काशी से वाराणसी

18. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32:* नई दिल्ली।

19. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

20. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

21. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

22. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

23. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।

24. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

25. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44,.

26. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

11.8 बोध प्रश्न

- लहुरादेवा पुरास्थल पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
- सोहगौरा पुरास्थल के सांस्कृतिक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए।
- लहुरादेवा पुरास्थल के नवपाषाणिक सांस्कृतिक संदर्भ की विवेचना कीजिए।
- पिपरहवा पुरास्थल के पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

इकाई–12 : नरहन, भूनाडीह, लखनेश्वरडीह

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 नरहन
12.4 भूनाडीह
12.5 लखनेश्वरडीह
12.5.1 लखनेश्वरडीह की मूर्तियाँ
12.5.2 पुरास्थल का सम्बन्ध
12.5.3 किला था या भव्य मंदिर
12.6 सारांश
12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.8 बोध प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

नरहन पुरास्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद की गोला तहसील में घाघरा नदी के बायें तट पर स्थित है। पुरास्थल पर दो टीले विद्यमान थे। इस पुरास्थल का निकटतम गाँव भरोह बडहलगंज–गोला मार्ग पर स्थित है। नरहन पुरास्थल पर विद्यमान दो टीलो में प्रथम टीले का दो तिहाई भाग घाघरा नदी के द्वारा काट दिया गया तथा एक तिहाई भाग में गाँव बसा हुआ है। यहाँ का प्रथम काल ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित है जिसे नरहन संस्कृति के नाम से भी जाना जाता हैं। प्रथम काल का जमाव 1 मीटर का प्राप्त हुआ है। भूनाडीह पुरास्थल बलिया जिले में बलिया शहर से 28 कि0मी0 की दूरी पर बलिया–शिकारपुर सड़क पर बहेरानाले के दायें किनारे पर स्थित है। भूनाडीह जनवान से 2 कि0मी0 की दूरी पर है। टीले का विस्तार 4 एकड़ में तथा ऊँचाई एक मीटर से अधिक है। लखनेश्वरडीह पुरास्थल के ध्वंसावशेष लगभग 15 एकड़ क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह पंरास्थल अपने वैभव काल में कई राजवंशों के उत्थान और पतन की कहानी को समाये हैं। समय के गर्भ में समाए इस किले का रहस्य सन 1949 ईस्वी में टीले पर स्थित शिव मंदिर के बगल में हल जोतते समय तब प्रकाशित हुआ जब भगवान विष्णु की लगभग 150 सेंटीमीटर ऊंची काले रंग की प्रतिमा मिली, जो यहाँ के मंदिर में प्रतिष्ठित की गई है। कहा जाता है कि यहाँ से इसी तरह की एक और विष्णु की मूर्ति मिली, जिसे भारतीय पुरातत्व विभाग ने लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। इन पुरास्थलों का विस्तृत विवेचन निम्नवत् है–

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- नरहन पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- भूनाडीह पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- नरहन के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे

- लखनेश्वर डीह पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

12.3 नरहन–(26^0 19 उत्तरी अक्षांश, 83^{0}24′ पूर्वी देशान्तर)

यह पुरास्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद की गोला तहसील में धाधरा नदी के बायें तट पर स्थित है। पुरास्थल पर दो टीले विद्यमान थे। इस पुरास्थल का निकटतम गाँव भरोह बडहलगंज–गोला मार्ग पर स्थित है। यहाँ का निकटतम रेलवे स्टेशन दोहरीघाट है। यहाँ पर उत्खनन का कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरूषोत्तम सिंह द्वारा 1983–88 तक कुल पाँच सत्रों में किया गया जिससे पाँच सांस्कृतिक कालों पर प्रकाश पड़ा, जिसकी तिथि 1300 बी0सी0 से लेकर 700 ईस्वी तक निर्धारित की गयी है (सिंह. 1994, 2010 : 117)। ये कालखण्ड निम्नवत् हैं–

प्रथम कालखण्ड– नरहन संस्कृति (श्वेतरंग से लेपित कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा)

द्वितीय कालखण्ड– कृष्ण–लेपित मृडभाण्ड

तृतीय कालखण्ड– उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड परम्परा

चतुर्थ कालखण्ड– शुंग–कुषाण कालीन संस्कृति

पंचम कालखण्ड– गुप्त कालीन संस्कृति

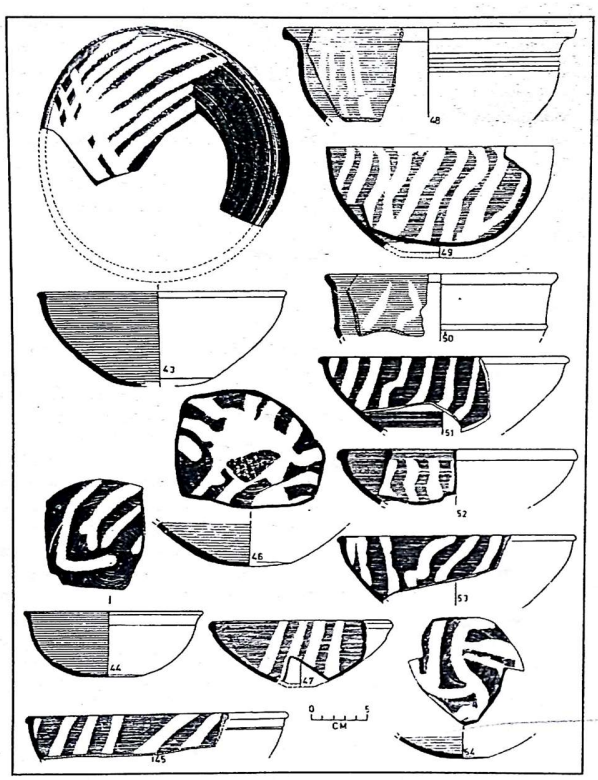

चित्र संख्या 12.1: नरहन से प्राप्त चित्रित कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड (सिंह. 201 : 119)

नरहन पुरास्थल पर विद्यमान दो टीलो में प्रथम टीले का दो तिहाई भाग घाघरा नदी के द्वारा काट दिया गया तथा एक तिहाई भाग में गाँव बसा हुआ है। गाँव की पश्चिमी दिशा में लगभग 350 x 250 मीटर के क्षेत्र में 2x2 मी0 की आठ खन्तियों में 1985 में उत्खनन कार्य किया गया जिससे प्रथम दो कालखण्डों के

जमाव प्रकाश में आये तथा जब दूसरे टीले का उत्खनन किया गया तो अन्य तीन कालखण्डों से सम्बन्धित प्रमाण प्राप्त हुए। यह टीला प्रथम टीले से 500 मीटर उत्तर–पूर्व में स्थित है (वर्मा 2003 : 92)। द्वितीय टीले को बौद्ध विहार के नाम से जाना जाता है (दुबे, 2005 : 125)।

यहाँ का प्रथम काल ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित है जिसे नरहन संस्कृति के नाम से भी जाना जाता हैं। प्रथम काल का जमाव 1 मीटर का प्राप्त हुआ है। इस जमाव से श्वेतरंग से चित्रित कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा से सम्बन्धित

पात्र प्रमुखता से मिलते हैं। कृष्ण लेपित पात्र जिस पर कभी–कभी श्वेत रंग से चित्रण किया गया था, लाल–लेपित पात्र परम्परा तथा सादी लाल पात्र परम्परा के मृदभाण्ड भी इस काल से मिलते है। प्रमुख कृष्ण लोहित पात्रों में कटोरे, घड़े तथा गहरे तसले है (चित्र संख्याः 12.1 से 12.6)। तश्तरी का स्पष्ट प्रमाण इस पात्र परम्परा में नहीं मिलता है। इन पात्रों के टुकड़ो में 20 प्रतिशत से अधिक पात्र जिसकी गढ़न पतली या मध्यम है, पर चित्रण का प्रमाण मिलता है (सिंह. 2010 : 117)।

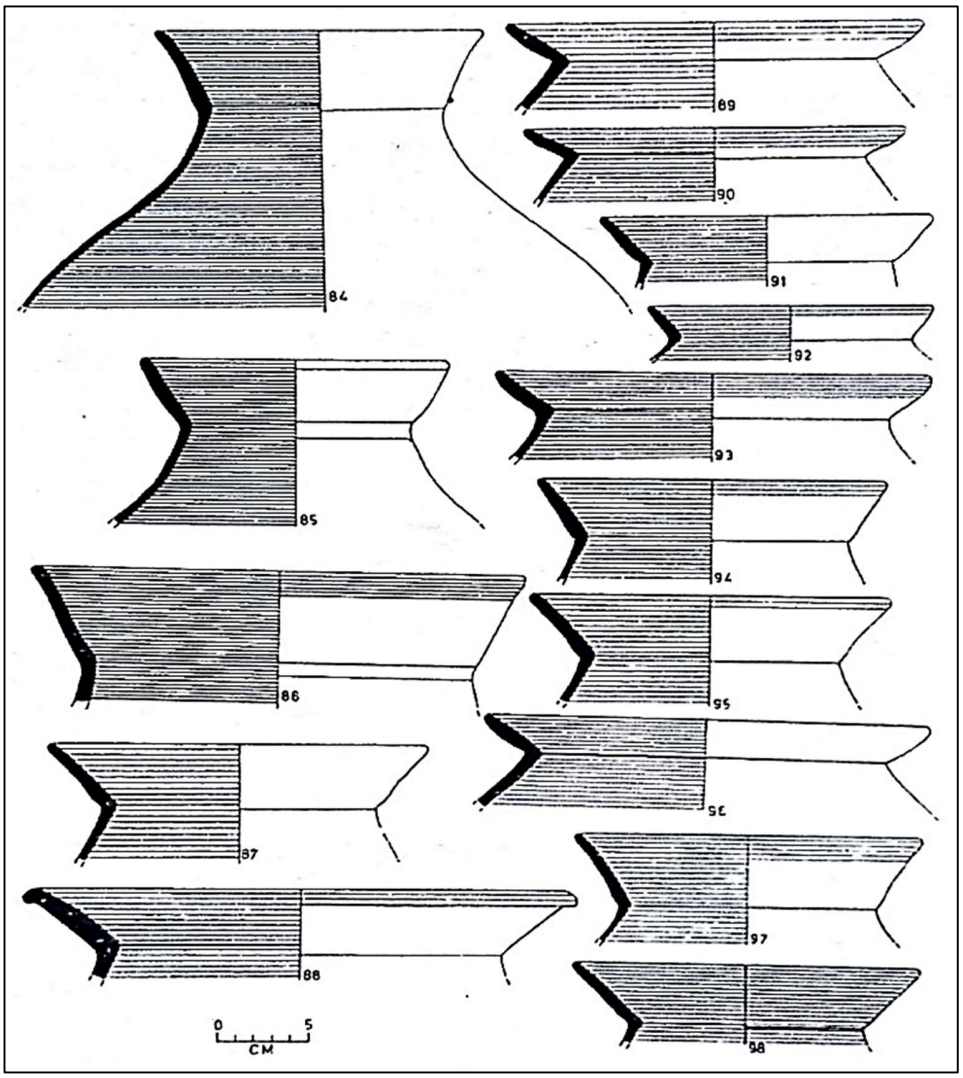

चित्र संख्या 12.2 : कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा का घड़ा (सिंह. 2010 :123)

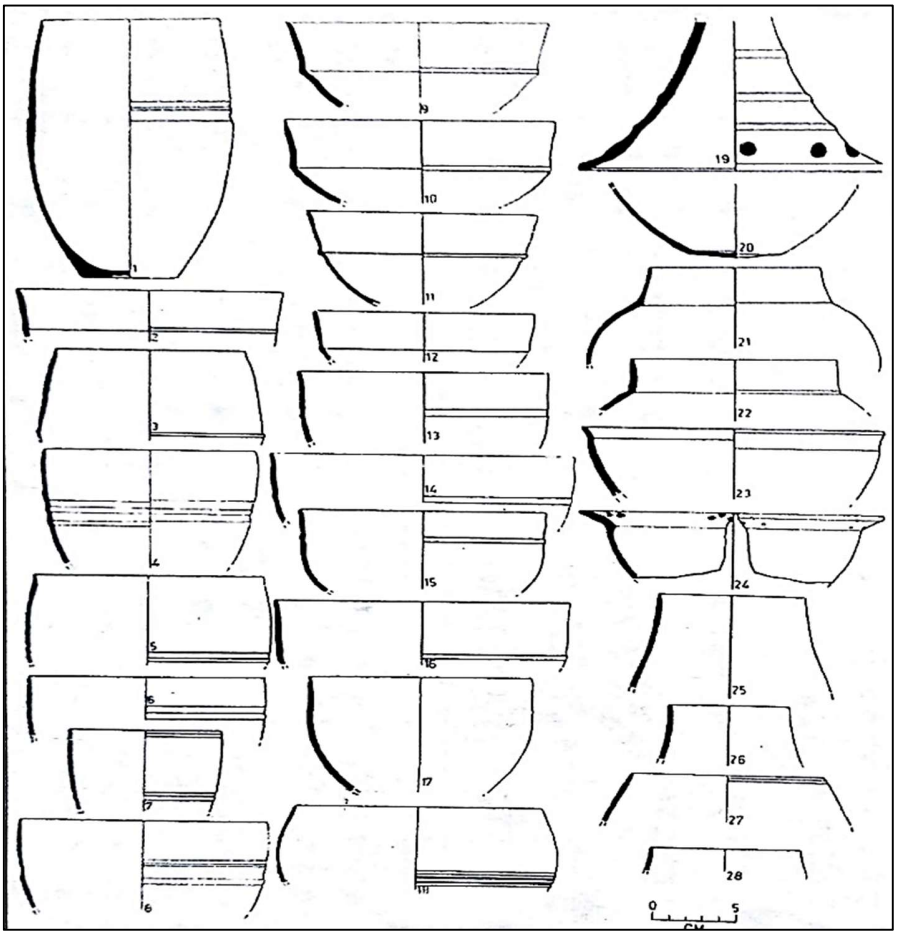

चित्र संख्या 12.3: कृष्ण–लेपित पात्र परम्परा का कटोरा एवं बीकर (सिंह. 2010 : 129)

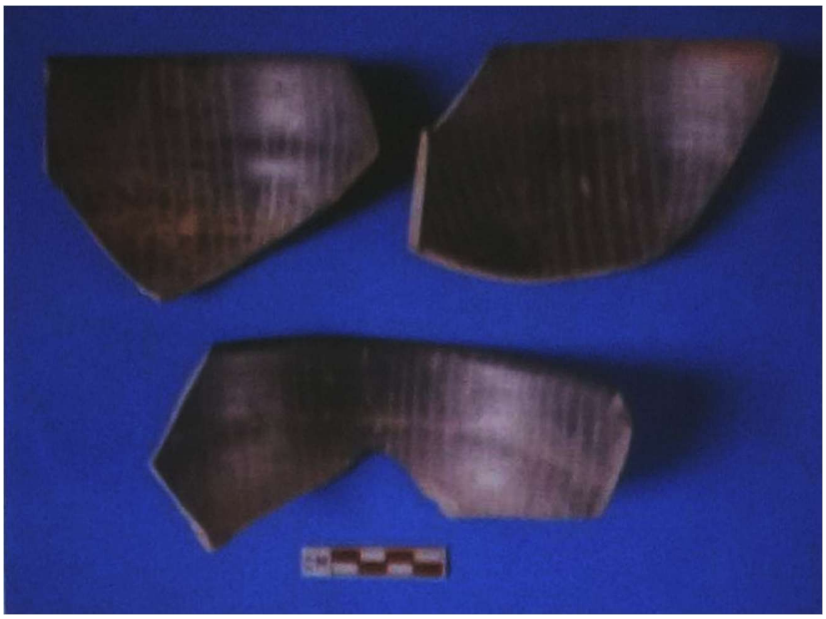

चित्र संख्या 12.4: चित्रित कृष्ण–लोहित पात्र

चित्र संख्या 12.5: चित्रित
कृष्ण–लोहित पात्र

चित्र संख्या 12.6:
चित्र कृष्ण लोहित

यहाँ पर प्रथम काल के मानव ने अपने आवास का निर्माण बॉस–बल्लियों के माध्यम से किया था। स्तम्भगर्त, मिट्टी पर बल्लियों के निशान, जली हुई मिट्टी के ढोके, मिट्टी को पीटकर फर्श बनाने तथा चूल्हे आदि के प्रमाण मिलते हैं लेकिन सम्पूर्ण घर की भूमिगत योजना नहीं मिली है। इस काल के मानव द्वारा खेती करने का कार्य किया जाता था लेकिन माँस इनके भोजन का एक महत्वपूर्ण अवयव था क्योंकि यहाँ जमीन में खोदे हुए गड्ढ़ो में मृद्भाण्ड के टुकड़े, पशुओं की हड्डियाँ, हिरन के सींग तथा राख युक्त मिट्टी मिली है। यहाँ से प्राप्त पशुओं की जली हुई हड्डियो पर काटने का निशान भी मिलता है जो इनका प्रयोग भोजन के रूप में होने की ओर संकेत करता है। प्राप्त पशुओं की हड्डियों में गाय–बैल (बॉस इण्डिकस लिनस), भेड़–बकरी (ओविस कैपरा), हिरन (क्सिज स्पीसीज) और घोड़ा पहचाने जा सके हैं।

मिट्टी के एक पिण्ड पर कटिया तथा डोरी के निशान मिले है जिससे अनुमान किया जाता है कि जलीय जीव मछली भी इनके भोजन का अंग थी। कटिया लोहे की बनाते थे तथा धागा रैगी वनस्पति से बनाते थे (वर्मा. 2003 : 93)।

यहाँ के पुरावनस्पति अवशेषों को छानन विधि द्वारा अलग किया गया है। जिससे अच्छी संख्या में अनाज के दानों के अवशेष प्राप्त हुए जो एक अच्छी खेती के प्रयास की ओर संकेत करते हैं। प्रमुख फसलों में जौ, गेहूँ और चावल तथा दालों में मटर, मूंग, चना, खेसारी तथा तैलीय फसलों में सरसों और तिल आदि का उत्पादन किया जाता था। इस चरण से कटहल के बीज की प्राप्ति एक महत्वपूर्ण प्रमाण है (सारणी संख्या:

12.1)। कटहल की जंगली प्रजाति पश्चिमी घाट की ओर उगायी जाती थी लेकिन यह प्रमाण उत्तर भारत में कृषि के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रमाण के आधार पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि नरहन के वासी इसे फल के रूप में उत्पादित करते थे (सिंह. 2010 : 118–119)। सरसों के उत्पादन का भारत में प्राचीनतम प्रमाण भी इसी पुरास्थल से प्राप्त होता है। बेर के प्रमाण भी इस स्थल से प्राप्त होते है (वर्मा. 2003 : 93)।

सारणीः 12.1 नरहन से प्राप्त पुरावनस्पति अवशेष (सिंह. 2010 : 118–119)

क्रं. सं.	वैज्ञानिक नाम	व्यवहारिक नाम
1.	होर्डियन वुलगैरे	जौ
2.	टिट्रिकम कम्पैक्टम	गेहूँ की प्रजाति
3.	टिट्रिकम ऐस्टीवम	गेहूँ (रोटी वाला)
4.	टिट्रिकम स्फैरोकोकम	(डकर्फ ह्वीट) गेहूँ
5.	ओरिजा सटाइवा	चावल
6.	पिसुम सटाइवम	मटर
7.	विग्ना रडियेटा	मूँग
8.	सिसर ऐरैटिनम	चना
9.	लेथाइसरस सटाइवस	खेसारी
10.	एर्टोकैप्रोस इटेग्रीफो–लियस	कटहल

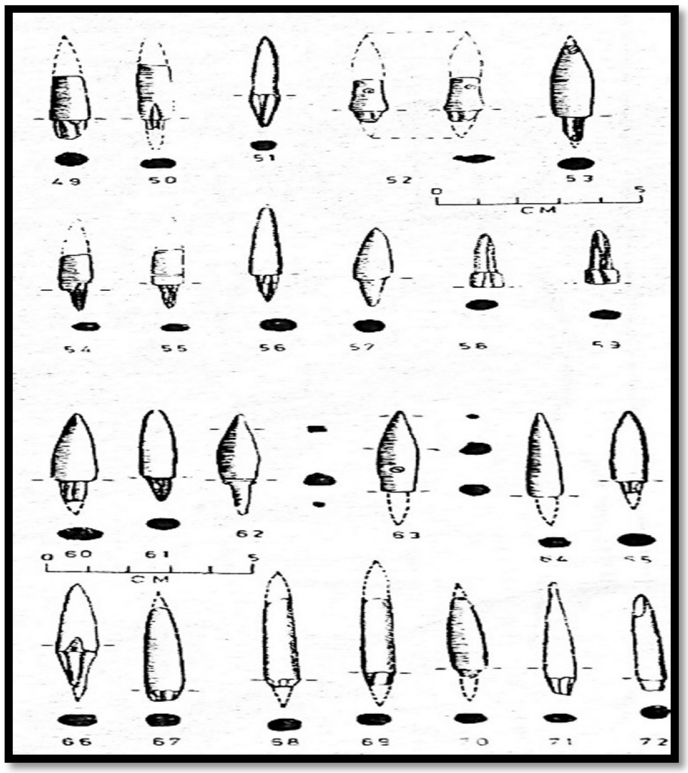

चित्र संख्या 11.7: सॉकेट युक्त अस्थि अवशेष

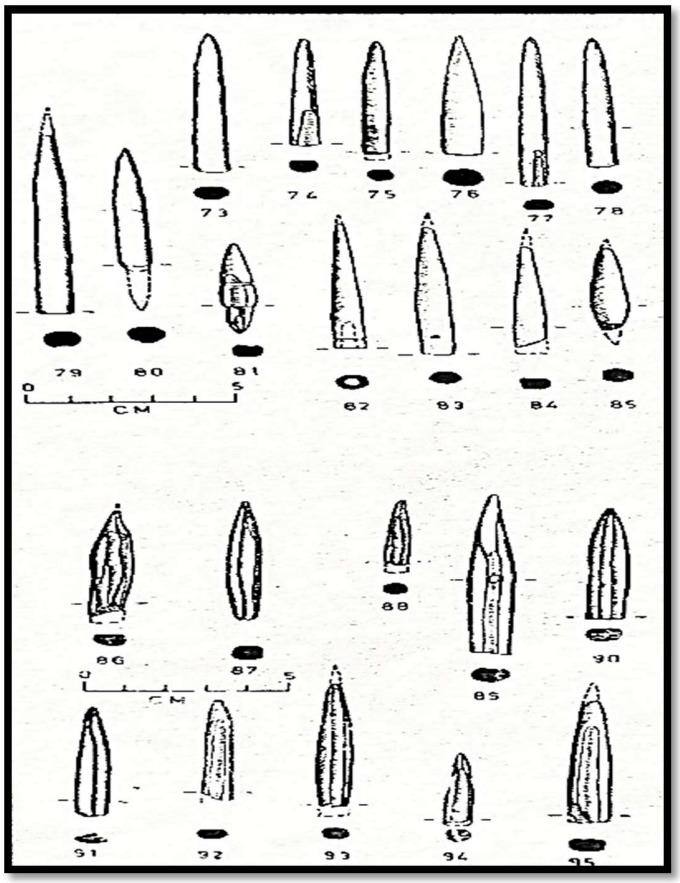

चित्र संख्या 12.8: अस्थि के उपकरण

इस स्तर से प्राप्त अन्य अवशेषों में लगभग 60 मिट्टी की चकरी जिसमें कुछ में छिद्र मिलता है, पकी मिट्टी का डैबर तथा दो गेंदे जिसमें से एक मिट्टी की तथा दूसरी पत्थर की है, मिली है। पत्थर का एक मनका भी मिला है। हड्डी की बनी वस्तुओं में प्वांइट तथा वाणाग्र भी मिले हैं (चित्र संख्याः 12.7–12.8)। इस पुरास्थल पर किये गये सीमित उत्खनन से कोई भी धात्विक प्रमाण इस स्तर से नहीं मिला है। हाँलाकि इस काल के ऊपरी स्तर से (900–800 ई0पू0) लोहे के दो टुकड़े मिले हैं (वर्मा. 2003 : 94)।

नरहन पुरास्थल के प्रथम काल से चार कार्बन चौदह तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें दो तिथियाँ एक–दूसरे की पूरक है। ये (बी0एस0, 850) 1090+110 ई0पू0 तथा (बी0एस0 : 852) 1100+110 ई0पू0 है। इस पुरास्थल के दूसरे काल के प्रारम्भ की तिथि 800 ई0पू0 निर्धारित की गयी है जिसके आधार पर इस काल को 1300 ई0पू0से 800 ईस्वी पूर्व के मध्य रखा जा सकता है। यद्यपि नरहन के प्रथम काल से प्राप्त अधिकतर अवशेष बिहार और उत्तर प्रदेश से प्राप्त अन्य पुरास्थलों चिरॉंद, सौहगौरा, चेचर, कुतुबपुर, मनेर, ताराडीह, सेनुवार और खैराडीह के ताम्रपाषाणिक सांस्कृतिक स्तर से प्राप्त अवशेषों के समान हैं लेकिन उत्खननकर्ता द्वारा इसे एक अलग संस्कृति 'नरहन संस्कृति' का नाम दिया गया है क्योंकि यहाँ के प्रथम काल से किसी भी पाषाणिक उद्योग की प्राप्ति नहीं हुई है।

12.4 भूनाडीह– (25^0, 19′ उत्तरी अक्षांश, 84^0 5′ 11′′ पूर्वी देशान्तर)

भूनाडीह पुरास्थल बलिया जिले में बलिया शहर से 28 कि0मी0 की दूरी पर बलिया–शिकारपुर सड़क पर बहेरानाले के दायें किनारे पर स्थित है। भूनाडीह जनवान से 2 कि0मी0 की दूरी पर है। टीले का विस्तार 4 एकड़ में तथा ऊँचाई एक मीटर से अधिक है। इस पुरास्थल पर उत्खनन कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के पुरूषोत्तम सिंह द्वारा मई–जून 1996 में करवाया गया (सिंह एवं अन्य. 1997–98: 11–29)। परिणाम स्वरूप दो सांस्कृतिक कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ जो निम्नवत् है–

1. **प्रथम काल** – प्रथम उपकाल 'अ'
   प्राक नरहन काल (नव पाषाण काल)
   प्रथम उपकाल 'ब'
   (नव पाषाणकाल नरहन संस्कृति का संक्रमण काल)
2. **द्वितीय काल** – नरहन संस्कृति (ताम्र पाषाण काल)

प्रथम उपकाल 'अ' का साक्ष्य टीले के पश्चिम भाग में 2 X 2 मीटर की ट्रेंच के उत्खनन से प्राप्त हुआ है। यह ट्रेंच एक परीक्षण ट्रेंच थी। उत्खनन से प्राप्त मृदभाण्ड इमलीडीह से प्राप्त मृदभाण्डों से समानता रखते हैं जिसमें रस्सी छाप लाल मृदभाण्ड, सादा लाल मृदभाण्ड टोंटीदार जार, बीकर और घड़े आदि प्रमुख है (चित्र संख्या : 12.9,12.10)। यहाँ से एक नये प्रकार का पात्र स्ट्रेट साइड बीकर प्राप्त होता है जिसमें एक टोटी लगी है जिसे मर्तबान के नाम से भी जाना जाता है। कुछ और महत्वपूर्ण पात्रों लाल रंग का घड़ा है जिसका मुख का भाग बन्द होता हुआ है तथा नॉद के आकार का पात्र जिसका बाहरी का भाग पका हुआ तथा खाँचे बने हुए हैं (सिंह. 2010:109)।

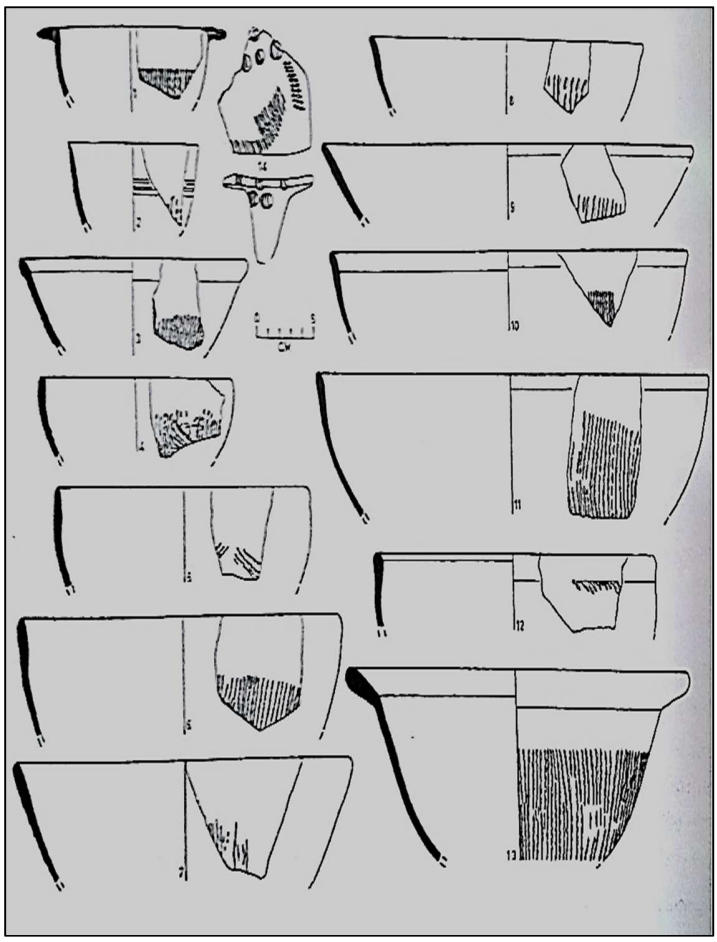

चित्र संख्या 12.9: भूनाडीह से प्राप्त रस्सी छाप मृद्भाण्ड (सिंह एवं अन्य. 1997–98)

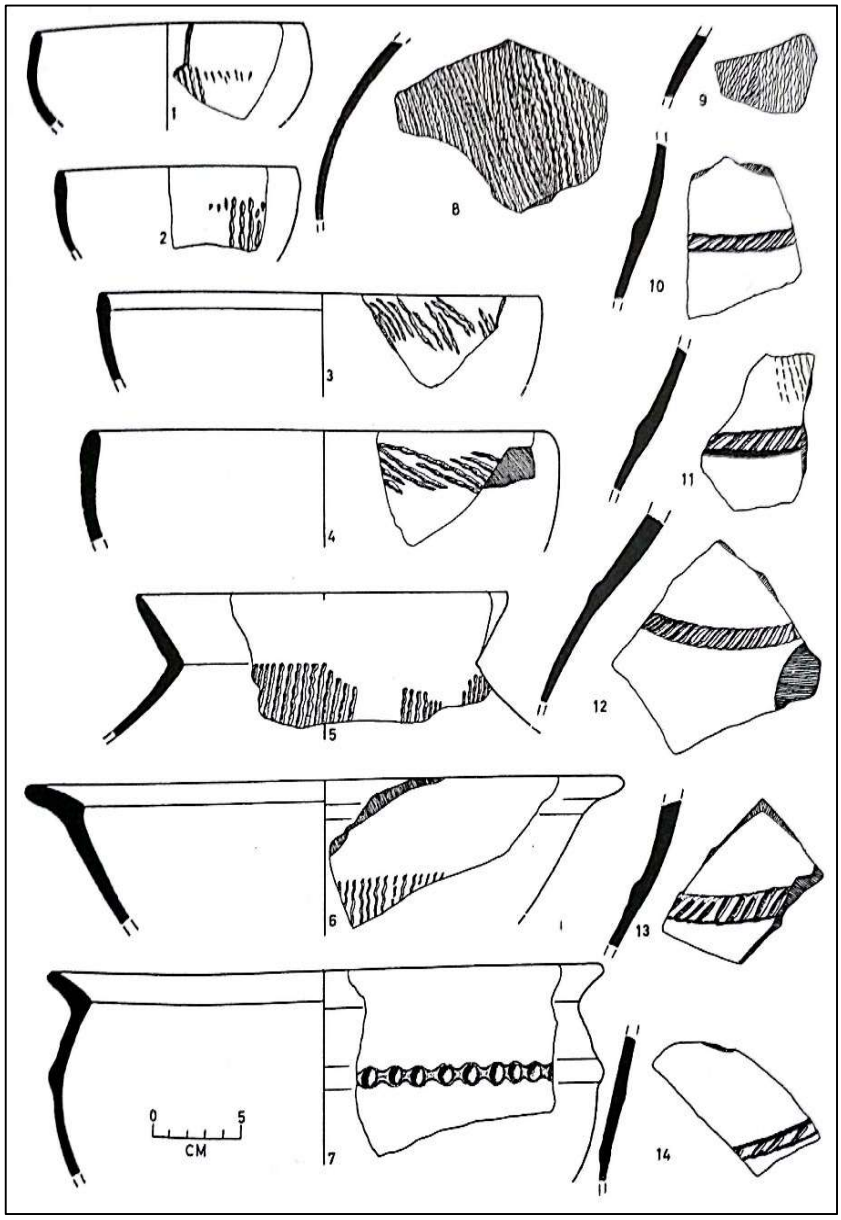

चित्र संख्या 12.10: भूनाडीह से प्राप्त अलंकृत पात्र (सिंह एवं अन्य. 1997–98)

प्रथम उपकाल 'अ' के उत्खनन से आवासीय साक्ष्य के बारे ज्यादा साक्ष्य नहीं मिले हैं लेकिन जली हुई मिट्टी के ढोंके के साथ मिलने वाले बाँस–बल्लियों के छाप के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव बाँस बल्लियों के माध्यम से बने झोपड़ियों में निवास करता था। कुछ मात्रा में स्टेटाइट के छोटे मनके, पक्की मिट्टी के मनके और मृदभाण्ड के चक्के मिले हैं (सिंह व अन्य. 1997–98:12)।

द्वितीय काल से प्राप्त पुरावशेषों की अन्य पुरास्थलों से प्राप्त अवशेषों से समानता के आधार पर इसे ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। इस पुरास्थल के प्रथम काल को दो भागों में विभाजत किया गया है – उपकाल 'अ' और उपकाल 'ब'। उपकाल 'ब' नवपाषाणकाल कालीन संस्कृति और नरहन संस्कृति के संक्रमणात्मक अवस्था का द्योतक है। हाँलाकि प्रथम उपकाल 'ब' की आवासीय व्यवस्था प्रथम उपकाल 'अ' के समान है (सिंह. 2010 : 133)। इस उपकाल 'ब' की मृदभाण्ड उद्योग परम्परा में रस्सी छाप मृदभाण्ड, सादा कृष्ण लोहित मृदभाण्ड, कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड और लाल मृदभाण्ड है (चित्र संख्या: 12.

11)। इस काल के प्रमुख मृदभाण्डों के प्रकार में पेंदी युक्त या पाद युक्त कटोरा और डिश ऑन स्टैण्ड कृष्ण–लोहित पात्रों में और लोटा के आकार का बर्तन कृष्ण लेपित पात्रों में प्रमुखता से मिले हैं। कुछ मृदभाण्डों को पकाने के बाद उसके बाहरी भाग पर स्क्रेच करके अलंकरण किया गया है तथा कुछ लेपित पात्रों पर बिन्दू और छिंटा के आकार का अलंकरण भी मिला है (चित्र संख्याः 12.12)। कुछ मात्रा में टेराकोटा, स्टीयटाइट, अर्द्धबहुमूल्य पत्थर के मनके तथा पॉटरी डिस्क आदि भी मिले हैं।

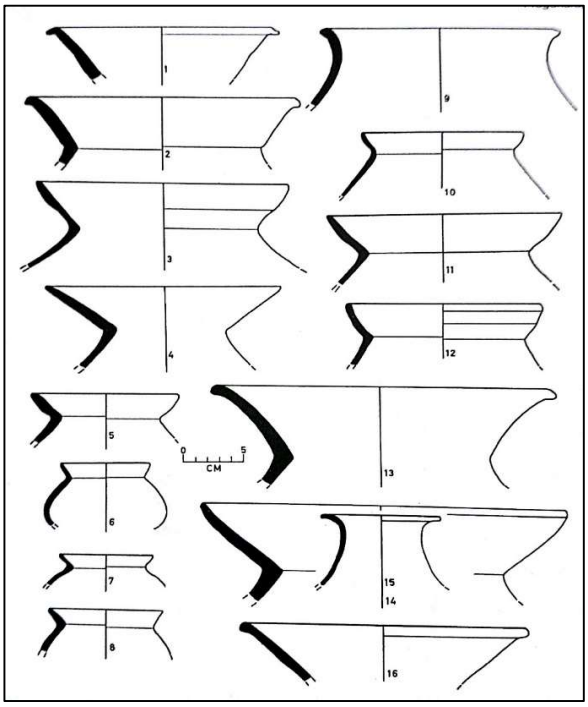

चित्र संख्या 12.11: भूनाडीह से प्राप्त मृद्भाण्ड (सिंह एवं अन्य. 1997–98)

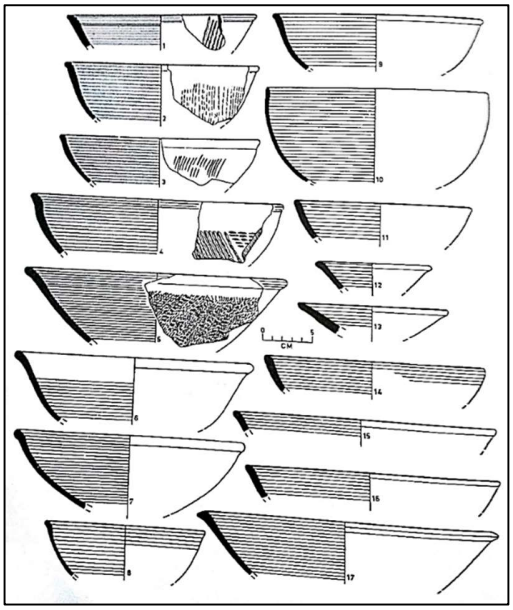

चित्र संख्या 12.12: भूनाडीह से प्राप्त अलंकृत मृद्भाण्ड (सिंह एवं अन्य. 1997–98)

यहाँ के द्वितीय काल से प्राप्त अवशेष लगभग प्रथम उपकाल 'ब' से प्राप्त होने वाले अवशेषों के समान हैं। नरहन पुरास्थल के प्रथम काल 'नरहन संस्कृति' से प्राप्त अवशेषों के समान ही भूनाडीह के द्वितीय काल से प्राप्त अवशेष भी हैं। इसलिए इसे भी 'नरहन संस्कति' के नाम से जाना जाता है। इस काल का मानव अपने आवास का निर्माण बॉस–बल्ली के माध्यम से करता था क्योंकि यहाँ बहुत अधिक संख्या में जली हुई मिट्टी के ढोकों के साथ–साथ बाँस–बल्ली की छाप प्राप्त हुई है। इस काल से प्राप्त अन्य अर्धबहुमूल्य अवशेषों में पत्थर, स्टीयटाइट और टेराकोटा से बने मनके तथा पॉटरी डिस्क उल्लेखनीय हैं (सिंह व अन्य. 1997–98 : 11–29)। इस काल से प्राप्त जीव–जन्तु और वनस्पतियों की जाँच अभी नहीं हुई है।

यहाँ की ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति की तिथि नरहन पुरास्थल से प्राप्त अवशेषों की साम्यता के आधार पर 1300 से 800 ई0पू0 के मध्य रखी जा सकती है।

12.5 लखनेश्वरडीह

यह पुरास्थल उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद में स्थित है। इस पुरास्थल का सीमित क्षेत्र में उत्खनन कार्य एम0 एम0 नागर द्वारा 1956–57 ईस्वी में किया गया था। उत्खनन के परिणमस्वरूप पत्थर और मिट्टी की सामग्रियाँ तथा एन0बी0पी0डब्ल्यू00 (उत्तरी काली चमकीली मृदभांड) के पात्र खंड प्रतिवेदित किए गए हैं। इस पुरास्थल से उत्तरी काली चमकीली मृदभांड के साथ–साथ लोहे के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। लखनेश्वर डीह, बलिया जिले के रसड़ा में स्थित एक ऐतिहासिक और पौराणिक स्थान है। जनश्रुति के अनुसार यह किला भगवान राम और लक्ष्मण की बक्सर जाते समय विश्रामस्थली के रूप में जाना जाता है। रसड़ा तहसील बलिया जिला मुख्यालय से लगभग 7 किलोमीटर दक्षिण, तमसा नदी के किनारे मुड़ेरा गाँव में स्थित है।

चित्र 12.13 – लखनेश्वर डीह : स्थापत्यिक अवशेष

यहाँ एक ऐतिहासिक किला है, जो अपने गर्भ में अनेक रहस्य भी छिपाए हुए है। यह पौराणिक इसलिए है कि कालांतर में भगवान श्रीराम अनुज लक्ष्मण के साथ ताड़का वध करने इसी मार्ग से बक्सर गए थे और यहाँ उन्होंने विश्राम किया था। इसी स्थान पर लक्ष्मण जी ने भगवान शिव की स्थापना की थी, जिस कारण इसका नाम लखनेश्वर डीह किला पड़ा। कहॉ जाता है कि यह एक राजा का किला था, जिसके नीचे अभी भी अकूत खनिज सम्पदा दबी पड़ी है। इसी किले के पास एक खेत में वर्ष 1954 में जोताई के समय बेशकीमती काला पत्थर की विष्णु प्रतिमा मिली थी। उसे यहाँ स्थापित किया गया है। अभी कुछ दिनों पूर्व शिवलिंगों का समूह भी खेतों की जोताई में प्राप्त हुआ है (चित्र–12.13)। यदा–कदा यहाँ आए दिन पुरातन

सिक्के आदि भी मिलते रहते हैं। पुरातत्त्व विभाग को इस भूमि का पुनः गहन सर्वेक्षण कर इसकी खोदाई करनी चाहिए ताकि इस किले की भूमि में दबी संपदा पर से पर्दा उठ सके।

पुरास्थल के ध्वंसावशेष लगभग 15 एकड़ क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह पंरास्थल अपने वैभव काल में कई राजवंशों के उत्थान और पतन की कहानी को समाये हैं। समय के गर्भ में समाए इस किले का रहस्य सन 1949 ईस्वी में टीले पर स्थित शिव मंदिर के बगल में हल जोतते समय तब प्रकाशित हुआ जब भगवान विष्णु की लगभग 150 सेंटीमीटर ऊंची काले रंग की प्रतिमा मिली, जो यहाँ के मंदिर में प्रतिष्ठित की गई है। कहा जाता है कि यहाँ से इसी तरह की एक और विष्णु की मूर्ति मिली (चित्र–12.14), जिसे भारतीय पुरातत्व विभाग ने लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। इतिहासकारों के मुताबिक सबसे पहले इस पुरास्थल का उल्लेख फ्यूहरर ने अपनी पुस्तक द मान्यूमेंटल एंटिक्विटीज एंड इंस्क्रिप्संस इन द नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज एंड अवध में किया है।

12.5.1 लखनेश्वरडीह की मूर्तियाँ

इसके बाद सन 1956–57 में श्री एम.एम. नागर ने यहाँ पर खुदाई करवाई। खुदाई में यहाँ से काले रंग के मिटटी के बर्तन, पत्थर व पकी हुई मिट्टी की वस्तुए प्राप्त हुई है। कुछ इतिहासकारों का मनना है कि यह मूर्ति गुप्तकालीन है वहीं कुछ इतिहासकार इस मूर्ति को पालकालीन मानते हैं। इतिहासकारों का मानना है कि यह मूर्ति आठवीं या नवीं शताब्दी की होगी। इसके अलावा लखनेश्वरडीह से ही एक टूटी हुई सफेद बलुआ पत्थर की आकृति भी मिली है, जो एक पत्थर पर उकेरी गई है। इस मूर्ति का कमर से ऊपर का भाग टूटा हुआ है, जबकि नीचले हिस्से में एक बैठी हुई आकृति का पैर नीचे की ओर लटक रहा है। इस मूर्ति का दाहिना पैर बैल की पीठ पर और बांया एक बाघ के पीठ पर है। इन दोनों पशुओं के बगल में दो मूर्तियाँ और हैं, वहीं सिंह के बगल में नारी की आकृति है, जिसे देख कर ऐसा लगता है कि यह भगवान शिव की गोद में बैठी पार्वती की मूर्ति रही होगी (चित्र–12.15)। मूर्ति विशेषज्ञों के अनुसार यह हर–गौरी की मूर्ति है। यह मूर्ति भी लखनऊ संग्रहालय में रखी हुई है। डा. ब्रहमानंद सिंह ने भी अपनी शोध पत्रिका व बलिया का प्रारंभिक इतिहास में इस पुरास्थल का उल्लेख किया है।

चित्र 12.14– भगवान विष्णु की प्रतिमा चित्र –12.15 प्राप्त मूर्ति अवशंष एवं अन्य

12.5.2 पुरास्थल का सम्बन्ध

लखनेश्वर डीह के किले को लेकर लोग तरह–तरह के कयास लगाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यह किला गुप्त काल से सम्बन्धित रहा होगा। क्योंकि गुप्त काल में वैष्णव व शैव धर्म पुष्पित व पल्लवित हुआ। इस काल में विष्णु व शिव मंदिर का निर्माण अपनी चरम पर था। क्योंकि इस टीले से आज भी विष्णु के अलावा कई शिव लिंग मिलते हैं, जिन्हें इस टीले पर जगह–जगह प्रतिष्ठित किया गया है। वहीं कुछ लोग इस किले को राजभरों का किला मानते हैं। इसके पीछे वह कई तर्क भी देते हैं। यहाँ तक कि यह किला मौजूदा समय में राजनीति की धुरी भी बन गया है। लेकिन एक वर्ग और भी है, जो इस किले को विशुद्ध रूप से गुप्त राजवंश का मानता है। उनका कहना है कि हो सकता है कि इस किले का सामंत राजभर रहा हो ,जो गुप्त वंश के पतन के बाद लखनेश्वर किले का अधिपति बन बैठा हो। वहीं कुछ इस किले को कुषाण कालीन मानते हैं। उनका तर्क इस किले से मिली लाल बलुआ रंग पत्थर की बनी मूर्ति पर केन्द्रित है। वे कहते हैं कि कुषाण काल में जो भी मूर्तियाँ बनती थी वे लाल बलुए पत्थर की बनाई जाती थीं। जैसा कि इससे लाल रंग की कुछ मूर्तियाँ मिली हैं।

12.5.3 किला था या भव्य मंदिर

लखनेश्वर डीह किला था या भव्य मंदिर यह भी प्रश्न उठता रहता है। इस बात को लेकर समान्य जनमानस में तरह–तरह के कयास लगाए जा रहे है। कुछ लोगों का मनाना है कि यह राजभरों का किला था, वहीं कुछ लोग इस पुरातात्त्विक स्थल को मंदिर की जगह मानते है (चित्र–)। हलांकि जब अंग्रेज इतिहासकार ए0 फ्यूहरर ने इस स्थल की पहचान की थी उस समय भी उसने यह जिक्र नहीं किया कि इस स्थान पर कोई भव्य किला था या मंदिर। यही नहीं जब 1956–57 में श्री एम0 एम0 नागर ने यहाँ पर खुदाई करवाई तो उन्हें भी कोई ऐसी वस्तु नहीं मिली, जो इसे किसी राजा का किला साबित करती। बल्कि यह जरूर हुआ कि इस स्थल से मिट्टी के पुराने पात्र, पत्थर की मूर्तियों के अवशेष, तोरण द्वार व प्रचुर मात्रा में छोटे व बडे आकार के शिवलिंग, विष्णु व पार्वती की मूर्तियाँ कुछ जानवरों की मूर्तियाँ जरूरी मिली, जो इस तरफ इशारा जरूर करती हैं कि लखनेश्वर डीह किला नहीं बल्कि गुप्तोत्तर कालीन राजाओं द्वारा बनवाया गया भव्य मंदिर था (चित्र–12.16)। इस बात को पौराणिक कथाओं व किंवदन्तियों से भी बल मिलता है, जिसमें राम, लक्ष्मण व विश्वामित्र के आने और शिवलिंग की स्थापना की बात कही जाती है। इसकी पुष्टि प्रो इंद्रजीत सिंह गोगवानी भी करते हैं।

चित्र 12.16–लखनेश्वर डीह का मंदिर/किला

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह पुरास्थल प्रारम्भ ग्रामीण संस्कृति से जुड़ा रहा होगा, ऐसा यहाँ से प्राप्त मिट्टी के पात्रों से अनुमान लगाया जा सकता है। इस पुरास्थल से उत्तरी काली चमकीली मृदभांड के साथ–साथ लोहे के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर कह सकते हैं कि यह पुरास्थल महाजनपद काल के आस पास मानवीय क्रियाकलापों से गुलजार हो चुका था। फिर धीरे–धीरे इसकी ख्याति एवं विस्तार

होता गया और कुषाण काल तक आते–आते एक महत्वपूर्ण बस्ती बन गई। यहाँ से प्राप्त मिट्टी के पुराने पात्र, पत्थर की मूर्तियों के अवशेष, तोरण द्वार व प्रचुर मात्रा में छोटे व बडे आकार के शिवलिंग, विष्णु व पार्वती की मूर्तियाँ कुछ जानवरों की मूर्तियाँ इस स्थल के कुषाण काल, गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल तक के इतिहास की ओर संकेत करती है।

12.6 सारांश

इसप्रकार कहा जा सकता है कि इन पुरास्थलों उत्तर प्रदेश और मध्य गंगा मैदान के इतिहास सास्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। नरहन पुरास्थल के प्रथम काल से चार कार्बन–14 तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें दो तिथियाँ एक–दूसरे की पूरक है। ये (बी0एस0, 850) 1090+110 ई0पू0 तथा (बी0एस0 : 852) 1100+110 ई0पू0 है। इस पुरास्थल के दूसरे काल के प्रारम्भ की तिथि 800 ई0पू0 निर्धारित की गयी है जिसके आधार पर इस काल को 1300 ई0पू0से 800 ईस्वी पूर्व के मध्य रखा जा सकता है।नरहन पुरास्थल के प्रथम काल 'नरहन संस्कृति' से प्राप्त अवशेषों के समान ही भूनाडीह के द्वितीय काल से प्राप्त अवशेष भी हैं। इसलिए इसे भी 'नरहन संस्कति' के नाम से जाना जाता है। इस काल का मानव अपने आवास का निर्माण बॉस–बल्ली के माध्यम से करता था क्योंकि यहाँ बहुत अधिक संख्या में जली हुई मिट्टी के ढोकों के साथ–साथ बाँस–बल्ली की छाप प्राप्त हुई है। इस काल से प्राप्त अन्य अर्धबहुमूल्य अवशेषों में पत्थर, स्टीयटाइट और टेराकोटा से बने मनके तथा पॉटरी डिस्क उल्लेखनीय हैं। लखनेश्वर डीह पुरास्थल प्रारम्भ ग्रामीण संस्कृति से जुड़ा रहा होगा, ऐसा यहाँ से प्राप्त मिट्टी के पात्रों से अनुमान लगाया जा सकता है। इस पुरास्थल से उत्तरी काली चमकीली मृदभांड के साथ–साथ लोहे के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर कह सकते हैं कि यह पुरास्थल महाजनपद काल के आस–पास मानवीय क्रियाकलापों से गुलजार हो चुका था। फिर धीरे–धीरे इसकी ख्याति एवं विस्तार होता गया और कुषाण काल तक आते–आते एक महत्वपूर्ण बस्ती बन गई। यहाँ से प्राप्त मिट्टी के पुराने पात्र, पत्थर की मूर्तियों के अवशेष, तोरण द्वार व प्रचुर मात्रा में छोटे व बडे आकार के शिवलिंग, विष्णु व पार्वती की मूर्तियाँ कुछ जानवरों की मूर्तियाँ इस स्थल के कुषाण काल, गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल तक के इतिहास की ओर संकेत करती है।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*

13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।

14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।

15. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0: वाराणसी

16. जायसवाल, वी0 एवं एम0कुमार .2006. ''एक्सक्वेशन्स एट रामनगर : डिसकवरी ऑफ द सर्पोटिंग सेटलमेन्ट ऑफ एशियंट वाराणसी''. *पुरातत्त्व* नं0 36।

17. जायसवाल, विदुला, आदि काशी से वाराणसी

18. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32:* नई दिल्ली।

19. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

20. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

21. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

22. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

23. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0: वाराणसी।

24. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

25. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44.

26. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।

12.8 बोध प्रश्न

- नरहन पुरास्थल से प्राप्त अवशेषों की विवेचना कीजिए।
- भूनाडीह पुरास्थल के सांस्कृतिक अवशेषों पर प्रकाश डालिए।
- लखनेश्वर डीह पुरास्थल के ऐतिहासिक सन्दर्भ पर प्रकाश डालें।
- नरहन एवं भूनाडीह से प्राप्त अवशेषों के आधार पर मध्य गंगा मैदान की आवासीय व्यवस्था पर एक निबंध लिखें।

इकाई–13 : अयोध्या, चित्रकूट, कौशाम्बी

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 अयोध्या

13.3.1 अयोध्या का इतिहास

13.3.2 अयोध्या का ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक सन्दर्भ

13.3.3 अयोध्या पुरास्थल के प्रमुख स्थानों का उत्खनन

13.3.4 उत्खनन का महत्व

13.3.5 राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवाद

13.3.6 अयोध्या का राम मन्दिर

13.3.7 नामकरण और अर्थ

13.3.8 अयोध्या का साहित्यिक सन्दर्भ

13.3.9 अयोध्या का राजनीतिक इतिहास एवं विकासक्रम

13.3.10 अयोध्या के प्रमुख दर्शनीय स्थल

13.4 चित्रकूट

13.4.1 चित्रकूट का पुरातात्त्विक सन्दर्भ

13.4.2 चित्रकूट के शैलचित्र और प्रागैतिहासिक जीवन

13.4.3 साहित्य में चित्रकुट

13.4.4 धार्मिक स्थल के रूप में चित्रकूट

13.4.5 स्वामी कामतानाथ का मंदिर व परिक्रमा स्थल

13.4.6 मंदाकिनी के घाट–

13.4.7 अनुसुइया आश्रम

13.4.8 मडफा–

13.4.9 अत्रि आश्रम

13.4.10 शरभंग आश्रम

13.4.11 राजापुर

13.4.12 चित्रकूट का महत्व

13.5 कौशाम्बी

13.5.1 चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति

13.5.2 उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति

13.5.3 उत्तर–उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति

13.5.4 घोषिताराम बिहार

13.5.5 राज प्रासाद

13.5.6 सुरक्षा प्राचीर

13.6 सारांश

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.8 बोध प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

अयोध्या कोसल राज्य की प्रारंभिक राजधानी थी, हालांकि बौद्ध काल (6ठी–5वीं शताब्दी ई.पू.) में श्रावस्ती राज्य का मुख्य शहर बन गया। विद्वान आमतौर पर इस बात पर सहमत हैं कि अयोध्या बौद्ध केंद्र के रूप में साकेत शहर के समान है, जहाँ बुद्ध के कुछ समय तक निवास करने की बात कही जाती है। इसके बाद के महत्व का अंदाजा 5वीं शताब्दी ई. में चीनी बौद्ध भिक्षु फाह्यान के इस कथन से लगाया जा सकता है कि वहां 100 मठ थे। चित्रकूट "अनेक आश्चर्यों की पहाड़ियाँ" वास्तव में प्रकृति और देवताओं द्वारा प्रदत्त एक अद्वितीय उपहार है, जो उत्तर प्रदेश में पयस्वनी/मन्दाकिनी नदी के किनारे विन्ध्य के उत्तरार्द्ध में स्थित एक शांत क्षेत्र है। ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से चित्रकूट महत्वपूर्ण जनपद है। चित्रकूट दो शब्दों के मेल से बना है। संस्कृत में चित्र का अर्थ है अशोक एवं कूट का अर्थ है शिखर या चोटी। इस वन क्षेत्र में कभी अशोक के वृक्ष बहुतायत मिलते थे।कौशाम्बी जैन धर्म के छठवें तीर्थंकर श्री पद्मनाथ जी के जन्मस्थान एवं बुद्ध काल की प्रथम प्रसिद्ध नगरी है। यह दक्कन, गंगा नदी घाटी और उत्तर पश्चिम को जोड़े जाने वाली व्यापारिक मार्ग का प्रमुख केंद्र था। इसलिए अशोक ने अपना एक स्तंभ यहाँ स्थापित करवाया था। इसी स्तंभ पर अशोक की रानी और तीवर की माता कारुवाकी का भी एक लेख है, कौशाम्बी पुरास्थल कौशांबी की मंझनपुर तहसील के कोसम इनाम और कोसम खिराज गाँव के बीच स्थित है। ये तीनों पुरास्थल उत्तर प्रदेश के धार्मिक विरासत स्थल है, जिसका विस्तृत विवेचन निम्नवत् है–

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- अयोध्या पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- चित्रकूट पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- अयोध्या और चित्रकूट के धार्मिक स्थलों को जान सकेगें।
- चित्रकूट के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- कौशाम्बी पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

13.3 अयोध्या

श्रीराम या श्रीराम जन्मभूमि का नाम लेते ही बरबस ही अयोध्या का नाम आ जाता है, जी हाँ श्री राम जन्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध अयोध्या नगरी इन दिनों बहुत ही चर्चा में है। क्योंकि 2022–23 में राम मंदिर निर्माण की आधारशिला रखी गई और आज भव्य राममंदिर बनकर तैयार हैं, जहाँ प्रतिदिन लाखों लोग दर्शनार्थ अयोध्यानगरी आते हैं। लाखों लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली अयोध्यानगरी का इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है।उत्तर भारत का एक शहर है जिसे हिंदू धर्म में पवित्र शहर और राम की जन्मस्थली तथा बौद्ध धर्म के ऐतिहासिक केंद्र के रूप में जाना जाता है। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए महत्वपूर्ण स्थल पर मुगलकालीन मस्जिद, बाबरी मस्जिद थी, जिसे 1992 में अंतरधार्मिक तनावों के बीच नष्ट कर दिया गया था। 2019 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद हिंदुओं को यह स्थल दे दिया गया, एक नया राम मंदिर बनाया गया, जिसका उद्घाटन 22 जनवरी 2024 को हुआ। अयोध्या घाघरा नदी पर स्थित है, जिसे स्थानीय रूप से सरयू या सरजू के नाम से जाना जाता है, जो दक्षिण–मध्य उत्तर प्रदेश राज्य में फैजाबाद के ठीक पूर्व में है। अयोध्या एक प्राचीन शहर है, जिसे हिंदुओं के सात पवित्र शहरों में से एक माना जाता है, क्योंकि इसका संबंध महान भारतीय महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत' से है। महाकाव्यों के अनुसार यह शहर समृद्ध और अच्छी तरह से सुरक्षा प्राचीर से घिरा था और इसकी आबादी बहुत बड़ी थी।

13.3.1 अयोध्या का इतिहास

अयोध्या कोसल राज्य की प्रारंभिक राजधानी थी, हालांकि बौद्ध काल (6ठी–5वीं शताब्दी ई.पू.) में श्रावस्ती राज्य का मुख्य शहर बन गया। विद्वान आमतौर पर इस बात पर सहमत हैं कि अयोध्या बौद्ध केंद्र के रूप में साकेत शहर के समान है, जहाँ बुद्ध के कुछ समय तक निवास करने की बात कही जाती है। इसके बाद के महत्व का अंदाजा 5वीं शताब्दी ई. में चीनी बौद्ध भिक्षु फाह्यान के इस कथन से लगाया जा सकता है कि वहां 100 मठ थे (हालांकि उन्होंने 100 का हवाला दिया था, फाह्यान का शायद उस सटीक संख्या से मतलब नहीं था, बस इतना कहा था कि वहां कई मठ थे)। वहां कई अन्य स्मारक भी थे, जिनमें एक स्तूप (मंदिर) भी शामिल है, जिसके बारे में माना जाता है कि इसकी स्थापना मौर्य वंश के शासक अशोक (तीसरी शताब्दी ई.पू.) ने की थी। 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान कन्नौज राज्य अयोध्या में उभरा, जिसे तब अवध कहा जाता था। यह क्षेत्र बाद में दिल्ली सल्तनत , जौनपुर राज्य और 16 वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य में शामिल हो गया। अवध ने 18वीं शताब्दी की शुरुआत में कुछ हद तक स्वतंत्रता प्राप्त की लेकिन 1764 ईस्वी में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन हो गया । 1856 ईस्वी में इसे अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया और इस कब्जे और वंशानुगत भूमि राजस्व प्राप्तकर्ताओं द्वारा अधिकारों के नुकसान ने 1857 ईस्वी में भारतीय विद्रोह के कारणों में से एक माना गया। अवध को 1877 में आगरा प्रेसीडेंसी के साथ मिलाकर उत्तर–पश्चिमी प्रांत और बाद में आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत , जो अब उत्तर प्रदेश राज्य है, का गठन किया गया।

13.3.2 अयोध्या का ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक सन्दर्भ

अयोध्या के ऐतिहासिक व पुरातात्विक पक्ष अयोध्या नगरी के उठापटक की कहानी को बयाँ करते हैं। अयोध्या सरयू नदी के तट पर बसा उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण नगर एवं पुरातात्त्विक स्थल है। अयोध्या के प्राचीन ध्वंसावशेष अयोध्या पुरास्थल पर लगभग चार से पांच किमी की परिधि में फैले हुए हैं, जो समीपवर्ती धरातल से लगभग 10 मीटर ऊंचे हैं। अयोध्या के कुबेर टीले की सर्वप्रथम पहचान अलेक्जेंडर कनिंघम ने बौद्ध स्तूप के रूप में की थी। इस स्थल की महत्ता को प्रकाश में लाने का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के श्री विजय शंकर दुबे को हैं, जिन्होंने 1961–62 ईस्वी में अयोध्या के कई जिलों का सर्वेक्षण किया था। उन्हें सरयू नदी के तट पर 60 मीटर मोटे नदी के अनुभाग से उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा के बर्तन और इसके साथ मिलने वाले अन्य पात्र परंपराओं के पात्र खंड प्राप्त हुए थे। इसके साथ ही साथ मिट्टी के बने हुए बड़े घड़ों के रिंग वेल तथा सोकेज जार भी यहाँ विद्यमान थे। इस पुरास्थल की प्राचीनता एवं सांस्कृतिक महत्त्व को स्थापित करने के लिए 1969–70 ईस्वी में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के ए0 के0 नारायण ने टी0

एन0 रॉय और पुरुषोत्तम सिंह की सहायता से यहाँ पर उत्खनन कार्य करवाया था। पुरास्थल का बहुत सा भाग, जो नदी के किनारे से लगा हुआ था। उसको नदी द्वारा काट दिया गया था। इस कटे हुए अनुभाग से दीर्घकालीन आवास के प्रमाण मिलते हैं, जो अयोध्या के प्राचीन स्थल के उत्तर भाग में आवासीय प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पुरातात्विक दल ने यहाँ तीन स्थलों पर उत्खनन कार्य किया था।

- जैन घाट के समीप
- लक्ष्मण टेकरी
- नल टीला

प्रथम दो जैन घाट और लक्ष्मण टेकरी के उत्खनन से तीन सांस्कृतिक कालो का अनुक्रम प्राप्त हुआ था। यहाँ प्रथम और द्वितीय काल में निरंतरता थी पर तृतीय काल के पहले समय का एक अंतराल था। तीसरे स्थल जो अपेक्षाकृत निचले धरातल पर हैं, के उत्खनन में केवल प्रथम सांस्कृतिक काल के प्रमाण उपलब्ध हुए थे। प्रथम सांस्कृतिक काल में उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा (एन.बी.पी.डब्ल्यू) मोटा ग्रे वेयर और लाल रंग के पात्र खंड प्राप्त हुए थे। इस काल की अन्य पुरासामग्रियों में पकी हुई मिट्टी का चक्र, गोलियाँ, पहिये, हड्डी के बने हुए वाणाग्र तथा तांबे, क्रिस्टल, शीशा और मिट्टी के बने हुए मनके उल्लेखनीय हैं । इस सांस्कृतिक काल के परवर्ती धरातल से भूरे रंग की छे मानव मृण्मूर्तियाँ, कई पशुओं की मृण्मूर्तियाँ और दो अयोध्या के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। इस उत्खनन में कुछ लौह उपकरण भी प्राप्त हुए तथा अयोध्या नगर की कुछ ताम्र मुद्राएं, जिन पर प्रथम शताब्दी ई0पू0 की ब्राह्मी लिपि में 'अजुधे' लिखा है, 1970–71 के उत्खनन में भी मिली थी।

ए. के. नारायन, टी.एन.राय और पुरुषोत्तम सिंह के दल ने अयोध्या के कुबेर टीले का भी गहन सर्वेक्षण किया, जिसकी पहचान सर्वप्रथम कनिंघम महोदय ने की थी। इस स्थल पर 39 × 23 × 6 सेंटीमीटर के आकार के ईंटों से निर्मित प्राचीन स्मारक के कई स्तर प्राप्त हुए थे। जो इस पुरास्थल के प्राचीन आवासीय स्थल होने की ओर संकेत करते हैं।

13.3.3 अयोध्या पुरास्थल के प्रमुख स्थानों का उत्खनन

इस स्थल की महत्ता को स्थापित करने का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य 1975–76,1976–77 तथा 1979–80 ईस्वी में अयोध्या के 14 स्थानों पर उत्खनन से संबंधित है। यह उत्खनन कार्य **''आर्कियोलॉजि ऑफ रामायण साइट्स प्रोजेक्ट**'' के अंतर्गत **'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया एडवांस स्टडीज शिमला**' के बी0 बी0 लाल ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के के0 वी0 सौंदर्याराजन तथा के0 एन0 दीक्षित के साथ मिलकर रामकथा से संबंधित स्थलों पर किया था। अयोध्या के प्राचीन क्षेत्र के दो प्रमुख स्थलों का उत्खनन कार्य 1976–77 ई0 में किया गया। पहला स्थल राम जन्मभूमि टीला का और दूसरा हनुमान गढ़ी के पश्चिम में स्थित खुले क्षेत्र का उत्खनन हुआ। इसके विपरीत सीता की रसोई स्थल पर भी कुछ उत्खनन हुआ। उत्खनन में स्थल की प्राचीनता के निर्धारण से संबंधित कई महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आए। यहाँ पर सर्वप्रथम मानव आवासीय जमावों में उत्तरी काली चमकीली पात्र परंपरा संस्कृति का था, जिसमें कई रंगों के उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा के पात्र खंड प्राप्त हुए हैं। इस पात्र परंपरा के साथ धुंधले काले रंग से बहुरेखी चित्रों से युक्त धूसर रंग के पात्र खंड भी उपलब्ध हुए थे, जो श्रावस्ती, पिपरहवा, कौशांबी आदि के नमूनों के चित्रित धूसर पात्र परंपरा के समान है। ये मिट्टी के बर्तन के टुकड़े हस्तिनापुर, मथुरा और अहिच्छत्र के चित्रित धूसर पात्र परंपरा की संस्कृति के परवर्ती चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। मथुरा, कौशांबी आदि स्थलों से प्राप्त अवशेषों के आलोक में उत्खननकर्ताओं ने राम जन्मभूमि के इस आवासीय जमाव की तिथि सातवीं शताब्दी ई0पू0 निर्धारित की है।

यह टीला तृतीय शताब्दी ईस्वी तक आबाद रहा जैसा कि कई निर्माणात्मक चरणों से प्रतीत होता है। यहाँ के जो आवासीय साक्ष्य हैं, वह कई चरणों में बनाए गए थे। प्रारंभिक चरणों में लकड़ी, घास–फूस और

मिट्टी के घरों का निर्माण किया जाता था। लेकिन बाद में पक्की ईंटों का प्रयोग किया जाने लगा। जन्मभूमि क्षेत्र के उत्खनन में ईंटों से निर्मित एक विशाल दीवार के प्रमाण प्राप्त हुआ हैं। इसकी पहचान रक्षा प्राचीर से की गई है। इस विशाल दीवार के ठीक नीचे कच्ची मिट्टी की ईंटों से निर्मित एक ढांचा उपलब्ध हुआ है । इस चरण के ऊपरी धरातल में जिसे संभवत तृतीय शताब्दी ई0पू0 से प्रथम शताब्दी ई0पू0 के मध्य के रक्षा प्राचीर के परवर्ती चरण से संबंधित किया जा सकता है। पक्की मिट्टी के रिंग वेल भी प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रक्षा प्राचीर एक गहरी खाई से युक्त थी, जो आंशिक रूप से प्राकृतिक मिट्टी में खोदी गई थी। इसी तरह हनुमान गढ़ी के पास के उत्खनन में भी उत्तरी काली चमकीली मृदभांड और परवर्ती कालों के ढांचे, कई प्रकार के रिंग वेल, जिसमें परवर्ती एन0बी0पी0डब्ल्यू0 काल में मिलने वाली सामन आकर की ईंटों से निर्मित कुएं भी सम्मिलित है इत्यादि प्राप्त हुए हैं।

अयोध्या के प्राचीन टीलों के अधिकांश भाग संभवतः नदी द्वारा बहा दिए गए हैं। उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा के जमाव के उपर यहाँ गहरे लाल रंग का जला हुआ, स्तर प्राप्त हुआ है। इस प्रमाण के आधार पर शुंगों की द्वितीय राजधानी अयोध्या में पतंजलि द्वारा उल्लिखित इंडो–यूनानी आक्रमण की पुष्टि होती है। इस अग्निकांड के कारण अयोध्या में एक कालखंड का अंत हुआ और उत्तरी काली चमकीली संस्कृति का विनाश हो गया अर्थात् यह कह सकते हैं की 16 महाजनपद काल में अयोध्या में जिस नगरी जीवन का उदय हुआ था उसकी समाप्ति उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति के पतन के साथ हो जाती है।

इस उत्खनन के परिणामस्वरूप और भी बहुत से पुरातात्त्विक अवशेष प्रकाश में आए थे, जिसमे लगभग आधा दर्जन मुहरें, 70 सिक्के और 100 से अधिक मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। इसमें राजा वासुदेव की मिट्टी की मुहर विशेष उल्लेखनीय है। राजा के द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के अयोध्या के सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं। इसी काल से संबंधित मूल देव का एक सिक्का मिला है। एक भूरे रंग की कायोत्सर्ग मुद्रा में मानव मृणमूर्ति उपलब्ध हुई है। चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 के धरातल से उपलब्ध यह मृणमूर्ति संभवतः संपूर्ण भारत में अपने प्रकार की सबसे प्राचीन मूर्ति है। पकी मिट्टी की बनी हुई बड़े आकार की धार्मिक मृण्मूर्तियाँ प्रथम शताब्दी ई0पू0 के धरातल से हनुमान गढ़ी से अधिक संख्या में उपलब्ध हुई है, जो अहिच्छत्र के उत्खनन से प्राप्त वी0 एस0 अग्रवाल द्वारा वर्णित तथाकथित विदेशी प्रकार की मृण्मूर्तियों की तरह है।

प्रारंभिक ऐतिहासिक काल की महत्वपूर्ण खोजों में प्रथम–द्वित्तीय शताब्दी ईसवी के धरातल से प्राप्त राउलेटेड मृदभांड के टुकड़ों का उल्लेख किया जा सकता है, जो ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में अयोध्या के बड़े पैमाने पर व्यापार एवं वाणिज्य का संकेत करते हैं। यह व्यापार जल मार्ग से होता था। सरयू नदी का गंगा से छपरा में संगम होता है। गंगा नदी के मार्ग से ही अयोध्या का संबंध पूर्वी भारत के ताम्रलिप्ति जैसे नगरों से था। हाल के समय तक सरयू और गंगा नदियों द्वारा बड़ी आकार की नावों से व्यापार होता था राउलेटेड मृदभांड की खोज से देश के अन्तर्वती भागों से व्यापार एवं वाणिज्य का प्रमाण उपलब्ध है। इस उत्खनन में यहाँ से गुप्त काल के आवासीय जमाव भी प्राप्त हुए हैं। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के जमावों के बाद यहाँ के आवासीय जमावों में एक अंतराल दिखाई पड़ता है। 11 वीं शताब्दी ईस्वी के आसपास यह स्थल फिर से आबाद हुआ। ईंट और चूने से निर्मित मध्यकाल की एक फर्श इस धरातल से प्राप्त हुई है।

1979–80 ईस्वी में अयोध्या में पुनः एक बार उत्खनन कार्य **आर्कियोलॉजी ऑफ द रामायण साइट्स प्रोजेक्ट** के अंतर्गत **इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज शिमला** के प्रोफेसर बी0 बी0 लाल और भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के के0 एन0 दीक्षित के संयुक्त तत्वावधान में किया गया। इस उत्खनन का उद्देश्य इस तथ्य का पता लगाना था कि अयोध्या में उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति के काल के पहले का कोई आवासीय जमाव है या नहीं? इससे पूर्व किए गए उत्खनन से उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति से संबंधित साक्ष्य प्राप्त हो चुके थे।

13.3.4 उत्खनन का महत्व

इस उत्खनन से यह पता चला कि यहाँ की प्राचीनता सातवीं शताब्दी ई0पू0 तक थी। यह क्षेत्र चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति के विस्तार क्षेत्र के बाहर था। प्रारंभिक चरण में उत्तरी काली चमकीली पात्र

परंपरा के बर्तन पतले अनुभाग वाले अच्छी तरह से पके हुए, चमकदार पालिश से युक्त और कोयले की तरह काले, धूसर रंग के, सुनहले, रुपहले इत्यादि विभिन्न रंगों के हैं। कुछ बर्तनों के प्रकार ऐसे हैं जो इसी चरण के बर्तनों से मेल खाते हैं। उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा के साथ मिलने वाली लाल रंग की पात्र परंपरा के प्रकारों में प्रथम चरण से मध्यवर्ती और परवर्ती चरणों में परिबर्तन दिखाई पड़ता है। मृण्मूर्तियों में विकास के चिन्ह परिलक्षित होते हैं। ये अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। अन्य पुरावशेषों में जैस्पर, अगेट, चालसेडनी पर बने हुए और लगभग सभी धरातलों से मिलने वाले विभिन्न प्रकार के बाट अथवा बेलनाकार टुकड़े, बहुमूल्य पत्थरों के टुकड़े, पक्षियों और पशुओं के आकार में बने हुए लटकन इत्यादि उल्लेखनीय है। एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू (उत्तरी काली चमकीली मृदभांड) काल के मकान पक्की ईटों से बने हुए थे, इसके अलावा पक्की मिट्टी के रिंग वेल भी इस कालखंड से प्राप्त हुए हैं लेकिन ये सभी साक्ष्य यहाँ के प्रथम चरण से संबंधित नहीं है। लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में एन बी पी डब्ल्यू (उत्तरी काली चमकीली मृदभांड) काल के अंत के बाद अयोध्या लगातार शुंग, कुषाण और गुप्त युग से मध्यकाल तक आबाद रहा। शुंग काल की पक्की ईंटों की बनी हुई एक दीवार प्रकाश में आई है। इसी प्रकार गुप्त कालीन एक मकान के प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं इस स्थल से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी के बर्तन श्रृंग्वेरपुर और भारद्वाज आश्रम (वर्तमान समय का बालसन चौराहा) से प्राप्त गुप्तकालीन बर्तनों से साम्यता रखते हैं अर्थात् यह कहा जा सकता है कि गुप्तकाल तक आते–आते अयोध्या, श्रृंग्वेरपुर और प्रयाग (भारद्वाज आश्रम) में एक समान संस्कृति का विकास हो रहा था और संभवत मानव की आवाजाही एवं व्यापार–वाणिज्य बढ़ चुका था।

13.3.5 राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवाद

राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवाद अयोध्या के चर्चा में आने का प्रारम्भिक कारण है। हालाकि शहर के बहुत पुराने होने के बावजूद, यहाँ किसी भी प्राचीनता के बहुत कम स्मारक बचे हैं। आधुनिक शहर के पास कई टीले हैं, जो प्राचीन अयोध्या के स्थल को चिह्नित करते हैं। पुरातत्वविदों द्वारा अभी तक इनका पर्याप्त रूप से अन्वेषण नहीं किया गया है। बाबरी मस्जिद ("बाबर की मस्जिद") मुगल सम्राट बाबर द्वारा 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में एक ऐसे स्थान पर बनवाई गई थी, जिसे पारंपरिक रूप से राम की जन्मभूमि और एक प्राचीन हिंदू मंदिर, राम जन्मभूमि के स्थान के रूप में पहचाना जाता है। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए इसके महत्व के कारण, यह स्थान अक्सर विवाद का विषय रहा है। 1990 में, उत्तरी भारत में दंगे हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा मस्जिद पर धावा बोलने के बाद हुए, जो इस स्थल पर एक मंदिर बनाने के इरादे से थे। इसके परिणामस्वरूप हुए संकट ने केंद्र में वीपी सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को गिरा दिया। सिंह, जिन्होंने सितंबर–अक्टूबर 1990 ईस्वी में भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या तक की रथ यात्रा ("रथ यात्रा") का समर्थन नहीं किया था। भाजपा द्वारा उनकी सरकार से समर्थन वापस लेने के बाद उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा यह अनुमान लगाया गया था कि मस्जिद के विध्वंस के बाद भारत भर में हुए दंगों में 2000 से अधिक लोग मारे गए थे। सेवानिवृत्त न्यायाधीश मनमोहन सिंह लिब्रहान के नेतृत्व में एक जांच आयोग का गठन 1992 में किया गया था, लेकिन 2009 तक कोई रिपोर्ट जारी नहीं की गई थी। जब रिपोर्ट आखिरकार सामने आई, तो हंगामा मच गया क्योंकि इसमें मस्जिद के विध्वंस के लिए हिंदू समर्थक भाजपा के कई प्रमुख लोगों को दोषी ठहराया गया था। 2010 में एक अदालत के फैसले ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भूमि को विभाजित कर दिया, लेकिन उस फैसले को 2019 में सुप्रीम कोर्ट ने पलट दिया, जिसने इस स्थल को विशेष रूप से हिंदुओं को सौंप दिया और राज्य को सुन्नी वक्फ बोर्ड को अयोध्या में एक वैकल्पिक स्थल देने का निर्देश दिया, जिसने बाबरी मस्जिद पर कब्जे का दावा किया था।

13.3.6 अयोध्या का राम मन्दिर

अक्टूबर 2023 में अयोध्या भारत की राजनीति और धार्मिक ज्वार का केन्द्र बन गया था, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने घोषणा की कि एक नए, भव्य राम मंदिर का उद्घाटन कुछ ही महीने में होगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 22 जनवरी 2024 को प्राण प्रतिष्ठा समारोह की अध्यक्षता की। उद्घाटन के लिए व्यापक व्यवस्था की गई थी, जिसमें हजारों नेताओं, संतों और विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिष्ठित हस्तियों को निमंत्रण भेजना शामिल

था। नियोजित उद्घाटन और निमंत्रण ने विभिन्न लोगों और राजनीतिक दलों से मिश्रित प्रतिक्रियाएं आयी और राजनीतिक दलों एवं धार्मिक समूहों के भीतर भी मतभेद देखे गए। जबकि चार शंकराचार्य – द्वारका , गुजरात में हिंदू मठों के धार्मिक प्रमुख ज्योर्तिमठ, उत्तराखंड, पुरी–ओडिशा और शृंगेरी, कर्नाटक ने मंदिर निर्माण का कार्य पूर्ण न होने पर प्राण प्रतिष्ठा समारोह आयोजित करने पर चिंता व्यक्त की। शशिकांत दास और महंत नारायण गिरि जैसे अन्य धार्मिक नेताओं ने समारोह को बहुत सौभाग्य की घटना कहा और समझाया कि महत्वपूर्ण बात यह है कि मंदिर का गर्भगृह तैयार है।

अयोध्या को ऐतिहासिक रूप से साकेत के नाम से जाना जाता था। प्रारंभिक बौद्ध और जैन विहित ग्रंथों में उल्लेख है कि गौतम बुद्ध और महावीर इस शहर में आए और रहते थे। जैन ग्रंथों में इसे पांच तीर्थंकरों, ऋषभनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ और अनंतनाथ की जन्मस्थली के रूप में भी वर्णित किया गया है और इसे पौराणिक भरत चक्रवर्ती के साथ जोड़ा गया है। गुप्त काल के बाद से कई स्रोतों में अयोध्या और साकेत को एक ही शहर के नाम के रूप में उल्लेख किया गया है।

13.3.7 नामकरण और अर्थ

"अयोध्या" शब्द संस्कृत की क्रिया युद्ध, "लड़ना, युद्ध छेड़ना" का नियमित रूप से बना है। अयोध्या भविष्य का निष्क्रिय कृदंत है, जिसका अर्थ है "लड़ा जाना" आरंभिकं ऋणात्मक उपसर्ग है। इसलिए संपूर्ण का अर्थ है "लड़ा नहीं जाना चाहिए" या अंग्रेजी में अधिक मुहावरेदार रूप से "अजेय"यह अर्थ अथर्ववेद द्वारा प्रमाणित है, जो इसका उपयोग देवताओं के अजेय शहर को संदर्भित करने के लिए करता है।नौवीं शताब्दी की जैन कविता आदि पुराण में यह भी कहा गया है कि अयोध्या "केवल नाम से नहीं बल्कि दुश्मनों से अजेय होने की योग्यता से अस्तित्व में है"। सत्योपाख्यान इस शब्द की थोड़ी अलग तरह से व्याख्या करते हुए कहता है कि इसका अर्थ है "वह जिसे पापों से नहीं जीता जा सकता"। "साकेता" शहर का पुराना नाम है, जो संस्कृत, जैन, बौद्ध, ग्रीक और चीनी स्रोतों में प्रमाणित है।वामन शिवराम आप्टे के अनुसार, "साकेता" शब्द संस्कृत के शब्द सह (साथ) और अकेतेन (घर या भवन) से बना है। आदि पुराण में कहा गया है कि अयोध्या को "अपनी शानदार इमारतों के कारण साकेत कहा जाता है, जिनकी भुजाओं में महत्वपूर्ण बैनर थे"।हंस टी. बेकर के अनुसार, यह शब्द सा और केतु ("बैनर के साथ") जड़ों से लिया जा सकता है। साकेतु का भिन्न नाम विष्णु पुराण में प्रमाणित है। अंग्रेजी में पुराना नाम "अवध" या "औड" था और 1856 तक यह जिस रियासत की राजधानी थी, उसे आज भी अवध स्टेट के नाम से जाना जाता है। रामायण में अयोध्या को प्राचीन कोशल साम्राज्य की राजधानी बताया गया है। इसलिए इसे "कोशल" भी कहा जाता था। आदि पुराण में कहा गया है कि अयोध्या "अपनी समृद्धि और अच्छे कौशल के कारण" सु–कोशल के रूप में प्रसिद्ध है। भारत के बाहर अयुत्या (थाईलैंड) और योग्यकार्ता (इंडोनेशिया) शहरों का नाम अयोध्या के नाम पर रखा गया है।

13.3.8 अयोध्या का साहित्यिक सन्दर्भ

प्राचीन भारतीय संस्कृत भाषा के महाकाव्यों, जैसे रामायण और महाभारत में अयोध्या नामक एक पौराणिक शहर का उल्लेख है, जो राम सहित कोसल के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी थी।न तो इन ग्रंथों में, न ही वेदों जैसे पहले के संस्कृत ग्रंथों में साकेत नामक शहर का उल्लेख है। गैर–धार्मिक, गैर–पौराणिक प्राचीन संस्कृत ग्रंथ, जैसे पाणिनि की अष्टाध्यायी और उस पर पतंजलि की टिप्पणी, साकेत का उल्लेख करते हैं।बाद के बौद्ध ग्रंथ महावस्तु में साकेत को इक्ष्वाकु राजा सुजाता के रूप में वर्णित किया गया है, जिनके वंशजों ने शाक्य राजधानी कपिलवस्तु की स्थापना की थी। सबसे पुराने बौद्ध पाली–भाषा ग्रंथों और जैन प्राकृत–भाषा ग्रंथों में कोसल महाजनपद के एक महत्वपूर्ण शहर के रूप में साकेता (प्राकृत में सगेया या सैया) नामक शहर का उल्लेख है।बौद्ध और जैन दोनों ग्रंथों में स्थलाकृतिक संकेत बताते हैं कि साकेत वर्तमान अयोध्या के समान है। उदाहरण के लिए, संयुक्त निकाय और विनय पिटक के अनुसार, साकेत श्रावस्ती से छह योजन की दूरी पर स्थित था। विनय पिटक में उल्लेख है कि दोनों शहरों के बीच एक बड़ी नदी स्थित थी, और सुत्त निपात में साकेत को श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक दक्षिण की ओर जाने वाली सड़क पर पहला पड़ाव स्थल बताया गया है।

चौथी शताब्दी के बाद, कालिदास के रघुवंश सहित कई ग्रंथों में अयोध्या का उल्लेख साकेत के दूसरे नाम के रूप में किया गया है।बाद के जैन विहित पाठ जम्बूद्वीप–पन्नति में भगवान ऋषभनाथ के जन्मस्थान के रूप में विनिया नामक शहर का वर्णन किया गया है और इस शहर को भरत चक्रवर्ती के साथ जोड़ा गया है। कल्प–सूत्र में इक्खागाभूमि को ऋषभदेव का जन्मस्थान बताया गया है। जैन पाठ पौमचरिया स्पष्ट करता है कि अओझा (अयोध्या), कोसल–पुरी (कोसल शहर), विनिया, और सैया (साकेता) पर्यायवाची हैं। उत्तर–विहित जैन ग्रंथों में 'अओज्ज्झा' का भी उल्लेख है; उदाहरण के लिए अवस्सागाकुर्नी इसे कोसल के प्रमुख शहर के रूप में वर्णित करता है, जबकि अवस्सागानिजुट्टी इसे सागर चक्रवर्ती की राजधानी के रूप में वर्णित करता है।अवससागनिजुट्टी का तात्पर्य है कि विनिया, कोसलपुरी (कोसलपुरा) और इक्खागाभूमि अलग–अलग शहर थे, उन्हें क्रमशः अभिनामदान, सुमाई और उसाभा की राजधानियों के रूप में नामित किया गया था। उत्तर–विहित पाठ ''थानासुत्त'' पर अभयदेव की टिप्पणी में साकेत, अयोध्या और विनीता को एक शहर के रूप में पहचान की है। एक सिद्धांत के अनुसार, पौराणिक अयोध्या शहर ऐतिहासिक शहर साकेत और वर्तमान अयोध्या के समान है। एक अन्य सिद्धांत के अनुसार अयोध्या एक पौराणिक शहर है और अयोध्या नाम का उपयोग साकेत के लिए चौथी शताब्दी के आसपास किया जाने लगा। एक समय साकेत राजधानी थी और पौराणिक शहर के नाम पर इसका नाम बदलकर अयोध्या कर दिया गया। कुछ सन्दर्भों में कहा गया है कि साकेत और अयोध्या दो निकटवर्ती शहर थे या अयोध्या साकेत शहर के भीतर एक इलाका था।

13.3.9 अयोध्या का राजनीतिक इतिहास एवं विकासक्रम

पुरातात्त्विक और साहित्यिक साक्ष्यों से पता चलता है कि वर्तमान अयोध्या का स्थल ई0पू0 पाँचवीं या छठी शताब्दी तक एक शहरी बस्ती के रूप में विकसित हो गया था।इस स्थल की पहचान प्राचीन साकेत शहर के स्थान के रूप में की गई है, जो संभवतः दो महत्वपूर्ण सड़कों, श्रावस्ती – प्रतिष्ठान उत्तर–दक्षिण सड़क, और राजगृह – वाराणसी –श्रावस्ती– तक्षशिला पूर्व–पश्चिम के मिलन पर स्थित एक बाजार के रूप में उभरा। संयुक्त निकाय जैसे प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में कहा गया है कि साकेत प्रसेनजीत द्वारा शासित कोसल साम्राज्य में स्थित था, जिसकी राजधानी श्रावस्ती में स्थित थी। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद – अट्ठकथा में कहा गया है कि साकेत शहर की स्थापना राजा प्रसेनजीत के सुझाव पर व्यापारी धनंजय ने की थी, जो विशाखा के पिता थे। दीघनिकाय इसे भारत के छह बड़े शहरों में से एक के रूप में वर्णित करता है। प्रारंभिक बौद्ध ग्रंथों में श्रावस्ती को कोसल की राजधानी के रूप में उल्लेख किया गया है लेकिन बाद के ग्रंथों, जैसे जैन ग्रंथ नयाधम्मकहाओ और पन्नवन सुत्तम और बौद्ध जातक में साकेत को कोशल की राजधानी के रूप में उल्लेख किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि एक व्यस्त शहर के रूप में जहाँ यात्रियों का आना–जाना लगा रहता है, यह गौतम बुद्ध और महावीर जैसे प्रचारकों के लिए महत्वपूर्ण हो गया है।संयुक्त निकाय और अंगुत्तर निकाय में उल्लेख है कि बुद्ध कभी–कभी साकेत में निवास करते थे। प्रारंभिक जैन ग्रंथ अंतगदा–दसाओ, अनुत्तरोवैया–दसाओ, और विवागसुया में कहा गया है कि महावीर ने साकेत का दौरा किया था; नयाधम्मकहाओ का कहना है कि पार्श्वनाथ ने भी साकेत का दौरा किया था।

यह स्पष्ट नहीं है कि पांचवीं शताब्दी ई0पू0 के आसपास मगध सम्राट अजातशत्रु द्वारा कोसल पर विजय प्राप्त करने के बाद साकेत का क्या हुआ। अगली कुछ शताब्दियों तक शहर की स्थिति के बारे में ऐतिहासिक स्रोतों की कमी है यह संभव है कि शहर माध्यमिक महत्व का एक वाणिज्यिक केंद्र बना रहा, लेकिन मगध के राजनीतिक केंद्र के रूप में विकसित नहीं हुआ, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र में स्थित थी। तीसरी शताब्दी ई0पू0 में मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान शहर में कई बौद्ध इमारतों का निर्माण किया गया होगा ये इमारतें संभवतः अयोध्या में वर्तमान मानव निर्मित टीलों पर स्थित थीं।अयोध्या में खुदाई के परिणामस्वरूप एक बड़ी ईंट की दीवार की खोज हुई है, जिसे पुरातत्वविद् बीबी लाल ने एक किले की दीवार के रूप में पहचाना है। यह दीवार संभवतः तीसरी शताब्दी ई0पू0 की अंतिम समय में बनाई गई थी।

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद, साकेत पुष्यमित्र शुंग के शासन के अधीन आ गया होगा। धनदेव के प्रथम शताब्दी ई0पू0 के शिलालेख से पता चलता है कि उन्होंने वहां एक राज्यपाल नियुक्त किया था।

युगपुराण में साकेत का उल्लेख एक राज्यपाल के निवास के रूप में किया गया है और इसका वर्णन यूनानियों, मथुरा और पांचालों की संयुक्त सेना द्वारा हमला किए जाने के रूप में किया गया है।पाणिनि पर पतंजलि की टिप्पणी में साकेत की यूनानी घेराबंदी का भी उल्लेख है।

बाद में, साकेत एक छोटे, स्वतंत्र राज्य का हिस्सा बन गया।युग पुराण में कहा गया है कि यूनानियों के पीछे हटने के बाद साकेत पर सात शक्तिशाली राजाओं का शासन था। वायु पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में भी कहा गया है कि कोसल की राजधानी में सात शक्तिशाली राजाओं ने शासन किया था। इन राजाओं की ऐतिहासिकता धनदेव सहित देव वंश के राजाओं के सिक्कों की खोज से प्रमाणित होती है, जिनके शिलालेख में उन्हें कोसल के राजा कोसलाधिपति के रूप में वर्णित किया गया है।कोसल की राजधानी के रूप में, साकेत ने संभवतः इस अवधि के दौरान श्रावस्ती को महत्व नहीं दिया। पाटलिपुत्र को तक्षशिला से जोड़ने वाला पूर्व–पश्चिम मार्ग, जो पहले साकेत और श्रावस्ती से होकर गुजरता था, इस अवधि के दौरान दक्षिण की ओर स्थानांतरित हो गया होगा, जो अब साकेत, अहिच्छत्र और कान्यकुब्ज से होकर गुजरता है। ऐसा प्रतीत होता है कि देव राजाओं के बाद साकेत पर दत्त, कुषाण और मित्र राजाओं का शासन रहा, हालाँकि उनके शासन का कालानुक्रमिक क्रम अनिश्चित है।

ऐसा माना जाता है कि कुषाण शासन के दौरान साकेत एक समृद्ध शहर बना।दूसरी शताब्दी के भूगोलवेत्ता टॉलेमी ने एक महानगर 'सगेदा' या 'सगोडा' का उल्लेख किया है, जिसकी पहचान साकेत से की गई है।सबसे पहला शिलालेख जिसमें साकेत को एक स्थान के नाम के रूप में उल्लेखित किया गया है, वह कुषाण काल के उत्तरार्ध का है; यह श्रावस्ती में एक बुद्ध छवि के आसन पर पाया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाणों से पहले या बाद में, साकेत पर मित्र नामान्त राजाओं का शासन था और जिनके सिक्के अयोध्या में पाए गए हैं। वे संभवतः किसी स्थानीय राजवंश के शासक रहे होंगे, जो मथुरा के मित्र राजवंश से भिन्न था। इनका विवरण उनके सिक्कों से प्रमाणित होता हैं; संघ–मित्र, विजय–मित्र, सत्य–मित्र, देव–मित्र, और आर्य–मित्र इत्यादि के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

चौथी शताब्दी के आसपास, यह क्षेत्र गुप्तों के नियंत्रण में आ गया, जिन्होंने ब्राह्मणवाद को पुनर्जीवित किया। वायु पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण प्रमाणित करते हैं कि प्रारंभिक गुप्त राजाओं ने साकेत पर शासन किया था। वर्तमान अयोध्या में गुप्तकालीन कोई पुरातात्त्विक परत नहीं खोजी गई है, हालाँकि यहाँ बड़ी संख्या में गुप्तकालीन सिक्के मिले हैं। यह संभव है कि गुप्त काल के दौरान, शहर में बस्तियाँ उन क्षेत्रों में स्थित थीं जिनकी अभी तक खुदाई नहीं हुई है।पाँचवीं शताब्दी के चीनी यात्री फाह्यान का कहना है कि उसके समय में 'शा–ची' में बौद्ध इमारतों के खंडहर मौजूद थे और शा–ची की पहचान साकेत से करता है, हालाँकि यह पहचान निर्विवाद नहीं है। यदि शा–ची वास्तव में साकेत है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि पांचवीं शताब्दी तक, शहर में अब कोई समृद्ध बौद्ध समुदाय या कोई महत्वपूर्ण बौद्ध भवन नहीं था, जो अभी भी उपयोग में हो।

गुप्त काल के दौरान एक महत्वपूर्ण विकास साकेत को इक्ष्वाकु वंश की राजधानी, अयोध्या के प्रसिद्ध शहर के रूप में मान्यता देना था। कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान जारी 436 ईस्वी के करमदंडा (कर्मदंड) शिलालेख में अयोध्या को कोसल प्रांत की राजधानी के रूप में नामित किया गया है जिसे सेनापति पृथ्वीसेन द्वारा अयोध्या के ब्राह्मणों को दान दिया गया था।बाद में गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र से अयोध्या स्थानांतरित कर दी गई। अयोध्या की एक स्थानीय मौखिक परंपरा, जिसे पहली बार 1838 में रॉबर्ट मॉन्टगोमरी मार्टिन द्वारा लिखित रूप मेंउल्लेख किया गया है कि राम के वंशज बृहदबाला की मृत्यु के बाद शहर वीरान हो गया था। यह शहर तब तक वीरान रहा, जब तक कि उज्जैन के राजा विक्रम इसकी खोज में नहीं आये और इसे फिर से स्थापित नहीं किया। उसने प्राचीन खंडहरों को ढकने वाले जंगलों को काटा, रामगर किला बनवाया और 360 मंदिर बनवाए। विक्रमादित्य कई गुप्त राजाओं की एक उपाधि थी और जिस राजा ने राजधानी को अयोध्या में स्थानांतरित किया, उसे स्कंदगुप्त के रूप में पहचाना जाता है।बेकर का सिद्धांत है कि अयोध्या की ओर कदम पाटलिपुत्र में गंगा नदी की बाढ़, पश्चिम से हूणों की प्रगति को रोकने की आवश्यकता और स्कंदगुप्त की खुद की तुलना राम से करने की इच्छा (जिनका इक्ष्वाकु वंश पौराणिक अयोध्या से जुड़ा हुआ है) के कारण हुआ होगा।परमारथ के लाइफ ऑफ वसुबंधु के अनुसार, विक्रमादित्य

विद्वानों के संरक्षक थे, और उन्होंने वसुबंधु को सोने की 300,000 मोहरें प्रदान की थीं।पाठ में कहा गया है कि वसुबंधु साकेत (शा–की–ता) के मूल निवासी थे, और विक्रमादित्य को अयोध्या के राजा के रूप में वर्णित करते हैं। इस धन का उपयोग अ–यु–जा (अयोध्या) देश में तीन मठों के निर्माण के लिए किया गया था।परमारथ आगे कहते हैं कि राजा बालादित्य (नरसिम्हगुप्त) और उनकी माँ ने भी वसुबंधु को बड़ी मात्रा में सोना दिया था और इन निधियों का उपयोग अयोध्या में एक और बौद्ध मंदिर बनाने के लिए किया गया था।इन संरचनाओं को सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री जुआन–जांग ने देखा होगा, जो अयोध्या में एक स्तूप और एक मठ का वर्णन करता है।

13.3.10 अयोध्या के प्रमुख दर्शनीय स्थल

मानव सभ्यता की पहली पुरी होने का पौराणिक गौरव अयोध्या को स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। फिर भी रामजन्मभूमि, कनक भवन, हनुमानगढ़ी ,राजद्वार मंदिर ,दशरथमहल, लक्ष्मणकिला, कालेराम मन्दिर, मणिपर्वत, श्रीराम की पैड़ी, नागेश्वरनाथ, क्षीरेश्वरनाथ श्री अनादि पञ्चमुखी महादेव मन्दिर, गुप्तार घाट समेत अनेक मन्दिर यहाँ प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। बिरला मन्दिर, श्रीमणिरामदास जी की छावनी, श्रीरामवल्लभाकुञ्ज, श्री लक्ष्मणकिला, श्री सियारामकिला, उदासीन आश्रम रानोपाली तथा हनुमान बाग जैसे अनेक आश्रम पर्यटन के केन्द्र हैं। राममन्दिर के निर्माण ने आज अयोध्या भारत के प्रमुख पर्यटन स्थलों में खड़ा हो गया है।

13.4 चित्रकूट(25°12′ उत्तरी अक्षांश 80°54′ पूर्वी देशान्तर/ 25-2° उत्तरी 80-9° पूर्वी)

चित्रकूट, यह उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों में फैली उत्तरी विंध्य श्रृंखला में स्थित है। यहाँ का बड़ा हिस्सा उत्तर प्रदेश के चित्रकूट और मध्य प्रदेश के सतना जनपद में शामिल है। यहाँ प्रयुक्त "चित्रकूट" शब्द, इस क्षेत्र के विभिन्न स्थानों और स्थलों की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक विरासत का प्रतीक है। चित्रकूट "अनेक आश्चर्यों की पहाड़ियाँ" वास्तव में प्रकृति और देवताओं द्वारा प्रदत्त एक अद्वितीय उपहार है, जो उत्तर प्रदेश में पयस्वनी/मन्दाकिनी नदी के किनारे विन्ध्य के उत्तरार्द्ध में स्थित एक शांत क्षेत्र है। ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से चित्रकूट महत्वपूर्ण जनपद है। चित्रकूट दो शब्दों के मेल से बना है। संस्कृत में चित्र का अर्थ है अशोक एवं कूट का अर्थ है शिखर या चोटी। इस वन क्षेत्र में कभी अशोक के वृक्ष बहुतायत मिलते थे।

13.4.1 चित्रकूट का पुरातात्त्विक सन्दर्भ

यह उत्तर प्रदेश में स्थित एक महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्थल है, जो धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रखता है। यह स्थान भगवान राम के वनवास से जुड़ा है, और यहाँ कई प्राचीन मंदिर और गुफाएं स्थित हैं। चित्रकूट के आस–पास के क्षेत्र में हुए उत्खनन कार्य से यहाँ प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक काल तक की संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं, जिसका विवरण निम्नवत् है–

1. प्रागैतिहासिक काल

- नवपाषाण काल ,
- ताम्रपाषाण काल

चित्रकूट में खुदाई के दौरान, नवपाषाण युग और ताम्रपाषाण युग के अवशेष मिले हैं, जो दर्शाते हैं कि यहाँ प्राचीन काल से मानव बस्तियाँ रही हैं। चित्रकूट की पहाड़ियों में दुर्लभ शैलचित्र मिले हैं, जो प्रागैतिहासिक काल के मानव जीवन को दर्शाते हैं।

2. ऐतिहासिक काल

- एन.बी.पी.डब्ल्यू. के पुरातात्त्विक अवशेष

राजापुर क्षेत्र के कलवलिया में पुरातात्त्विक महत्व को देखते हुए वहां पर उत्खनन कार्य किया गया

है। डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ के इतिहास विभाग के अध्यक्ष अवनीश चंद्र मिश्र के नेतृत्व में इस टीले पर खुदाई की गई और मानव सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए। इस गाँव के समीप उदियावन देवी मंदिर के पास भी सर्वेक्षण का कार्य किया गया । कलवलिया गाँव के सांडवावीर टिले में पुरातत्त्व विभाग एवं शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से उत्खनन कार्य कराया गया। उत्खनन के उपरांत पाषाण कालीन मानव सभ्यता के संकेत मिले, उस समय प्रयोग की जाने वाली वस्तुएं उत्खनन से प्राप्त हुई। पाषाण के कई उपकरण भी प्राप्त हुए, यहाँ से उतरी काली चमकीली मृदभाण्ड परंपरा के बर्तन भी प्राप्त किए गए। इस स्थल पर एक मंदिर भी है, जो की टूटी अवस्था में है। इस मंदिर में विष्णु व महिषासुर मर्दिनी की मूर्तियाँ हैं। मंदिर 12वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। इसके पूर्व भी यहाँ मानव सभ्यता के प्रमाण होने की संभावना है। इस सर्वेक्षण टीम में डॉ0 रामनरेश पाल क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी, प्रयागराज, डॉ0 बृजेश रावत, प्रतिमा विज्ञान विशेषज्ञ और वी के खत्री तकनीकी विशेषज्ञ इत्यादि थे।

यह माना जाता है कि भगवान राम, सीता और लक्ष्मण ने अपने वनवास का एक महत्वपूर्ण समय चित्रकूट में बिताया था। चित्रकूट में कई गुफाएं हैं, जिनमें से कुछ रामायण काल से संबंधित मानी जाती हैं। उत्खनन से प्राप्त अन्य अवशेषों में हाथ से बने बर्तन, तांबे की वस्तुएं, चूड़ियाँ, मोती इत्यादि हैं, जो प्राचीन संस्कृतियों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

चित्रकूट की विंध्य पर्वत श्रंखला, जहाँ हमें प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक कि निरन्तरता देखने को मिलती है। ये निरन्तरता मानव युग की उत्पत्ति से लेकर आज विकसित अवस्था में भी वैसे ही आगे बढ़ रही है। चाहे पाषाणयुग रहा हो, चाहे रामायण युग, चाहे वैदिक युग, चाहे मुगल काल और फिर चाहे अंग्रेजों का समय रहा हो, हमेशा मानव अपने पिछले समय से सीखकर आगे अपने परंपरागत मूल्यों को लेकर चलता है। ये उन दिनों की भाषा है, जब मनुष्य विकास के शुरुआती दौर से गुजर रहा था और वो समय पाषाण युग था। चित्रकूट में पाषाणयुग के समय के प्राचीन शैलचित्र जीवंत रूप में मानव विकास की समझ और उसकी निरन्तरता को दर्शा रहे हैं।

13.4.2 चित्रकूट के शैलचित्र और प्रागैतिहासिक जीवन

सरहट स्थित शैलचित्रों का ऐतिहासिक महत्व पुरातत्त्व में रूचि रखने वाले अनुज हनुमत ने बताया कि सरहट के समीप खम्भेश्वर घाटी के दोनों तरफ गुफाओं में शैलचित्रों का पूरा पैनल है, जिसमें एक साथ तमाम जंगली पशुओं का झुंड दर्शित है। कुछ शैल चित्र धूप व संरक्षण के अभाव में खराब हो रहे हैं। इनके संरक्षण की जरूरत है। दक्षिण भाग में एक गुफा है। यह बहुत संकरी गुफा है। इसमें पहुंचना कठिन कार्य है। उनका मानना है कि पाठा का यह पूरा इलाका पुरातात्विक धरोहरों का भंडार है। इस पूरे इलाके का पुरातत्व विभाग द्वारा सर्वेक्षण व संरक्षण कराए जाने की आवश्यकता है।

इन शैलचित्रों को देखा जाय तो इसमें सामूहिकता की भावना दर्शित होती है। पुरापाषाण काल की संस्कृति के अवशेष उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, मिर्जापुर व प्रतापगढ़ के अलावा मध्य प्रदेश की विंध्यघाटी में मिले हैं। अब लगातार चित्रकूट में मानिकपुर के आस–पास भी शैलचित्र मिल रहें है, इन शैलचित्रों में सामूहिकता का भाव दर्शाया गया है। इसके साथ ही विंध्यघाटी में मिले अब तक के पुरापाषाणकाल के शैलचित्र से पूरी तरह मिलान कर रहें है। फिलहाल पुरातत्व विभाग और इतिहासकारों ने अब तक जो निष्कर्ष निकाला है उससे यह शैल चित्र पुरापाषाण काल की ओर इशारा कर रहें है। मानिकपुर की घाटी और इलाहाबाद की बेलन घाटी भौगोलिक दृष्टि से भी समान है। जिससे इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि चित्रकूट में पुरापाषण कालीन संस्कृति नहीं पनपी होगी।

पुरापाषण काल के अब तक जितने भी शैलचित्र प्रमाणित हो चुके हैं उनमें सामूहिकता प्रधान है। इन शैल चित्रों में लोग अपनी भावनाएं प्रदर्शित करते थे जैसे आखेट करना, पालतू जानवरों को प्रदर्शित करना, भोजन की तलाश में टहलना आदि है। चित्रकूट में इनके साथ साथ युद्ध से जुड़े भी कई शैलाश्रय मिले हैं। यानी शैलचित्रों को लेकर जिस तरह की निरंतरता और विभिन्नता चित्रकूट में मिलती है फिलहाल ऐसा कहीं और नहीं देखने को मिला।

चित्रकूट में मौजूद हजारों साल पुरानी मानव सभ्यता से जुड़े निशान ऐतिहासिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है। विंध्य पर्वत श्रेणी से घिरे चित्रकूट के पाठा क्षेत्र अंतर्गत बांसा, चूल्हि, खाम्भा, करपटिया, मऊ गुरदरी, धारकुंडी और मारकुंडी आदि स्थानों पर शैलचित्र भारी संख्या में मौजूद हैं। ये सभी शैलचित्र पुरापाषाणकालीन और पाषाणकालीन समयावधि के हैं। सबसे ज्यादा ध्यान देने वाली बात ये है की यहाँ मौजूद शैलचित्रों में कई तरह की विशेषता है। ग्रामीण परिवेश, जानवरों का शिकार, युद्ध, चक्रव्यूह रचना सहित कई अन्य विशेषताओं को खुद में समेटे चित्र हैं।

यहाँ बहुतायत संख्या में पत्थर से बने उपकरण भी मिलते हैं। उक्त शैलचित्रों को देखकर ऐसा लगता है मानों आज हजारों वर्ष बाद भी हमारे पूर्वज हमसे कुछ कहना चाहते हैं। मानव सभ्यता की शुरुआत से जुड़े ये चित्र बेहद महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें हम जल्द ही खो देंगे। इस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में पत्थर और मिट्टी खनन हो रहा है, जिसकी वजह से इन शैलचित्रों को नुकसान का खतरा बढ़ता जा रहा है। प्राचीन मानव इतिहास से जुड़ा ये जीवंत दस्तावेज आज भी सरंक्षण और संवर्धन के अभाव में नष्ट होने की दहलीज पर पहुंच गया है और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी डॉ रामनरेश पाल ने बताया कि सरहट स्थित शैलचित्र राज्य पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग द्वारा संरक्षित किए गए हैं । ये स्थल इतिहास और मानव संस्कृति के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण है।

13.4.3 साहित्य में चित्रकुट

बहुत से ऐसे प्राचीन भारतीय साहित्य है जिसमें चित्रकूट और उससे संबंधित आख्यानों की चर्चा है। राम से संबंधित संपूर्ण भारतीय साहित्य में इस स्थान को अद्वितीय गौरव दिया गया है। भगवान राम स्वयं इस जगह के मोहक प्रभाव को मानते हैं। 'रामोपाख्यान' और महाभारत के विभिन्न स्थानों पर तीर्थों के विवरण में चित्रकूट एक को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह 'अध्यात्म रामायण' और 'बृहत् रामायण' चित्रकूट की झकझोर कर देने वाली आध्यात्मिक और प्राकृतिक सुंदरता को प्रमाणित करते हैं। लेखकों के अनुसार बाद में चित्रकूट और इसके प्रमुख स्थानों का वर्णन सोलह कंटो में वर्णित है। राम से संबंधित पूरे भारतीय साहित्य में इस स्थान को एक अद्वितीय गौरव प्रदान किया गया है। फादर कामिल बुलके ने भी 'चित्रकूट–महात्म्य' का उल्लेख किया है जो मैकेंजी के संग्रह में पाया गया है। विभिन्न संस्कृत और हिंदी कवियों ने चित्रकूट का वर्णन किया है। विभिन्न संस्कृत एवं हिन्दी कवियों ने चित्रकूट का वर्णन किया है।

हिंदी के महान कवि तुलसीदास जी ने अपनी सभी प्रमुख कृतियों– रामचरित मानस, कवितावली, दोहावली और विनय पत्रिका में इस स्थान का बहुत सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। रामचरित मानस के अंतिम पाठ में कई छंद हैं, जो तुलसीदास और चित्रकूट के बीच गहरे व्यक्तिगत संबंध को प्रदर्शित करते हैं। अपने जीवन का काफी हिस्सा उन्होंने यहाँ भगवन राम की पूजा और उनके दर्शन की लालसा में व्यतीत किया। यहाँ उनकी उपलब्धियों का एक उल्लेखनीय पल माना जाता है, जब हनुमान जी की मध्यस्थता में उन्हें उनके आराध्य प्रभु राम के दर्शन प्राप्त हुए। उनके मित्र, प्रसिद्ध हिंदी कवि अब्दुर रहीम खान ए खाना ने यहाँ कुछ समय बिताया था, जब वह अकबर के पुत्र सम्राट जहांगीर के पक्ष में थे।

महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' में इस स्थान का सुंदर वर्णन किया है। वह यहाँ के आकर्षण से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने मेघदूत में अपने यक्ष के निर्वासन का स्थान चित्रकूट को बनाया। प्रणामी संप्रदाय के बीटक साहित्य के अनुसार, संत कवि महामति प्रणनाथ ने यहाँ अपनी दो पुस्तकों– छोटा कयामतनामा और बड़ा कयामतनामा को लिखा था। वह वास्तविक स्थान, जहाँ प्राणनाथ रहे और जहाँ उन्होंने कुरान की व्याख्या और श्रीमद्भागवत महापुराण से इसकी समानताओं से सम्बंधित कार्य किये, का सही पता नहीं लगाया जा सका है।

13.4.4 धार्मिक स्थल के रूप में चित्रकूट

चित्रकूट में स्वामी कामतानाथ का मंदिर, अलौकिक छटायुक्त पर्वत के चारों ओर शनि मंदिर, महलों वाले मंदिर के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा लगाया गया पीपल का वृक्ष, उनके द्वारा लिखी गई रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति, माँ पयस्वनी का उद्गम स्थल, ब्रह्मकुंड, साक्षी गोपाल, कामधेनु, भरत

मिलाप, रामबन पथ गमन स्थल, लक्ष्मण पहाड़ी, स्वर्गाश्रम पीलीकोठी, बरहा के हनुमान जी, सरयू धारा आदि स्थान यहाँ पर देखने योग्य हैं।

13.4.5 स्वामी कामतानाथ का मंदिर व परिक्रमा स्थल

मान्यताओं के अनुसार आदिकाल में पर्वत से निकलकर प्रभु कामदनाथ विग्रह के रूप में प्रकटे। मानवी काया के अनुसार उनके मुख पर दांत भी हैं। सात शालीग्राम रूपी दांतों में पांच का पूजन रोजाना किया जाता है। साढ़े पांच किलोमीटर की परिक्रमा मुख्य द्वार से प्रारंभ होती है। चारों दिशाओं में चार द्वार हैं, जिनमें विग्रह विराजमान हैं।

13.4.6 मंदाकिनी के घाट

मंदाकिनी अनुसुइया के जंगलों से निकलती हैं। लेकिन इसके बहाव के स्थानों पर अलग–अलग घाट अपनी अलग विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध हैं। टाठी घाट, जंगलों के मध्य स्थित देवरहा बाबा की साधना का स्थल माना जाता है। यहाँ की धारा में थाली घूमने लगती है। सर्वाधिक लोकप्रिय स्थल राघव प्रयाग घाट व रामघाट, भरत घाट है। राघव प्रयाग घाट पर सरयू व पयस्वनी का संगम है। यहाँ पर राम ने अपने पिता दशरथ का पिंड तर्पण किया था। इसके साथ ही यहाँ पर चित्रकूट के क्षेत्राधिपति स्वयं शंकर स्वामी मत्स्यगयेन्द्र नाथ के विग्रह के रूप में विराजमान हैं। इसके साथ ही स्फटिक शिला पर राम ने माँ जानकी का पुष्पों से श्रंगार किया था। यह विशालकाय शिला आज भी अपने पूरे वैभव के साथ मौजूद है। इसके साथ ही जानकीकुंड, पंचवटी घाट, प्रमोदवन घाट, सूरजकुंड का घाट जहाँ माँ मंदाकिनी पश्चिम मुखी हो जाती हैं देखने योग्य हैं।

13.4.7 अनुसुइया आश्रम

महर्षि कर्दम की पुत्री और महर्षि अत्रि की पत्नी मह्वासती अनुसुइया का विशाल गुरुकुल वाला स्थान धर्मनगरी से लगभग 15 किलोमीटर दूर है। यहाँ पर नैसर्गिक प्राकृतिक सुषमा से युक्त पर्वत व झरनों के साथ सुगंधित जड़ी बूटियों के पहाड़ लोगों का मन मोह कर एक नया उत्साह प्रकट करते हैं। यहाँ पर योगिनी शिला, हनुमान मंदिर, वनवासी राम मंदिर, परमहंस आश्रम आदि दर्शनीय हैं। इसके साथ ही माँ मंदाकिनी की सैकड़ों धाराओं को यहाँ से निकलते देखा जा सकता है। सुशोभित इस स्थान को चित्रकूट का ह्रदय कहा जाता है। देवांगना में भी झरने और पुष्पों की लताओं से लदे पेड़ दर्शनीय है कोटितीर्थ और पंपासर में हनुमान मंदिर आज भी लाखों लोगों की आस्था का केंद्र हैं। इसके आगे पर्वतीय मार्ग पर सरस्वती नदी, यमतीर्थ, सिद्धाश्रम, गृधाश्रम, मणिकर्णिका आश्रम इत्यादि हैं। पास ही मध्य में चंद्र, सूर्य, वायु, अग्नि और वरुण तीर्थ मिलते हैं। इन पांच देवताओं के यहाँ पर निवास करने के कारण इसे पंचतीर्थ कहते हैं और कुछ ही दूरी पर ब्रह्मपद तीर्थ है।

13.4.8 मडफा

चित्रकूट से बीस किलोमीटर दूर घुरेटनपुर के पास पर्वत पर भगवान शंकर अपने पंचमुखी रूप में सशरीर विद्यमान हैं। किंवदती के अनुसार ऋषि माँडव्य की इस तपस्थली में महाराज दुष्यंत की पत्नी शकुंतला ने पुत्र भरत को जन्म दिया था। चंदेलकालीन वैभवशाली नगर के ध्वंशावशेष यहाँ पर बिखरे पड़े दिखाई देते हैं। जैन धर्म के प्रर्वतक आदिनाथ के साथ ही अन्य जैन मूर्तियाँ यहाँ अपनी बदहाली पर आंसू बहा रही हैं।

13.4.9 अत्रि आश्रम

महर्षि वाल्मीकि और महाकवि कालीदास ने इस स्थान का काफी रोचक वर्णन अपने ग्रंथों में किया है। चित्रकूट से लगभग 15 किलोमीटर दूर दक्षिण में मंदाकिनी के किनारे अत्रि–अनुसुइया और उनके पुत्र चंद्रमा, दत्तात्रेय व दुर्वासा के स्थान हैं। यहाँ पर पाए जाने वाले शैलचित्र इसे पुराप्राचीन काल का घोषित करते हैं। मंदाकिनी नदी के उत्तरी किनारे पर भवनों के ध्वंसावशेष मिलते हैं जो कुलपति कण्व के आश्रम के माने जाते हैं। इस आश्रम की निकटवर्ती पहाडियों पर काफी मात्रा में शैलाश्रय और उनमें रामकथाश्रित

शैलचित्र प्राप्त हुए हैं। सप्तर्षियों में सम्मिलित महर्षि अत्रि का विद्यापीठ प्राचीन भारत के महान विद्यापीठों में गिना जाता है। यहाँ से दंडकारण्य की सीमा प्रारंभ हो जाती है और तीन मील दूर एक झरना और हनुमान जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है यहीं पर विराध कुंड है।

13.4.10 शरभंग आश्रम

सतना के वीरसिंहपुर से लगभग 12 किलोमीटर दूर यह स्थान राम और ऋषि शरभंग के अद्भुत मिलन का स्थल है। यहीं पर भगवान विष्णु से कुपित होकर ऋषि ने अपने शरीर का हवन किया था। यहाँ पर दो दिव्य कुंड हैं, जो ऋषि शरभंग के तप बल की पुष्टि करते है।

13.4.11 राजापुर

यमुना के किनारे बसी गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की जन्म स्थली। राम बोला से तुलसीदास जी ने जब रत्नावली के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया तो चित्रकूट में आकर गुरु से दीक्षा लेकर रामचरितमानस के साथ ही अनेक ग्रंथ अपने आराध्य राम के बारे में लिख डाले। यहाँ पर उनके द्वारा स्थापित संकटमोचन हनुमान मंदिर व उनके द्वारा पूजित लगभग 15 किलोमीटर दूर नांदी के हनुमान जी का मंदिर दर्शनीय है। वैसे पहाड़ी के पास ही साईपुर में दाता साई का मंदिर व स्थान दर्शनीय है। यहाँ पर हिंदू और मुस्लिम एकता को बढ़ाने वाला मेला लगता है।

चित्रकूट में भगवान राम ने वनवास काटा था, प्रभु श्रीराम, सीता और लक्ष्मण संग साढ़े बारह वर्षों का वनवास काटने के लिए चित्रकूट का चयन करने के प्रमाण यहाँ की आध्यात्मिक और प्राचीनता में रचे बसे हैं। जगह–जगह इसके प्रमाण मिलते भी हैं। जिम्मेदारों की उपेक्षा और अपनी धरोहरों के प्रति उदासीनता इन पर भारी पड़ रही है। चौरासी कोस की परिक्रमा में ये अवशेष बिखरे हैं, जिन्हें संजोने की जरूरत है।

13.4.12 चित्रकूट का महत्व

चित्रकूट न केवल एक पुरातात्विक स्थल है, बल्कि एक महत्वपूर्ण धार्मिक और पर्यटन स्थल भी है। यहाँ आने वाले भक्त भगवान राम से जुड़े स्थलों के दर्शन करते हैं और प्राकृतिक सुंदरता का आनंद लेते हैं।

प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं, झरनों, उच्च शैल शिखरों व हैरान करने वाली कंदराओं के बीच चित्रकूट आज भी विश्वयुगीन समस्याओं के समाधान के केंद्र के रुप में विख्यात है। कर्मकांडीय ब्राह्मण हों या फिर राजसत्ता भोगने वाले– सभी यहाँ आकर नैसर्गिक प्राकृतिक ह्रासय को देखकर अपनी सुधबुध खो बैठते हैं। शैव, शाक्य, वैष्णव, जैन, प्रणामी संप्रदाय के साथ ही बौद्धों की श्रद्धा का केंद्र चित्रकूट आज भी अपने अतीत के वैभव को जीता सा दिखाई देता है। मुगलिया सल्तनत के दौरान शहंशाह अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से प्रमुख संगीत सम्राट तानसेन व राजा बीरबल का संबंध भी यहाँ से रहा है। भक्तिकाल के प्रमुख कवि अब्दुल रहीम खानखाना ने तो अपने बुरे दिनों में यहाँ पर आकर भाड़ भूजनें का काम भी किया है। उनके लिखे–**चित्रकूट में रम रहे रहिमन अवध नरेश, जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश**, को आज कौन नही जानता।

13.5 कौशाम्बी

प्रयागराज के दक्षिण–पश्चिम 63 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कौशांबी पहले 'कोसम' के नाम से जाना जाता था। यह बौद्ध एवं जैन धर्म का प्राचीनतम केंद्र है। महाजनपद काल में यह वत्स महाजनपद के राजा उदयन की राजधानी थी। पुराण के अनुसार हस्तिनापुर नरेश निचक्षु ने जो राजा परीक्षित के वंशज युधिष्ठिर से सातवीं पीढ़ी में थे, हस्तिनापुर को गंगा द्वारा बहा दिए जाने पर अपनी राजधानी वत्स देश की कौशांबी नगरी में बनाई थी। इसी कौशाम्बी में बुद्ध का विहार जो घोषिताराम विहार के नाम से जाना जाता है, स्थित है। 4 अप्रैल 1997 से पहले कौशांबी, प्रयागराज (इलाहाबाद) के अंतर्गत आता था लेकिन वर्तमान समय में कौशांबी उत्तर प्रदेश का एक जिला है। कौशाम्बी जैन धर्म के छठवें तीर्थंकर श्री पद्मनाथ जी के जन्मस्थान एवं बुद्ध काल की प्रथम प्रसिद्ध नगरी है। यह दक्कन, गंगा नदी घाटी और उत्तर पश्चिम को जोड़े

जाने वाली व्यापारिक मार्ग का प्रमुख केंद्र था। इसलिए अशोक ने अपना एक स्तंभ यहाँ स्थापित करवाया था। इसी स्तंभ पर अशोक की रानी और तीवर की माता कारुवाकी का भी एक लेख है, कौशाम्बी पुरास्थल कौशांबी की मंझनपुर तहसील के कोसम इनाम और कोसम खिराज गाँव के बीच स्थित है।

कौशाम्बी पुरास्थल सर्वप्रथम सन् 1861 ईस्वी में अलेक्जैंडर कनिंघम की नजर में आया था। अपने अध्ययन एवं सर्वेक्षण के आधार पर वे इस नतीजे पर पहुंचे थे कि कोसम ही प्राचीन कौशांबी था। इस महत्वपूर्ण पुरास्थल का भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की ओर से सन् 1936–1937 में एन0जी0 मजुमदार ने उत्खनन कार्य प्रारंभ किया था। यह उत्खनन कार्य केवल दो सत्र 1936–37 एवं 1937–38 में ही हो पाया क्योंकि बलूचिस्तान में पुरातात्त्विक अन्वेषण के दौरान इनकी हत्या कर दी गई थी। बाद में 1949 ईसवीं से लेकर 1964–65 ईस्वीं तक यहाँ पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रोफेसर जी0आर0 शर्मा के नेतृत्व में उत्खनन कार्य करवाया गया था। कौशाम्बी का संपूर्ण क्षेत्र रक्षा प्राचीर से घिरा है तथा आवास क्षेत्र लगभग 6.45 किलोमीटर की परिधि में फैले हुए हैं। यह यमुना के बांए किनारे स्थित है। कौशांबी में मुख्यतः चार क्षेत्रों का उत्खनन हुआ है –

1. घोषिताराम विहार क्षेत्र
2. राजप्रसाद का क्षेत्र
3. अशोक स्तंभ क्षेत्र
4. पूर्वी प्रवेश द्वार के पास रक्षा प्राचीर

उत्खनन के परिणामस्वरूप तीन सांस्कृतिक कालों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं–

1. चित्रित धूसर संस्कृति (Painted Grey Ware)का
2. नॉर्दन ब्लैक पॉलिश्ड मृदभाण्ड का
3. उत्तर एन0बी0पी0डब्ल्यू0 का है

13.5.1 चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति

चित्रित धूसर मृदभाण्डसंस्कृति के साक्ष्य केवल छोटे से हिस्से से प्राप्त हुए हैं। प्राप्त पात्र खंडों की संख्या भी अत्यल्प है। यहाँ का दूसरा चरण उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति का है इस चरण के आठ भाग प्राप्त हुए हैं, जिसमें से प्रथम पांच में भवन निर्माण कार्य में मिट्टी तथा ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं। ऊपर के तीन स्तरों के भवन निर्माण में पक्की ईंटों के प्रयोग के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कालांतर में भवन निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग होने लगा था।

13.5.2 उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति

उत्तरी काली चमकीली मृदभांड परंपरा काल के स्तर के उत्खनन से प्राचीन मार्गों, गलियों तथा रियायशी भवनों के विषय में जानकारी उपलब्ध हुई है। इस क्षेत्र में एन0बी0पी0डब्ल्यू0 पात्र परंपरा के भी लोग निवास करते थे, जो लाल रंग के मृदभांडों का प्रयोग करते थे।

13.5.3 उत्तर–उत्तरी काली चमकीली मृदभांड संस्कृति

यहाँ का तृतीय कालखंड उत्तर एन0बी0पी0डब्ल्यू0 संस्कृति का है। इस काल से मित्र शासकों के सिक्के प्राप्त हुए, जो कौशाम्बी की इस चरण की तिथि निर्धारण करने में सहायता प्रदान करते हैं, जिन्हे पुरालिपी एवं मुद्रा संबंधी साक्ष्यों के आधार पर द्वितीय शताब्दी ई0पू0 का माना गया है। शक–पार्थियन तकनीकी पर बनी मिट्टी की मूर्तियाँ तथा कुषाण सिक्के इत्यादि तृतीय काल के ऊपरी स्तरों से मिले हैं। संभवतः इस क्षेत्र में आवास की निरंतरता गुप्त काल तक चलती रही। यहाँ के उत्खनन से न केवल मिट्टी के बर्तनों के विषय में अपितु मिट्टी की मूर्तियों, सिक्कों तथा अभिलेखों के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण जानकारी मिली

है। कौशाम्बी से प्राप्त घोषिताराम विहार और रक्षा प्राचीर का प्राचीन भारतीय वास्तु स्थापत्य में महत्वपूर्ण स्थान है। विहार के प्रांगण में एक बहुत बड़ा वर्गाकार स्तूप था। इसका आकार 24.70X24.70 मीटर का था। इसके अतिरिक्त एक अंडाकार स्तूप तथा तीन छोटे स्तूपों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ से पुरुषमेघ यज्ञ की बेदी की भी प्राप्ति हुई है, जिसको श्येनचिति कहा जाता था। इसके अलावा यहाँ से एक बड़े आकार के भवन की भी प्राप्ति हुई है, जिसके राजप्रसाद होने की संभावना व्यक्त की गई है। ऐसा कहा जाता है कि 1025 ई0पू0 के काल से ही काफी मजबूत सुरक्षा प्राचीरों का निर्माण हो चुका था लेकिन अन्य स्रोतों के आधार पर इसका काल 600 बी0सी0 से पहले नहीं आंका जा सकता। मौर्य साम्राज्य से पहले की अवधि के दौरान, कौशाम्बी वत्स के स्वतंत्र राज्य की राजधानी थी,जो 16 महाजनपदों में से एक था । कौशाम्बी गौतम बुद्ध के समय तक एक बहुत ही समृद्ध शहर था, जहाँ बहुत से धनी व्यापारियों का निवास था। यह उत्तर–पश्चिम और दक्षिण की ओर से सामानों और यात्रियों के आने–जाने के संगम पर थी। यह बुद्ध के जीवन के सम्बंध में भी बहुत महत्वपूर्ण है।

इसकी सामरिक भौगोलिक स्थिति ने एक महत्वपूर्ण व्यापार केंद्र के रूप में उभरने में मदद की। कौशाम्बी के ऐतिहासिक महत्त्व एवं धरातलीय उपलब्धियों के आधार पर यहाँ उत्खनन कार्य कनिंघम जैसे पुरातत्त्ववेत्ताओं ने बहुत पहले ही आरम्भ किया था किन्तु उन्हें कोई सफलता न प्राप्त हुई। उसके उत्खनन का पूर्ण श्रेय प्रो० गोबर्द्धन राय शर्मा को है जिन्होंने वैज्ञानिक विधि से इस स्थल का उत्खनन करवाया। प्रो० शर्मा को यहाँ तीन महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं–

(1) घोषिताराम विहार (2) राज प्रासाद (3) सुरक्षा प्राचीर

13.5.4 घोषिताराम विहार

कौशाम्बी से उपलब्ध अतीत के अवशेषों में घोषिताराम विहार इसके प्राचीनतम बौद्ध स्थल होने को प्रमाणित करता है। ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार अशोक ने कौशाम्बी में एक स्तूप का निर्माण कराया था। इसके पूर्व छठीं शताब्दी ई0पू0 में जब बौद्ध विहारों की निर्माण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो कौशाम्बी ने भी बौद्ध भिक्षुओं का ध्यान आकृष्ट किया होगा। इस विहार के प्राचीनतम स्तरों से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, जिससे यह विहार छठीं शताब्दी ईषा पूर्व का माना गया है। ह्वेनसांग द्वारा इसके उल्लेख से यह कहा जा सकता है कि घोषिताराम विहार में छठीं शताब्दी ई0पू0 से छठीं शताब्दी ईसा तक निरन्तर परिबर्तन एवं परिवर्द्धन होता रहा। इस अन्तराल में इस विहार में 16 निर्माण कालों की सूचना प्राप्त होती है। पूर्णरूप में यह विहार वर्गाकार है, जिसके चतुर्दिक भिक्षुओं के निवासार्थ लघुकक्ष बने थे। अन्दर एक कक्ष में मुख्य स्तूप निर्मित था। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य स्तूपों के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं। मुख्य स्तूप का निर्माण काल प्रो० शर्मा ने पांचवीं शताब्दी ई0पू0 माना है। विहार एक चहरदीवारी से घिरा है।

विहार के प्रथम निर्माणकालों के विषय में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती क्योंकि ये अंश पूर्णतः विनष्ट हैं। छठे निर्माण काल में घोषिताराम विहार का पूर्ण स्वरूप निर्धारित हो चुका था। इसकाल की दीवारें एक फीट लम्बी ईंटों से बनी हैं। अष्टम काल में विहार के चारों ओर कक्ष तथा अन्तः भाग में बरामदें का निर्माण किया गया है। नवें काल में विहार की दीवारों पर पलस्तर किया गया तथा उसे अलंकृत करने का प्रयास किया गया है। 11 वें काल में विहार का अधिकतम विस्तार हुआ। इस समय यहाँ मघ शासक शासन कर रहे थे क्योंकि कुछ पात्रों में भद्रमघ के नाम प्राप्त होते हैं। त्रयोदश निर्माण काल में विहार को चारों तरफ दीवारों से आवृत्त किया गया जो सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से प्रतीत होता है। उत्तर–पूर्व एवं दक्षिण–पूर्व एवं दक्षिण–पश्चिम के कोनों पर 40 फीट लम्बे एवं 36 फीट चौड़े स्तूपों का भी निर्माण किया गया। उन स्तूपों के दोनों ओर दो समानान्तर दीवारें बनाई गई। जिनके मध्य 79 फीट की दूरी है। इस प्रकार घोषिताराम विहार में वृद्धि की अन्तिम सीमा प्राप्त हुई। तदुपरान्त ह्रास का युग प्रारम्भ हुआ । 16 वें चरण में हूण नरेश तोरमाण ने कौशाम्बी को आक्रान्त कर विहार को ही पूर्णतः विनष्ट कर दिया।

13.5.5 राज प्रासाद

कौशाम्बी के उत्खनन से यमुना तट पर प्रो० शर्मा को एक विशाल राज प्रासाद के अवशेष उपलब्ध

हुए हैं, जो पाषाण खण्डों से बनाया गया है। इस राजप्रासाद को तीन चरणों में पूर्ण किया गया है किन्तु उनकी शैली एवं योजना में कोई भिन्नता नहीं हैं। प्रथम चरण में बिना तराशे गये अनगढ़ पाषाण खण्डों को जोड़ कर दीवारों का निर्माण किया गया है। इन खण्डों को जोड़ने के लिए मसाले के रूप में चूने का प्रयोग किया गया है।

संभवतः इसी चरण में ही इन दीवारों पर पलस्तर भी किया गया होगा। द्वितीय चरण में राजप्रासाद के सौन्दर्य पर बल दिया गया है। दीवार के बाह्य भाग को सुन्दर ढंग से गढ़े हुए पाषाण खण्डों से अलंकृत किया गया है। आवश्यकतानुसार पाषाण खण्डों के मध्य पक्की ईंटों का भी प्रयोग है। राजप्रासाद के कोणों पर बुर्ज या अहालक बनाए गये हैं, जिनके निमार्ण में अधः भाग में पाषाण तथा ऊर्ध्व भाग में ईंटों का प्रयोग किया गया है। दीवार को चतुर्दिक चूने के मोटे पलस्तर से चमत्कृत किया गया है। इस चरण के निचले स्तरों से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। इस युग की सबसे ऊपर के स्तर से एक मुद्रा प्राप्त हुई है, जिस पर द्वितीय शताब्दी ई0पू0 की ब्राह्मी लिपि में "महाराजस्य संघों .. .'' लेख अंकित है।

राजप्रासाद के तृतीय चरण में स्तरों से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड लुप्त होने लगते हैं। तदुपरान्त ऊपरी स्तरों में रक्तवर्ण के भाण्डों के ठीकरे उपलब्ध होते हैं जो ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दी के प्रतीत होते हैं। प्रो० शर्मा ने इसे वत्सराज्य उदयन का राजमहल बतलाया है, जो मित्र शासकों के पश्चात् खण्डहरों के रूप में परिवर्तित हो गया।

13.5.6 सुरक्षा प्राचीर

प्राचीन राजधानियाँ भी दुर्ग के नाम से सम्बोधित की जाती थीं क्योंकि दुर्ग की भांति इनकी सुरक्षा के लिए भी विशाल एवं विस्तृत प्राचीरें (दीवारें) बनाई जाती थीं । वत्स राज्य की राजधानी कौशाम्बी को भी दुर्गीकृत किया गया था। इसकी सुरक्षा प्राचीर के निर्माण में सर्वप्रथम 300 फीट ऊँचे बंधे का निर्माण किया गया है, जिसके चारों ओर पक्की ईंटों से चुनाई की गई है। यह दीवार ऊपर से नीचे की ओर ढलुआ है तथा इसके तोरण भी प्राप्त हुए हैं। ईंटों की जुड़ाई English Bond system से की गई है। जुड़ाई की यही विधि हड़प्पा की सुरक्षा प्राचीर में भी प्रयुक्त है। इस समानता के आधार पर प्रो० शर्मा ने हड़प्पा की संस्कृति को कौशाम्बी तक विस्तृत माना है। प्रो० शर्मा के अनुसार इस सुरक्षा प्राचीर को देखते ही हड़प्पा की प्राचीर का स्मरण होता है। बुर्ज हड़प्पा संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित हैं। इसीलिए प्रो० शर्मा सुरक्षा प्राचीर का निर्माण काल छठीं शताब्दी ई0पू0 से पहले स्वीकार करते हैं। किन्तु सर मोर्टिमर व्हीलर ने प्रो० शर्मा के मत में सन्देह व्यक्त करते हुए यह बतलाया है कि सुरक्षा प्राचीर के निर्माण की यह एक लोकप्रिय विधि थी जिसका प्रयोग अधिकांश सुरक्षा प्राचीरों के निर्माण में किया गया है।

13.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अयोध्या, चित्रकूट और कौशाम्बी ये तीनों पुरास्थल प्राचीन समय के महत्वपूर्ण पुरास्थल है। भगवान श्रीराम से जुड़ने के साथ अयोध्या एक महत्वपूर्ण पुरास्थल के रूप में रामायण काल से ही जाना जा रहा है। यह पुरास्थल मृदभांड संस्कृतियों का भी साक्षी रहा है। महाजनपद काल तक आते–आते इस पुरास्थल का इतिहास और महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह नगरीय जीवन से जुड़ जाता है। चित्रकूट पुरास्थल आज के समय का चित्रकूट जिला है,आज के समय में धार्मिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ से प्रागैतिहासिक शैलचित्र कला, पाषाण उपकरण मृदभांडों के टुकड़े इत्यादि के अवशेष प्राप्त हुए। शैल चित्रकला की प्राप्ति चित्रकूट को इतिहास में प्रागैतिहासिक काल तक ले जाती है। कौशाम्बी लगभग पांच किलोमीटर के एरिया में फैला हुआ एक नगरीय स्थल था। कौशाम्बी तत्कालीन समय के ऐसे नगरों में था, जिनका उत्तर भारत में महत्वपूर्ण स्थान था। कौशाम्बी अपनी सुरक्षा व्यवस्था, भव्य नगरी जीवन के साथ–साथ ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्म के संधि स्थल के रूप में भी प्रसिद्ध था। वत्स राज्य की राजधानी कौशाम्बी को भी दुर्गीकृत किया गया था। इसकी सुरक्षा प्राचीर के निर्माण में सर्वप्रथम 300 फीट ऊँचे बंधे का निर्माण किया गया है, जिसके चारों ओर पक्की ईंटों से चुनाई की गई है। यह दीवार ऊपर से नीचे की ओर ढलुआ है तथा इसके तोरण भी प्राप्त हुए हैं। ईंटों की जुड़ाई

English Bond system से की गई है। जुड़ाई की यही विधि हड़प्पा की सुरक्षा प्राचीर में भी प्रयुक्त है। इस समानता के आधार पर प्रो० शर्मा ने हड़प्पा की संस्कृति को कौशाम्बी तक विस्तृत माना है। प्रो० शर्मा के अनुसार इस सुरक्षा प्राचीर को देखते ही हड़प्पा की प्राचीर का स्मरण होता है। बुर्ज हड़प्पा संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित हैं।कौशांबी के उत्खनन से प्राप्त पत्थर की मूर्तियों इसे एक कला केंद्र के रूप स्थापित करती है। यहाँ के कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमाओं में हारीति, गजलक्ष्मी के साथ साथ स्तंभ और स्तूप के भाग, महात्मा बुद्ध, जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ इत्यादि उल्लेखनीय है।

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.*स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
13. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
14. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32ः* नई दिल्ली।
15. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
16. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।
17. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
18. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।
19. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।
20. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

21. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44

13.8 बोध प्रश्न

- अयोध्या के प्रमुख धार्मिक स्थलों पर एक निबंध लिखिए।
- चित्रकूट पुरास्थल के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों की विवेचना कीजिये।
- कौशाम्बी पुरास्थल पर एक निबंध लिखिए।
- कौशाम्बी पुरास्थल के पुरातात्विक अनुक्रम पर प्रकाश डालिए

इकाई–14 : श्रावस्ती, कुशीनगर, द्वारकापुर

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 श्रावस्ती

14.3.1 नामकरण के विविध मत

14.3.2 भौगोलिक स्थिति

14.3.3 पुरातात्विक सन्दर्भ

14.3.4 श्रावस्ती से प्राप्त पुरावशेष

14.3.5 श्रावस्ती स्थल की विशेषताएं एवं इतिहास

14.3.6 जेतवन विहार

14.3.7 पूर्वाराम प्रासाद

14.3.8 मल्लिकाराम

14.3.9 नगर का पतन

14.4 कुशीनगर

14.4.1 कुशीनगर का इतिहास

14.4.2 पुरातात्त्विक सन्दर्भ

14.4.3 निर्वाण स्तूप और निर्वाण मंदिर

14.4.4 भौगोलिक विवरण एवं प्रमुख स्तुप

14.4.5 मंदिर, स्तूप एव अन्य स्थापत्य

14.4.6 अन्त्येष्टि संस्कार स्थल

14.5 द्वारकापुर

14.6 सारांश

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.8 बोध प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

श्रावस्ती बौद्ध जैन दोनों का तीर्थ स्थान है, तथागत (बुद्ध) श्रावस्ती में रहे थे, यहाँ के श्रेष्ठी **अनाथपिंडक** ने भगवान बुद्ध के लिये **जेतवन विहार** बनवाया था, आजकल यहाँ बौद्ध धर्मशाला, मठ और मन्दिर है। यह कोसल महाजनपद का एक प्रधान नगर था। श्रावस्ती, आज उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है, जिसके पूर्व–उत्तर दिशा में बलरामपुर, दक्षिण–पूरब दिशा में गोंडा और पश्चिम–दक्षिण में बहराइच जिला पड़ता है। उत्तर दिशा में इसकी सीमा नेपाल से लगती है। श्रावस्ती और बलरामपुर जनपदों में फैला सुहेलवा वन्यजीव अभयारण्य जंगली जानवरों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।कुशीनगर का इतिहास अत्यन्त ही

प्राचीन व गौरवशाली है। इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। प्राचीन काल में यह नगर मल्ल वंश की राजधानी तथा 16 महाजनपदों में एक था। चीनी यात्री ह्वेनसांग और फाह्यान के यात्रा वृत्तातों में भी इस प्राचीन नगर का उल्लेख मिलता है।कुशीनगर में ही उन्होंने अपना अंतिम उपदेश देने के बाद महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया था। द्वारकापुर पुरास्थल उत्तर प्रदेश के सन्त रविदास नगर जिले में गंगा नदी के बायें तट पर स्थित है। पुरास्थल का नजदीकी रेलवे स्टेशन कटका है जो पूर्वी रेलवे के वाराणसी, इलाहाबाद मार्ग पर स्थित है। अगियाबीर नामक ताम्रपाषाणिक पुरास्थल, इस पुरास्थल के नजदीक स्थित है। द्वारकापुर का टीला 300 x 500 मीटर के क्षेत्रफल में वर्तमान भू–सतह से तीन मीटर की उँचाई पर स्थित है (चित्र संख्याः 14.7)। इस टीले का अधिकांश भाग गंगा नदी द्वारा काट दिया गया है। टीले के पश्चिमी भाग पर द्वारकापुर गाँव स्थित है। इन तीनों पुरास्थलों का विस्तृत विवेचन निम्नवत् है–

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत जान सकेंगे..

- श्रावस्ती पुरास्थल के सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे
- विविध प्रकार की मृदभांड परंपरा के बारे में जान सकेंगे
- कुशीनगर पुरास्थल के इतिहास को जान सकेंगे।
- श्रावस्ती के सांस्कृतिक अनुक्रम को जानकार, ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
- लौह धातु एवं ताम्र निधियों के प्रकार एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
- द्वारिकापुर पुरास्थल के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझकर उसके संरक्षण में अपना योगदान दे सकेंगे।

14.3 श्रावस्ती (27°51′ उत्तरी अक्षांश और 82°02′ पूर्वी देशांतर)

श्रावस्ती भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के गोंडा–बहराइच जिलों की सीमा पर स्थित है। यह जैन और बौद्ध का तीर्थ स्थान है। गोंडा – बलरामपुर से 12 मील पश्चिम में आधुनिक **सहेत–महेत** गाँव ही श्रावस्ती है। पहले यह कौशल देश की दूसरी राजधानी थी। ऐसी पौराणिक मान्यता है कि भगवान राम के पुत्र लव–कुश ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। श्रावस्ती बौद्ध जैन दोनों का तीर्थ स्थान है, तथागत (बुद्ध) श्रावस्ती में रहे थे, यहाँ के श्रेष्ठी **अनाथपिंडक** ने भगवान बुद्ध के लिये **जेतवन विहार** बनवाया था, आजकल यहाँ बौद्ध धर्मशाला, मठ और मन्दिर है। यह कोसल महाजनपद का एक प्रधान नगर था। श्रावस्ती, आज उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है, जिसके पूर्व–उत्तर दिशा में बलरामपुर, दक्षिण–पूरब दिशा में गोंडा और पश्चिम–दक्षिण में बहराइच जिला पड़ता है। उत्तर दिशा में इसकी सीमा नेपाल से लगती है। श्रावस्ती और बलरामपुर जनपदों में फैला सुहेलवा वन्यजीव अभयारण्य जंगली जानवरों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। उत्तर प्रदेश के इस जिले की पहचान विश्व के कोने–कोने मे आज बौद्ध तीर्थ स्थल के रूप मे है (चित्र–14.1)। इस जनपद का गठन दिनांक 22–05–1997 को हुआ था। दिनांक 13–01–2004 को शासन द्वारा इस जनपद का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया था। पुनः माह जून 2004 से यह जनपद अस्तित्व मे आया है। जनपद का मुख्यालय भिंगा मे है, जो श्रावस्ती से 55 किमी0 की दूरी पर है।इसे बुद्धकालीन भारत के 06 महानगरों चम्पा ,राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी ओर वाराणसी मे से एक माना जाता था। जंगलों के बीच गुफा में रहकर राहगीरों को लूटने के बाद उनकी उंगली काटकर माला पहनने वाले एक दुर्दांत डाकू अंगुलिमाल को राप्ती नदी के किनारे बसे इसी स्थान पर भगवान बुद्ध ने अपनी ईश्वरीय शक्तियों के बल पर नास्तिक से आस्तिक बनाकर अपना अनुयायी बनाया था। ये वही इलाका है, जहाँ पर गौतम बुद्ध ने अपने जीवन काल के सबसे ज्यादा वसंत बिताये थे।

चित्र–14.1 श्रावस्ती स्मारक

श्रावस्ती की मुख्य भाषा हिंदी है तथा उपबोली अवधी है। तराई की मिट्टी नवीन जलोढ़ खादर है। यद्यपि यह एक उपजाऊ जिला है लेकिन विकास के वृष्टिछाया भाग में पड़ता है। कुशल नेतृत्व क्षमता के अभाव के कारण अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर है। गन्ना श्रावस्ती की नगदी फसल है लेकिन दुर्भाग्यवश कोई चीनी मिल पूरे जिले में नही है। इसलिए यहाँ के किसान अपने उत्पाद अन्य जिलों में बेचने को मजबूर हैं। यहाँ बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अनुयायी हमेशा मंदिर दर्शन एवं पूजापाठ के लिए आते रहते है। विदेशी धार्मिक पर्यटन के लिए श्रावस्ती का अपना स्थान है। श्रावस्ती हवाई अड्डा बन जाने से बौद्ध पर्यटकों तथा हिन्दू पर्यटकों दोनों को आसानी हुई है। यहीं थोड़ी दूर पर बलरामपुर जिले में माँ पाटेश्वरी देवी का प्रसिद्ध शक्तिपीठ है जहाँ हिंदू धर्म को मानने वालों का तांता लगा रहता है। श्रावस्ती के उत्तरी भाग में थारू जनजाति का निवास है।

14.3.1 नामकरण के विविध मत

श्रावस्ती पुरास्थल का प्राचीन ग्रन्थों में अलग–अलग नाम मिलते हैं। इसके लिए सावत्थी, चन्द्रपुरी तथा चन्द्रिकापुरी नाम भी आते हैं। इसके नाम की व्युत्पत्ति के विषय में तीन वर्णन उपलब्ध होते हैं– पहला वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इसके अनुसार यहाँ पर पहले सवत्थ नामक एक ऋषि रहते थे। उनके नाम के आधार पर इसका सावत्थी नाम उसी प्रकार पड़ा, जिस प्रकार काकन्द, माकन्द तथा कोसम्ब के नामों के आधार पर क्रमशः काकन्दी, माकन्दी तथा कोसम्बी नाम पड़े। इस प्रकार नाम रखने के सम्बन्ध में कतिपय अन्य उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ बुद्धचरित में कपिलवस्तु के नाम की व्युत्पत्ति का कारण महर्षि कपिल का इसके साथ सम्बन्ध बताया गया है। पाणिनि ने भी रहने वाले के नाम के आधार पर स्थान के नाम के पड़ने का उल्लेख किया है। दूसरा वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है उदाहरणार्थ – महाभारत तथा हरिवंश। इनके अनुसार इस नगर के निर्माता श्रावस्तक नामक नरेश थे। इन्हीं के नाम पर इसका श्रावस्ती नाम पड़ा। श्रावस्तक पृथु की छठी पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था।

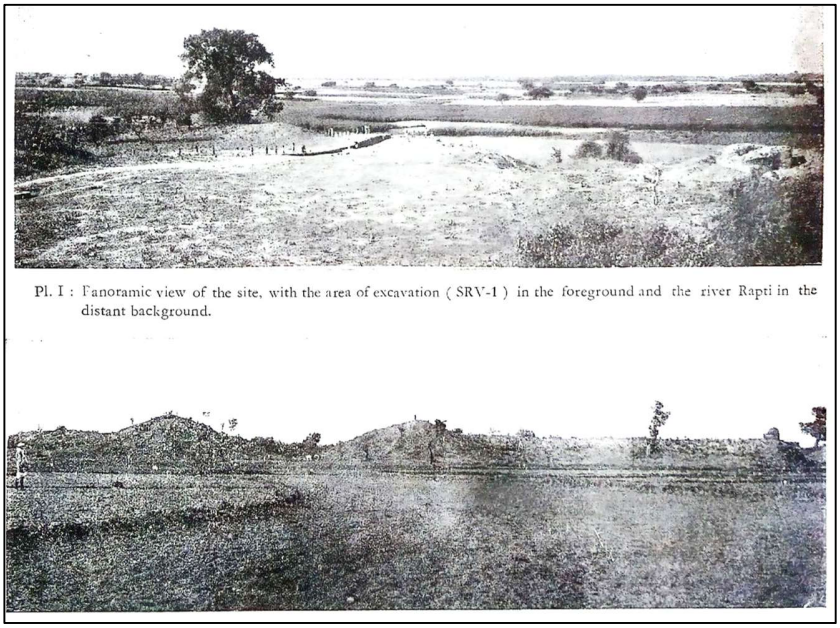

Pl. I : Panoramic view of the site, with the area of excavation (SRV-1) in the foreground and the river Rapti in the distant background.

चित्र –14.2 श्रावस्ती पुरास्थल का विहंगम दृ□य

पुराणों में इस नगर के संस्थापक का नाम श्रावस्तक के स्थान पर श्रावस्त मिलता है। तीसरा वर्णन पपंचसूदनी में मिलता है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य के प्रतिदिन के जीवन में काम में आने वाली सभी प्रकार की वस्तुएँ यहाँ पर बहुसंख्या में प्राप्त होती थीं। यही कारण है कि इसका नाम सावत्थी (श्रावस्ती) पड़ा (सब्बम् एस्थ अत्त्वीति सावत्त्थी– अर्थात् जहाँ पर सब कुछ उपलब्ध है)। रामायण तथा वायुपुराण में श्रावस्ती को उत्तर कोसल की राजधानी बताया गया है। यहाँ पर लव राज्य करते थे। दक्षिण कोसल की राजधानी कुशावती थी। यहाँ पर कुश का राज्य था।

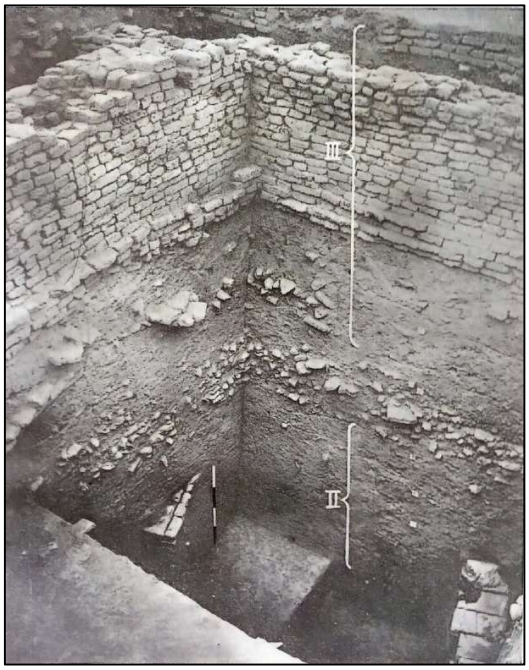

चित्र– उत्खनित ट्रेंच एवं प्राप्त आवासीय जमाव

14.3.2 भौगोलिक स्थिति

प्राचीन श्रावस्ती के अवशेष आधुनिक 'सहेत'–'महेत' नामक स्थानों पर प्राप्त हुए हैं (चित्र–14.2)। यह नगर 27°51′ उत्तरी अक्षांश और 82°02′ पूर्वी देशांतर पर स्थिर था। 'सहेत' का समीकरण 'जेतवन' से तथा 'महेत' का प्राचीन 'श्रावस्ती नगर' से किया गया है। प्राचीन टीला एवं भग्नावशेष गोंडा एवं बहराइच जिलों की सीमा पर बिखरे पड़े हैं, जहाँ बलरामपुर स्टेशन से पहुँचा जा सकता है। बहराइच एवं बलरामपुर से इसकी दूरी क्रमश 26 एवं 10 मील है। आजकल 'सहेत' का भाग बहराइच जिले में और 'महेत' गोंडा जिले में पड़ता है। बलरामपुर – बहराइच मार्ग पर सड़क से 800 फुट की दूरी पर 'सहेत' स्थित है, जबकि 'महेत' 1/3 मील की दूरी पर स्थित है। विंसेंट स्मिथ ने सर्वप्रथम श्रावस्ती का समीकरण चरदा से किया था, जो 'सहेत–महेत' से 40 मील उत्तर–पश्चिम में स्थित है (चित्र– 14.3)। लेकिन जेतवन के उत्खनन से गोविंद चंद गहड़वाल के 1128 ई. के एक अभिलेख की प्राप्ति से इसका समीकरण 'सहेत–महेत' से निश्चित हो गया है। प्राचीन श्रावस्ती नगर अचिरावती नदी, जिसका आधुनिक नाम राप्ती है, के तट पर स्थित था। यह नदी नगर के समीप ही बहती थी। बौद्ध युग में यह नदी नगर को घेर कर बहती थी। बौद्ध साहित्य में श्रावस्ती का वर्णन कौशल जनपद की राजधानी और राजगृह से दक्षिण–पश्चिम में कालक और अस्सक तक जाने वाले राजमार्ग पर सावत्थी नामक दो महत्त्वपूर्ण पड़ावों के रूप में मिलता है।

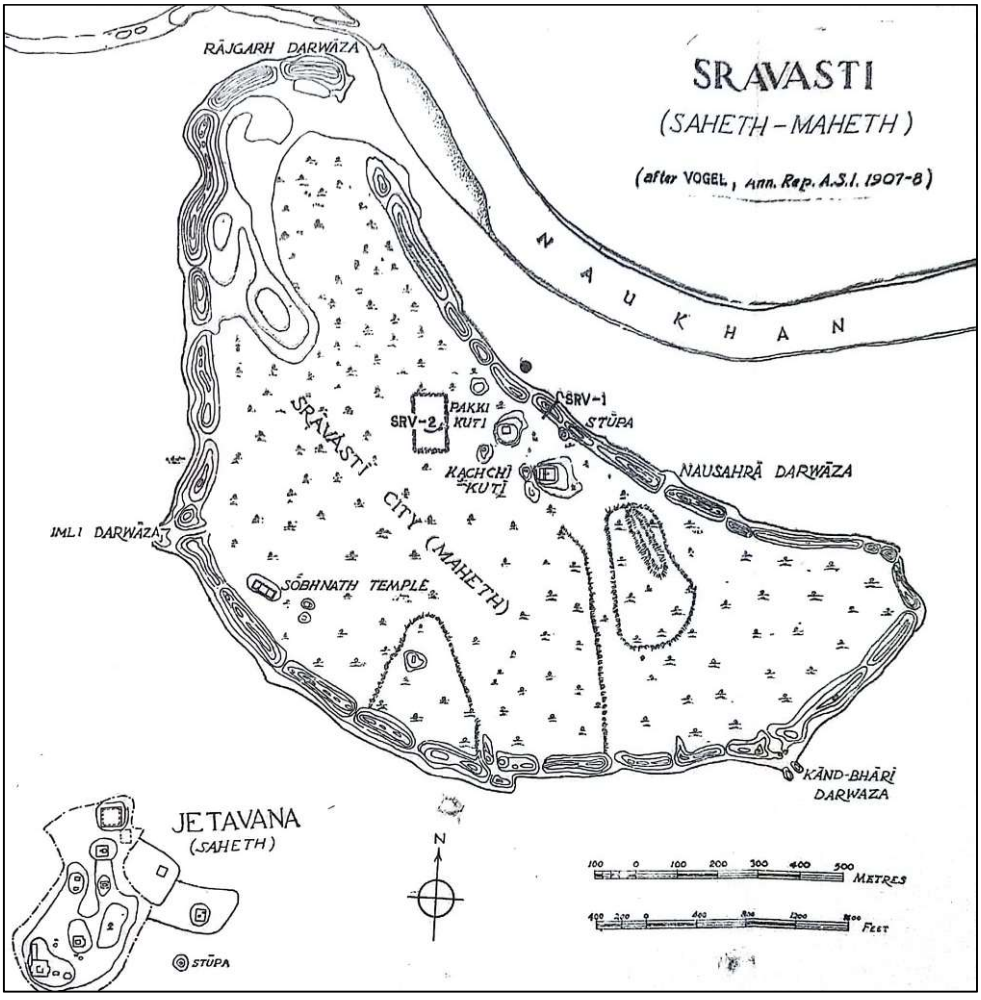

चित्र 14.3– पुरास्थल का रेखाचित्र

14.3.3 पुरातात्विक सन्दर्भ

श्रावस्ती के प्राचीन इतिहास को प्रकाश मे लाने के लिए प्रथम प्रयास जनरल कनिंघम ने किया था, उन्होने वर्ष 1863 ईस्वी में उत्खनन प्रारम्भ करके लगभग एक वर्ष के कार्य मे जेतवन का थोड़ा भाग साफ कराया। इसमें उनको बोधिसत्व की 7 फुट 4 इंच ऊंची प्रतिमा प्राप्त हुई, जिस पर अंकित लेख में इसका श्रावस्ती विहार मे स्थापित होना ज्ञात है। इस प्रतिमा के अधिष्ठान पर अंकित लेख में तिथि नष्ट हो गयी है। श्रावस्ती के प्रसिद्ध बौद्ध स्थल पर वर्ष 1959 के आरंभ में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (के0 के0 सिन्हा) की ओर से छोटे पैमाने पर उत्खनन किया गया था। इसका तात्कालिक उद्देश्य प्राचीन स्थल की प्राचीनता और सांस्कृतिक अनुक्रम का निर्धारण करना था, जिसमें विशाल किलेबंदी भी शामिल थी।

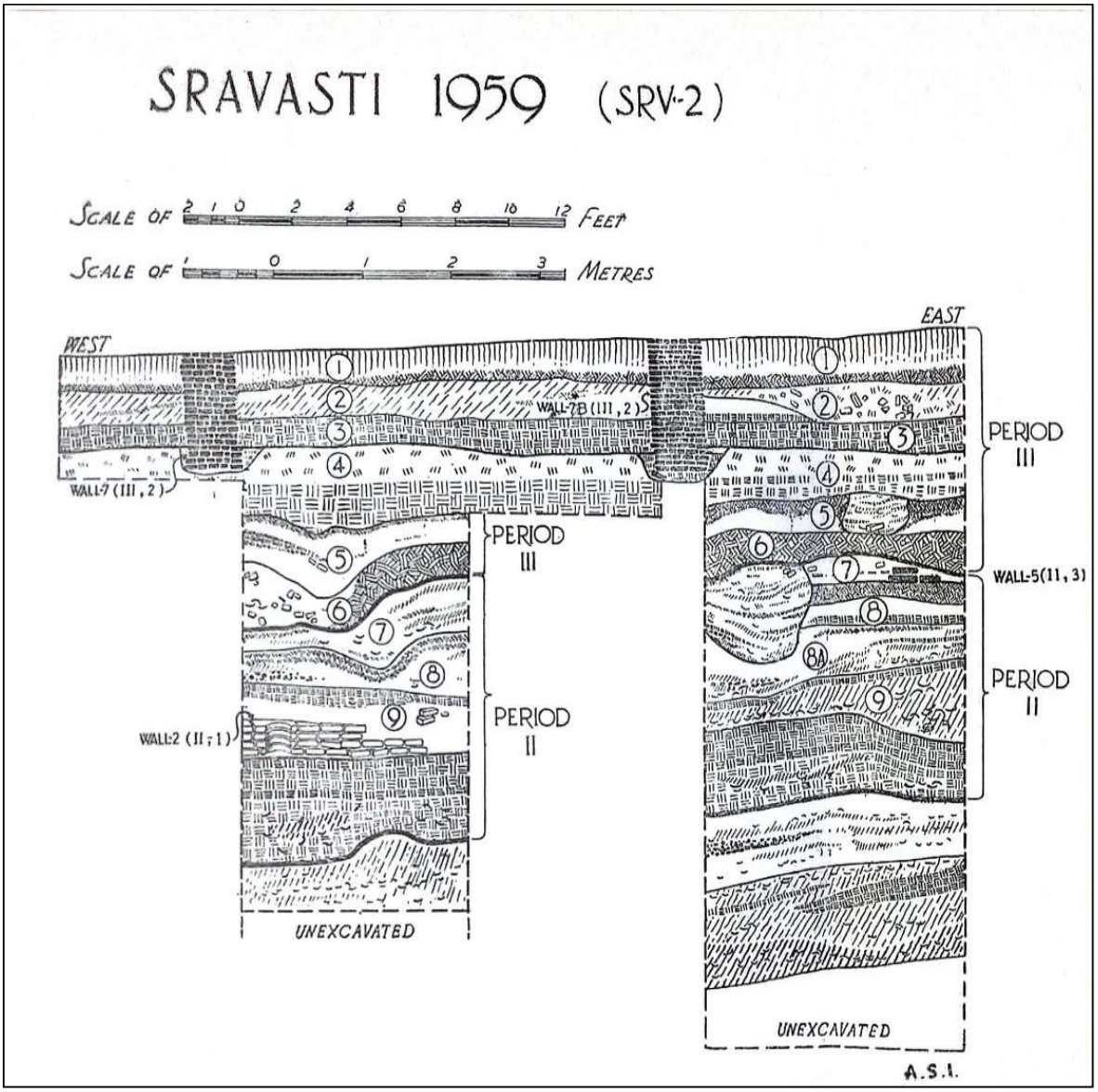

चित्र 14.4– श्रावस्ती का आवासीय अनुक्रम

परिणामस्वरूप पहली बार पुरातात्त्विक आधार पर यह पुष्टि की गई कि प्राचीन बस्ती छठी शताब्दी ई0पू0 के मध्य में अस्तित्व में रही होगी (चित्र–14.4)। उत्खनन से चित्रित धूसर बर्तन के कुछ टुकड़े मिले, लेकिन

हस्तिनापुर की तरह बर्तन का कोई स्वतंत्र स्तर नहीं है (चित्र–14.5)। यह उत्तरी काली पॉलिश वाले बर्तन के साथ मिलकर पाया जाता है, जो हस्तिनापुर और रूपर जैसे पश्चिमी स्थलों की तुलना में संख्या में प्रचुर मात्रा में है। दोनों विशिष्ट बर्तन विविध वस्तुओं के एक समृद्ध संग्रह का हिस्सा हैं, जो इस स्थल पर सबसे पुराने निवास स्थान से संबंधित हैं, जिनकी तिथि लगभग 600–300 बी.सी. के मध्य है।

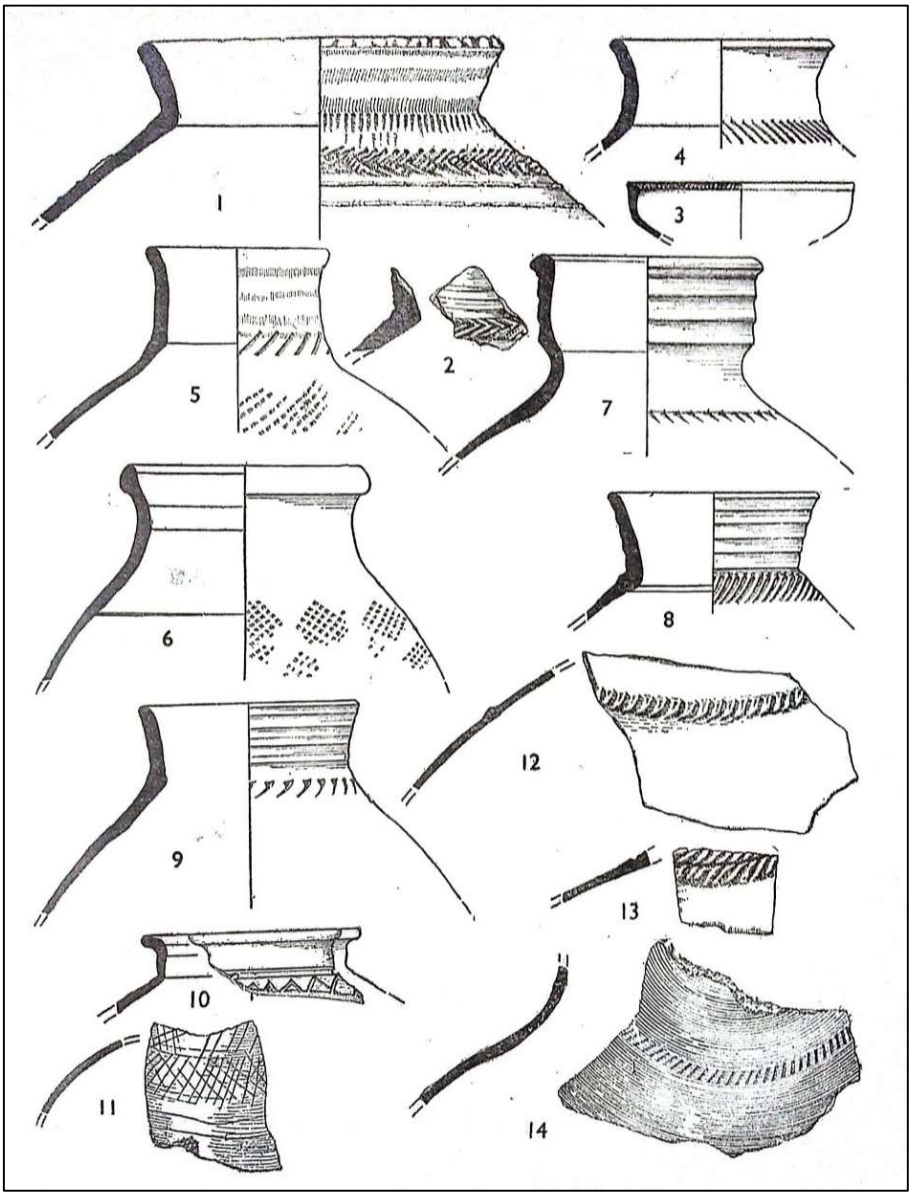

चित्र 14.5– चित्रित पात्र

आम धारणा के विपरीत, साइट के चारों ओर दिखाई देने वाली किलेबंदी तीसरी शताब्दी ई0पू0 के मध्य या उससे भी बाद में नहीं बनी थी। यह पुरास्थल पर दूसरे निवास काल का हिस्सा है। एक दिलचस्प विशेषता यह थी कि मिट्टी की प्राचीर को नियमित अंतराल पर ईंटों से किलेबंदी करके क्रमशः ऊपर किया गया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नियमित अंतराल पर ईंटों से किलेबंदी के निर्माण के बारे में उल्लेख है। 1959 की खुदाई से प्रमाणित होता है कि पहली शताब्दी ईस्वी के बाद शहर के क्षेत्र में केवल छिटपुट बस्तियाँ थीं। फाह्यान ने भी उल्लेख किया है कि जब उन्होंने 5वीं शताब्दी ईस्वी में इसका दौरा किया था, तब शहर

पहले से ही खंडहर में था।

14.3.4 श्रावस्ती से प्राप्त पुरावशेष

इन भग्नावशेषों में दो स्तूप हैं, जिनमें से बड़ा महेत तथा छोटा सहेत नाम से विख्यात है। इन स्तूपों के अतिरिक्त अनेक मंदिरों और भवनों के भग्नावशेष भी मिले हैं। खुदाई के दौरान अनेक उत्कीर्ण मूर्तियाँ और पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो नमूने के रूप में प्रदेश के संग्रहालय, लखनऊ में रखी गयी हैं। यहाँ संवत् 1176 या 1276 (1119 ई. या 1219 ई.) का शिलालेख मिला है, जिससे पता चलता है कि बौद्ध धर्म इस काल में प्रचलित था। बौद्ध काल के साहित्य में श्रावस्ती का वर्णन अनेकानेक बार आया है और भगवान बुद्ध ने यहाँ के जेतवन में अनेक चातुर्मास व्यतीत किये थे। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर ने भी श्रावस्ती में विहार किया था। चीनी यात्री फाह्यान 5वीं सदी ई. में भारत आया था। उस समय श्रावस्ती में लगभग 200परिवार रहते थे और 7वीं सदी में जब ह्वेनत्सांग भारत आया, उस समय तक यह नगर नष्ट–भ्रष्ट हो चुका था। सहेत–महेत पर अंकित लेख से यह निष्कर्ष निकाला गया कि बल नामक भिक्कु ने इस मूर्ति को श्रावस्ती के विहार में स्थापित किया था। इस मूर्ति् के लेख के आधार पर सहेत को जेतवन माना गया। कनिंघम का अनुमान था कि जिस स्थान से उपर्युक्त मूर्ति प्राप्त हुई, वहाँ 'कोसंबकुटी' विहार था। इस कुटी के उत्तर में प्राप्त कुटी को कनिंघम ने गंधकुटी माना, जिसमें भगवान बुद्ध वर्षावास करते थे। महेत की अनेक बार खुदाई की गयी और वहाँ से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई, जो उसे श्रावस्ती नगर सिद्ध करती है। श्रावस्ती नामाँकित कई लेख सहेत–महेत के भग्नावशेषों से मिले हैं।

14.3.5 श्रावस्ती स्थल की विशेषताएं एवं इतिहास

श्रावस्ती अचिरावती नदी के तट पर बसा हुआ था, जिसकी पहचान आधुनिक राप्ती से की जाती है। महावग्ग के अनुसार इस नगर के निवासी श्रमण अचिरावती में स्नान करने के निमित्त आते थे। 'महापरिनिब्बानसुत्त' में कहा गया है कि इसकी गणना तत्कालीन छः सुप्रसिद्ध नगरों में होती थी। इसमें धनिक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य रहते थे, जिनकी बौद्ध धर्म में असीम निष्ठा थी। ललितविस्तर में इसे कोसल का सबसे प्रधान नगर कहा गया है। समन्तपसादिका के अनुसार यह 57 हजार कुलों का निवास–स्थान तथा कोसल–नरेशों की आय का प्रमुख साधन था। इस नगर की परिखा, प्राकार एवं नगरद्वार के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में यत्र–तत्र आकस्मिक उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणार्थ, धम्मपट्टिका में इसके उत्तर–द्वार का उल्लेख हुआ है। फाह्यान ने इसके दक्षिण–द्वार तथा ह्यान्–च्यांग ने इसके पूर्व–द्वार का उल्लेख किया है।

मज्झिम–निकाय में कोसल–नरेश प्रसेनजित पुण्डरीक नामक एक हाथी की पीठ पर बैठ कर नगर के बाहर निकलते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। इसी ग्रन्थ में एक दूसरे स्थान पर उक्त नरेश को बड़े घोड़ों के द्वारा खींचे जाते हुए रथ में आरूढ़ होकर नगर–द्वार से बाहर निकलता हुआ दिखाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि ये द्वार काफी चौड़े रहे होंगे। नगर की सड़कें पर्याप्त चौड़ी थीं। इन पर बड़ी सवारियाँ भली–भाँति आ–जा सकती थीं। संयुक्त निकाय से निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ के नागरिक हाथी, घोड़े तथा पालकी पर चढ़ कर राजमार्गों पर निकलते थे। इस नगर के बाहर से प्रतिदिन अनेक श्रमण, साधु एवं संन्यासी आया करते थे। प्रसेनजित ने इनके भोजन की सुविधा के निमित्त एक राजकीय कोष्ठागार बनवा रखा था। इसमें से उन्हें घी, तेल तथा खाद्यपदार्थ उनकी आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए दिया जाता था। सोहगौरा का ताम्रलेख (जिसमें श्रावस्ती के महामात्रों को आज्ञा दी गई है– श्रावस्तीयानां महामात्राणाम् शासनम्) एक ऐसा अभिलेखिक साक्ष्य है, जिससे ज्ञात होता है कि राजकीय कोष्ठागार बनाने की प्रथा भारत में उस समय अधिक व्यापक थी। इस लेख में वंशग्राम तथा मनवसतिकड़ नामक ग्रामों का उल्लेख मिलता है, जिसमें राज्य की ओर से कोष्ठागार बने हुए थे। पपंचसूदनी में श्रावस्ती के उत्कर्ष का निरूपण करते हुए कहा गया है कि कोसल का यह प्रधान नगर सर्वदा रमणीक, दर्शनीय, मनोरम एवं धनधान्य से सम्पन्न था। इसमें सभी प्रकार के उपकरण वर्तमान थे। इसके वैभव को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता था, मानो देवपुरी अलकनन्दा साक्षात् धरातल पर उतर आई हो। संयुक्तनिकाय में प्रसेनजित के प्रासाद का भी उल्लेख हुआ है। यहाँ से प्रधान नगर–द्वारों की ओर चौड़े राजमार्ग जाते थे।

चित्र–14.6 मुलगन्ध–कुटी, जेतवन विहार

इस नगर में तीन प्रसिद्ध स्थान थे–

1. जेतवन विहार
2. पूर्वाराम/पुब्बाराम प्रासाद
3. मल्लिकाराम

14.3.6 जेतवन विहार

जेतवन एक उद्यान था, जो कि फाह्यान तथा ह्वान् च्यांग के यात्रा–विवरण के अनुसार नगर के दक्षिण–द्वार के समीप स्थित था। महावग्ग में कहा गया है कि जेतवन में रहने वाले भिक्षु अचिरावती नदी में स्नान करने के लिए आते थे। इससे कहा जाता है कि यह उद्यान इस नदी के तट के समीप कहीं विद्यमान रहा होगा। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इसका आरोपण, संवर्धन तथा परिपालन जेत नामक एक राजकुमार के द्वारा, किया गया था। जो स्थान राजगृह में वेणुवन तथा वैशाली में महावन का था, वही स्थानं श्रावस्ती में जेतवन का था। इसके शान्तिमय वातावरण से प्रभावित होने के कारण नगर का अनाथपिण्डिक नामक व्यापारी इसे खरीदकर बौद्ध संघ को दान करना चाहता था। इसे खरीदने के निमित्त जेत को उसे असंख्य मुद्राएँ देनी पड़ीं। उसने इस उपवन में एक विहार का भी निर्माण किया, जिसे अनाथपिण्डिक –आराम कहा जाता था।

यह गौतम बुद्ध का प्रिय निवास स्थान था। श्रावस्ती आने पर बहुधा वे यहीं विश्राम करते थे। उनका प्रवचन भी यहाँ कई बार हुआ था। गौतम बुद्ध के काल में यह कोसल का सबसे प्रसिद्ध धार्मिक भवन था। यही कारण है कि लोग इसे कोसल–मन्दिर कहते थे। जेतवन के भीतर इस व्यापारी ने कुछ अन्य निर्माण भी किया था, जैसे – परिवेण (विश्रामगृह), कोट्ठक (कुठार), उदपान (कूप), पोक्खरणी (तालाब), मण्डप (चबूतरा) तथा विहार (निवास–गृह) इत्यादि।

इन निवास–गृहों में मुलगन्ध–कुटी (चित्र– 14.6), करेरि–कुटी तथा कोसम्ब–कुटी उल्लेखनीय हैं। गन्ध–कुटी जेतवन के बीचो–बीच बना हुआ था। करेरि कुटी देखने में बहुत सुन्दर थी। इसके निर्माण में दृढ़ स्तम्भ लगाये गये थे। दर्शक को आभास होता था, मानो कोई देवगृह सामने विद्यमान हो। इसके द्वार के सामने एक करेरि वृक्ष था। यही कारण है कि इसका यह नाम पड़ा (करेरि मण्डपो तस्सा कुटिकाय द्वारेथितो तस्सा करेरिकुटिका ति वुच्चति)। कोसम्बकुटी के द्वार के सामने एक कोसम्ब–वृक्ष था। यही कारण है कि इसका नाम कोसम्बकुटी पड़ा। ये तीनों गृह बहुत बड़े थे। यही कारण है कि सुमंगल–विलासिनी में इन्हें 'महागेह' कहा गया है (जेतवने... करेरिकुटि... कोसम्बकुटि... गन्धकुटि... महागेहानि)। इन तीनों भवनों के निर्माण में शत सहस्त्र मुद्राओं का व्यय हुआ था। बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा के कारण जेतवन में प्रसेनजित ने भी एक घर बनवाया था, जिसको बौद्ध ग्रन्थों में सलड़घर कहा गया है। अनाथपिण्डिक ने अपने द्वारा बनवाये हुए सभी भवनों को बौद्ध संघ को समर्पित कर दिया। समर्पण की यह क्रिया बड़े समारोह के साथ सम्पादित हुई थी। इसमें उसे अठारह करोड़ मुद्राओं का व्यय करना पड़ा। इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि इस घटना का अंकन भरहुत की कला में भी हुआ है।

14.3.7 पूर्वाराम प्रासाद

पूर्वाराम का निर्माण नगर के धनिक सेठ मिगार/मृगधर की पुत्रवधू विशाखा ने कराया था। मृगधर पहले आजीविकों का भक्त था, पर कालान्तर में विशाखा के प्रभाव के कारण बौद्ध धर्म में उसकी भी आस्था उत्पन्न हो गई। यही कारण है कि बौद्ध ग्रंथों में उसे मिगारमाता कह सम्मानित किया गया है। इसीलिये पूर्वाराम को 'मिगार–मातु–प्रासाद' भी कहा जाता था। यह नगर के पूर्वी द्वार के पास स्थित था। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम पूर्वाराम पड़ा था। इसके निर्माण तथा समर्पण में लगभग 27 करोड़ मुद्राओं का व्यय हुआ था। यह लकड़ी (रुक्ख) तथा पत्थर (पाषाण) के द्वारा बनाया गया था। इसमें दो मंजिल थी। ऊपरी मंजिल में 500 कमरे बने हुए थे।

14.3.8 मल्लिकाराम

मल्लिकाराम का निर्माण मल्लिका नामक एक साम्राज्ञी ने किया था। यह एक विशाल भवन था, जिसमें कई कमरे थे। नगर में आने वाले ब्राह्मण, परिव्राजक, बौद्ध भिक्ष निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के अनुयायी तथा अन्य साधु एवं संन्यासी इस वन में विश्राम के निमित्त आश्रय पाते थे। इस नगर में जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मों का विशेष प्रचार था। जैन इसे अपने तृतीय तीर्थंकर सम्भवनाथ तथा आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभानाथ का जन्मस्थान मानते थे। इस धर्म के प्रवर्तक महावीर अपने सिद्धान्तों के प्रचार के निमित्त यहाँ कई बार आ चुके थे। नागरिकों ने उनका हार्दिक सम्मान किया था। उनके अनेक अनुयायी बन गय थे। नगर के भीतर वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान हुआ करता था। जिस समय प्रसेनजित राज्य कर रहे थे, उस समय श्रावस्ती में वेदविहित नियमों के अनुसार पशुओं का बलिदान चढ़ाया जाता था। इसके उपकण्ठ पर स्थित मल्लिकाराम में सैकड़ों ब्राह्मण साधु जो कि धार्मिक विषयों पर वादविवाद में निपुण थे, आकर विश्राम करते थे। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती का धार्मिक वायुमण्डल बौद्ध धर्म से अधिक प्रभावित था। इस नगर में गौतम बुद्ध के अनेक व्याख्यान हुए थे, जिनसे प्रभावान्वित होने के कारण प्रायः समस्त वर्गों के व्यक्तियों ने उनके धर्म को अपना लिया। नगर–श्रेष्ठि अनाथपिण्डिक उनका परम भक्त था। उसके घर में 500 भिक्षुओं के निमित्त प्रतिदिन भोजन तैयार कराया जाता था। गौतम बुद्ध के प्रति श्रद्धा के कारण श्रावस्ती–नरेशों ने दान–गृह बनवा रखा था (चित्र–14.7), जहाँ पर भिक्षुओं को भोजन मिलता था।

चित्र 14.7– बौद्ध स्मारक एवं विहार

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार नगर के अन्य सम्मानित नागरिक तथागत के बहुत बड़े प्रशंसक थे। यहाँ पर बौद्ध धर्म के प्रचार की ओर संकेत करते हुए मिलिन्दपञ्हो में अतिशयोक्ति के साथ कहा गया है कि इसमें भिक्षुओं की संख्या 5 करोड़ थी। इसके अतिरिक्त नगर के लगभग तीन लाख 57 हजार गृहस्थ उनके मतावलम्बी थे। गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् भी श्रावस्ती बौद्ध धर्म का एक विशिष्ट केन्द्र माना जाता था।

नगरे महाराज पंचकोटिमत्ता अरियसावका
भगवतो उपासकउपासिकायो सत्ताण्णा–ससहसानि
तीणि सतसहस्सानि अनागामि फले
पतित्थिता ने सव्वेऽपि गिही न पव्वजिता।

मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ 349।

उनके आनन्द जैसे प्रिय शिष्यों ने श्रावस्ती के नागरिकों को अपने सदुपदेशों से प्रभावित कर बौद्ध धर्म में उनकी आस्था को जागृत किया। दिव्यावदान से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती में चार स्तूप थे, जिनका निर्माण सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप तथा आनंद के सम्मान में किया गया था। अशोक धार्मिक यात्रा करता हुआ श्रावस्ती आया था। उसने जेतवन में वर्तमान इन चारों स्तूपों की वन्दना की थी।

14.3.9 नगर का पतन

श्रावस्ती का अधःपतन कोसल–साम्राज्य के अधःपतन के साथ प्रारम्भ होता है। पाँचवीं शताब्दी तक इसकी शोभा अत्यधिक विलीन हो चुकी थी। इस समय का चीनी यात्री फाह्यान अपने यात्रा–विवरण में लिखता है कि यहाँ के नागरिकों की संख्या पहले की समता में अत्यल्प थी। सब मिलाकर केवल दो सौ परिवार ही रह गये थे। पूर्वाराम, जेतवन–विहार तथा नगर के अनेक विशाल सौध भग्नावशेष को प्राप्त हो चुके थे। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्यान् च्यांग ने तो इसे पूर्ण रूप से विनष्ट एवं उजड़े हुए नगर के रूप में चित्रित किया है। उसके अनुसार नगर की दीवारों के भग्नावशेष की परिधि लगभग तीन मील थी। इस नगर की पहचान राप्ती नदी के तट पर स्थित आधुनिक सहेत–महेत से की जाती है।

14.4 कुशीनगर (26° 44′ 27.6″ N, 83° 53′ 16.8″ E)

कुशीनगर वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है। कुशीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग 28 पर गोरखपुर से लगभग 53 किमी पूर्व में स्थित है। कुशीनगर से 20 किमी पूरब की ओर जाने पर विहार राज्य आरम्भ हो जाता है। मल्लों की राजधानी तथा गौतम बुद्ध की निर्वाणभूमि कुशीनगर की गणना कपिलवस्तु एवं पावा के साथ की जा सकती है। साँची, भरहुत तथा अमरावती की कला में इस नगर की सुरक्षाभित्ति, परिखा तथा प्रधान नगर–द्वार का अंकन मिलता है। राजनीतिक केन्द्र होने के अतिरिक्त यह धार्मिक तथा व्यापारिक केन्द्र भी था। गौतम बुद्ध को यह नगर बहुत ही प्रिय था।यहाँ कई देशों के अनेक सुन्दर बौद्ध मन्दिर हैं। इस कारण से यह एक अन्तरराष्ट्रीय पर्यटन स्थल भी है, जहाँ विश्व भर के बौद्ध तीर्थयात्री भ्रमण के लिये आते हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार इस कारण ही अनेक सुप्रसिद्ध नगरों के वर्तमान रहने पर भी परिनिर्वाण के लिए उन्होंने इसी नगर को चुना था। नगर की दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित शालवन में उनका प्राणान्त हुआ, जिसके पश्चात् उनके प्रशंसक तथा अनुयायी मल्लों ने उनके दाहसंस्कार का सम्पादन बड़े ही आडम्बर तथा प्रदर्शन के साथ किया था। उनकी मृत्यु के अनन्तर कुशीनगर बौद्धों का तीर्थस्थान बन गया। व्यापारिक क्षेत्र में भी इसकी महत्ता पूर्णतः प्रतिपादित हो चुकी थी। पालिग्रन्थों से स्पष्ट है कि यह भारतवर्ष का एक प्रख्यात क्रय–विक्रय केन्द्र था।

फाह्यान के आगमन के समय यह नगर उजड़ चुका था। वह लिखता है कि शालवन (जहाँ गौतम बुद्ध की मृत्यु हुई) हिरण्यवती नदी के तट पर स्थित था। ह्यान–च्वांग के अनुसार यह नगर (क–शिह–न–क–लो अर्थात कुशीनगर) रामग्राम से एक सौ पचास मील की दूरी पर पूर्व में स्थित था। वह लिखता है कि इन दोनों नगरों को मिलाने वाला रास्ता काफी खतरनाक था। रामग्राम से कुशीनगर पहुँचने में कुछ दूर घने अरण्य के बीच होकर तंग रास्ते से जाना पड़ता था। इस पर जंगली जानवरों के हमले का भय बराबर बना रहता था। इस चीनी यात्री के आगमन के समय नगर–प्राकार गिर चुका था। इसके भीतर आबादी बहुत थोड़ी रह गई थी। घरों के खण्डहर तथा उनकी ईंटों की नौवें साफ दृष्टिगोचर होती थीं। उसके अनुसार नगर की परिधि दो मील के लगभग थी।

14.4.1 कुशीनगर का इतिहास

कुशीनगर का इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन व गौरवशाली है। इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। प्राचीन काल में यह नगर मल्ल वंश की राजधानी तथा 16 महाजनपदों में एक था। चीनी यात्री ह्वेनसांग और फाह्यान के यात्रा वृत्तातों में भी इस प्राचीन नगर का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह स्थान त्रेता युग में भी आबाद था और यहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के पुत्र कुश की राजधानी थी, जिसके चलते इसे 'कुशावती' नाम से जाना गया। पालि साहित्य के ग्रंथ त्रिपिटक के अनुसार बौद्ध काल में यह स्थान सोलह महाजनपदों में से एक था। मल्ल राजाओं की यह राजधानी तब 'कुशीनारा' के नाम से जानी जाती थी। ई0पू0 पांचवी शताब्दी के अन्त तक या छठी शताब्दी की शुरूआत में यहाँ भगवान बुद्ध का आगमन हुआ था। कुशीनगर में ही उन्होंने अपना अंतिम उपदेश देने के बाद महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया था।

कुशीनगर से 16 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में मल्लों का एक और गणराज्य पावा था। यहाँ बौद्ध धर्म के समानांतर ही जैन धर्म का प्रभाव था। माना जाता है कि जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी (जो बुद्ध के समकालीन थे) ने पावानगर (वर्तमान में फाजिलनगर) में ही परिनिर्वाण प्राप्त किया था। इन दो धर्मों के अलावा प्राचीन काल से ही यह स्थल हिंदू धर्मावलंम्बियों के लिए भी काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। गुप्तकाल के तमाम भग्नावशेष आज भी जिले में बिखरे पड़े हैं। लगभग डेढ़ दर्जन प्राचीन टीले हैं, जिसे पुरातात्त्विक महत्व का मानते हुए, पुरातत्व विभाग ने संरक्षित घोषित कर रखा है। उत्तर भारत का इकलौता सूर्य मंदिर भी इसी जिले के तुर्कपट्टी में स्थित है। भगवान सूर्य की प्रतिमा यहाँ खुदाई के दौरान ही मिली थी जो गुप्तकालीन मानी जाती है। इसके अलावा भी जनपद के विभिन्न हिस्सों में अक्सर ही जमीन के नीचे से पुरातन निर्माण व अन्य अवशेष मिलते ही रहते हैं।

कुशीनगर जनपद का जिला मुख्यालय पडरौना है, जिसके नामकरण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि भगवान राम के विवाह के उपरान्त पत्नी सीता व अन्य सगे–संबंधियों के साथ इसी रास्ते जनकपुर से अयोध्या लौटे थे। उनके पैरों से रमित धरती पहले पदरामा और बाद में पडरौना के नाम से जानी गई। जनकपुर से अयोध्या लौटने के लिए भगवान राम और उनके साथियों ने पडरौना से 10 किलोमीटर पूरब से होकर बह रही बांसी नदी को पार किया था। आज भी बांसी नदी के इस स्थान को 'रामघाट' के नाम से जाना जाता है। हर साल यहाँ भव्य मेला लगता है, जहाँ उत्तर प्रदेश और विहार के लाखों श्रद्धालु आते हैं। बांसी नदी के इस घाट को स्थानीय लोग इतना महत्व देते हैं कि 'सौ काशी न एक बांसी' की कहावत ही बन गई है। मुगल काल में भी यह जनपद अपनी खास पहचान रखता था।

मौर्य युग में कुशीनगर की उन्नति विशेष रूप से हुई। किन्तु उत्तर मौर्यकाल में इस नगर की महत्ता कम हो गई। गुप्तयुग में इस नगर ने फिर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल में यहाँ अनेक विहारों और मंदिरों का निर्माण हुआ। गुप्त शासकों ने यहाँ जीर्णोद्वार कार्य भी कराए। खुदाई से प्राप्त लेखों से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त (प्रथम) (413–415 ई.) के समय हरिबल नामक बौद्ध भिक्षु ने भगवान् बुद्ध की महापरिनिर्वाणावस्था की एक विशाल मूर्ति की स्थापना की थी और उसने महापरिनिर्वाण स्तूप का जीर्णोद्वार कर उसे ऊँचा भी किया था और स्तूप के गर्भ में एक ताँबे के घड़े में भगवान की अस्थिधातु तथा कुछ मुद्राएँ रखकर एक अभिलिखित ताम्रपत्र से ढककर स्थापित किया था। गुप्तों के बाद इस नगर की दुर्दशा हो गई। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्सांग ने इसकी दुर्दशा का वर्णन किया है। वह लिखता है–

इस राज्य की राजधानी बिल्कुल ध्वस्त हो गई है। इसके नगर तथा ग्राम प्रायः निर्जन और उजाड़ हैं, पुरानी ईटों की दीवारों का घेरा लगभग 10 मीटर रह गया है। इन दीवारों की केवल नीवें ही रह गई हैं। कुशीनगर के उत्तरीपूर्वी कोने पर सम्राट् अशोक द्वारा बनवाया एक स्तूप है। यहाँ पर ईटों का विहार है, जिसके भीतर भगवान् के परिनिर्वाण की एक मूर्ति बनी है। सोते हुए पुरुष के समान उत्तर दिशा में सिर करके भगवान् लेटे हुए है। विहार के पास एक अन्य स्तूप भी सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ है। यद्यपि यह खंडहर हो रहा है, तो भी 200 फुट ऊँचा है। इसके आगे एक स्तंभ है जिसपर तथागत के निर्वाण का इतिहास है। 11वीं–12वीं शताब्दी में कलचुरी तथा पाल नरेशों ने इस नगर की उन्नति के लिए पुनः प्रयास किया था, यह माथाबाबा की खुदाई में प्राप्त काले रंग के पत्थर की मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख से ध्वनित होता है।

14.4.2 पुरातात्त्विक सन्दर्भ

इस प्राचीन स्थान को प्रकाश में लाने का श्रेय जनरल ए कनिंघम और ए. सी. एल. कार्लाइल को जाता है, जिन्होंनें 1861 में इस स्थान की खोज एवं खुदाई करवाई। खुदाई में छठी शताब्दी की बनी भगवान बुद्ध की लेटी प्रतिमा मिली थी। इसके अलावा रामाभार स्तूप और और माथाकुंवर मंदिर भी खोजे गए थे। 1904 से 1912 के बीच इस स्थान के प्राचीन महत्व को सुनिश्चित करने के लिए भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग ने अनेक स्थानों पर खुदाई करवाई। प्राचीन काल के अनेक मंदिरों और मठों को यहाँ देखा जा सकता है।

कुशीनगर के करीब फाजिलनगर कस्बा है, जहाँ के 'छठियाँव' नामक गाँव में किसी ने महात्मा बुद्ध को सूअर का कच्चा माँस खिला दिया था, जिसके कारण उन्हें दस्त की बीमारी शुरू हुई और मल्लों की राजधानी कुशीनगर तक जाते–जाते वे निर्वाण को प्राप्त हुए। फाजिलनगर में आज भी कई टीले हैं, जहाँ गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग की ओर से कुछ खुदाई का काम कराया गया है और अनेक प्राचीन वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। फाजिलनगर के पास ग्राम जोगिया जनूबी पट्टी में भी एक अति प्राचीन मंदिर के अवशेष हैं, जहाँ बुद्ध की अतिप्रचीन मूर्ति खंडित अवस्था में पड़ी है। गाँव वाले इस मूर्ति को 'जोगीर बाबा' कहते हैं। संभवत जोगीर बाबा के नाम पर इस गाँव का नाम जोगिया पड़ा है। जोगिया गाँव के कुछ जुझारू लोग लोकरंग सांस्कृतिक समिति के नाम से जोगीर बाबा के स्थान के पास प्रतिवर्ष मई माह में लोकरंग कार्यक्रम आयोजित करते हैं, जिसमें देश के महत्वपूर्ण साहित्यकार एवं सैकड़ों लोक कलाकार सम्मिलित होते हैं।

14.4.3 निर्वाण स्तूप और निर्वाण मंदिर

निर्वाण स्तूप (गौतम बुद्ध का समाधि स्तूप), ईंट और रोड़ी से बने इस विशाल स्तूप को 1876 में कार्लाइल द्वारा खोजा गया था। इस स्तूप की ऊंचाई 2.74 मीटर है। इस स्थान की खुदाई से एक तांबे की नाव मिली है। इस नाव में खुदे अभिलेखों से पता चलता है कि इसमें महात्मा बुद्ध की चिता की राख रखी गई थी। महानिर्वाण या निर्वाण मंदिर कुशीनगर का प्रमुख आकर्षण है। इस मंदिर में महात्मा बुद्ध की 6.10 मीटर लंबी प्रतिमा स्थापित है। 1876 में खुदाई के दौरान यह प्रतिमा प्राप्त हुई थी। यह सुंदर प्रतिमा चुनार के बलुआ पत्थर को काटकर बनाई गई थी। प्रतिमा के नीचे खुदे अभिलेख के पता चलता है कि इस प्रतिमा का संबंध पांचवीं शताब्दी से है। कहा जाता है कि हरीबाला नामक बौद्ध भिक्षु ने गुप्त काल के दौरान यह प्रतिमा मथुरा से कुशीनगर लाया था।

14.4.4 भौगोलिक विवरण एवं प्रमुख स्तुप

वह लिखता है कि इसके उत्तर–पूर्व कोने पर अशोक निर्मित एक स्तूप था। इस स्थान पर चुन्द का मकान था, जहाँ गौतम बुद्ध ने भोजन किया, जो कि उनके प्राणान्त का कारण सिद्ध हुआ था। ग्वान् च्यांग का यह कथन असमीचीन प्रतीत होता है। महा–परिनिब्बान–सुत्त एवं फाह्यान के अनुसार चुन्द पावा का नागरिक था। ग्वान् च्यांग के अनुसार शालवन नगर के उत्तर–पश्चिम लगभग एक मील की दूरी पर अजितवती नदी के पश्चिमी तट के समीप स्थित था। लगता है कि उसके आगमन के समय हिरण्यवती नदी को अजितवती (जो कभी जीती नहीं जा सकती थी) कहते थे।इसी के किनारे मल्लों का शाल वन था। यह नदी आज की छोटी गंडक है जो बड़ी गंडक से लगभग 12 किलोमीटर पश्चिम बहती है और सरयू में आकर मिलती है। बुद्ध को कुशीनगर से राजगृह जाते हुए ककुत्था नदी को पार करना पड़ा था। आजकल इसे बरही नदी कहते हैं और यह कुशीनगर से 12 किमी की दूरी पर बहती है।

शाल वृक्षों में चार बड़े आकार वाले थे। इनकी खाल सफेद तथा पत्तियाँ चमकीली थीं। इन्हीं के द्वारा घिरे हुए क्षेत्र के बीच गौतम बुद्ध की मृत्यु हुई थी। इस स्थान की पहचान कनिंघम ने आधुनिक 'माथाकुँवर कोट' (मृतक राजकुमार का दुर्ग) से किया था (दी एन्सियेन्ट ज्याग्रफी ऑफ इंडिया, पृष्ठ 364)। वहाँ पर ईंटों से निर्मित एक बड़ा चैत्य था, जिसमें एक मूर्ति रखी थी। इसमें वे परिनिर्वाण को प्राप्त तथा उत्तर की ओर सिर किये हुए लेटी अवस्था में दिखाये गये थे। इस चैत्य के समीप अशोकनिर्मित एक स्तूप था, जिसकी ऊँचाई दो सौ फीट के लगभग थी। इसके सामने एक पत्थर की लाट थी, जिस पर उनके परिनिर्वाण की परिस्थितियों का वर्णन उत्कीर्ण किया गया था। परन्तु तिथि एवं माह का कोई उल्लेख नहीं था।

इसके सन्निकट एक और स्तूप था, जहाँ सुभद्र की मृत्यु हुई थी। यह पहले ब्राह्मण मतावलम्बी था। एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में उसने गौतम बुद्ध से बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी। इसके बगल में एक अन्य स्तूप था। इस स्थान पर बुद्ध का शव सुवर्णनिर्मित सन्दूक में सात दिनों तक रखा गया था। इस काल में देवताओं ने इस रूप में पड़े, उनके मृतक शरीर की वन्दना की थी। तत्पश्चात् एक दूसरा स्तूप विद्यमान था। स्थानीय परम्परा के अनुसार अपने पुत्र की मृत्यु का संवाद सुनकर देवी महामाया स्वर्ग से उस स्थान पर उत्तरी थीं।

14.4.5 मंदिर, स्तूप एव अन्य स्थापत्य

माथाकुंवर मंदिर, निर्वाण स्तूप से लगभग 400 गज की दूरी पर है। भूमि स्पर्श मुद्रा में महात्मा बुद्ध की प्रतिमा यहाँ से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा बोधिवृक्ष के नीचे मिली है। इसके तल में खुदे अभिलेख से पता चलता है कि इस मूर्ति का संबंध 10–11वीं शताब्दी से है। इस मंदिर के साथ ही खुदाई से एक मठ के अवशेष भी मिले हैं। रामाभर स्तूप, 15 मीटर ऊंचा यह स्तूप महापरिनिर्वाण मंदिर से लगभग 1.5 किलोमीटर की दूरी पर है। माना जाता है कि यह स्तूप उसी स्थान पर बना है, जहाँ महात्मा बुद्ध को 483 ई0पू0 में दफनाया गया था। प्राचीन बौद्ध लेखों में इस स्तूप को मुकुट बंधन चैत्य का नाम दिया गया है। कहा जाता है कि यह स्तूप महात्मा बुद्ध की मृत्यु के समय कुशीनगर पर शासन करने वाले मल्ल शासकों द्वारा बनवाया गया था।कुशीनगर में अनेक बौद्ध देशों ने आधुनिक स्तूपों और मठों का निर्माण करवाया है। चीन द्वारा बनवाए

गए चीन मंदिर में महात्मा बुद्ध की सुंदर प्रतिमा स्थापित है। इसके अलावा जापानी मंदिर में अष्ट धातु से बनी महात्मा बुद्ध की आकर्षक प्रतिमा देखी जा सकती है। इस प्रतिमा को जापान से लाया गया था।

कुशीनगर में खुदाई से प्राप्त अनेक अनमोल वस्तुओं को बौद्ध संग्रहालय में संरक्षित किया गया है। यह संग्रहालय इंडो–जापान–श्रीलंकन बौद्ध केन्द्र के निकट स्थित है। आसपास की खुदाई से प्राप्त अनेक सुंदर मूर्तियों को इस संग्रहालय में देखा जा सकता है। यह संग्रहालय सोमवार के अलावा प्रतिदिन सुबह 10 से शाम 5 बजे तक खुला रहता है। माँ भवानी देवी मंदिर, जिस प्राचीन हिरण्यवती नदी के किनारे भगवान बुद्ध का अंतिम संस्कार हुआ था, उसके ठीक बगल में मल्ल राजाओं की कुलदेवी का भी स्थान था, जो आज 'माँ भवानी मंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ होने वाले राजा अर्थात युवराजों का मुकुट बंधन जैसा पवित्र संस्कार इसी स्थान पर कराया जाता था। पुरातात्विक दृष्टिकोण से उपेक्षित इस मंदिर में वर्षों से पूजा–पाठ होती रही है। चैत्र मास की रामनवमी के दिन यहाँ एक विशाल मेला का आयोजन किया जाता है, जिसमें भाग लेने व मन्नौती माँगने के लिए श्रद्धालु काफी दूर–दूर से आते हैं।, इन दर्शनीय स्थलों के अलावा कुशीनगर में क्रिएन मंदिर, शिव मंदिर, राम–जानकी मंदिर, मेडिटेशन पार्क, बर्मी मंदिर आदि भी देखे जा सकते हैं।

14.4.6 अन्त्येष्टि संस्कार स्थल

मृत्यु के पश्चात् वहीं तथागत की अंत्येष्टि क्रिया चक्रवर्ती राजा की भाँति की गई। बुद्ध के अवशेष के अपने भाग पर कुशीनगर के मल्लों ने एक स्तूप खड़ा किया। कसया गाँव के इस स्तूप से ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें उसे 'परिनिर्वाण चौत्याम्रपट्ट' कहा गया है। अतः इसके तथागत के महापरिनिर्वाण–स्थान होने में कोई सन्देह नहीं है। नगर के उत्तर हिरण्यवती नदी के दूसरे तट पर गौतम बुद्ध का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया था। वहाँ पर भी एक स्तूप बना हुआ था। महापरिनिर्वाण सुत्त में इसे 'मुकुट बन्धन' कहा गया है। इस स्तूप का यह नाम इसलिए पड़ा था कि यहाँ मल्ल नरेशों का अभिषेक किया जाता था और इस अवसर पर उनके सिर पर मुकुट बाँधा जाता था (मुकुटबन्धन नाम मल्लान चेतियं)। इसकी पहचान रामाभार तालाब के पश्चिम तर पर स्थित एक विशाल स्तूप के खण्डहर से की जाती है, जो माथाकुँवरकोट से कुछ मील की दूरी पर स्थित है। इस स्थान की मिट्टी पवित्र मानी जाती थी। जिस स्थान पर बुद्ध की अस्थियों का बंटवारा भारतवर्ष के आठ नरेशों के बीच हुआ था, वहाँ अशोक के द्वारा निर्मित एक स्तूप था। इसके पास एक पत्थर की लाट थी, जिस पर एक शंख उत्कीर्ण किया गया था। इस पर भी बुद्ध के परिनिर्वाण की परिस्थितियों का उल्लेख किया गया था। ह्यान् च्यांग ने बौद्ध धर्म के उच्छेदन के निमित्त कुशीनगर में शशांक की कृतियों का उल्लेख किया है।

14.5 द्वारकापुर (अक्षांश 25° 38′ 22′′ उत्तरी, देशान्तर 82° 14′ 0′′ पूर्वी)

द्वारकापुर पुरास्थल उत्तर प्रदेश के सन्त रविदास नगर जिले में गंगा नदी के बायें तट पर स्थित है। पुरास्थल का नजदीकी रेलवे स्टेशन कटका है जो पूर्वी रेलवे के वाराणसी, इलाहाबाद मार्ग पर स्थित है। अगियाबीर नामक ताम्रपाषाणिक पुरास्थल, इस पुरास्थल के नजदीक स्थित है। द्वारकापुर का टीला 300 x 500 मीटर के क्षेत्रफल में वर्तमान भू–सतह से तीन मीटर की उँचाई पर स्थित है (चित्र संख्याः 14.7)। इस टीले का अधिकांश भाग गंगा नदी द्वारा काट दिया गया है। टीले के पश्चिमी भाग पर द्वारकापुर गाँव स्थित है। इस पुरास्थल का उत्खनन कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के अशोक कुमार सिंह द्वारा सन् 2013–2014 ईस्वी में करवाया गया। उत्खनन के परिणाम स्वरूप तीन सांस्कृतिक कालों का साक्ष्य प्राप्त हुआ है (सिंह एवं अन्य. 2013–14:34)। जिसका विवरण निम्नवत् है–

1. ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति
2. प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति
3. उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति

चित्र संख्या 14.7: द्वारकापुर पुरास्थल का विहंगम दृश्य

इस पुरास्थल का प्रथम काल ताम्रपाषाणकालीन संस्कृति से सम्बन्धित है जिसका सांस्कृतिक जमाव 45 से0मी0 का प्राप्त हुआ है। इस जमाव से कृष्ण–लोहित, कृष्ण लेपित, लाल लेपित और लाल रंग की पात्र परम्पराओं से सम्बन्धित पात्र प्राप्त हुए है। इस काल के प्रमुख पात्र प्रकारों में कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा से सम्बन्धित नाद, कटोरे और स्टोरेज जार हैं। कुछ कृष्ण–लोहित पात्रों पर रस्सी की छाप मिलती है। कृष्ण–लेपित पात्रों में कटोरा और साघार कटोरा प्रमुखता से मिले हैं। लाल पात्रों में प्रमुख प्रकार सादा कटोरा बिना आकार वाली बारी का तथा छिद्रित पॉव युक्त घड़ा मिला हैं। कुछ लाल पात्रों पर चिपकाकर अलंकरण करने का प्रमाण भी प्राप्त हुआ है। यहाँ से जो मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं वह वैना, लहुरादेवा, भूनाडीह, नरहन, खैराडीह, आगियाबीर, झूँसी, टोकवा, राजा–नल का टीला, मल्हर, चेचर–कुतुबपुर, सेनुवार और चिरॉंद से प्राप्त मृदभाण्डों से समानता रखते हैं।

सारणी14.1 : द्वारकापुर से प्राप्त पॉटरी डिस्क का वर्गीकरण

क्र0सं0	**प्रकार**	**संख्या**
1	सादा (अछिद्रित)	23
2.	छिद्रित (केवल एक छिद्र)	04
	योग	27

सारणी 14.2

द्वारकापुर के ताम्रपाषाणिक चरण से प्राप्त मनकों का वर्गीकरण

क्र0सं0	माध्यम	मनको की संख्या
1	अगेट	2 (अर्धनिर्मित)
2.	कार्नेलियन	–
3.	जैस्पर	–
4.	टेराकोटा	10
योग		12

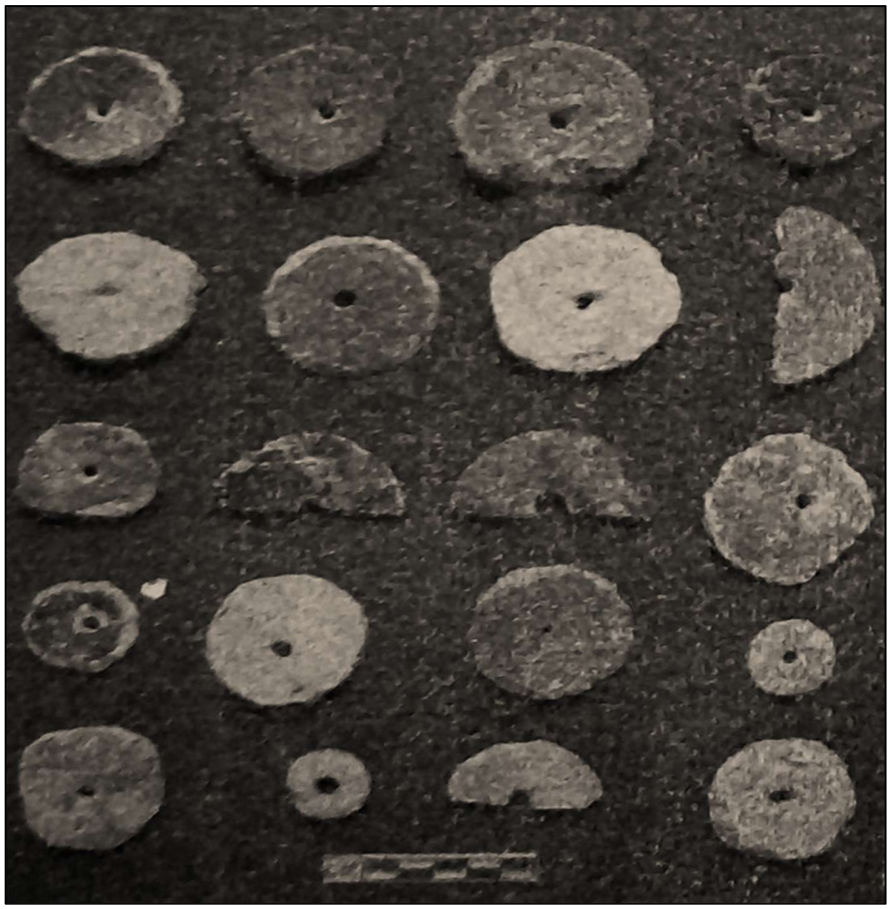

चित्र संख्या 14.8 : मृण चक्राभ

मृदभाण्डों के अलावा यहाँ से 27 पॉटरी डिस्क (चित्र संख्याः 14.8) (सारणीः 14.1), चार हड्डी पर बनी प्वांइट और वाणाग्र (चित्र संख्याः 14.10), दो अगेट का मनका (अर्धनिर्मित), 10 टेराकोटा का बना मनका (चित्र संख्याः 14.9) (सारणीः 14.2) 13 नेट सिन्कर्स और बेलनाकार मनके (चित्र संख्याः 14.11) आदि उल्लेखनीय अवशेष प्राप्त हुए हैं।

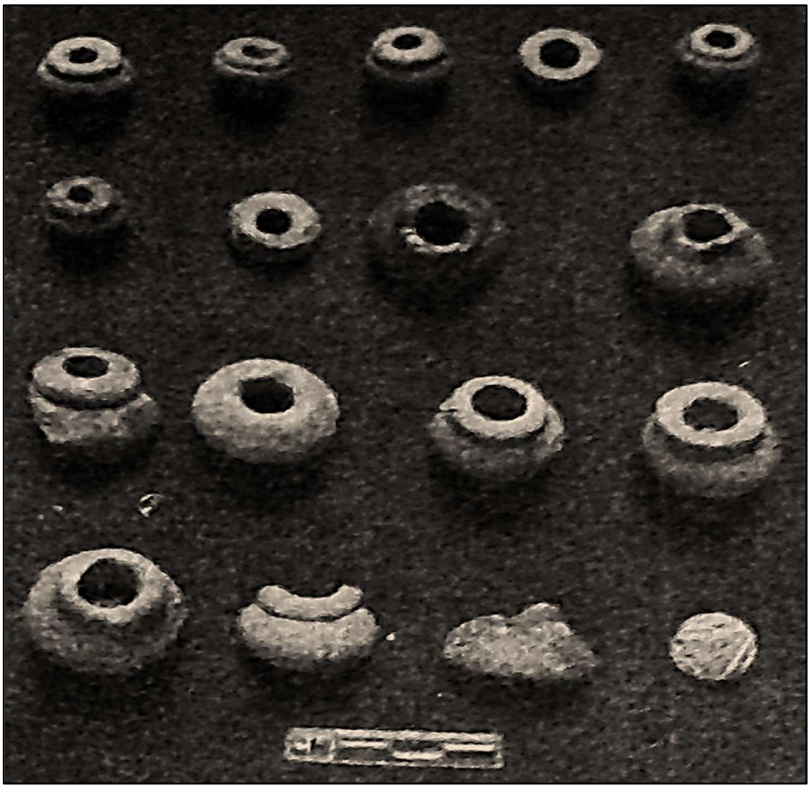

चित्र संख्या 14.9 : द्वारकापुर पुरास्थल से प्राप्त मनके

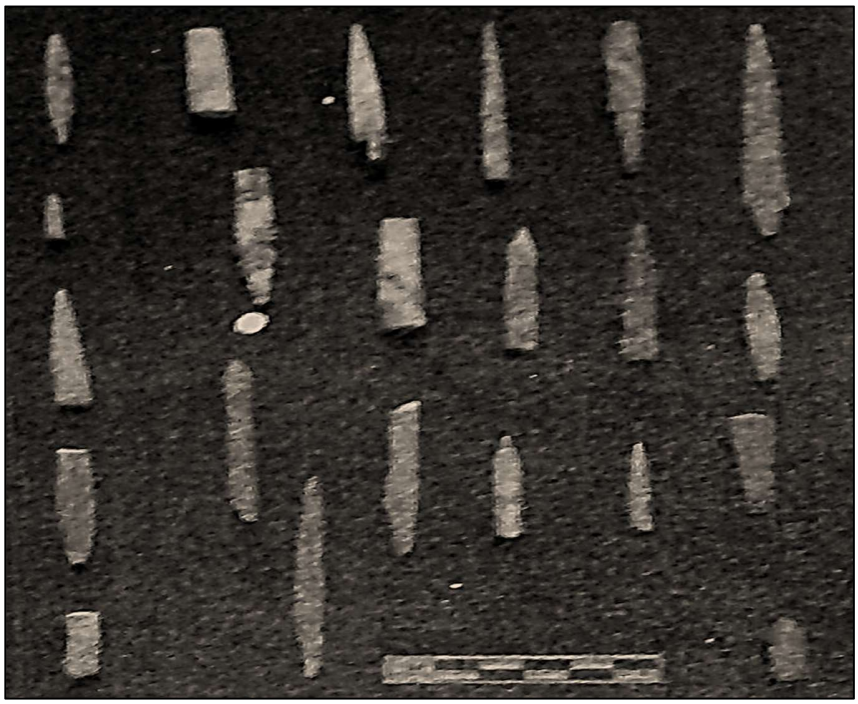

चित्र संख्या 14.10 : अस्थि उपकरण

चित्र संख्या 14.11 : बेलनाकार मनके

इस पुरास्थल पर आवास करने वाला प्रारम्भिक मानव बाँस और बल्ली की सहायता से बनी झोपड़ियों में रहता था। इस बात की पुष्टि जली हुई मिट्टी के ढोकों के ऊपर बाँस और बल्ली की छाप से होती है। यहाँ से जली मिट्टी के ढोकों के अलावा स्तम्भ–गर्त का भी प्रमाण मिला है। उत्खनन से एक फर्श का भी प्रमाण मिला है जिसे जली मिट्टी के ढोकों और मृदभाण्ड के टुकड़ों को पीट–पीट कर बनाया गया है। इस काल के मानव की जीविका का साधन कृषि, शिकार और मत्स्य–पालन था। यहाँ से प्राप्त पुरा–जैविक अवशेषों को अभी अध्ययन के लिये भेजा गया है। इस काल से अत्यधिक संख्या में जानवरों की हड्डियाँ भी प्राप्त की गयी हैं जिनकी जाँच अभी की जा रही है। इस स्तर से गोलाकार चूल्हों की प्राप्ति हुई है, जिनका मुख–भाग लगभग 50 सेमी0 व्यास का तथा गहराई 90 सेन्टीमीटर है।

इस पुरास्थल का द्वितीय काल प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति का तथा तृतीय काल उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति का है।

14.6 सारांश

श्रावस्ती के बारे में 'महापरिनिब्बानसुत्त' में कहा गया है कि इसकी गणना तत्कालीन छः सुप्रसिद्ध नगरों में होती थी। इसमें धनिक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य रहते थे, जिनकी बौद्ध धर्म में असीम निष्ठा थी। ललितविस्तर में इसे कोसल का सबसे प्रधान नगर कहा गया है। समन्तपासादिका के अनुसार यह 57 हजार कुलों का निवास–स्थान तथा कोसल–नरेशों की आय का प्रमुख साधन था। इस नगर की परिखा, प्राकार एवं नगरद्वार के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में यत्र–तत्र आकस्मिक उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणार्थ, धम्मपदटीका में इसके उत्तर–द्वार का उल्लेख हुआ है। फाह्यान ने इसके दक्षिण–द्वार तथा ह्वान् च्यांग ने इसके पूर्व–द्वार का उल्लेख किया है। कुशीनगर में खुदाई से प्राप्त अनेक अनमोल वस्तुओं को बौद्ध संग्रहालय में संरक्षित किया गया है। यह संग्रहालय इंडो–जापान–श्रीलंकन बौद्ध केन्द्र के निकट स्थित है। आसपास की खुदाई से प्राप्त

अनेक सुंदर मूर्तियों को इस संग्रहालय में देखा जा सकता है। यह संग्रहालय सोमवार के अलावा प्रतिदिन सुबह 10 से शाम 5 बजे तक खुला रहता है। माँ भवानी देवी मंदिर, जिस प्राचीन हिरण्यवती नदी के किनारे भगवान बुद्ध का अंतिम संस्कार हुआ था, उसके ठीक बगल में मल्ल राजाओं की कुलदेवी का भी स्थान था, जो आज 'माँ भवानी मंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है। द्वारकापुर पुरास्थल पर आवास करने वाला प्रारम्भिक मानव बाँस और बल्ली की सहायता से बनी झोपड़ियों में रहता था। इस बात की पुष्टि जली हुई मिट्टी के ढोकों के ऊपर बाँस और बल्ली की छाप से होती है। यहाँ से जली मिट्टी के ढोकों के अलावा स्तम्भ–गर्त का भी प्रमाण मिला है। उत्खनन से एक फर्श का भी प्रमाण मिला है जिसे जली मिट्टी के ढोकों और मृदभाण्ड के टुकड़ों को पीट–पीट कर बनाया गया है। इस काल के मानव की जीविका का साधन कृषि, शिकार और मत्स्य–पालन था। अंततः कह सकते है कि प्रथम दो पुरास्थल बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है जबकि द्वारकापुर पुरास्थल इस कालखण्ड के लिए भौतिक अवशेष प्रस्तुत करता है, इस प्रकार इन तीनों पुरास्थलों का उत्तर प्रदेश के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
3. के0 के0 थपल्याल एवं संकठा प्रसाद– सिन्धु सभ्यता
4. पाण्डेय, जे0एन0 2008. *पुरातत्त्व विमर्श.* प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद।
5. भट्टाचार्य, डी0के0 2007. *भारतीय प्रागैतिहास की रूपरेखा.* पलका प्रकाशनः दिल्ली।
6. गोयल, श्रीराम. 2008. *प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.* विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी।
7. शर्मा, जी0आर0 1985. *भारतीय संस्कृतिः पुरातात्विक आधार, नई दिल्ली* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. जायसवाल, विदुला. 1989. *भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग.* स्वाती प्रकाशनः दिल्ली।
9. दुबे, अनिल कुमार .2005. *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया* (जौनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) इलाहाबादः स्वाभा प्रकाशन।
10. मिश्रा, वी0डी0 1997. *सम ऑसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी.* प्रभात प्रकाशनः इलाहाबाद।
11. वी0 के0 पाण्डेय, 'पुरातत्त्व मीमाँसा', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
12. चतुर्वेदी, एस0एन0 .1980. ''एक्सक्वेशन एट साथियोन फजलनर डिस्ट्रिक्ट ऑफ देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश'', *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी।*
13. जायसवाल, विदुला. 1987. *भारतीय इतिहास के आदि चरण की रुपरेखा.* स्वाती प्रकाशन : दिल्ली।
14. जायसवाल, विदुला .1992. *भारतीय इतिहास का नव प्रस्तर युग.* स्वाती पब्लिकेशनःदिल्ली।
15. जायसवाल, विदुला. 2003. ''अकथाः ए सेटेलाइट सेटलमेन्ट आफ सारनाथ,'' *भारती* अंक–26. बी0एच0यू0: वाराणसी
16. विभा त्रिपाठी. 2012. द राइज ऑफ सिविलाइजेसन इन द गंगेटिक प्लेन, आर्यन बुक, नई दिल्ली।
17. तिवारी राकेश, आर0के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह .2001–2002. ''एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा, जिला–सन्त कबीर नगर''. *पुरातत्त्व–32:* नई दिल्ली।

18. नारायण, ए0के0 एवं टी0एन0 राय .1978. *एक्सकवेशन एट प्रहलादपुर.* वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

19. शर्मा, जी0आर0 1980. *हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री.* इलाहाबाद विश्वविद्यालयः इलाहाबाद।

20. सिंह, पी0 1994. *एक्सकवेशन एट नरहन* (1984–89). वाराणसीः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

21. सिंह, पुरुषोत्तम .2010. *आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लेन,कल्चरल हिस्टोरिकल डायमेंशन्स.* आर्यन बुक्स इण्टरनेशनलः नई दिल्ली।

22. सिंह, बी0पी0 एवं दीपक कुमार राय .2013. *एक्सक्वेशन एट खैराडीह* (1980–84, 85–86). बी0एच0यू0ः वाराणसी।

23. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998,लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।

24. मोतीचंद्र, काशी का इतिहास,, सन् 2010 चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृष्ठ संख्या 43–44

14.8 बोध प्रश्न

- श्रावस्ती पुरास्थल पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
- कुशीनगर पुरास्थल के घार्मिक सन्दर्भ पर प्रकाश डालिए।
- श्रावस्ती पुरास्थल के सांस्कृतिक संदर्भ की विवेचना कीजिए।
- द्वारकापुर पुरास्थल के पुरातत्त्व पर विस्तृत टिप्पणी लिखें।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333